WOMEN CHARACTERS IN POST PREMCHAND HINDI NOVELS [1936–1970]

Thesis Submitted to the
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY

for the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
Mrs. UMA B. NAIR

Prof. & Head of the dept.
Dr. N. RAMAN NAIR

Supervising Teacher
Dr. N. RAMAN NAIR

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

1990

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी-पात्र
§1936 से 1970 तक§

कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के
पी-एच·डी· की उपाधि केलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

मिसेज़ उमा·बी·नायर

विभागाध्यक्ष
डॉ· एन·रामन नायर

निर्देशक
डॉ· एन·रामन नायर

हिन्दी विभाग

1990

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carriedout by Mrs UMA.B.NAIR, under my supervision for Ph.D. degree and no part of this thesis had hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. N. RAMAN NAIR
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology
Cochin, Pin 682022,
Date : 2nd April 1990

प्राक्कथन

प्राक्कथन

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । समाज का अर्द्धांग है नारी । इसलिए पुरुष के समान ही नारी का भी महत्वपूर्ण स्थान है । साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास का प्रमुख स्थान है, क्योंकि उपन्यास मानव-जीवन का चित्र है । मानवजीवन में नारी का जो स्थान है, वही स्थान उपन्यासों में नारीपात्रों का है । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं । प्रस्तुत काल के हिन्दी उपन्यासों के नारीपात्रों के चरित्र का उद्घाटन और निर्धारण करना इस शोध-प्रबंध का उद्देश्य है । इसकेलिए मैं ने सन् 1936 से 1970 तक के उपन्यासों को लिया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध में छः अध्याय हैं :-

प्रथम अध्याय में समाज में नारी का स्थान निर्धारित किया गया है । उसके बाद प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक नारी के जीवन में जो परिवर्तन होता रहा है, उसका चित्र भी अंकित किया गया है ।

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल तक के नारीचित्रण का परिचय भी किया गया है ।

आधुनिककाल में भारतेन्दुयुग से लेकर प्रेमचन्द युग तक के हिन्दी काव्य, नाटक, कहानी और उपन्यास साहित्य में नारीचित्रण का संक्षिप्त परिचय दूसरे अध्याय में दिया गया है ।

तीसरे अध्याय में प्रेमचन्दोत्तर काल को स्वतंत्रतापूर्व, स्वातंत्र्योत्तर और साठोत्तर इन तीन कालों में विभक्त करके प्रत्येक काल के प्रमुख उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों का उल्लेख किया गया है । समस्त प्रेमचन्दोत्तर काल के नारीपात्रों का वर्गीकरण करके उनकी सफलता-असफलता पर विचार किया गया है । नारी के विविध रूपों पर भी प्रकाश डाला गया है ।

चौथे अध्याय में आलोच्यकाल के उपन्यासों के प्रमुख नारीपात्रों का विवेचन किया गया है ।

पाँचवें अध्याय में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कुछ विशिष्ट नारीपात्रों का विवेचन किया गया है जिनका विवेचन चौथे अध्याय में न किया गया था ।

छठा अध्याय प्रस्तुत प्रबंध का अंतिम अध्याय है । इस अध्याय में समस्त प्रेमचन्दोत्तर काल के नारीपात्रों के विवेचन से उनसे संबंधित समस्यायें, प्रथायें आदि के बारे में और उपन्यासकारों के नारी संबंधी दृष्टिकोण के बारे में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

सन् 1936 से 1970 तक हिन्दी साहित्य में अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इन सभी उपन्यासों का अध्ययन करने की मैं ने भर सक कोशिश की। प्राप्त सभी सामग्रियों का इस्तेमाल किया।

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफसर डॉ॰एन॰रामन नायर जी के कुशल निर्देशन से यह प्रबंध तैयार किया गया है। उन के प्रति मेरे मन में अतीव आदर और कृतज्ञता है। विभाग के कार्यालय के कर्मचारी, पुस्तकालय के कार्यकर्ता और अन्य सभी हितैषियों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

उमा॰बी॰नायर

हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विज्ञान एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्चिन, पिन 682022
तिथि 2, अप्रैल 1990

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय 1 - 96

भूमिका

पुरुष और नारी - नारी की महिमा - प्रागैतिहासिक काल की नारी - वैदिककाल की नारी - उत्तर वैदिक काल की नारी - जैन और बौद्धकाल की नारी - स्मृति काल में नारी - नीतिकाव्य में नारी - संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण - अपभ्रंश साहित्य में नारी - सिद्ध साहित्य में नारी - नाथ-सम्प्रदाय में नारी - वीरगाथा काल की नारी - निर्गुण भक्ति धारा में नारी - सन्त काव्यों में नारी - प्रेमाश्रयी शाखा में नारी - सगुण भक्ति धारा में नारी - राम काव्य में नारी - कृष्ण काव्य में नारी - रीतिकाल में नारी - भारत में राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन और नारी जीवन पर उनका प्रभाव - ईस्वीं शताब्दी से इस्लाम के संपर्क तक नारी सामन्ती व्यवस्था का विलास वैभव और नारी - इस्लाम के अन्तर्गत नारी - भारत में नव-जागरण - स्वतन्त्रता संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई - समाज में स्त्रियों के स्थान के संबन्ध में नवीन दृष्टिकोण ।

पृष्ठ-संख्या

दूसरा अध्याय 97 - 248

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी (प्रेमचन्द युग तक)

भारतेन्दु युग की नारी - द्विवेदीयुग की नारी
छायावाद - रहस्यवाद युग की नारी - प्रगतिशील
प्रयोगवादी युग की नारी - नाटक - नाटकों में
स्त्री-पात्र - हिन्दी में नाटक-साहित्य - हिन्दी
के कुछ प्रमुख नाटककारों के नाटकों में स्त्री-पात्र -
आभिजात्यवर्ग - मध्यवर्ग - प्रेमिका वर्ग -
विलासिनियाँ - विदेशी - विविध - नायिकायें
हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में स्त्री-पात्र - क्षत्राणियाँ
मुगलानियाँ - मध्यवर्गीय स्त्रियाँ - वारांगनायें -
उदयशंकर भट्ट के नाटकों में नारी पात्र - पतिपरायणा
महिलाएँ - वीरांगनाएँ - विद्रोहिणियाँ - ईर्ष्यालु
नारियाँ - लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में नारी -
गोविन्द वल्लभ पन्त के नाटकों में स्त्री-पात्र - कथा -
कहानी और उपन्यास - हिन्दी साहित्य में कहानी -
हिन्दी कहानियों में नारी-पात्र - प्रेमचन्द की
कहानियों में स्त्री-पात्र - जयशंकर प्रसादजी की
कहानियों में स्त्री-पात्र - उपन्यास - हिन्दी
उपन्यास - हिन्दी उपन्यासों में पात्र एवं चरित्र
चित्रण - उपन्यास में नारी - पूर्वप्रेमचन्द काल - पूर्वप्रेमचन्द
काल के उपन्यासों में नारी - कुसुमकुमारी - सरोजिनी -
लक्ष्मी - भाग्यवती - पूर्वप्रेमचन्दकालीन उपन्यासकारों
का नारी-संबन्धी दृष्टिकोण - प्रेमचन्दयुग के उपन्यास

पृष्ठ-संख्या

प्रेमचन्दकाल के उपन्यासों में नारी पात्र -
पुष्पकुमारी - मनोरमा - कट्टो - जस्सो -
श्रद्धा - शीलमणि - सुनीता - विद्या {असफल
गृहिणियाँ} - निर्मला - कल्याणी - गायत्री {विधवाएँ}
पूर्णा - सुमन {वेश्यायें} - चित्रलेखा {नर्तकियाँ} -
मिस मालती - विलासी {कृषक नारियाँ} -
प्रेमचन्दयुग के उपन्यासकारों के नारी-संबन्धी
दृष्टिकोण ।

तीसरा अध्याय 249 - 342

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास तथा नारी - पात्र

स्वतन्त्रतापूर्व काल - स्वातंत्र्योत्तरकाल -
साठोत्तर काल - प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों के नारी-पात्रों
का वर्गीकरण - प्रेमिकाएँ - गृहस्थ नारियाँ - विधवाएँ
वेश्याएँ - कलानिपुण नारियाँ - दासियाँ - वीरांगनाएँ
प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के नारीपात्रों के विविध रूप -
पुत्री-बहन - पत्नी - भाभी - माँ - विमाता -
सास - दादी ।

पृष्ठ-संख्या

चौथा अध्याय 343 - 424

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के प्रमुख नारी-पात्र

गीता - दिव्या - सुधा - मृणाल - शैलबाला - सोमा
अमिता - तारा - गुलबिया (गिरिजाकुमारी) - प्रभा
नीलिमा - चन्दा - मानकुमारी - नसीबन - चित्रा ।

पाँचवाँ अध्याय 425 - 474

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के कुछ विशिष्ट नारी पात्र

राज - छाया - रत्नप्रभा - नीलिमा - सत्या - कल्याणी
माधवी - अंजना - प्यारी - कजरी - कनक - ताजमनी
सुषमा - उग्रतारा - रेखा - योके - शीरीं ।

छठा अध्याय 475 - 490

उपसंहार

सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची 491 - 504

----0----

पहला अध्याय

भूमिका

भूमिका

पुरुष और नारी

नारी की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। प्राचीन भारतीय शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विश्वनिर्माता प्रजापति ने अपने को दो भागों में विभक्त किया, एक भाग पत्नी बना तो दूसरा पति। वैशेषिक मतानुसार जीवात्मा और परमात्मा आत्मा के दो भेद हैं। परमात्मा ने अपने को दो भागों में विभक्त किया। आधा भाग पुरुष बना तो आधा नारी। इसी से अर्द्धनारीश्वर की भावना का रूपविकास हुआ। निरीश्वरवादी सांख्य-दर्शनकार तो इस समस्त जगत् को पुरुष और प्रकृति के संयोग-प्रति-संयोग से उत्पन्न मानते हैं। शिवपुराण की वायवीय संहिता के पूर्व भाग में स्त्री को शक्ति का प्रतीक माना है। श्रीमद्भागवत् के अनुसार सृष्टिकर्ता के तपोमय, ज्ञानमय शरीर से एक दिव्य नर-नारी का जोड़ा प्रकट हुआ। नर सार्वभौम

सम्राट मनु थे और नारी विश्वमानव की माता शतरूपा । "संसार-सागर-मथन" नामक ग्रंथ के अनुसार सृष्टिकर्ता ने सर्वप्रथम अचेतन सृष्टि का निर्माण किया, फिर प्राणियों का और तदुपरान्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष का । नारी का निर्माणकार्य अत्यन्त व्ययसाध्य मालूम पड़ा तो ब्रह्मा ने चन्द्रमा की चन्द्रिका, लता की कोमलता, तिनके का कम्पन, पुष्प की सुकुमारता, जल की तरलता, वायु की चंचलता, सूर्यरश्मियों की तेजस्विता, हरिण के कटाक्ष, हाथी की मन्दगति, कोयल की आवाज़, बाघ की क्रूरता, बगुले का ढोंग और रत्न की कठोरता का संग्रह करके नारी का निर्माण किया और उसे नर को सौंप दिया । ईसाई-धर्म के अनुसार आदम की पसली से नारी को निर्मित किया गया है[1] ।" संत कवि कबीरदास भी इच्छा रूप नारी के अवतरित होने की बात कहते हैं[2] ।"

विषम समाज में विषम परिस्थितियों के कारण नारी के विभिन्न स्वरूप है । शब्द के आधार पर उस के वास्तविक स्वरूप को समझना कठिन है । ऋग्वेद तथा परवर्ती साहित्य में याज्ञिक पत्नी के लिए नारी शब्द प्रयुक्त हुआ है । अमरकोषकार के अनुसार स्त्री, योषा, जोषा, प्रतीपदार्शिनी आदि नारी के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं ।

---

1. Genesis pp.11-20,23

2. कबीर वचनावली - पद 52, पृ.117

भारतीय साधकों, महर्षियों तथा मनीषियों ने नारी के सौन्दर्य, उस की कोमलता तथा मधुरता में महाशक्ति का प्रकाश दिया है । उनके मतानुसार नारी शक्तिस्वरूपिणी है, क्योंकि उसमें वीर्य और ऐश्वर्य सौन्दर्य और माधुर्य, स्नेह और ममता, प्रेम और त्याग आदि अनेक कोमल तथा शान्त गुण समूह विद्यमान हैं । उसमें अनन्त शक्ति का स्रोत है । वह पुरुष और पौरुष की जननी है । भारतीय नारी ने समाज में अनायास ही श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था[1]। सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्मा ने अपने को दो रूपों में विभक्त किया - एक ब्रह्म, दूसरी शक्ति । ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के अनुसार यह समस्त जगत इसी शक्ति की ही रचना है । भगवान की स्तुति करते समय सर्वप्रथम इसी जगत् जननी महाशक्ति की वन्दना की जाती है । "दुर्गासप्तशती" में नारी के विविध रूपों की वन्दना करते हुए इसी महाशक्ति को विश्वात्मिका तथा विश्वेश्वरी बतलाया गया है[2]। भारतीय मूर्ति विधान में सप्त मातृकाओं की तथा शास्त्रकारों ने षोडश मातृकाओं की कल्पना की है[3]।

नारी ही आदिम संस्कृति का उद्गम स्थान है । वही सृष्टि की उत्पादिका, प्रतिपालिका और गार्हस्थ्य - स्नेह सुख की सरिता का स्त्रोत है । नारी प्रेरणा शक्ति का नाम है और पुरुष संघर्षशक्ति का ।

---

1. भारतीय नारी के सभी स्वरूपों में एक सात्त्विकता थी, एक सौम्यता थी, एक दिव्यत्व था जो समाज के शिरोभाग को विभूषित करता था और इस स्थान को प्राप्त करने केलिए उसे कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता था, वरन् अपने प्राकृतिक गुणों की सहज अभिव्यक्ति, में स्वभाव से ही उसे वह पुण्य पद प्राप्त था ।" कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक, पृ·62।

2. "नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः
नमः प्रकृति भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ।
- दुर्गा सप्तशती" अ·5।8-82

3. "गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया,
देवसेना, स्वधा, स्वाहा मातरो लोकमातरः,
शान्तिः पुष्टि धृतिस्तुष्टि पते षोडश मातृकाः ।"
- संस्कार भास्कर

प्रेरणा और संघर्ष का संग्राम ही पूर्ण जीवन है । श्रीमती महादेवी वर्मा का कथन है, "पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से, जीवन के कठोर संघर्ष में जो पुरुष विजयी प्रमाणित हुआ, उसे स्त्री ने कोमल हाथों से जयमाल देकर, स्निग्ध चितवन से अभिनन्दित कर के और स्नेह-प्रवण आत्मनिवेदन से अपने निकट पराजित बना डाला[1] ।" "शक्ति संगम-तंत्र" के ताराखंड में शिवजी का कथन है कि नारी ही त्रैलोक्य की माता, त्रैलोक्य का प्रत्यक्ष विग्रह, त्रिभुवन का आधार और शक्ति की देह है।[2] नारी के कारण संसार की सब से अद्भुत संस्था गृह का जन्म हुआ, परिवार बने और समाज-विकास का क्रम चला । "समस्त विश्व की नारी मूल उद्भाविनी शक्ति का प्रतीक है[3] ।"

"कहा न तिरिया कर सके", "का न करे अबला प्रबल" आदि उक्तियाँ स्त्री के अखंड महत्त्व के प्रमाण हैं । नारी के बिना पुरुष पंगु है । आस्वाद्य, आस्वादन और आस्वादक इन तीनों गुणों के कारण नारी आकर्षण का केन्द्र है । नारी रूप में नर से अधिक सुकुमारता, मादकता, मृदुता, वशीकारिता, सुन्दरता, सरसता एवं आकर्षण है । उस प्राणदात्री की प्रेरणा पुरुष को महान कलाकार, महान कवि और महान उद्योगी बना सकती है ।

1· शृंखला की कड़ियाँ - सुश्री महादेवी वर्मा, पृ·21

2· नारी त्रैलोक्य जननी नारी त्रैलोक्य रूपिणी ।
नारी त्रिभुवनाधारा नारी देहस्वरूपिणी ।।
xx xx xx
न च नारी समं सौख्यं न च नारी समा गतिः ।
न नारी सदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।।"
- ताराखंड, 13 - 44-46-48

3· "कल्याण" - श्री· रामनाथ सुमन - वर्ष 38, अंक 10, पृ·1262

नारी का माता रूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है । "माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकः", "पितुर्दशगुणमाता गौरवेणातिरिच्यते" आदि इस के द्योतक है । मातृत्व में जो अनन्त वात्सल्य है, वह समस्त संसार को सिक्त किये हुए है । "जीवन के अरुणोदय में नारी ही जननी के रूप में सात्त्विक, राजसिक और तामसिक संस्कारों का जो बीज बालक के जीवनक्षेत्र में वपन करती है, वही बीज पुष्पित और पल्लवित होकर जगत्-जीवन का कारण बनता है । सर्जन, पालन तथा प्रलय की शक्तियों से परिपूर्ण होने के कारण शास्त्रों और पुराणों में नारी को "अवध्या" कहा गया है ।

अहल्या, सीता, उर्मिला, यशोधरा आदि उपेक्षिता नारियाँ स्वयं दुःख सहकर भी प्रेम और त्याग के पथ से कभी नहीं हटीं । "भारतवासियों के सब आदर्श स्त्री रूप में पाये जाते हैं । विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का लक्ष्मी में, पराक्रम का महामाता या दुर्गा में, सौन्दर्य का रति में और पवित्रता का आदर्श गंगा में है[2] ।" मातृत्व और पत्नीत्व को ही स्त्री अपना गौरव मानती है । प्रसिद्ध नीतिकार महात्मा विदुर के अनुसार स्त्री घर की लक्ष्मी है, उस की पूजा और रक्षा करनी चाहिए । मनु के शब्दों में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।" कवीन्द्र रवीन्द्र के अनुसार नारी "भगवान की अद्भुत कृति" है । "जरा और मृत्यु[3], यौवन और जीवन, प्रलय और सृष्टि नारी के दृष्टिपरिवर्तन के ही रूप हैं ।"

---

1. "कल्याण" "नारी विशेषांक, पृ.235
2. "स्त्रियों की स्थिति"- चन्द्रावती लखनपाल, पृ.18
3. "जरा, मृत्यु, यौवन, जीवन औ प्रलय, सृष्टि, अवसान, विहान,
   तेरी चितवन पर उठते हैं, सुख-दुःख के कितने तूफान ।
   - जादूगरनी - श्री.हरिकृष्ण प्रेमी, पृ.5 - 6

डॉ॰ शैलकुमारी के अनुसार पतितपावनी मंगलमयी नारी पुरुष की पाशविक वृत्तियों का शमन करके उस में मानवता का समावेश करती है[1]।" श्रीमती महादेवी वर्मा का कथन है, "पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क, कर्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति[2]।

नारी की महिमा

आकर्षणमयी, ममतामयी नारी सृष्टि की मनोहर प्रतिमा मानी गयी है। समस्त कलाओं ने उसे उच्च और सम्मानित स्थान प्रदान किया है[3]। सभी ललित कलाओं के लिए आधार और प्रेरणा का स्त्रोत नारी ही है। सौन्दर्य में नारी है और नारी में सौन्दर्य है। उसके विविध मोहक रूप चिरकाल से कलाकार को सृजनात्मक शक्ति देते आ रहे हैं। विश्व की दो महान सभ्यताओं - यूनानी और भारतीय सभ्यता ने अपनी अपनी कला की अधिष्ठात्री देवी की कल्पना नारी रूप में की थी। सृष्टि के सुन्दरतम उपादानों में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है। उस के स्नेह, त्याग और बलिदान के आधार पर अनेक काव्यों की रचना हुई है। डॉ॰श्यामसुन्दर दास कला, सौन्दर्य एवं नारी को एक दूसरे के पूरक मानते हैं[4]।"

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-भावना" - डॉ॰ शैलकुमारी, पृ॰/1 /2
2. श्रृंखला की कड़ियाँ - सुश्री महादेवी वर्मा, पृ॰7
3. "A critical and comparative study of Indian Aesthetics"
   Sri. H.L. Sarma

4. हिन्दी महाकाव्यों में नारी - चित्रण - डॉ॰श्यामसुन्दरदास, पृ॰230

मानवजाति की सम्पूर्ण सभ्यता तथा सामाजिक विकास का मूलस्त्रोत नारी है । उसी के कारण संसार की एक महान संस्था - गृह का जन्म हुआ, परिवार बने और समाज तथा राष्ट्र के विकास का क्रम चला । इस शक्ति स्वरूपिणी, ममतामयी कोमल नारी में कार्यशक्ति, ज्ञानशक्ति, शासनशक्ति आदि विद्यमान हैं । संसार की समस्त शक्तियों का जन्म उस की शक्ति से ही हुआ है । "कन्या" होकर वह मानव के "सत्यम" को, "पत्नी" बनकर उसके "सुन्दरम" को तथा "माता" बनकर उस के "शिवम्" को एक रूप प्रदान करती है । साहित्य समाज का दर्पण है । अत: समाज के इस अर्द्धांग नारी की अवहेलना साहित्य नहीं कर सकता । नारी और उसके सौन्दर्य चित्रण की परम्परा भारतीय वाङ्मय में अत्यंत प्राचीन है ।

प्रागैतिहासिक काल की नारी

भारत में मानव के आविर्भाव से लेकर वैदिकयुग तक के काल को प्रागैतिहासिक युग कहते हैं । "अतीत अनादि है, उस का अधिकतर सुदूर भाग अज्ञात है ।"[1] अत: उस काल की नारी का स्वरूप निर्धारित करना कठिन है । नारी समाज से संबंधित जो सामग्रियाँ मिली है, उनसे आज से 4000 वर्ष पूर्व की भारतीय रमणियों की वेश-भूषा, अभिरुचि, देवदासी-प्रथा आदि का परिचय प्राप्त होता है । 3250 से 2750 ई॰ पू॰ तक के काल को हम प्रागैतिहासिक युग मानते हैं । इस युग के गुफाचित्रों में स्त्री का अंकन मिलता है । यह युग भारतीय सभ्यता का उषाकाल है । इस युग में मातृसत्तात्मक समाज था । मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री बलवती है, सम्पत्ति और गृह की स्वामिनी है । पुरुष शिकार करता, युद्ध करता और

1॰ भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण - डॉ॰भगवतीशरण उपाध्याय,पृ॰1

पशु-पालन करता, स्त्री घर का प्रबंध करती, भोजन बनाती, दूध दुहती और बस्ती के आसपास अन्न उपजाती। दोनों का श्रम सामाजिक ढंग से था। दोनों की मर्यादा में कोई अंतर नहीं था। उस समाज में माता समस्त शक्ति और सत्ता का केन्द्र माना जाता था क्योंकि उस की आर्थिक उपादेयता और विवाह संबंधी नियमों की शिथिलता के कारण उसकी स्थिति पुरुष के समान ही नहीं, प्रत्युत उससे श्रेष्ठ थी।

वैदिककाल की नारी

वैदिक सभ्यता का ज्ञान वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है। वैदिक संहिताओं के काल को वैदिककाल कहते हैं। 1600 ई॰ पूर्व तक के उस काल में नारी को पूर्ण स्वतंत्रता थी। वैदिककाल का प्रथम ग्रंथ ऋग्वेद है। ऋग्वैदिक समाज पितृसत्तात्मक था, तो भी नारी के प्रति दृष्टिकोण उदार था। पुत्र और पुत्री समान रूप से प्रिय थे। पिता की आज्ञा से "मर्य" अर्थात् युवक के "योषा" अर्थात् युवती कन्या की ओर "अभ्ययन" और अभिमनन" मनाना साधारण बातें थीं। योषाओं और कन्याओं का अपने जारों के लिए अनुवसन भी साधारण बात थी।[1]" कन्यायें अपने प्रेमियों के साथ स्वतंत्रतापूर्वक घूमती थीं।[2]" सभाओं और उत्सवों में स्त्रियां सज-धज कर पहुंचती थीं। नृत्य-गायन संबंधी क्रीडाओं में वे भाग लेती थीं।[3]

---

1. ऋग्वेद - 1, 115, 2-4
2. वही - 3, 31, 7-3, 33,10-4,20,5-9,96-20
3. वही - 1 - 4 , 6 - 1, 123, 11 - 1, 124,8 - 4, 58 , 8 - 7, 2, 5 - 10, 86, 10 - 10, 168 , 2.

स्त्री को इच्छानुसार कहीं भी घूमने की स्वतंत्रता थी । माता-पिता विवाहार्थियों को घर पर बुलवाकर सत्कार करते थे और युवतियाँ उनमें से पति चुनती थीं । अधिक आयु तक अविवाहित रहनेवाली स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है । आजीवन अविवाहित रहनेवाली कन्यायें भी थीं । "अमाजु:" उस कन्या को कहते थे जो अपने पिता के घर में ही वृद्धावस्था प्राप्त कर देती थी । कन्या के शारीरिक दोष होने पर दहेज देना आवश्यक था । विवाहोपरान्त नारी पति-गृह में सम्राज्ञी थी । वह पति की अर्द्धांगिनी और गृहस्वामिनी थी । "दम्पति" शब्द पति-पत्नी के सम्मिलित स्वामित्व का द्योतक है । विधवा-विवाह की स्वीकृति थी । सन्तानहीन स्त्री "नियोग" द्वारा पुत्र उत्पन्न करा सकती थी । यद्यपि ऋग्वेद में एक पत्नी की प्रथा पर विशेष बल दिया गया है, तथापि वैदिक आर्य एक से अधिक पत्नियाँ रख सकता था । राजा पुरुरवा के अनेक पत्नियाँ थीं । ऋषि च्यवन ने भी अनेक पत्नियाँ रखी थीं । ऋग्वैदिक भारत में बालविवाह की प्रथा का प्रादुर्भाव नहीं था । बहुपतित्व की प्रथा का ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तो भी अवैध प्रेम सम्बन्धों, गुप्त रूप से गर्भस्राव करानेवाली असती पत्नियों और

सहपत्नी[1] का उल्लेख मिलता है । वेश्याओं का भी उल्लेख मिलता है ।[2] पथभ्रष्ट स्त्रियाँ जब भूल स्वीकार करती थीं, तब उन्हें धार्मिक कार्यों में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाती थी । अनार्यों के विरुद्ध युद्धों में सामान्यतया आदिवासी स्त्रियाँ ही दासी बनायी जाती थीं । उन्हें भैंस, गायों की भाँति दहेज में भी दासी के रूप में दिया जाता था[3] । ऋग्वेद में सती-प्रथा का उल्लेख नहीं है । पति की मृत्यु के समय कभी कभी विधवा पत्नी स्वयं अग्नि में कूद जलती अथवा सम्बन्धी जन जलता देते थे[4] ।

नारियों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त था और वे स्वतंत्र उपासना भी कर सकती थीं । शिक्षा के संबंध में उन पर कोई नियंत्रण नहीं था । वे अपनी इच्छा के अनुसार या तो विवाह तक या विवाहोपरान्त जीवनपर्यन्त अध्ययन कार्य में संलग्न रह सकती थीं । शास्त्रों में पारंगत होने के अतिरिक्त ऋचाओं की रचना करने में भी वे किसी के पीछे नहीं थीं । ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के अनेक सूत्रों का आविष्कार नारियों द्वारा ही हुआ है । घोषा वैदिक संस्कृत में लिखनेवाली सर्वप्रथम सूत्र लेखिका थी । विश्ववरा, लोपामुद्रा आदि भी इस युग की प्रतिभाशालिनी कवयित्रियाँ थीं । सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी आदि भी यहाँ उल्लेखयोग्य हैं । लक्ष्मी, दुर्गा आदि देवियों का भी उल्लेख है तो महाशक्तिशालिनी, दिव्य तथा वन्दना की

---

1. ऋग्वेद - 3, 1, 10-3, 6, 4-3, 33, 2.
2. वही, - 1, 124, 7-4; 5,5
3. ऋग्वेद - 6, 27 ,8-8 , 68 17
4. अथर्ववेद - 18 , 3, 1

अधिकारिणी है । इन्द्राणी तो भारतीय पत्नियों की प्रतीक मानी गयी है । विश्वला, इन्द्रसेना आदि युद्ध-विदग्धा नारियाँ इस युग में थीं । दास-नायुची ने स्त्री सेना तैयार की थी और वृत्रासुर की माता दानु का इन्द्र ने युद्ध में वध किया था[1] ।

वैदिककाल की स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण करती थीं । उन्हें अपने शरीर को व्यवस्थित रूप से ढँकने का आदेश था[2] । वे साड़ी पहनती थीं, नाचने के समय "पेशस" पहनती थीं[3] । वे सुन्दर ढंग से केशालंकार करती थीं । पर्दे की प्रथा नहीं थी । स्त्रियाँ सामाजिक समारोहों में भाग ले सकती थीं ।

स्त्री गृहलक्ष्मी थीं जिसको सभी आदर की दृष्टि से देखते थे । भारतीय सभ्यता के इतिहास में एक विचित्र बात पायी जाती है । ज्यों ज्यों हम पूर्व जीवन की ओर बढ़ते जाते हैं, स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाओं में क्रमशः अच्छाई मिलती रहती है, किन्तु सभ्य देशों के इतिहास में इस परम्परा का विरोध पाया जाता है[4] । यद्यपि पुत्रजन्म पर माता-पिता को अपार सन्तोष था तो भी इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है कि पुत्री-जन्म पर उन्हें दारुण दुःख हो, या वे उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करते हों । संगठन के सिद्धान्त और व्यवहार में स्त्रियों का स्थान ऊँचा था[5] । स्त्रियों का भी पुरुषों के समान उपनयन होता था ।

1· ऋग्वेद - 1, 112, 10-1, 118, 8-10,102,2-10,102,2-11

2· वही - 8, 43, 19

3· वही - 1, 140, 9-10,114,3-2,3,6·

4· आदि भारत - प्रो· अर्जुन चौबे, पृ·93

5· हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता - बेनीप्रसाद, पृ·50, प्रयाग, 1931

पारिवारिक यज्ञों में नारी क्रियात्मक सहयोग देती थी[1]। देवदासी प्रथा भी प्रचलित थी। कभी कभी सदाचार नियमों का उल्लंघन भी होता था।

श्रीमति शकुन्तलाराव शास्त्री के अनुसार वैदिककालीन नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण उदारता और आदर से युक्त था।[2]

उत्तरवैदिककाल की नारी

वैदिककाल के पश्चात् नारी की स्थिति क्रमशः गिरती गयी। प्रधानता का केन्द्र नारी जगत् से हटकर पुरुष-जगत् की ओर खिसकने लगा। मानव-समाज के नियमों में भी अनेक परिवर्तन आये। विवाहानन्तर वधू पतिगृह जाने लगी। तपस्या की ओर अधिक ध्यान देने के कारण काम प्रकृति की निन्दा की जाने लगी, साथ ही साथ नारी की भी निन्दा की जाने लगी।

---

1. Position of Women in Hindu Civilization -

2. Women in the Vedic Age - Shakuntala Rao Shastri, p.35

वेदों के उपरान्त ब्राह्मण ग्रंथ माननीय हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में नारी को एक भारी अनर्थ की जड़ और कन्या का जन्म दुःखदायक कहा है[1]। मैत्रायणीसंहिता में नारी को मदिरा और जुआ के साथ तीन प्रधान दोषों के अंतर्गत माना गया है[2]। तैत्तरीय संहिता ने नारी को एक बुरे शूद्र से भी नीच[3] और शतपथ ब्राह्मण ने नारी को एक बुरे आदमी से भी नीच माना है[4]। वर्णव्यवस्था और अनार्यों के सम्पर्क के कारण स्त्रियाँ पुरुषों से उतनी स्वतंत्रता के साथ नहीं मिलती थीं जिस प्रकार ऋग्वेदकाल में मिलती थीं। पुरुषों की गोष्ठियों से भी वे अलग रहने लगीं। फलत: उनका ज्ञान और अनुभव कम होने लगा। विवाह-संबंधी स्वातंत्र्य भी कम होने लगा[5]। बहुविवाह की प्रथा के अधिक प्रचलन के फलस्वरूप सौतों का झगड़ा होने लगा। एक पुरुष कई पत्नियाँ रख सकता था; पर एक स्त्री कई पति नहीं रख सकती थी[6]। पुत्र जन्म के लिये यज्ञ किये जाने लगे[7]। मुक्ति के लिए पुत्र-प्राप्ति अनिवार्य मानी जाने लगी[8]।

1· ऐतरेय ब्राह्मण - 7, 15
2· मैत्रायणी संहिता - 1,10, 11-3, 6, 3
3· तैत्तरीय संहिता - 6, 5, 8, 2·
4· शतपथ ब्राह्मण - 1,3,1,9·
5· हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता - डॉ·बेनीप्रसाद, पृ·101
6· ऐतरेय ब्राह्मण - 3,23
7. Women in Vedic Age - Avestian Cultures, p.72
8. Women in Vedic Age - The Brahmanas, p.105

उपनिषदों के काल में भी समाज में विदुषी नारियों का आदर होता था। जनक की राजसभा में ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का एक दल था। कुमारी गन्धर्वगृहीता परम विदुषी और वक्तृता में चतुर थी। कन्यायें युवा पति को प्राप्त करने केलिए ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताती थीं और ज्ञानार्जन के लिए इस समय का उपयोग करती थीं। इस समय दो प्रकार की छात्रायें थीं - ﴾1﴿ ब्रह्मवादिनी - ये जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं और धर्मशास्त्र के अध्ययन में ही अधिक समय बिताती थीं। ﴾2﴿ सद्योदार - आठ नौ वर्ष तक निरंतर शास्त्रों का अध्ययन करके संस्कारों की विधि और शुद्ध मन्त्रोच्चारण सीखकर ये गृहस्थ धर्म में प्रविष्ठ होती थीं। जब नारियों को वेदों का अनधिकारी बनाया तो उनका वैदिक अध्ययन बन्द हो गया और अध्ययन के अभाव में उन में बालविवाह भी होने लगा। अनुलोम-प्रथा से स्त्रियों के गौरवपूर्ण पद को हानि पहुंची। संसार त्याग आदर्श माना जाने लगा तो स्त्री प्रतिबंध हुई और उसका अनादर होने लगा[1]। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार नारी के बिना पुरुष आधा पुरुष है[2]। उपनिषद्काल की नारी को वह आदर और सम्मान प्राप्त नहीं था, जो वैदिककालीन नारी को प्राप्त था।

पुराणों में विदुषी नारियों का वर्णन है। शिवपुराण में एक महिला अपने आचार्य से "प्रणव" का अर्थ स्पष्ट करने की प्रार्थना करती है[3]। देवी भागवत् की एक बारह वर्षीय कन्या को नीतिशास्त्र और अर्थविज्ञान का अच्छा ज्ञान है[4]। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी[5]। स्कन्दपुराण, पद्मपुराण

---

1. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता - डॉ. बेनीप्रसाद, पृ. 73-74
2. बृहदारण्यक उपनिषद - 1,4,17
3. शिवपुराण - कै.स. 6, अ.2, श्लोक - 21,22.
4. देवी भागवत् - स्कन्ध 5, अ.27, श्लोक - 54,
5. अग्निपुराण - 13,14 - 227, 41, ब्रह्मपुराण 35,14-16,36,3,1, देवी भागवत - 6,19,61.

आदि में पातिव्रत्य की महिमा गायी गयी है[1]। पुराण साहित्य में पति-परित्याग और पत्नी-परित्याग का निषेध किया गया है[2]। अनेक स्थानों पर पति को गुरुमानकर उनकी आज्ञा का पालन करने की बात कही गयी है[3]। श्रीमद् भागवत में भावत्तत्वज्ञान के प्रकाशन के साथ साथ अनेक प्रसंगों में नारी-भावना और श्रृंगार सौन्दर्य की सुन्दर झांकी मिलती है[4]। श्रीकृष्ण के व्रजवास जीवन में चार प्रकार की स्त्रियाँ सम्पर्क में आती हैं। §1§ यशोदा, राधा आदि गुणातीत श्रेणी की स्त्रियाँ §2§ मथुरा की रहनेवाली यज्ञपत्नियाँ §3§ व्रज के वनों में रहनेवाली राजसिक स्त्रियाँ §4§ तामसिक प्रकृति की स्त्रियाँ।

महाकाव्यकाल की नारी-भावना और नारीस्थिति का वास्तविक परिचय प्राप्त करने में लौकिक संस्कृत साहित्य की आदिम रचनायें वाल्मीकिरामायण और महाभारत महत्वपूर्ण हैं। आदिकवि वाल्मीकि ने कहा है कि उनका महाकाव्य रामायण इस युग की आदर्शभूत महानारी सीता का ही चरित्र-चित्रण है। सीता को "पति-सम्मानिता" कहा गया है[5]। सीता लक्ष्मण से पति की महिमा बताकर, उनके बिना आत्महत्या करने की बात करती है[6]। हनुमान से उसका कथन भी विशुद्धि के चरम उत्कर्ष की

---

1. स्कन्दपुराण - ब्रह्मखण्ड - धर्मारण्य, अ.7
   पद्मपुराण - सृष्टिखण्ड, अ.47, श्लोक - 25
2. अग्निपुराण, अ.227, 42
   पद्मपुराण - उत्तरखण्ड, अ.66,126
3. भर्ता देवो गुरु भर्ता धर्मतीर्थ व्रतानि च।
   तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चये ।।"
   - स्कन्दपुराण - काशीखण्ड, 4,48,
   पतिरेव गुरुःस्त्रीणाम् सर्वस्याभ्यागतो गुरुः
   ब्रह्मवैवर्तपुराण - 80,47
4. श्रीमद्भागवत - 10,31,6
5. वाल्मीकि रामायण - 7,91,25
6. वही, आरण्यकाण्ड, 45, 37, 38,48

सूचिका है[1]। आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि आदर्श भारतीय नारी, पतिपरायण सीतादेवी का शील वाल्मीकि की प्रतिभा का विलास है, पातिव्रत धर्म का उत्कर्ष है तथा आर्यललना की विशुद्धि का प्रतीक है[2]। रामायण में पग पग पर पातिव्रत्य धर्म की महिमा बताई गई है[3]। पति द्वारा पत्नी के लिए अनेक उदात्त संबोधनों का प्रयोग कराया गया है। बाले, भीरु, प्रिये आदि संबोधन पत्नी के सुकुमार भावों के व्यंजक हैं[4]। वाल्मीकि रामायण में कन्या परिवार में उपेक्षा का विषय नहीं थी। उन्हें व्यावहारिक और नैतिक शिक्षा दी जाती थी। अनेक कन्यायें कलाओं में निपुणता प्राप्त कर लेती थीं। उन्हें पतिवरण में स्वतंत्रता न थी। बाहर आने-जाने की स्वतंत्रता उन्हें थी। अनेक प्रकार से अलंकृत नारियों का उल्लेख मिलता है। रामायण में स्थल स्थल पर नारी सौंदर्य का भारतीय आदर्श चित्रित किया गया है। यद्यपि वैधव्य घोर विपत्ति मानी जाती थी, तो भी विधवायें आदरणीय थीं। शूर्पणखा के विधवा हो जाने पर रावण सांत्वना देते हैं और उसके प्रति अनादर होने पर सीतापहरण के लिए वे तैयार होते हैं। सीता, मन्दोदरी, कैकेयी आदि नारी सौन्दर्य के प्रतीक हैं। कैकेयी का चित्र सर्वांगपूर्ण है। स्त्री-सुलभ हठ और दर्प भी उसमें हैं। महर्षि वेदव्यास की रचना है महाभारत। कहा जाता है कि जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं नहीं है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने इस की तुलना होमर से कर भारतीय

---

1. वाल्मीकि रामायण - सुन्दरकाण्ड - 37,62-1,77,2
2. आलोचना - काव्यालोचन विशेषांक (जनवरी 1959 - आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.
3. रामायण - अयोध्याकाण्ड - 24, 12, 21
   वही - सर्ग 29
   वही - अयोध्या खण्ड, 27, 6-2, 11, 60-2,24,21-2,118,2.
4. रामायणकालीन संस्कृति - डॉ. शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृ. 19

नारी की प्रशंसा की है[1]।" महाभारतकाल में भी पातिव्रत्य धर्म पर बल दिया गया है । अल्पायु होने पर भी सत्यवान को ही पति माननेवाली सावित्री पातिव्रत्य धर्म की प्रतीक है । महाभारत में अनेक स्थलों पर पातिव्रत्य धर्म की महिमा बताई गई है[2]। इस काल में नारी का मातृरूप अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था[3]। नियोग की प्रथा प्रचलित थी । पाण्डु कुन्ती को और सत्यवती भीष्म को नियोग द्वारा सन्तानोत्पादन करने का उपदेश देते हैं । समाज में विधवा-विवाह, बहु विवाह तथा बालविवाह की प्रथा प्रचलित थी । राजा दशरथ के तीन पत्नियाँ थीं । राजा विदुर ने शूद्र कन्याओं से विवाह किया था[4]। गंगा की मृत्यु के बाद राजा शन्तनु ने मछुए की कन्या सत्यवती से विवाह किया था । सुभद्राहरण, रुक्मिणीहरण आदि से ज्ञात होता है कि क्षत्रियों में राक्षसविवाह भी प्रचलित था । भीष्म राक्षसों को हटाकर काशिराज की तीन कन्याओं को बाहुबल द्वारा हरण कर लाये थे[5]। द्रौपदी के पाँच पति थे । कर्णपर्व के अनुसार मालूम होता है कि राजघरानों की स्त्रियाँ जलविहार करती थीं और स्त्रियों में व्यभिचार की भी वृद्धि हो रही थी । दासी-प्रथा और पर्दे की प्रथा उस काल में थी[6]।

---

1. The agony of the Hindus - Count B. Jornst Jerma, p.82

2. महाभारत - वनपर्व - 294, 27
   वही, 205, 22
   वही, वैष्णवधर्म पर्व - 26
   वही, अनुशासन पर्व - 123
3. नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः ।
   नास्ति मातृसम त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया ।।" वही - शान्तिपर्व,237,31
4. वही - आदिपर्व, 114,12,13
5. वही - उद्योगपर्व, 173-2
6. महाभारत - विराटपर्व - 19,8

महाभारत में नारी के गौरवमयी, लक्ष्मीस्वरूपिणी रूप के साथ ही साथ पापिनी और व्यभिचारिणी रूप भी हम पाते हैं । महाभारत के आदिपर्व, वनपर्व तथा स्त्रीपर्व में स्त्रीजाति के प्रति सम्मान प्रकट किया गया है[1]। लेकिन प्रस्तुत ग्रन्थ के पंचचूडा और नारद संवाद में स्त्री की निन्दा की गयी है । उसे चंचल, झूठी, मक्कार और दुश्चरित्र तथा स्वतंत्रता के लिये अयोग्य कहा गया है । पुरुष को मोहजाल में बाँधनेवाली है नारी, अत: उसके संसर्ग से दूर रहने का उपदेश पुरुष को दिया गया है । द्रौपदी के बारे में डॉ॰ सावित्री सिन्हा कहती है कि उसका अस्तित्व पुरुष के अस्तित्व में विलीन नारीत्व नहीं, भावनाओं, विचारों, तर्कों तथा अन्य प्रत्येक क्षेत्र में शक्तिशाली स्त्रीत्व है[2]। भारतीय विद्या भवन, बम्बई की प्राध्यापिका डॉ॰ शालिनी जोशी ने महाभारत के 160 नारीपात्रों की विस्तृत चर्चा की है और उस काल की नारी की प्रशंसा की है[3]।

जैन और बौद्धकाल की नारी

जैन-धर्म में नारी के मातृरूप की ओर विशेष श्रद्धा दर्शाई है । नारी के सतीत्व-धर्म पर ज़ोर दिया गया है । इस युग की नारी में कर्तव्य निष्ठा, त्याग भावना एवं शासन पटुता विद्यमान थी । विजय भट्टारिका,

---

1. "न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते"
   वही, शान्तिपर्व - 144,66
2. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ - डॉ॰ सावित्री सिन्हा, पृ॰15-16
3. Women in Mahabharath - Miss. S.N. Joshi, p.338

लक्ष्मीदेवी, मलयादेवी आदि राज्यशासन और युद्धकला में प्रवीणा थीं। बहुत सी भिक्षुणियाँ एवं श्राविकायें थीं जिन्होंने जैनधर्म और साहित्य की उन्नति में क्रियात्मक योग दिया था। स्थूल भद्र की सात बहनें एवं याकिनी महत्तरा की रचनायें महत्वपूर्ण हैं। राजशेखर की पत्नी अच्छी कवयित्री और आलोचिका थीं तथा शील भट्टारिका अच्छी साहित्यकार। मंडनमिश्र की पत्नी उभय भारती शंकराचार्य और मंडनमिश्र के शास्त्रार्थ की मध्यस्था थीं। इस धर्म में काम त्याज्य था, अत: नारी भी त्याज्य हो गयी। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार नारी भिक्षुणी हो सकती थी, पर दिगंबर पन्थियों ने स्पष्ट कहा नारी सीमित धर्म का पालन करे, जिस से वह पुरुष जन्म प्राप्त कर सके क्योंकि मोक्ष लाभ पुरुष-जन्म में ही संभव है[2]। जैन आचारांग सूत्र में नारी की निन्दा करते हुए बतलाया गया है कि वह अज्ञान, मृत्यु और नरक का द्वार है[3]। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि नारी की वाणी में अमृत है, पर हृदय में विष है, वह कुटिल है, भय और सन्ताप देनेवाली है[4]। एक अन्य आचार्य के मत में स्त्री चंचलमना, असत्य भाषिणी और कुलकलंकिनी है[5]।" जैन साहित्य के विद्वान अगरचन्द नाहटा द्वारा सम्पादित ग्रंथ "सभा-श्रृंगार" में नायिकाओं के अंगों का वर्णन किया गया है और नारी के चालीस प्रकार बताये गये हैं।

---

1. ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया - डॉ॰ ए॰एम॰अल्टेकर, पृ॰42-43
2. संस्कृति के चार अध्याय - श्री॰ रामधारी सिंह दिनकर, पृ॰141
3. जैन आचारांगसूत्र: 1, 2,4,3
4. ज्ञानार्णव - श्री॰ शुभचन्द्र आचार्य 12,2-3
5. सुभाषितरत्न सन्दोह - श्री॰ अमितगति आचार्य, पृ॰116

बौद्ध-धर्म में नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट की गयी है। इस धर्म ने विधवा, वंध्या, वेश्या सभी को स्वीकार किया। 547 जातकों में गौतम-बुद्ध के पूर्व जन्म की कहानियों के साथ दाम्पत्य-जीवन संबंधी कई कहानियाँ हैं। बौद्धसाहित्य में प्रजापत्य, स्वयंवर और गांधर्व-विवाहों का विशेष उल्लेख है। राजा लोग अनेक स्त्रियों से विवाह करते थे और जब चाहे छोड देते थे। बहु विवाह और विधवाविवाह का प्रचलन था। स्त्री अयोग्य पति का तलाक दे न्यायालय में न्याय की अपेक्षा कर सकती थी।[1] बड़े बड़े घरों में पर्दे की प्रथा थी। सन्यासिनियों [परिव्राजिका] और भिक्षुणियों [थेरियों] को समाज में अधिक स्वतंत्रता थी। कुछ असभ्य जातियों में स्त्री-विक्रय की प्रथा भी थी। "नियोग" की प्रथा थी और रानियाँ एक पति को त्यागकर दूसरा पति कर सकती थीं। अपने पति के साथ उत्सवों में जाकर सब से मिलने की स्वतंत्रता नारी को थी। कुरुधम्म जातक के अनुसार वारांगनायें मात्र वासनापूर्ति के लिये नहीं थीं। वे कलाओं में निष्णात थीं और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। सेठ-पुत्रों, कर्मचारियों और पुरोहितों तक को वेश्या-संग में तात्पर्य था। वैशाली की प्रमुख गणिका आम्रपाली, वसन्तसेनिका, पुष्पदासी, कावेरिका आदि अनेक गणिकाओं को आदर प्राप्त था। बालविवाह का अभाव था। क्षत्रियों में स्वयंवर की प्रथा थी। यद्यपि बौद्धकाल में नारी की स्थिति सुधरी, तो भी भिक्षु संस्थाओं में उनका स्थान अपेक्षाकृत हेय था क्योंकि वैराग्य-प्रधान बौद्धधर्म में नारी के प्रति घृणा और विरक्ति का भाव उत्पन्न करना आवश्यक था। एक भिक्षुणी को अपने से लघु भिक्षु के आगे भी झुककर नमस्कार करना पड़ता था। उससे कुछ कर्मों में निदेश लेना पड़ता था। बंधन मोक्ख, उम्मद, महापद्म आदि जातकों में नारी को पापिनी और असाध्वी कहा है तथा स्त्रीत्व को हीनत्व का सूचक माना है। "शिक्षा-समुच्चय" में स्त्री को पुरुष बनने के लिए शुभाशंसा दी गयी है। स्त्रियाँ पुरुष बनकर ही शूर, वीर और पंडित बन सकती थीं।[2] बौद्धग्रंथ "चूल वग्गा" के

---

1. बौद्धसाहित्य की सांस्कृतिक झलक - श्री·परशुराम चतुर्वेदी, पृ·54
2. बौद्ध-दर्शन-मीमांसा - डॉ· बलदेव उपाध्याय, पृ·22

अनुसार बुद्ध की माता महाप्रजापति गौतमी को भी तीन बार संघ में प्रवेश पाने की आज्ञा नहीं मिलती थीं। अन्त में आठ कठोर नियम बन जाने पर ही वे प्रवेश पा सकीं। सर्वप्रथम बुद्धने ही नारी को संकुचित वृत्त से बाहर निकाल कर सन्यास की अनुमति दी[1]। स्त्रियों को भिक्षुणी बनाने के बाद इस पर पश्चाताप प्रकट करने का भी अवसर आया था[2]। गौतमी के बाद नन्दा, यशोधरा आदि संघ में आयीं। पाँच सौ बाईस पदों की छोटी सी पुस्तक "थेरी-गाथा" से तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। कामी को अपनी आँखें देकर भौतिक सौन्दर्य की तुच्छता बतानेवाली शुभा, बुरी आदतवाले पति की हत्या करके बौद्धधर्म स्वीकार करने वाली भद्दा कुन्तल केशा, सपत्नी को अपनी पुत्री जानकर लौकिक जीवन से विरक्त होनेवाली उत्पलवर्णी आदि थेरियों की कथायें हृदय स्पर्शी हैं। वैशाली की सुन्दरी आम्रपाली, अर्द्धकेशी, विमला आदि वेश्यायें बाद में थेरियाँ बन गयीं। "सुजाता-जातक" में भगवान बुद्ध ने वधक भार्या, चोर-भार्या आदि आठ प्रकार की पत्नियों के बारे में कहा है। बुद्ध ने श्रावस्ती की पटाचारा, कृशा, दंतिका और कोसल जनपद की मुक्ता, सुमंगल माता आदि का जीवन सुधारा है। ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री, महाश्वेता और कादम्बरी के चरित्रों द्वारा इस युग की नारी-भावना का मूल्यांकन किया जा सकता है। श्रीमति शकुन्तला राव शास्त्री के अनुसार इस युग की नारी पत्नी अथवा गृह की रानी न होकर केवल विलास का उपकरण मात्र थी[3]।

बौद्ध तथा जैन साहित्य में सती - प्रथा का उल्लेख नहीं है।

---

1. प्रेमी-अभिनन्दनग्रंथ" - पृ॰672
2. हिन्दू सभ्यता - डॉ॰ राधाकुमुद मुकर्जी, पृ॰258
3. Women in Vedic Age - Sakuntala Ra o Sasthri, p.98

ईस्वी शताब्दी के प्रारंभिक काल से ही नारी की मान-मर्यादा नष्ट होने लगी .थी और सम्राटों तथा राजाओं के अन्त:पुर में रूपवती स्त्रियों की संख्या बढ रही थी ।

स्मृतिकाल में नारी

छठी शताब्दी के लगभग नारद और बृहस्पति ने स्मृतियों की रचना की थी । फिर अत्री, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि ने स्मृतियाँ रचीं । इन ग्रंथों में नारी-धर्म की विस्तृत चर्चा की गयी है । मानव धर्म के विधाता मनु ने "मनुस्मृति" में अनेक स्थलों पर नारी की प्रशंसा की है[1] । इसके अनुसार स्त्री पूजनीया है, इसका सन्तोष कल्याणकारी है, वही घर है और उसका पद पुरुष के पद के तुल्य है । मनुस्मृति में नारी-धर्म और विधवा के कर्तव्यों का भी विस्तृत विवरण मिलता है । पति-सेवा को अधिक महत्व दिया गया है । शीलहीन और स्वेच्छाचारी पति भी उसकेलिये देवतुल्य है । पति-सेवा से वह स्वर्ग में भी पूजनीय हो सकती है[2] । मनु का निर्देश था कि विधवा स्त्रियाँ तप, विराग, प्रार्थना एवं प्रायश्चित्तपूर्ण जीवन व्यतीत करें । माता को परिवार में सर्वोच्च पद प्राप्त था[3] । इस काल में आठ प्रकार के विवाह सम्बन्ध थे जिनमें प्रथम चार श्रेष्ठ और अंतिम चार कुत्सित माने जाते थे[4] । कन्या-विक्रय का विरोध प्रदर्शित किया गया था[5] । यह सब होने पर भी मनु नारी की स्वतंत्रता के विरुद्ध थे[6] । यदि माता पिता या अभिभावक

1· मनुस्मृति - 3/57· वही - 3/58 वही - 3/ 3/60-62, 9/26, 9/52, 9/130-1
2· वही, 5/154, 155
3· वही, 2/145-46
4· वही, 3,21-3,39-41
5· वही, 91,98,102
6· वही, 9,3-5,148

उस के विवाह की व्यवस्था न करते तो वह स्वयं पति चुन ले सकती थी । कन्या के अंगों के लक्षण भी प्रस्तुत ग्रंथ में बताये गये हैं[1] । "नियोग" की व्यवस्था भी की गई है[2] । यूरोप के महान दार्शनिक नीत्शे ने लिखा है कि मनुस्मृति में नारी के संबंध में जितना उदार दृष्टिकोण है, उतना किसी अन्य ग्रंथ में नहीं[3] । पाराशर स्मृति में लिखा गया है कि सती होनेवाली स्त्री और ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाली विधवा स्वर्ग पाती है[4] । उस स्मृति के अनुसार बारह वर्ष मे पूर्व कन्या का विवाह होना चाहिए । नारद स्मृतिकार का मत है कि स्त्री की सृष्टि सन्तानोत्पादन के लिये ही हुई है[5] । इन स्मृतिकारों ने पत्नी के दो फल कहे हैं रति और पुत्र । रति को फल मानने के कारण नारी का भोग्य रूप उभर आया है । याज्ञवल्क्य स्मृति में भी विवाह-प्रकार, नारी-कर्तव्य आदि का विस्तृत वर्णन है । याज्ञवल्क्य ने भी घोषणा की कि स्त्री की स्वतंत्रता ठीक नहीं[6] । "न गृह' गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते" का भाव प्रस्तुत स्मृति में भी है[7] । प्रजापति, वशिष्ठ, विष्णु आदि ने विधवा के उत्तराधिकार का समर्थन किया और स्त्रियों से उदारता का भाव प्रकट किया ।

---

1. मनुस्मृति - 3,10
2. वही - 9,69-9,58/59/149-9,60,79
3. "Anti Christ, pp.214-215

4. पाराशर स्मृति - 4,2-15,4,27-29
5. नारदस्मृति - स्त्री पुंयोग, 12-19,15, 4-5 - 53
6. याज्ञवल्क्यस्मृति - विवाहप्रकरणम् श्लोक 85.
7. वही, 1,82.

नीतिकाव्य में नारी

जो कर्तव्य और अकर्तव्य को स्पष्ट करे, वही नीति है । संस्कृत साहित्य में धौम्यनीति, विदुरनीति, शुक्रनीति, चाणक्य नीति आदि हैं । शुक्रनीति के अनुसार नारी आर्थिक दृष्टि से पराधीन, पापिनी, असत्य भाषिणी एवं अनेक दुर्गुणों वाली है[1] । हितोपदेश में अनेक कथाओं द्वारा स्त्री-जाति पर आक्षेप किया है[2] । भर्तृहरि तो स्त्री को माया की डिबिया और जीवों को फँसाने का बन्धन मानते हैं[3]। गृह्यसूत्रों के अनुसार कन्यायें कम अवस्था में ब्याही जाती थीं । आठ प्रकार के विवाहों में प्रथम चार प्रतिष्ठित और ग्राह्य थे । हीन चरित्रवाली, प्रागविवाहिता अथवा क्षता कन्या विवाह योग्य न थी । विधवा विवाह की प्रथा का बहुत कुछ निराकरण पाया जाता था । पुरुषों को बहु विवाह की अनुमति थी । गृह्यसूत्रों में गर्भाधान-संस्कार के वर्णन में "नियोग" की प्रथा का उल्लेख नहीं है । बोधायन धर्मशास्त्र का निर्देश था कि विधवायें पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद तक मधु, माँस, लवण आदि का प्रयोग न करें और भूमिशायन करें । केवल राजघराने की स्त्रियाँ निस्सन्तान होने पर बड़ों की अनुमति से पुत्रोत्पत्ति कर सकती थीं । ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी के आसपास रचित कामसूत्र में योग्य अयोग्य स्त्री का निर्णय, स्त्री के भेद आदि का वर्णन मिलता है । कामशास्त्र में कामिनी लक्षण और कन्याविस्रंभण पर अधिक ध्यान दिया गया है ।

---

1. शुक्रनीति - 191, 1164
2. विश्वासो नैव कर्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च"
   "स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्यभाग्यम्
   देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।
3. स्त्री यन्त्रं केन सृष्ट विषममृतमयं प्राणि लोकस्य पाशः ।
   शृंगारशतकम्, 45

सामुद्रिकशास्त्र के आधार पर पद्मिनी, चित्रिणी आदि नारी भेद और लक्षण तथा कन्या विस्रम्भ के अंतर्गत नारी सौन्दर्य की प्रशंसा, प्रणयोपचार आदि की विधियाँ वर्णित हैं ।

संस्कृत साहित्य में नारी-चित्रण

लौकिक संस्कृत साहित्य उच्च वर्ग की साहित्यिक भाषा का साहित्य है । भारतीय साहित्य तथा संस्कृति इससे अनुप्राणित है । संस्कृत कवियों में सर्वश्रेष्ठ ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी के अश्वघोष हैं जो सम्राट कनिष्क के गुरु और महायान सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे । उनके उपलब्ध ग्रन्थ बुद्धचरित और सौन्दरानन्द है । बुद्धचरित में काम निन्दा, नारी-निवारण आदि का वर्णन है । यशोधरा-विलाप कारुणिक है और राजकुमार को देखने के लिये लालायित ललनाओं का चित्रण आकर्षक है[1] । सौन्दरानन्द में कवि ने अलंकारों के सहारे नारी सौन्दर्य का अच्छा चित्रण किया है[2] । नारी सौन्दर्य की बीभत्सता का भी वर्णन महाकाव्य के दशम स्कन्ध में मिलता है[3] । इस प्रकार "अश्वघोष ने नारी के सौन्दर्य को शान्त, वैराग्यशील भिक्षु की निगाह से ही नहीं देखा है, अपितु उसे सरस लौकिक दृष्टि से भी देखा है । जहाँ वे शान्तरस के प्रवाह में बहते हैं, नारी उनके लिये जर्जर भाण्ड के समान दूषित, कलुषित एवं कुरूप हो जाती है ।"

---

1. बुद्धचरित - अश्वघोष - 3,12-14
2. सौन्दरानन्द - अश्वघोष - 6, 11
3. वही, 20,38,8,51,52.

x

भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि त्रय है वाल्मीकि, व्यास और कालिदास । वाल्मीकि और व्यास के बारे में हम विचार कर चुके है । विश्वमहाकवि कालिदास के काव्यत्रय "कुमारसंभव", "रघुवंश" और "मेघदूत" तथा नाटकत्रय "मालविकाग्निमित्र", "विक्रमोर्वशीयं" और "अभिज्ञानशाकुन्तल" की नारियाँ अपनी तपस्या से अधिक आकर्षक बनी हैं । पार्वती की घोर तपस्या से परमेश्वर को मालूम हुआ कि समस्त धर्मकार्यों की जड़ पत्नी ही है[1] । विवाह के अवसर पर उमा उनको भूदेवी-सी दीख पडा और वे उस के क्रीतदास हो गये पार्वती नारी समाज का आदर्श है । रतिविलाप के प्रसंग में रति के शब्दों से स्पष्ट है कि पत्नी सदा पति की अनुगामिनी होती है[3] । "रघुवंश" में कालिदास ने आदर्श पत्नी और आदर्श माता का रूप अंकित किया है । दिलीप और सुदक्षिणा में पितृत्व और मातृत्व में प्रेम की पूर्णता होती है । सीता-परित्याग के अवसर पर गर्भिणी जानकी ने लक्ष्मण से जो कहा, उसमें पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा है[4] । "मेघदूत" में यक्ष और यक्षिणी की विरहावस्था द्वारा पति-पत्नी की मनोदशा का सजीव चित्रण किया गया है । यक्ष का मेघद्वारा सन्देश नारी-गौरव को बढ़ानेवाला है[5] । "शकुंतला को कण्वमुनि जो उपदेश देते हैं, वह किसी भी काल की कुलवधु को देने योग्य है[6] । नारी सुलभ लज्जा, कोमलता, चपलता आदि शकुन्तला में विद्यमान है । विरहावस्था में भी उसे पति की ही चिन्ता है[7] ।" "ऋतुसंहार में विभिन्न ऋतुओं के माध्यम से नारी की भावनाओं का मनोरम चित्रण किया गया है[8] । "मालविकाग्निमित्रम्" में सहनशीलता की

1· कुमारसंभव - कालिदास - 5, 28-13
2· वही - 7,11-5,86
3· शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते
प्रमदा पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि ।।
कुमारसंभवम् - कालिदास - 4,33
4· वही - 14,65-66
5· मेघदूत - 22
6· अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 4,18
7· वही - 7,21
8· ऋतुसंहार - 1,4,8,6,12-17,3,12

साक्षात् मूर्ति मानिनी धारिणीदेवी नर्तकी मालविका पर पति की दृष्टि पड़ने पर उन्हें उचित मार्ग पर लाने के लिये उपहासपूर्वक कहती हैं कि यदि यही दृष्टि राज्य के शासन पर पड़ती तो कितना अच्छा होता[1]।
विक्रमोर्वशीयम् नाटक में उर्वशी की अलौकिक सुन्दरता देखकर राजा के मन में जो भाव उठे, उनका सुन्दर चित्रण मिलता है[2]। नारी सौन्दर्य के चित्रण में सिद्धहस्त कालिदास जी ने भिन्न भिन्न स्वभाववाली तेरह नारी-पात्रों का चित्रण किया है। वे हैं सीता, शकुन्तला, पार्वती, उर्वशी, इन्दुमती, हरावती, सुदक्षिणा, औशीनरी, धारिणी, मालविका, अनसूया, प्रियंवदा तथा यक्षपत्नी। पार्वती और शकुन्तला के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि विधाता ने संसार का समस्त सौन्दर्य एक साथ देखने केलिये इनकी सृष्टि की है[3]। कालिदास ने प्रेम की परिणति मातृत्व में की है। उन्होंने अनेक स्थलों पर गर्भवती नारी के सौन्दर्य एवं गौरव का वर्णन कर नारी जाति के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया है। पितृगृह में न रहकर पतिगृह में रहनेवाली सुहागिन ही सबकी प्यारी होती है। कालिदास का प्रस्तुत मत किसी भी काल की, किसी भी समाज की स्त्री के लिए सार्थक है[4]। कालिदास की नारी साध्वी, श्रद्धामयी गृहिणी है। वह विश्वप्रेम की सन्देश वाहिका है। युग के अनुसार उस में सपत्नीक भावना का अभाव है। कालिदास नारी की स्वतंत्रता को मानने वाले हैं, पर स्वच्छन्दता को नहीं। नारी के शारीरिक आकर्षण से अधिक महत्व वे आत्मीय सौन्दर्य को देते हैं।

---

1. मालविकाग्निमित्रम् - 2,3,6,13,3,8,5,6.
2. विक्रमोर्वशीयम् - 1,10.
3. कुमारसंभव - 1,32-49,3,53-54,7,11-22.
   अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 1-19-20-28,2,10.
4. वही, - 5,17.

अर्थगौरवपूर्ण काव्य के कारण प्रख्यात भारवी का एकमात्र उपलब्ध महाकाव्य है "किरातार्जुनीयम्" । इस में कवि ने जलक्रीडा, रतिलीला, युवति प्रस्थान, सुरांगनाविहार, सुरसुन्दरी संभोग आदि का वर्णन किया है । अपने को कनिष्ठा समझ मान करनेवाली नायिका का चित्रण और सुरांगनाओं के विभिन्न अंगों का चित्रण उन्होंने किया है[1] । राजनीति में भाग लेनेवाली नारियों का भी चित्रण इस में हुआ है । द्रौपदी युधिष्ठिर को शत्रुनाश के लिये तेज़ पुन: धारण करने की प्रेरणा देती है[2] ।

उपमा, अर्थगौरव और पद लालित्य तीनों से युक्त कवि माघ की एकमात्र कृति है, "शिशुपालवध" । दम्पतियों का विलासपूर्ण वनविहार, जलक्रीडा, दूती कर्म, सुरा एवं सुन्दरी का सेवन इत्यादि का सरस वर्णन इस में मिलता है । पति-गमन की बात पूछने पर आँसू बहानेवाली स्त्रियों का वर्णन आलंकारिक ढंग से इस काव्य में किया गया है[3] ।" द्वारकापुरी की स्त्रियों के निमेष गिरते थे, लेकिन अप्सराओं के निमेष गिरते नहीं थे । यही एक भेद दोनों में दर्शाया गया है[4] । स्त्री-सौन्दर्य के चित्रण में कवि ने अपूर्व कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है[5] ।

शूद्रक के प्रसिद्ध रूपक "मृच्छकटिक" में उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या वसन्तसेना और उस की ग्रहदासी मदनिका का अच्छा चित्रण मिलता है । वेश्या होने पर भी वसन्तसेना गुणवती है, प्रेम का मूल्य जाननेवाली है । माता के

---

1. किरातार्जुनीयम् - 8,14,
   वही - 8,17-18
2. वही, - 2,2-3
3. शिशुपालवध - माघ - 11,38
4. वही, 2,42.
5. वही, 13,43.

विरोध के बावजूद वह आर्य चारुदत्त की प्रेमिका बनने का प्रयत्न करती है । आदर्श पतिव्रता हिन्दू नारी धूता का चित्रण भी उज्वल बन पड़ा है । "इस नाटक में स्थान स्थान पर नारी के संबंध में ऐसे ऐसे निष्कर्ष वचन पढ़ने को मिलते हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतिभासित होता है कि शूद्रक नारी-मनोविज्ञान का बड़ा पंडित था[1] ।"

माघोत्तरकालीन महाकाव्यों में प्रमुख है बारहवीं शताब्दी के महाकवि श्रीहर्ष कृत "नैषधीयचरित" । पतिव्रता सुन्दरी दमयन्ती का चित्रण करके कवि ने आदर्शपत्नी का रूप हमारे सामने रखा है । उसकी मुख-रचना के बारे में कहते समय कवि ने अनूठी कल्पना का सहारा लिया है[2] । दमयन्ती नल के अलावा और किसी को नहीं चाहती[3] । प्रस्तुत रचना में नल-दमयन्ती की प्रेमगाथा, दमयंती का सौन्दर्यवर्णन, दमयन्तीवियोग आदि चित्रित हैं ।

कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककारों में प्रमुख भास के उपलब्ध तेरह रूपकों में प्रतिमा, कर्ण भार और स्वप्नवासवदत्त विशेष उल्लेखनीय है । "स्वप्नवासवदत्त" की वासवदत्ता औदार्य, पातिव्रत्य और त्यागबुद्धि के कारण नारी समाज केलिए आदर्श है । भास के "दरिद्रचारुदत्त" में चारुदत्त और वारांगना वसन्तसेना के आदर्श प्रणय का चित्रण है ।

सम्राट हर्षवर्धन के "नागानन्द" नाटक की नायिका मलयवती एक आदर्श हिन्दू नारी है । बाणभट्ट की सर्वप्रमुख रचना "कादंबरी" में संभोग-श्रृंगार का वैभव दिखलाते हुए गंधर्व राजकन्या कादम्बरी की प्रेम कथा है । दण्डी के "दशकुमारचरित" में भी कुछ अश्लील स्थानों को छोड़कर श्रृंगार रस का

1· "नारी तेरे रूप अनेक" की भूमिका में - डॉ· हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ·36

2· "नैषधचरित - महाकवि श्रीहर्ष, 2,25·

3· वही, 7,96, 1,34·

सुन्दर वर्णन है । 500 ई॰ पू॰ के महाकवि सुबन्धु ने भी नारी सौन्दर्य का चित्रण किया है । "भट्टनारायन" कृत "वेणीसंहार" में द्रौपती और भानुमती का चित्रण है । भानुमती के चरित्र में लालित्य है तो द्रौपती के चरित्र में औदात्य ।

संस्कृत साहित्य में कालिदास के पश्चात् महाकवि भवभूति का सर्वोच्च स्थान है । उनके महावीरचरित, मालती माधव और उत्तररामचरित प्रसिद्ध नाटक है । अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कृति "उत्तररामचरित" में पवित्र दाम्पत्यप्रेम का चित्र खींचा है[1] । कवि स्वच्छन्द प्रेम के पक्ष में नहीं । वे सच्चे प्रेम को दैवी वरदान मानते हैं[2] । सीता को वन में छोड़ने के पूर्व राम कहते हैं, "अरी भोली सीते, अपूर्व काम करने से चांडाल मुझ को स्पर्श मत करो तुम तो एक देवी और आदर्श भारतीय नारी हो[3] ।" प्रस्तुत कथन में सीता के चरित्र की उज्वलता ही दर्शनीय है । कवि ने स्पष्ट किया है कि पुरुष के बिना नारी का जीवन अधूरा है[4] ।

"गीतागोविन्द" के कर्ता महाकवि जयदेव ने नारी के मुखचन्द्र की तुलना में वास्तविक चन्द्र को क्षीरसागर की बूंद के समान माना है[5] । संस्कृत साहित्य की प्रतिभाशालिनी कवयित्री विज्जका, पण्डितराज जगन्नाथ, राजशेखर, महाराज भर्तृहरि आदि ने भी अपनी अपनी कृतियों में नारी की अनुपम सुन्दरता के मोहक चित्र खींचे हैं[6] । "क्रियाणां खलु धर्म्याणां"

---

1. उत्तर रामचरित - भवभूति - 1,29
2. वही, 6,12
3. वही, 1,46
4. वही, 6,30
5. "तन्हि त्वद्वदनस्यविभ्रमलवं लावण्यवारांनिधे -
   रिन्दुः सुन्दरिः दुग्ध सिंधु लहरी बिन्दुः कथं विन्दतु ।
   उत्कल्लोल विलोचने, क्षणमयंशीतांशुरालम्बता -
   मुन्मीलन्नवनील नीरजवनी खेल महालक्ष्मियम् ।।"
   गीतगोविन्द - जयदेव
6. संस्कृत सुकवि समीक्षा - डॉ॰बलदेव उपाध्याय, पृ॰348

सत्पत्यो मूलकारणम्" कहकर कालिदास ने और "प्रिया नाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति कहकर भवभूति ने भारतीय नारी का आदर्श प्रस्तुत किया है। जयदेव ने तो सती के अचंचल मन की ओर संकेत करके नारी को सकल सद्गुणों से युक्त बताया है[1]। भास ने भी "भर्तृनाथा ही नार्यः" कहकर नारी आदर्श को स्पष्ट किया है[2]।

संस्कृत साहित्यकारों ने नारी की भूरि भूरि प्रशंसा की है। नारी नारी की निन्दा करने में भी वे किसी के पीछे नहीं। अश्वघोष नारी-संग के दुष्परिणामों की ओर हमारा ध्यान ले जाते हैं तो भर्तृहरि उसे विष होने पर भी अमृत और पत्थर होने पर भी रत्न बताते हैं[3]। भर्तृहरि के अनुसार नारी के मोहजाल में न पड़नेवाला धीर व्यक्ति ही त्रिलोक विजयी है[4]।

संस्कृत के अधिकांश कवि रसवादी है। अतः श्रृंगार की विविध दशाओं के चित्रण में वे कुशल हैं। विविध प्रकार की नायिकाओं के चित्र बड़े अनूठे बन पड़े हैं। "जयदेव" की राधा कभी मानिनी, कभी वासकसज्जा, कभी विप्रलब्धा, कभी खंडिता और कभी अभिसारिका के रूप में खिल उठती है[5]।" नख-शिख वर्णन में भी संस्कृत कवि कुशल हैं। कालिदास ने "कुमारसंभव" में पार्वती का, भवभूति ने "मालतीमाधव" में

---

1. बाणस्य बाहुशिखरैःपरिपीडयमानं
   नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।
   कामातुरस्य वचसामिव संविधाने -
   रभ्यर्थितं प्रकृति चारु मनः सतीनाम्॥ प्रसन्नराघवम्-1,56
2. प्रतिमानाटक - भास, 1,25
3. अश्वघोष - संस्कृत सुकवि समीक्षा, पृ.13
   भर्तृहरि - श्रृंगारशतकम् - 16, वैराग्य शतकम् - 87, श्रृंगारशतकम् - 57
   वही - 38, वही - 43
4. नीतिशतक - भर्तृहरि - 107
5. गीतगोविन्द की भूमिका - डॉ. विनयमोहनशर्मा, पृ.20

मालती का और श्रीहर्ष ने "नैषध" में दमयन्ती का नखशिखवर्णन किया है ।

कालिदासादि काव्यकारों ने नारी के शास्त्रीय आदर्श को ही माना है । अत: उनकी नारी में ममता, त्याग, सहनशीलता, सेवा-भाव और आज्ञाकारिता है ।

अपभ्रंश-साहित्य में नारी

अपभ्रंश साहित्य सातवीं सदी से सोलहवीं सदी तक प्राप्त है[1] । इस काल की सभी कृतियों में कहीं न कहीं प्रेम की टीस है जो तत्कालीन नारी भावना पर प्रकाश डालती है । "अपभ्रंश का कालिदास" माने जानेवाले स्वयंभू के "पउमचरिउ" में स्त्रीजाति के प्रति राम के तिरस्कारपूर्णवचन सुनकर सीता संयमपूर्वक कहती है कि वल्ली तरूवर को नहीं छोड़ती । उसी प्रकार कीचक के द्वारा अपमानित द्रौपती भीम से कहती है कि इस प्रकार जीने से मरना ही अच्छा है[2] । तत्कालीन नारी की चारित्रिक विशेषताएँ ही इन स्थानों पर दर्शनीय हैं । मुनि सुमतिगुणि के "नेमिनाथरास" में राजमती की दीनावस्था का चित्रण है । इस काल में समाज का प्रत्येक अंग नारी से उपकृत दीख पड़ता है । पर नारी के भोग्या रूप को ही अधिक महत्व दिया गया है । इस काल की नारी केवल श्रृंगार की मादकवस्तु हैं, युद्ध में पराजित मन का "मनोरंजन है और पुरुष के इंगित पर नाचनेवाली है । उसे एक आदर्श घर गृहस्थी का आंगन नहीं मिलता । "मृगावती" जैसी रचनाओं में पुरुष

---

1. हिन्दी काव्य में नारी - डॉ. वल्लभदास तिवारी, पृ.164
2. वही, पृ.157

उसे प्रवंचना और कुटिलता की खान बताता है । तो भी पति के रोष को स्वाभाविक ही वह समझती है क्योंकि पति सीमाप्रांत पर रहनेवाला है । वह दीर्घनिश्वास छोड़कर रह जाती है[1] । अपभ्रंश काल की मुक्तक रचनाओं में नारी का गर्व-भरा रूप है । युद्ध में हारकर लौटनेवाला पति उस के लिए अपमानजनक है । लड़कर मरना ही वह अच्छा समझती है[2] ।

सिद्ध साहित्य में नारी

सिद्धयुग का प्रारंभ आठवीं सदी से होता है । "सरहपा" इस युग के प्रथम कवि है । सिद्धों का मत है कि संसार रूपी विष से निवृत्ति पाने केलिये स्त्री रूपी विष की आवश्यकता है[3] । ये सिद्ध भोग में निर्वाण की भावना रखनेवाले थे[4] । बौद्धों की महायानशाखा आठवीं शताब्दी में अपना बिगडा रूप धारण कर वज्रयानशाखा बनी । इस शाखा में प्रमुख साधनाओं के अंतर्गत विविध प्रकार की स्त्रियों को महामुद्रा बनाने का आयोजन किया गया । स्त्री के कुल, जाति आदि भेदों को न माना गया । निम्न कुल की नारी ही महामुद्रा बनाने केलिए अधिक योग्य समझी गयी[5] । ऐसा विश्वास था कि चारों आनन्दों की प्राप्ति स्त्री द्वारा ही हो सकती है । नारी का उपभोग आवश्यक माना गया[6] । चर्यापदों में स्वकीया, परकीया,

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.47
2. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग - 1), पृ.355
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ.रामकुमार वर्मा,पृ.56
4. हिन्दी काव्यधारा - सरहपा (भाग में निर्वाण)
5. सम्मेलन पत्रिका - भाग - 41 संख्या - 2, पृ.70-71
6. सिद्ध साहित्य - डॉ. धर्मवीर भारती, पृ.129

सामान्या, मुग्धा, मध्या, अभिसारिका, दूती आदि कई प्रकार की नायिकायें चित्रित हुई[1]। चौरासी सिद्धों ने अधिकतर अंत्यजों की कन्याओं को ही महामुद्रा बनाया जो योगिनियों के रूप में इन के साथ रहा करती थी[2]। सिद्ध साहित्य में अधिकांश स्थानों पर प्रणय-प्रार्थी नायक है, पर चर्यापद दो में नायिका अभिसार करती है।

नाथ-सम्प्रदाय में नारी

डॉ॰ पीताम्बर दत्त बडथवाल ने गुरु गोरखनाथ की चालीस छोटी छोटी रचनाओं का संग्रह "गोरखबानी" नाम से किया है। उन्होंने वज्रयान में नारी के भैरवी और योगिनी रूप देखे थे। इसलिए उन्होंने नारी को साधक के लिये बाधक समझा। लेकिन कौलमार्ग में स्त्री को अनेक सुविधायें प्राप्त थीं। इस में "नियम पुरुष के लिए है, स्त्री के लिए नहीं[3]।" इस मार्ग में स्त्री पूजा के योग्य थी[4] कौल मार्गी एक ओर उसे देवी समझते थे तो दूसरी ओर उसके हाड़-मांस की देह से अनुरक्त भी थे। गोरखनाथ ने कनक और कामिनी को छोडने का उपदेश दिया। उन्होंने नारी को माता रूप में ही देखा[5]। कहाजाता है कि एक बार स्वयं गुरु मत्स्येन्द्रनाथ किसी स्त्री पर आसक्त हो गये थे और शिष्य गोरखनाथ ने उन्हें उस मोहवलय से विमुक्त किया।

1· सिद्ध साहित्य - डॉ॰ धर्मवीर भारती, पृ·247,248,249

2· सम्मेलन पत्रिका - चौरासी सिद्ध - भाग 41, सं·2 - श्री·परशुराम चतुर्वेदी {सं·2012}

3· गोरखनाथ और उनका युग - डॉ·रांगेय राघव, पृ·111

4· वही, पृ·111

5· गोरखबानी, पृ·102-35

जैनियों के अनुसार नारी पुरुष की सेविका है और जन्मान्तर में पुरुषयोनि प्राप्त करके मुक्ति की अधिकारिणी बन सकती है ।

वीरगाथाकाल की नारी

चारण-कवि बारहवीं - तेरहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश में लिखते थे, उसके बाद डिंगल में लिखने लगे । डिंगल में लिखे गये प्रबंध काव्यों को "रासो" कहते हैं । वीररस के आलम्बन संघर्षप्रिय राजपूत सामन्त थे । अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना ही उस काल के कवियों का लक्ष्य था । इसलिए युद्ध और प्रेम उनके काव्यों के प्रमुख विषय थे । प्रस्तुत काल के प्रमुख काव्य हैं, पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, आल्हाखण्ड आदि । इन में नारी के विविध रूप दिखाई देते हैं ।

हिन्दी के आदिकवि चन्दबरदाई द्वारा रचित "पृथ्वीराज रासो" हिन्दी का आदि महाकाव्य है । इसकी नायिका संयोगिता रूप-गुण-सम्पन्ना, स्वाभिमानिनी क्षत्राणी है । उसका एकनिष्ठ प्रेम सराहनीय है । एक स्थान पर कह सोचती है कि लोग नारियों को क्यों नीच बुद्धि समझते हैं । सृष्टि की रचना उसी से होती है । जो नारी जीवनपर्यंत दुःख सुख में हाथ बँटाती है, उसे तुच्छ मानना नारी के प्रति अन्याय नहीं तो और क्या है[1] । यह प्रश्न प्रत्येक युग की प्रत्येक नारी का है । प्रस्तुत काव्य में इछिनी, शशिव्रता, संयोगिता, पद्मावती आदि के सौन्दर्य वर्णन में श्रृंगार की छटा दर्शनीय है[2] । स्त्रियों के चार भेदों का वर्णन इस में मिलता है[3] ।

---

1. पृथ्वीराजरासो - समय 66 - छन्द 266-268
2. संक्षिप्त पृथ्वीराजरासो - श्री·द्विवेदी, श्री·नामवरसिंह, पृ·184-185
3. वही, सं·25 - छन्द 124-129

विप्रलम्भ श्रृंगार के अंतर्गत संयोगिता की विरहदशा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है[1]। पृथ्वीराज के बन्दी होने का समाचार पाकर संयोगिता के प्राण छूट गये और अन्य रानियाँ सती हुई। तत्कालीन नारी-आदर्श इससे स्पष्ट है।

"बीसलदेव रासो" में कवि नाल्ह ने प्रगल्भा, प्रोषितपतिका, पतिव्रता नारी राजमती के आदर्श चरित्र का चित्रण किया है। विरह सहते समय भी वह नीतिपूर्ण, उदात्त चरित्र का परिचय देती है। कुटनी द्वारा भ्रष्ट आचरण के प्रस्ताव को ठुकरानेवाली राजमती में हम सच्ची भारतीय नारी को देखते हैं[2]। "आल्हाखण्ड में नारी चरित्र की विविधता और विशिष्टता विद्यमान हैं। इस काव्य की मल्हणा राजकाज में कुशल है, पति को सलाह देनेवाली है। सिंहलद्वीप की लड़ाई के अन्त में वह सती होती है। आल्हा की माँ देवलदेवी वीर क्षत्राणी और आदर्श माता है। स्वामिभक्ति और देश-भक्ति की भावना उस में कूट कूटकर भरी है। सोना और वेला पतियों की आज्ञा से रणक्षेत्र में अपने भाइयों के भी मस्तक काटती हैं। आल्हा खण्ड की स्त्रियों में विलासिता, भय और श्रृंगार प्रियता के स्थान पर बुद्धिमत्ता, कार्य कुशलता और साहस है। उनमें से अधिकतर तन्त्र-मंत्र जाननेवाली है[3]। कल्लोल नामक कवि के मुक्त प्रबंध काव्य "ढोला मारू रा दूहा" में मारवणी और मालवणी के संयोग-वियोग के चित्र हैं। नायिका मारवणी पति को सन्देश भेजती है - "मैं चाहती हूँ, इस शरीर को जलाकर भस्म कर दूँ और

---

1. पृथ्वीराजरासो - सं. 61, छन्द 1618 से 1624
2. बीसलदेव रासो - सम्पादक डॉ. तारकनाथ अग्रवाल, पृ. 73
3. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - डॉ. शंभूनाथ सिंह, पृ. 387

उस का धुआँ आकाश तक पहुँच जाय, फिर मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसे और मेरी आग बुझा दे।[1] कितनी अनूठी कल्पना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थान का डिंगल काव्य नारी हृदय की गौरवपूर्ण भावनाओं से आन्दोलित है। वीरकाव्य में हम नारी के दो रूप पाते हैं - वीर और श्रृंगारी। ऐसा लगता है मानों वीरांगना, वीरमाता और क्षत्राणी का रूप श्रृंगार की अधिकता से धूमिल पड़ गया हो।

"हिन्दी में गीतिकाव्य परम्परा के आदि प्रवर्तक और नारीसौन्दर्य के चतुर चितेरे मैथिल कोकिल विद्यापति के "गीतकानन में पारिजात कली सी सुकुमार मुग्धाओं की लाज-लपटी गुलाबी मुस्कान भी चारों ओर छिटकी पड़ी है और पतझड पात सी पीली विरहिणियों के कपोलों पर, आँसुओं की ओस भी काँप रही है।[2]" उन्होंने नारी के बाह्यरूप के चित्रण में विशेष कुशलता दिखायी है। किशोरावस्था और युवावस्था की संधि पर अपने अंगों का परिवर्तन देखकर नायिका के आश्चर्य-मिश्रित लज्जाभाव का चित्रण कवि की अपनी विशेषता है। उन्होंने कृष्णाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका आदि के सुन्दर चित्र खींचे हैं जो विकट परिस्थितियों में भी विचलित न होतीं। "कामिनि करए सनाने।
हेरतहिं हृदय हनए पँचवाने।" आदि पंक्तियों में सद्यः स्नाता की प्रतिमूर्ति ही हम पाते हैं। राधा के नखशिखवर्णन में कवि ने

---

1. ढोला मारू रा दूहा - दूहा 181, पृ.55
2. विद्यापति - डॉ. जयनाथ नलिन, पृ.38

सौन्दर्यानुभूति पर अधिक बल देकर स्थूल, मांसल, सुन्दर रूप उपस्थित किया है। स्वाधीनपतिका, विरहोत्कण्ठिता, अभिसारिका, उपेक्षिता, रूपगर्विता, परकीया आदि कई प्रकार की नायिकाओं के चित्र उन के पदों में हैं। उनकी नायिकाओं में सरलता, अकृत्रिमता आदि कई गुण एक समान मिलते हैं।[1] यद्यपि शृंगार के संयोगपक्ष की ओर ही उन का ध्यान अधिक गया है, तो भी विरहावस्था के चित्रण में भी वे पटु हैं।

"सखि मोर पिया
अबहुं न आओल कुलिसहिया।" कहकर व्यथित होनेवाली राधा किसी भी काव्य की विरहिणी से पीछे नहीं। श्री. शिवप्रसाद सिंह का कथन है कि राधा के समान सरल, सुन्दर, स्वच्छ, स्वस्थ और साधारण नारी और किसी काव्य में नहीं होगी।[2]"

निर्गुण-भक्ति-धारा में नारी

सन्त काव्यों में नारी

प्राचीन एवं मध्ययुग के संधिकाल में हिन्दू राजा पराजयोन्मुख हो रहे थे। उनके महलों और रनिवासों में रानियों और रखैलियों की संख्या बढ़ रही थी। कमला, पद्मिनी आदि सुन्दरियों के लिए मुसलमान सुल्तानों द्वारा घमासान लड़ाइयाँ भी हुई। उस समय नारी की दशा दीन और हीन थी। वह विक्रय वस्तु थी, उपभोग की वस्तु थी। इन्हीं कारणों से पर्दा प्रथा और बालविवाह की प्रथा चल पड़ी। राजपूतों में कन्या की हत्या तक

---

1. विद्यापति - युग और साहित्य - डॉ. अरविन्दनारायण सिन्हा, पृ.131
2. विद्यापति - डॉ. शिवप्रसादसिंह, पृ.148

कर डालने की प्रथा थी । इस घोर अनैतिकता को देखकर सन्तों ने इन्द्रिय निग्रह की प्रेरणा दी । सन्तों का प्रेम अलौकिक प्रेम या भक्ति है । उन्होंने नारी निन्दा नहीं की । वे स्वयं नारी बने । कबीरदास, सुन्दर दास, धरनीदास आदि प्रमुख सन्त कवि थे ।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख प्रवर्तक कवि हैं, संत कबीरदास । उनके युग में विलासिता चरम सीमा पर पहुँची थी । नारी विलासिता की वस्तु थी । उसका आकर्षण बाह्य सौन्दर्य था और प्रेम वासना के रूप में परिणत हो गया था । इसलिए कबीर ने नारी के बाह्यसौन्दर्य की भर्त्सना की । उन्होंने आत्मा-परमात्मा में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध माना। उनके अनुसार स्त्री रूपी आत्मा के चार भेद हैं - कुमारी कन्या, सुन्दरी {विवाहिता}, विरहिणी और सती । जब तक ब्रह्म से परिचय नहीं होता, तब तक कुमारी है । कबीर ने इस रूप में नारीचित्रण संक्षिप्त रूप में ही किया है । परिचय के बाद पाणिग्रहण होता है और सुन्दरी प्रीतम में लीन होती है । तब ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है । कवि ने संसार को प्रेम का घर माना है । इस घर में प्रवेश करने के लिए सर्वस्व समर्पण आवश्यक है । आत्मा को परमात्मा का विरह असह्य मालूम होता है । विह्वल आत्मा का सब से बडा गुण है सतीत्व । सती नारी प्रिय-वियोग सहन नहीं कह सकती । कबीर के लिए प्रेम अपार्थिव वस्तु है ।

---

1. "यह तो घर है प्रेम का,
   खाला का घर नाहिं ।
   सीस उतारे भुइ धरे,
   तब पैठे घर माहिं ।।"

   कबीर ग्रंथावली, पृ. 120

इसलिए उन्होंने श्रृंगार के कामजनित चित्र नहीं खींचे । उन्होंने नारी के तीन रूपों आराधिका प्रकृति, पतिव्रता गृहिणी और माया फैलानेवाली कामिनी की चर्चा प्रमुख रूप से की है । कामिनी उनके लिये "विष की बेल" और "महाठगिनि" है । ईश्वर-भक्ति के लिए दाम्पत्य प्रेम को प्रतीक मानकर उसमें पतिव्रता का रूपक बाँधा है । पतिव्रता के एकनिष्ठ प्रेम की तरह उन्होंने एकदेव विश्वास पर बल दिया । नख-शिख या शरीर-सौन्दर्य का वर्णन कबीर-बानी में नहीं मिलता । उस काल की दो बुराइयाँ कनक और कामिनी - को उन्होंने विश्वमोहिनी, महाठगिनि, पापिनी माया का प्रतीक माना । इसलिए उनकी वाणी वासनाग्रस्त नर-नारी के विरुद्ध है । परनारी-संग के संबंध में उनकी कड़ी उक्ति है -

"पर-नारी पर-सुंदरी बिरला बेचै कोइ ।
खाता मीठी खांड-सी अंति कालि विष होइ ।।

ये यहाँ तक कहते हैं कि पर-नारी संग का उद्यम करने से रावण के दस सिर गये ।

संत दादूदयाल ने सुन्दरि, विरहिणी, विभिचारिन, पतिव्रता आदि नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है । प्रियतमा को अपने घर की सेविका बनने का उपदेश देनेवाले संत चरणदासजी के कामिनी को सुर-असुर-यक्ष-गंधर्वादि को भी मोहनेवाली कहा । इस मोहिनी शक्ति के कारण संत सुन्दरदास ने उस के रूप को निंद्य और भयंकर कहा । उनके अनुसार आंतरिक रूप से नारी अंगारयुक्त है, पर बाहर से कली सी आभासित होती है[1] । उनका मत है कि मिठाई खाने से रोगी का रोग बढ़ता है, उसी प्रकार कामिनी के सम्पर्क से कामुकता बढ़ती है ।[2] उन्होंने कहा, जब पतिव्रता अपने

---

1. सुन्दर ग्रंथावली - सुन्दरदास, पृ.438
2. हिन्दी संतकाव्य संग्रह - द्विवेदी तथा चतुर्वेदी, पृ.171 {कामिनी}

पति की ओर ही देखती है तो विभिचारि न चारों ओर[1]। उनकी विरहिणी भी प्रिय की राह देखती रहती है[2]। हरिजनस्नेही वेश्या को भी साधारण स्त्रियों से श्रेष्ठ माननेवाले बाबा धरणीदास जी की नारी प्रियतम को अपनी आँखों के सामने ही रखना चाहती है[3]। संत सहजोबाई ने नारी की अधिक प्रशंसा न की, अधिक निन्दा भी न की। नारी- हृदय का सान्निध्य पाकर संत दयाबाई के काव्य में विरहिणी की व्यथा और भी साकार हुई है[4]। पल्टू-साहब कामिनी की आँखों को शेर के पंजे के समान बताते हैं तो संत गरीबदास कामिनी को बाघिन और नागिन कहते हैं। लेकिन वे दोनों पतिव्रता नारी की प्रशंसा करते नहीं थकते। सभी संत कवियों ने नारी का स्वरूपगत चित्रण न कर स्वभावगत चित्रण पर अधिक ध्यान दिया है।

प्रेमाश्रयी शाखा में नारी

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण-भक्ति-धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी कवि लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम को प्राप्त करने का प्रयत्न करनेवाले थे। उन्होंने आत्मा को पुरुष माना और परमात्मा को स्त्री। सामाजिक मर्यादा को मानकर ही उन्होंने प्रेम की अभिव्यक्ति की है। किसी भी नायक का संबंध परस्त्री से नहीं दिखाया गया है। सूफी दर्शन में प्रेम का बड़ा महत्व है। सूफी-संतों ने नारी को प्रेम और उपासना की वस्तु समझा और कहा कि बलप्रयोग या आयुध-प्रयोग से नारी पर अधिकार नहीं किया जा सकता। संत कवियों की तरह उन्होंने नारी को असत्य का

---

1. सुन्दरदास ग्रंथावली, पृ.693
2. हिन्दी संतकाव्यसंग्रह - द्विवेदी तथा पं.परशुराम चतुर्वेदी, पृ.169
3. वही, पृ.196
4. काग उड़ावत कर थके नैन निहारत बाट।
   प्रेमसिंधु में परयो मन निकसत को घाट।।
   दयाबाई - संतवाणी संग्रह

प्रतीक, नरक का द्वार और तप के लिए बाधा नहीं माना । उन के लिए नारी कल्याण और मद् की विधायिका थी । इस प्रकार नारी के प्रति भव्य दृष्टिकोण होने पर भी उन्होंने उसके दुर्गुणों और दुर्बलताओं का भी उल्लेख किया है । इस के अनुसार स्त्री मतिहीन है, भोग की ओर उन्मुख करनेवाली है । उसके विमोहक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पुरुष प्रेम-भिक्षा माँगता है फिरता है[1] । सूफी कवियों के अनुसार आत्मा साधक है और परमात्मा दिव्यशक्ति । उन की नायिकायें इस दिव्य शक्ति की प्रतीक हैं । उनके नारी-चित्रण में लौकिक और अलौकिक दो रूप साथ साथ दिखाई देते हैं । अलौकिक रूप में नारी परमशक्ति है, ज्योति है, साधक की साधना है, भक्ति की पात्र है और विश्वविमोहिनि है । उस के दर्शन से पुरुष बेहोश हो जाता है, उसे फिर स्वर्ग की भी आशा नहीं रहती[2] । उसमें दृढता और साहस का समावेश होता है और वह अपने प्राणों को न्योछावर करने को भी तैयार होता है । लौकिक रूप में नारी पुरुष की प्रेयसी है । फारसी भावना तथा तत्कालीन सामाजिक स्थितियों की विलासप्रियता के कारण नारी का लौकिक रूप भी विलासयुक्त है । सूफी कवियों की नायिकायें ऐश्वर्यमयी, वैभवशालिनी, सुकुमारी राजकुमारियाँ हैं । यौवनारंभ में उनमें "कंत की चाह" उपजती है[3] । सूफी कवियों का दृष्टिकोण शृंगारी था, अतः नायिका भेद, नखशिख आदि का वर्णन उनके काव्यों में है[4] । इन में छत्तीस जाति की नारियों का उल्लेख है[5] । स्वकीया,[6] आगतपतिका,[7] वासकसज्जा[8] आदि नायिकाओं का

---

1. पद्मावती राजा की बारी, हौं जोगी, तेहि लागि भिखारी ।
जायसी ग्रंथावली - डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त, पृ॰267
2. जायसी ग्रंथावली, पृ॰262
3. वही, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ॰29
4. जायसी - जायसी ग्रंथावली - डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त,पृ॰429,434 से 444 तक
5. इन्द्रावती - नूरमुहम्मद, पृ॰53
6. वही, पृ॰25
7. वही, पृ॰163
8. चित्रावली - उस्मान, पृ॰328

भी उल्लेख है । विरह को अधिक महत्व दिया गया है । सौन्दर्यवर्णन में काव्यरूढियों के अनुसार उपमानों की योजना की है ।

सूफी काव्यों में नारी का आदर्शपूर्ण और त्यागपूर्ण जीवन का चित्रण भी यत्र-तत्र मिलता है । हिन्दू गृहिणी का सात्विक, मर्यादापूर्ण जीवन बितानेवाली नारियाँ उनके काव्यों में हैं । वे जीवनपर्यंत पति-सेवा में तत्पर रहती हैं और पति की मृत्यु पर सती होती है । नारी के प्रति सामाजिक बंधन का संकेत भी कहीं कहीं मिलता है । कवि जान के शब्दों में
"तब लगि तिरिया नीके अहइ, जब लगि मन्दिर भीतर रहइ ।
जब मन्दिर सों बाहर कढई, कुल की लाज खोय सब गई ।।"

माता-पिता पुत्री के पति-संबंधी स्वतंत्र चुनाव को कुलकलंक समझते थे[1] । नारी का असद् रूप भी कहीं कहीं दृष्टिगोचर होता है । उदाहरण के लिए बादल की पत्नी क्षणिक दुर्बलता के कारण आदर्श - विमुख हो जाती है और कुमुदिनी तथा देवपाल की दूती कपट तथा पाखण्ड की प्रतीक है[2] ।

मौलाना दाऊद दलमई का लोककथा पर आश्रित, नायिका प्रधान, प्रेम मिश्रित चरितकाव्य है "चन्दायन" । इस का रचनाकाल 1350 ई॰ के लगभग है । विवाहित नायिका एक अन्य विवाहित पुरुष को पाने की चेष्टा करना सामान्य स्वभाव के विरुद्ध है । प्रस्तुत काव्य की नायिका चान्द इस प्रकार सामान्य स्वभाव के विरुद्ध आचरण करनेवाली है ।

1· पिता जो सुनै मार जिउ डारै,
माता सुनै घोर विष मारै । - कासिमशाह
हंस - जवाहर, पृ·39

2· जायसी ग्रंथावली, पृ·510

भारतीय साहित्य में ऐसी कोई दूसरी कहानी नहीं थी । "चन्दायन" में चाँद और लोरक का रूपाकर्षण प्रधान है । चाँद का रूपवर्णन भी बडा सुन्दर बन पड़ा है[1] । बारहमासा वर्णन के माध्यम से मैना की विरहदशा का सजीव वर्णन किया गया है[2] ।

प्रेमाश्रयी सूफी कवियों में मालिक मुहम्मद जायसी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है । उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है "पद्मावत्" । इस में नारी-चित्रण की दृष्टि से पद्मावती नागमती रूपचर्या, स्त्री-भेद-वर्णन, पद्मावती-नागमती-वियोग वर्णन, नखशिख आदि महत्वपूर्ण हैं । इन के अलावा गंधर्व सेन की पटरानी चम्पावती, रतनसेन की सोलह सौ सुन्दरी दासियाँ, बादल की नवविवाहिता पत्नी और सिंहल गढ की पनिहारिनें तथा "सिंगारहट" में बैठी वेश्याओं के सौन्दर्य चित्रण भी इस में मिलते हैं । प्रेम के क्षेत्र में इश्क मजाजी से इश्क हकीमी तक और सौन्दर्य के क्षेत्र में हुस्न मज़ाज़ी से हुस्न हकीकी तक पहुँचनेवाले कवि जायसी ने पद्मावती के लौकिक सौन्दर्य द्वारा अलौकिक सौन्दर्य को दर्शाया है[3] । रतिभाव के तीन भेदों में कान्ताविषयक रति को इस काव्य में प्रमुख स्थान दिया गया है । नायिका पद्मावती लौकिक रूप में प्रेमिका है । तोते के मुख से रतनसेन की प्रशंसा सुनकर उसमें पूर्वराग का उदय होता है, जोगी के दर्शन से उस की परिपुष्टि होती है और रतनसेन को सूली दी जाने पर प्रेम का पूर्ण विकास होता है ।

1· चन्दायन - मौलाना दाउद - सम्पादक डॉ·परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ·117-32

2· वही, पृ·304

3· सरस्वती - संवाद ‡अगस्त 1461‡ सूफी कवि जायसी एक दृष्टि में, पृ·19

वह कभी सहज लज्जा और मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करती[1]। उसमें दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता, शुद्ध आचरण और धर्मपरायणता दृष्टव्य हैं। वेणी-नाग, नयन-मृग, नासिका-कीर, मुख-कमल, कटि-केहरि-लंक आदि शब्दों द्वारा उस का रूपवर्णन आलंकारिक ढंग से किया गया है। यहाँ तक कि जिस जिस स्थान पर वह चरण रखती है, उस-उसे स्थान पर देवता अपना मस्तक रखते हैं। पद्मावत् में पद्मावती की प्रेम भावना का क्रमिक विकास दृष्टिगत होता है[2]। अलौकिक, रूप के चित्रण में कवि ने पद्मावती को "बुद्धि" और रतनसेन को "मन" के रूप में चित्रित किया है। बुद्धि "अहं" का विषय है। "अहं" पर विजय प्राप्त करने पर सूफी साधना सफल हो जाती है। इस के लिए सूफी प्रेम की साधना पर भी बल देते हैं[3]। मानसरोदक खण्ड में पद्मावती परमसत्ता के रूप में चित्रित है[4]। उस परम सौन्दर्य की प्राप्ति केलिए जोगी, यति तथा सन्यासी भी आकाश में आँखें लगाये तपस्या करते हैं[5]। जब सखियाँ रतनसेन की आज्ञानुसार उसे बुलाने आती है तो वह तन-मन-यौवन सजाकर प्रिय को अर्पित करने चलती है[6]। भारतीय आदर्श के अनुकूल उपदेश सखियाँ उसे देती है और वैसा आचरण करके वह पति को तुष्ट करती है[7]।

---

1. जायसी ग्रंथावली, पृ.143
2. हिन्दी काव्य में श्रृंगार-परम्परा और महाकवि बिहारी - डॉ.गणपतिचन्द्रगुप्त - पृ.192
3. जायसी - श्री.रामपूजन तिवारी, पृ.57
4. पद्मावत - मानसरोदक-4, 65
5. पद्मावत् - जन्मखण्ड, 3,55
6. पद्मावत् - 17, 301
7. वही, 27,301
   वही, 27,319, वही - 29, 334.

यदि पद्मावती रत्नसेन केलिए चरमलक्ष्य की प्राप्ति थी तो "नागमती" दुनिया-धंधा।" लेकिन नागमती को दुनिया धंधा कहना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता[1]। नागमती के चित्रण में विरह की प्रधानता है। विरह के चित्रण में अत्युक्ति का सहारा लिया गया है[2]। नागमती का वियोगिनी रूप और उस का क्रन्दन हृदय को पिघलानेवाले हैं[3]। रत्नसेन उसे छोड़कर जाने लगते हैं तो वह अनुरोध करते हैं कि मैं जीवनपर्यंत आपकी पादसेवा करना चाहती हूं, इसलिये मुझे भी साथ ले चलिये[4]। उसे सपत्नी से ईर्ष्या नहीं है। पर प्रथम विवाहिता होने का गर्व अवश्य है। अति निवम्र होकर वह सौत से अपनी हृदय वेदना प्रकट करती है "सवति न होसि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ। आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ।।" वह मरने के बाद धूल बनकर पति का चरण स्पर्श चाहती है। सूफी विरही में जो आत्मलीनता है, उसकी वाणी में पाशाण-हृदय-द्रावक चीत्कार है, उस की धड़कनों में जो शूल दंशन सी छटपटाहट है, उसके आहत उच्छवासों में जो आकाशकम्पी और लोक हृदयवेधक तीक्ष्णता है, उसकी अनुनय में जो कामकरतरता और करुणा का उद्वेग है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।"[5] अंत में नागमती और पद्मावती सती होने का उल्लास, गर्व अनुभव करती हैं।[6]

---

1. पद्मावती की प्राप्ति साधक रत्नसेन केलिए चरम लक्ष्य की प्राप्ति है। वहाँ पहुँचने पर के फिर से दुनिया धंधा के फन्दे में फंसने की युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होती है। - जायसी, रामकृष्ण तिवारी, पृ.60
2. जायसी का पद्मावत् - डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, पृ.433, वही, पृ.261
3. पद्मावत्, सम्पादक वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ.363
4. पद्मावत - नखशिख खंड, दो.6, पृ.55
5. भक्तिकाव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप - डॉ. जयनाथ नलिन, पृ.139
6. पद्मावत् - नागमती, सतीखण्ड, 57,2

विरह में प्रेम की निष्पत्ति माननेवाले कवि जायसी ने अपने लघु प्रेमाख्यानक काव्य "चित्ररेखा" में भी चित्ररेखा के विप्रलंभ को प्रधानता दी है[1]।

सूफी कवियों में पहला नाम कुतबन का आता है[2]। उनकी प्रतिनिधि रचना "मृगावती" में सच्ची पतिव्रता भारतीय नारी मृगावती के आदर्श चरित्र का परिचय मिलता है[3]। अपने पति की मृत्यु पर वह सती हो जाती है[4]। यहीं भारतीय नारी के त्याग की पराकाष्ठा है। मलिक मझन की सर्वश्रेष्ठ रचना "मधुमालती" का सूफी प्रेमगाथाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। इस में नायिका मधु मालती को कहीं कहीं पर परमसत्ता में। छिपी ज्योति के रूप में भी प्रदर्शित की गयी है। विशेषता यह है कि कवि सोचते हैं, मैं मधुमालती को सती होते हुए क्यों चित्रित करू ? उनके अभिप्राय में सत्य अनादि, अनंत है[5]। कवि उसमान की प्रतिनिधि रचना "चित्रावली" लोकवार्ता के आधार पर लिखी गयी है जिस में नारी के संबंध में लिखा गया है कि उस युग में नारी को लोग सहधर्मिणी न मान दासी मानते थे[6]। नारी की सच्चरित्रता पर अधिक बल दिया जाता था[7]। उसमान के काव्य में नारी को प्रेमपूर्वक पति-भक्ति में अनुरक्त रहना, सौतों से ईर्ष्या-द्वेष न रखना, स्वयं को कष्ट में रखकर अपने पति को प्रसन्न रखना, पति केलिए ही श्रृंगार करना, दूतियों से दूर रहना और पति के देहांत पर अपना जीवन भी

---

1. जब लगि विरह न होइ तन, हिये न उपजइ प्रेम ।
   तब लगि हाथ न आव तप-करम-धरम-सतनेम ।।"
   चित्ररेखा - डॉ॰शिवसहाय पाठक, पृ॰70
2. सूफी काव्य संग्रह - पं॰परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰110
3. सूफी काव्य संग्रह - पं॰परशुराम चतुर्वेदी, पृ॰116
4. वही, पृ॰117
5. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य - डॉ॰शिवसहाय पाठक, पृ॰465
6. कहेसि लेहु यह चेरी जानी, मैं संकल्प दे कुश पानी - उसमान चित्रावली, पृ॰154
7. वही, पृ॰188

त्याग देना आदि नारी-सम्बन्धी आदर्शों का सुन्दर चित्रण मिलता है।[1] "इन्द्रावती" के रचयिता नूर मुहम्मद के मतानुसार तत्कालीन युग में स्त्री का स्तर गिरा हुआ था क्योंकि उस युग में विवाह आदि के नियम कठोर थे। कन्यादान पवित्र माना जाता था। उस से माँ-बाप अपना उद्धार समझते थे।[2] कवि का कहना है कि नारी को चहारदीवारी के भीतर ही रहना चाहिए, बाहर नहीं।[3]

जिस प्रकार "हिन्दी साहित्य के प्रत्येक कवि के हृदय में एक नायिका छलछलाए लोचन लिए बैठी है और उसी की आँखों से आँसू ढुलक कर काव्य का रूप धारण कर लेता है।"[4] उसी प्रकार सूफी कवियों ने भी अपनी वियोगिनी नारियों की अश्रुधारा को साकार किया है। प्रेम को परम प्रधान माननेवाले सूफी कवि नारी को प्रेमपात्र का स्थान दिखलाया है। "नारी ही यहाँ उस नूर का प्रतीक है जो समस्त विश्व का स्रोत है और वही यहाँ वस्तुत: उस पूरक का काम करती है जिस के अभाव में सारा मानव जीवन ही सूना है।" सूफी काव्यों में विरहिणियों की उक्ति में आदर्श हिन्दू गृहिणी की सात्विक मर्यादा झलकती है।

"इस युग का परम्परागत सौन्दर्य चित्रण एवं नारी-चित्रण लौकिक पक्ष में केवल नायक के लिए अश्रुपात करनेवाली साधारण अबला के रूप में

---

1. केहेसि लेहु यह चेरी जानी, मैं संकल्प दै कुशपानी - उसमान - चित्रावली, पृ.221
2. नूर मुहम्मद - इन्द्रावती - हिन्दी के कवि और काव्य, पृ.83
3. दारा लजवन्ती जो होई, रहे सलज मंदिर माँ सोई।
   - अनुराग - बाँसुरी - नूर मुहम्मद, पृ.125
4. सरस्वती संवाद - नववर्षांक - अगस्त, 1955, वर्ष - 4 अंक

ही केन्द्रित रहा । कभी कभी नायक के निधन पर ज्वालाओं का श्रृंगार भी प्रेमाख्यानक काव्यों की नायिकाओं ने किया । "जोहर" के वर्णन में नारी के सर्वात्म समर्पण तथा विसर्जन के चमत्कार के दर्शन भी होते हैं । किन्तु नारी जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में साहस के साथ अग्रसर न हो सकी । वह महलों की बंदिनी बनकर मिलन में आनन्द विभोर, विरह में बावली और पुनर्मिलन में पुनः हर्षित अथवा चिरविरह में जोहर की गोद में क्रीडा करती रही । अस्तु, केवल एक ही भाव, एक ही संकुचित क्षेत्र मे आलोडन-विलोडन होता रहा । नारी-भावना इस संकोचमय नीड से झांकने की भी चेष्टा न कर सकी, उस केलिए अभी भी समय एवं परिस्थितियों की बाट जोहनी थी[1] ।"

सगुण भक्ति धारा में नारी

निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के संत और प्रेम की पीर लेकर चलनेवाले सूफी कवि जन-हृदय में नवचेतना और सरसता की धारा प्रवाहित कर उनके जीवन में आनन्द का संचार न कर सके । निर्गुण धारा में उच्च श्रेणी की व्यक्तिगत साधना की आवश्यकता थी जो सब केलिए संभव नहीं थी । संत कवि यथार्थ भक्ति से दूर होते गये । यवनों के अत्याचारों से भयभीत जनता के लिए एक सहारा आवश्यक था । ऐसे समय तुलसीदास जी और सूरदास जी ने सगुण साकार ईश्वर की उपासना की पद्धति चलायी । इस प्रकार सगुण भक्ति धारा का उदय हुआ । कुछ भक्तों ने भगवान के लोकरक्षक रूप को अपनाया और कुछ भक्तों ने उन के लोक रंजक रूप को अपनाया । लोकरक्षक रूप को स्वीकार करनेवालों ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी को अपना आराध्यदेव माना । इस प्रकार सगुण भक्ति-धारा में रामभक्ति शाखा का आविर्भाव हुआ । अधिक भावुक और कोमल स्वभाववालों को कठोर व्रती

1· हिन्दी काव्य में नारी - डॉ· वल्लभदास तिवारी, पृ·285

राम के स्थान पर लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की उपासना प्रिय लगी और इस प्रकार कृष्ण भक्तिशाखा निकली ।

राम काव्य में नारी

राम भक्तिशाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास जी के काल में नारी की दीन-हीन-हालत थी । उसके जीवन और व्यवहार केलिए शास्त्र नियत आचार थे । वह सहधर्मिणी न होकर केवल भोगवस्तु बन गयी थी[1] । तुलसी की रचनाओं में नारी के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं । सीता, कौशल्या, सुमित्रा आदि नारी के आदर्श रूप के अन्तर्गत आते हैं । तुलसी ने बालकांड और उत्तरकांड में कई स्थानों पर पातिव्रत धर्म पर बल दिया है । सतियों के मन की तुलना शिव के धनुष से की गयी है[2] तुलसी का रूप सौन्दर्य वर्णन अत्यंत संयत है । उनके राम चरित मानस में राम-सीता, शिव-पार्वती, अत्रि-अनसूया और अनेक नर-नारियों के दाम्पत्यजीवन की सुन्दर झाँकी है । प्रकृति के माध्यम से नारी के अनेक सुन्दर चित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं । सुमन-वाटिका में राम-सीता-मिलन के प्रसंग में ऐसा आकर्षक चित्र खींचा गया है[3] ।

रामचरित मानस की नायिका सीता में सात्त्विकता और आदर्श विद्यमान है । "नारीत्व की समस्त गरिमा, समस्त महिमा, अक्षुण्ण सुषमा, शील और सुकुमारता तुलसी ने सीता में प्रतिष्ठित कर दी है ।

---

1. तुलसी - सम्पादक डॉ. उदयभानुसिंह, पृ.159
2. रामचरितमानस - बालकाण्ड, पृ.259
3. वही, पृ.240

क्या दैहिक और क्या आन्तरिक दोनों ही सौन्दर्य का चरम है भगवती सीता। .....[1] वह भौतिक रूप से जनकनन्दिनी है, पर वास्तव में विश्व को उत्पन्न करनेवाली आदि शक्ति है[2]। यह आदिशक्ति तो राम की माया है[3]। "सिय सोभा नहि जाय बखानी" कहकर कवि सीता के सौन्दर्यवर्णन में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। "कवितावली" में उन्होंने सीता की कोमलता का सजीव वर्णन किया है[4]। सीता-हरण के पश्चात् राम के प्रलाप में सीता का नख शिख वर्णन नारी सौन्दर्य का उत्कृष्ट नमूना है[5]। सीता के व्यक्तित्व के तीन प्रधान रूप हैं - आदर्श पुत्री, आदर्श कुलवधू और आदर्श पत्नी[6]। गोस्वामीजी ने अपनी नायिका के चित्रण में सर्वत्र मर्यादा का पालन किया है।

पार्वती, कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा आदि मानस की उपनायिकायें है। मानस में प्रासंगिक कथा के अंतर्गत आने पर भी पार्वती का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ॰ श्यामसुन्दरदास ने उसके व्यक्तित्व के तीन रूप माने है ? ।) संयमशील नारी (2) पश्चात्ताप विदग्ध और अटल अनुरागिका (3) पतिपरायणा तपस्विनी[7]। सुन्दरता मरजाद भवानी जाइ न कोटिन्ह बदन बखानी", जगत् मातु पितु संभु भवानी तेहि सिंगारू न कहउँ बखानी" आदि उक्तियों से स्पष्ट है कि पार्वती जैसी आदर्श नारी का सौन्दर्य चित्रण वे कर नहीं सकते।

---

1. हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण - डॉ॰श्यामसुन्दरदास, पृ॰97
2. रामचरितमानस - बालकाण्ड, पृ॰240
3. वही, पृ॰152
4. पुर ते निकसी रघुबीरवधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
   झलकी भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै।
   कवितावली - तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड
5. हे खग मृग हे मधुकर सेनी
   तुम देखी सीता मृग नैनी ।। - अरण्यकाण्ड, पृ॰732
6. भक्तिकाव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप - डॉ॰नलिन, पृ॰221
7. हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण - डॉ॰श्यामसुन्दरदास, पृ॰129

तो भी उन्होंने कहा है कि स्त्रियों के भूषण रूप पार्वती को शिव ने अपना भूषण बना लिया है[1]। पार्वती के पातिव्रत धर्म की प्रशंसा भी मानस में की गयी है[2]। सती-कपट के प्रसंग में कवि को नारी के चरित्र पर शंका होती है[3]। सती के सीता का वेष धारण करने से शिवजी ने उसे छोड दिया[4]। तो भी वह जन्मान्तर में भी शिवजी की पादसेवा करने का वर मांगती है[5]। सती-मोह के चित्रण द्वारा स्त्री सुलभ दुर्बलताओं का चित्रण भी मिलता है, पर उसके लिये कवि राममाया को मूल कारण मानते हैं।

मानस की खलनायिका कैकेयी की कुमति रूपी काई घोर विपत्तियों की जनक है[6]। उसमें सत् असत् दोनों रूप निहित हैं। रामायण के सारे काण्ड के लिए वही जिम्मेदार है। पुत्र भरत उसे कुल का नाश करनेवाली पापिनी कहा। पर इस कुटिल चरित्र को भी तुलसी "विधाता की गति" कहते हैं। राम-माता कौशल्या के आदर्शपूर्ण, उत्सर्गमय, वात्सल्य भावना से ओतप्रोत, उदार चरित्र का चित्रण अत्यन्त उज्वल बन पडा है। स्वयं दुःख सहकर भी पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए पुत्र को प्रेरणा देनेवाली कौशल्या का कर्तव्य-बोध सराहनीय है[7]। "गीतावली में तो उस के मातृहृदय की उत्कंठा का चित्र अंकित किया गया है। तुलसी ने कौशल्या को

---

1. मानस - बालकाण्ड, पृ.29
2. वही, पृ.79
3. वही, पृ.67
4. वही, पृ.78
5. वही, पृ.110
6. वही, पृ.57
7. वही, पृ.57

मानवी से देवी बनाया है । लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता सुमित्रा कर्तव्य को ही प्रधान माननेवाली आदर्श नारी है । जनक पत्नी सुनयना भी अत्यन्त सरल, उदार, धर्मपरायण और कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य धारण करनेवाली आदर्श माता है । रामायण की एक सहृदया माता मैना में मातृसुलभ विशेषताओं के साथ साथ नारी-सुलभ दुर्बलताएँ भी हैं । निम्न कुल की शबरी के चित्रण से स्पष्ट है कि भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति का भेद भाव नहीं है । नागिन के समान विषैली, छलिया शूर्पणखा, सतीसुलोचना, रावण के अन्तःपुर में रहनेवाली रामभक्त राक्षसी त्रिजटा, पति को सुमार्ग पर लाने का निरंतर प्रयत्न करनेवाली मन्दोदरी आदि दनुजनारियाँ भी तुलसी की नारी भावना का परिचय देनेवाली हैं ।

नारी को पूजनीय माननेवाले तुलसीदास जी ने कहीं कहीं नारी की निन्दा भी की है । मंथरा, कैकेयी आदि असत रूप की नारियाँ पारिवारिक जीवन की सात्विक मर्यादा का उल्लंघन करनेवाली हैं । ऐसी नारियों की ओर संकेत करके तुलसी दास जी कहते हैं कि नारी के प्रवंचनामय हृदय के रहस्य को समझने में मानव ही नहीं, विधाता तक असमर्थ है ।[1] उनका अभिप्राय है कि मोक्ष-मार्ग की बाधा, आठ अवगुणों से पूर्ण नारी से दूर रहना ही अच्छा है । यह तो नारी विशेष की निन्दा नहीं है, नारी जाति की निन्दा है । ढोल गंवार शूद्र पशु नारी को "ताडन के अधिकारी" माननेवाले तुलसीदास को कुछ आलोचक नारी जाति के शत्रु समझते हैं । नारी की निन्दा करनेवाली ऐसी उक्तियों के बारे में डॉ॰नगेन्द्र कहते हैं कि ये किसी भी देशकाल की नारी के प्रति न्याय नहीं करतीं ।

---

1. तुलसी - ग्रंथावली - भाग - 1, पृ॰220

केशवदास के प्रमुख ग्रंथ "रामचन्द्रिका" की नायिका सीता "त्रिभुवन की सिरताज" है । वन गमन के समय उस का पतिव्रता रूप निखर आता है । प्रिय के साथ रहने से कठोर परिस्थितियाँ भी उसे सुखद लगती हैं[1] । रामचन्द्रिका में कौशल्या के चरित्र चित्रण में माता के गौरव की रक्षा न हो पायी, क्योंकि पुत्र राम के द्वारा उसे पतिपरायणता का उपदेश दिया गया । कैकेयी का उल्लेख अत्यंत संक्षिप्त रूप में किया गया है और सुमित्रा के चरित्र का कोई महत्व नहीं दिखलाया गया है । मन्दोदरी को एक बुद्धिमती, नीतिकुशल, दूरदर्शी नारी के रूप में चित्रित किया गया है । पतिव्रता अनसूया के संक्षिप्त उल्लेख से ही उन के आदर्श चरित्र का परिचय प्राप्त होता है[2] ।

रामभक्तिशाखा के एक अन्य कवि श्री·रामप्रिया शरण के "सीतायण में सीताजी और उनकी सखियों का चित्रण है ।

वेद-पुराणादि में समाज केलिए जिस आदर्श का निरूपण किया था, उसी आदर्श को मर्यादावादी तुलसीदास ने भी स्वीकार किया था । उनके अनुसार पुरुष की अधीनता में घर में ही रहकर गृहस्थी संभालना नारी के लिए उचित है । श्री· रामनाथ "सुमन" के अनुसार रामचरितमानस में नारी पुरुष को पुरुष रखने में और पुरुष नारी को नारी रखने में सहायक है । दोनों मिलकर एक श्रेष्ठ सामाजिक जीवन में तत्पर हैं । तुलसी के काव्य में नारी-जाति का गौरव पक्ष ही प्रबल है । पतिव्रता नारी को आदर्श माननेवाले केशवदास जी ने एक पत्नीव्रत पर बल दिया । उन्होंने नारी को वासना की दृष्टि से न

1· रामचन्द्रिका - केशवदास - अयोध्याकाण्ड - 26-27

2· हिन्दी महाकाव्यों में नारी का चित्रण - डॉ· श्यामसुन्दर दास, पृ·173

देखकर आदर की दृष्टि से देखा[1]। पति को देवता मानने का उपदेश केशवदास ने दिया[2]। विधवा धर्म का निरूपण भी उन्होंने किया है[3]।

कृष्ण काव्य में नारी

अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी आत्मा की भक्ति को नारी मानकर या राधा अथवा गोपियों के सहारे नारी-संबंधी विचार व्यक्त किये। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार गोपी भाव में कई भावों का समावेश है। गोपी आत्मा है और कृष्ण परमात्मा। कृष्णावतार के समय व्रज की स्त्रियों के तीन प्रकार माने गये हैं - अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा और सामान्या। अन्य पूर्वा वे स्त्रियाँ थीं जो विवाहिता होने पर भी परकीया भाव से कृष्ण के प्रति अनुरक्त थीं। कृष्ण को पाने के लिए जप, तप आदि करनेवाली और न पाने पर भी आजन्म अविवाहित रहनेवाली स्त्रियाँ अनन्यपूर्वा हैं। उनमें कुछ का विवाह कृष्ण से होता भी है। यशोदा ने समान मातृभाव से कृष्ण से प्रेम करनेवाली स्त्रियों को सामान्या कहा गया है। कृष्ण काव्य में भी ये तीनों रूप दृष्टिगत होते हैं। नारी-भावना का चरम विकास प्रमुख गोपी राधा में दिखाई देता है। राधा तथा गोपियों में उत्कट, एकनिष्ठ प्रेम दिखाई देता है तो यशोदा में वात्सल्य भाव। इन कृष्ण भक्त कवियों के अनुसार राधा और कृष्ण को प्रेमलीला के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है[4]।

1· रसिकप्रिया - प्रभाव - 2, छन्द - 3
2· रामचन्द्रिका - 9, 16
3· वही, 9,18,19
4· मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ - श्री·परशुराम चतुर्वेदी, पृ·47

आध्यात्मिक पक्ष में रासलीला में आत्मा - परमात्मा - मिलन है । गोपियाँ जीवात्मा, कृष्ण परमात्मा और राधा उनकी शक्ति है ।

पुराणों के अनुसार "राधा" की उत्पत्ति देवी है[1] । विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय में कृष्ण की आराधिका एवं अत्यन्त प्रिय जिस एक गोपी का उल्लेख है, वही राधा है । यद्यपि साहित्य में कई कवियों ने राधा का चित्रण किया था तो भी तेरहवीं शती के प्रारंभ में कवि जयदेव ने उसे स्थायी रूप प्रदान किया । उनके "गीतगोविन्द" में परकीया भाव से राधा का चित्रण हुआ है । विद्यापति ने भी राधा का यही रूप अपनाया । बंगाल के सूरदास चण्डीदास की राधा तो विलास की प्रतिमा नहीं, भक्ति की मूर्ति है । नवद्वीप में महाप्रभु चैतन्यदेव और उनके भक्तों ने राधा के दिव्य प्रेम की धारा बहाई । माधुर्य की अधिष्ठात्री यह राधा अब एक व्यक्ति नहीं, एक तत्व है, जो प्रीति, भक्ति, अनुरक्ति और श्री शान्ति का पर्याय है[2] ।

हिन्दी साहित्य के भक्तियुग की सगुण भक्तिधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास जीने तो राधा का चित्रण बाल्यावस्था से लेकर किया । यमुना-किनारे राधा कृष्ण की प्रथम भेंट होती है और प्रथम दर्शन में ही दोनों के हृदय में अनुरागोदय होता है । विविध दशाओं में राधा के विविध मनोभावों का सरस वर्णन सूरदास जीने किया है । उसकी विरहवेदना का चित्रण तो मर्मस्पर्शी है । उस का जीवन कृष्ण में ही केन्द्रित है । "वास्तव में सूर की राधा लौकिकता और अलौकिकता की, प्रेम तथा सन्यास की,

---

1. ब्रह्मवैवर्तपुराण - श्रीकृष्ण जन्म खंड - 223
2. सूर-साहित्य - नव मूल्यांकन - डॉ॰चन्द्रभान रावत, पृ॰162-163

स्नेह के नैर्मल्य की तथा प्रीति के उच्छ्वास की एक निर्मल लीलास्थली है[1]।"
दार्शनिक दृष्टि से कृष्ण साक्षात् ब्रह्म है और राधा उसका पूरक अंश प्रकृति[2]।
दोनों का पति-पत्नी संबंध है । राधा का अपने बाल-सहचर के प्रति आकर्षण
अनुराग में परिणत होता है । इस प्रेमी युगल मूर्ति ·का चित्र सूरदास ने
खींचा है । आकर्षण से आत्मसमर्पण तक राधाके विविध भावों की अभिव्यक्ति
सूरदासजी ने की है । "कहीं राधा भोली, चंचल और चतुर दीख पड़ती है,
कहीं गूढ और अतृप्ता । कहीं वह मानवती और गौरवमयी है, कहीं गंभीर
और वियोगिनी है[3]।"

कृष्ण की पत्नी होने के नाते वह स्वकीया नायिका है ।
उसका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक है । उस स्वाभिमानिनी के गर्व का बाँध तब
टूट जाता है जब वह कृष्ण के घर छोड जाने का समाचार पाती है । एक
आदर्श आर्यमहिला की भाँति राधा वियोग में भी संयत और गंभीर है ।
अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी उसे स्वकीया के रूप में भी चित्रित किया है ।

वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार गोपियाँ कृष्ण की आनन्द प्रदायिनी
रस शक्तियाँ हैं । गोपी आत्मा और कृष्ण परमात्मा हैं । अन्य पूर्वा,
अनन्यपूर्वा और सामान्या ये तीनों प्रकार की व्रजांगनायें कृष्णा-प्रेम में पगली है ।
भ्रमरगीत में निर्गुण भक्त उद्धव को अन्योक्ति के द्वारा गोपियों ने खूब खरी-
खोटी सुनाई । अंत में उद्धव को भी स्वीकार करना पडा कि गोपियों की
सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है । भ्रमरगीत में गोपियों की विरहदशा का हृदयदावक
वर्णन है[4]। उद्धव पर व्यंग्य कसने में भी उन्हें संकोच नहीं आता[5]।"

1· "भारतीय वाङ्मय में श्री राधा" - डॉ·बलदेव उपाध्याय, पृ·421
2· "कूट काव्य एक अध्ययन" - डॉ· रामधन शर्मा शास्त्री, पृ·187
3· हिन्दी साहित्य में राधा - डॉ· द्वारिकाप्रसाद मीतल, पृ·300
4· निसिदिन बरसति नैन हमारे ।
सदा रहति पावस ऋतु हम पे जब ते श्याम सिधारे ।
कैसे पनघट जाऊं सखी री, डोलों सरिता तीर । सूरसागर पद 5 3893
5· मधुकर कौन देस ते आये ?
वही पद 4123

यह सब होने पर भी वे कृष्ण तक पहुँचकर आत्मसम्मान खोना नहीं चाहतीं। गोपियों का यह अनुपम प्रेम देखकर उद्धव ने उन्हें "प्रेम ध्वजा-स्वरूपिणी कहा।

अष्टछाप के दूसरे कवियों ने भी मधुरभक्ति के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया।

श्रीमद्भागवत के अनुसार कुब्जा ने अपने विरह को शान्त करने के लिए भगवान के चरण-कमलों को अपने हृदय में धारण किया।[1] कृष्ण और कुब्जा के संबंध का समाचार पाकर सूर की गोपियाँ अतीव दुःखी हुई।[2] वे उपहास भी करने लगीं।[3] लेकिन कुब्जा उनको जो सन्देश भेजती है। वह उसकी विनम्रता का परिचायक है।[4]

सूर की यशोदा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व कृष्णप्रेम का प्रतीक है। कृष्ण जैसा पुत्र पाकर वह अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती है। इस आनन्द में वह सारे व्रजवासियों को सम्मिलित करती है। पूतना से उसका व्यवहार उस की निष्कपटता का परिचायक है। कृष्ण के अलौकिक कार्यों को देखकर वह विस्मय विमुग्ध हो जाती है। सूरसागर के अनेक पदों में यशोदा का वात्सल्य भाव प्रस्फुटित हुआ है। "मैया, कबहि बढ़ैगी चोटी"......

"मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो...."

---

1. श्रीमद् भागवत - दशमस्कन्ध - अध्याय 48, श्लोक 7
2. सूरसागर - पद 3761
3. वही, पद 3770
4. वही, पद 4269

आदि बालसुलभ उक्तियाँ सुनकर वह विहँसकर प्यारे कान्ह को छाती से लगा लेती है । कृष्ण के मथुरा जाने पर उस का मातृहृदय व्यथा से भर जाता है । "फाटि न गई ब्रज की छाती, कत यह सूल सह्यो ।" प्रस्तुत उक्ति में मातृहृदय की मर्मान्तिक पीडा भरी हुई है । अपनी आँखों के तारे कृष्ण के साथ रहने केलिए वह सब कुछ सहने को तैयार है[1] । यहाँ तक कि देवकी की दासी बनने में भी उसे संकोच नहीं । यशोदा का यह पुत्र-प्रेम देखकर कोई कौन उसे विमाता कह सकता है ?

सूरदास के दृष्टकूट पदों में प्रोषित भर्तृका, मानवती, कलहान्तरिता आदि का वर्णन मिलता है । नायिकाभेद के अंतर्गत सूरदास जी ने स्वकीया, मुग्धा, ज्ञात यौवना, परकीया, ऊढा, गुप्ता आदि अनेक प्रकार की नायिकाओं का चित्रण किया है । सूरदास की नारी-भावना में माता और प्रेयसी ये दो रूप ही उल्लेख योग्य हैं । उन्होंने भी नारी को मिथ्या[2], भक्तिमार्ग में प्रतिबंध[3], नागिन[4] आदि कहकर निन्दा की है ।

अष्टछाप के कवियों में अन्यतम नन्ददास जी ने नायिकाओं की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है[5] । परमानन्ददास ने राधा कृष्ण की युगल लीला तथा गोपियों की रूपासक्ति तथा विरहासक्ति का सजीव चित्र अंकित किया है । उनकी विरहिणी की विरहज्वाला अंग अंग को जलानेवाली है[6]। मरते समय भी

---

1. "सूर स्यामधन हौं नहिं पठयौ,
   अबहि कंस किन बाँधौ । सूरसागर - पद 3589
2. सासपद - 317
3. वही, पद 372
4. वही, पद 446
5. पदावली - नन्ददास 83
6. परमानन्द सागर - पद 1017

कवि कुंभनदास के अन्तःकरण में "कनकबेलि वृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी" की मूर्ति समाई हुई थी।[1] अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी नारी के मोहक चित्र खींचे हैं ।

अन्य कृष्ण भक्त कवियों में राजस्थान की उमरकवयित्री मीरा की भक्ति में नारी भावना का सर्वाधिक प्रस्फुटित रूप मिलता है । उनके काव्य में राधा का उल्लेख कम है क्योंकि वे अपने को राधा समझती थीं । उन का प्रेम स्वकीया का है । "तुम हो पुरुष हम नारी" कहकर उन्होंने कान्ता-भाव की भक्ति प्रदर्शित की । नारी सहज प्रेम की तन्मय अवस्था में वे कहती हैं, "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।" "ब्रह्म पुरुष है, जीव नारी है ।" इस आध्यात्मिक तत्व को ध्यान में रखने से हीं मीरा की नारी भावना समझ में आती है । नारी का जितना उचित और सुन्दर चित्रण मीरा के काव्य में है, उतना और किसी कृष्ण काव्य में नहीं मिलता । कारण यह है कि मीरा स्वयं नारी हैं । उन्होंने नारी जीवन की पवित्र मर्यादा का निर्वाह किया है । "म्हाने चाकर राखोजी"[2] कहकर प्रार्थना करनेवाली मीरा में हम भारतीय नारी का समर्पित रूप ही देखते हैं । पुरुष और नारी के बीच जो पवित्र, मर्यादापूर्ण प्रेम का बन्धन है, वही "गिरधर नागर" के साथ उनका है । एक सरल हृदया नारी का प्रेम और विरहताप उनके पदों में हम देखते हैं[3] । ऐसी पवित्र गंभीर नारी कृष्ण काव्यों की परम्परागत नारी से सर्वथा भिन्न है । आधुनिक युग की मीरा श्रीमति महादेवीवर्मा का कथन है कि हेली में तो प्रेमदिवानी मेरा दर्द न जाने कोय"

---

1. हिन्दी साहित्य (खण्ड - 2) - धीरेन्द्र वर्मा, पृ.387
2. मीराबाई की पदावली, पद सं.154
3. मीरा पदावली - पद - 48

सुनकर हमारा रोम रोम उस वेदना का स्पर्श पा लेता है तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि मीरा की वेदना आत्मानुभूत है[1]। उनका प्रेम आध्यात्मिक होते हुए भी लौकिक दृष्टि से स्वाभाविक है । "मीरा का भाव चिरन्तन नारी का भाव है । उनका नारीत्व विलास के पथ का चंचल पथिक नहीं है[2]।"

भक्तशिरोमणि रसखान ने नारी-चित्रण में शुद्ध सांसारिक रूप ही प्रस्तुत किया हैजिस में वासनामय श्रृंगार के दर्शन होते हैं । कृष्ण की मुस्कान देखकर मूर्छित होनेवाली गोपिका का चित्र अत्यन्त स्वाभाविक बन पडा है[3]। कविवर रहीम ने अपने "बरवै नायिका भेद"में अनेक नायक नायिकाओं के लक्षणों, हाव-भावों तथा मनोवृत्तियों का सरस वर्णन किया है[4]।

रीतिकाल में नारी

1700 ई॰ से 1800 ई॰ तक के काल को रीतिकाल की संज्ञा दी गई है । मुगल साम्राज्य के अधःपतन का आरंभ हो चुका था । धार्मिक असहिष्णुता और अमानुषिक शासन से जनता त्रस्त थी । शासक विलासी थे । उनके आश्रय में रहने के कारण कवियों का लक्ष्य अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना था । इस केलिए वे श्रृंगार रस से ओतप्रोत कृतियाँ रचने लगे । इस प्रकार आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता ने अधिकार जमा लिया । इस युग के कवियों के दो वर्ग हैं - रीतिबद्ध और रीतिमुक्त । रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में हृदयपक्ष दब गया था और कलापक्ष उभरकर सामने आया था।

---

1. "यामा" की भूमिका में - श्रीमति महादेवी वर्मा, पृ॰7
2. "मीराबाई" डॉ॰ सी॰एल॰ प्रभात, पृ॰390
3. रसखान - देवेन्द्र प्रताप उपाध्याय, पृ॰142
4. अब्दुर्रहीम खानखाना, डॉ॰समर बहादुरसिंह, पृ॰246

ये कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन और आत्माभिव्यंजन में ही कला की सार्थकता समझते थे। रीतिमुक्त कवि चाटुकार नहीं थे। उन्होंने अपनी स्वच्छन्द काव्य-धारा प्रवाहित की।

कुछ विद्वान आचार्य केशवदास को रीतिकाल का प्रथम कवि मानते हैं। वे दरबारी कवि थे। अत: विलासिता का प्रभाव उनकी कविता पर पडा है। परम्परागत संस्कृत-ग्रंथों से परिचित होने के कारण नारी-चित्रण में उनका दृष्टिकोण संस्कृत कवियों का दृष्टिकोण था। सामाजिक संबंधों के आधार पर उन्होंने नारी के तीन भेद किये हैं - स्वकीया, परकीया और सामान्या। सामान्या नारी का वर्णन अनुचित सोचकर उन्होंने छोड दिया। उस युग के कवियों की दृष्टि में नारी उपभोग की वस्तु थी, पुरुष को अपनी ओर खींचनेवाली थी[1]। अत: प्रेम की अन्तर्दशाओं का चित्रणइस काल में कम ही हुआ। तो भी केशव ने नैतिकता, मर्यादा एवं संयम का पालन किया। उनकी सीता इस का उदाहरण है।

"मानस" की सीता और रामचंद्रिका की सीता में अंतर है। "मानस" की सीता वनमार्ग में राम के चरण-चिह्नों को बचाती हुई चलती है। लेकिन "रामचन्द्रिका" की सीता धूप के कारण परेशान हो अपने पति के चरण-चिह्नों पर पैर रखकर चलती है। वह राम से पंखा झलवाती है। अन्य मनस्क पति को वह रिझाती भी है। इस अंतर का कारण यह है कि केशव की सीता राम की जीवनसंगिनी है। सरला होने पर भी उसमें संशय शीलता है। केशव के राजनैतिक कौटिल्य के कारण ही सीता का इस प्रकार चरित्र चित्रण हुआ है[2]। पति के प्रति सीता का अनन्य प्रेम है। पति ने उसे त्याग दिया, पर उसके मन में प्रतिशोध की भावना नहीं है।

---

1. "रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना" पृ.425
2. "केशव और उनका साहित्य" - डॉ. विजयपाल सिंह, पृ.305

इसी प्रकार "मानस" की कौशल्या और "रामचन्द्रिका" की कौशल्या में अंतर दीख पड़ता है । "मानस" की कौशल्या कठिन परिस्थिति में भी धैर्य धारण करनेवाली है, कर्तव्यपरायणा है । वनगमन के समय वह राम को अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए प्रेरणा देती है[1] । पर केशव की कौशल्या पुत्र-विरह रहने में असमर्थ होती है[2] । नारी के व्यक्तित्वों में इस प्रकार अंतर आने का कारण युग की प्रवृत्तियाँ हैं । रीतिकालीन नारी में मन को आनन्दित करने की शक्ति है क्योंकि रसिकजनों को मुदित करना ही उस काल के कवियों का लक्ष्य था[3] । केशवदास ने नारी को भोग्या मानकर त्याज्या बताया[4] । "पावक पावकशिखा बड भारी, जारति है नर को परनारी[5] ।" माननेवाले केशव ने रूपक द्वारा नारी की कुटिलता को भी स्पष्ट किया[6] । पत्नी के रूप में नारी के महत्व को स्वीकार करते हुए केशवदास ने कहा कि पत्नी को छोड़कर संन्यास लेना निष्फल है[7] । वे भी पतिसेवा को नारी धर्म माननेवाले थे[8] । राम-सीता के शृंगारवर्णन में संयम और मर्यादा का पालन करनेवाले केशवदास जी ने राधा-कृष्ण के शृंगार वर्णन में कहीं कहीं मर्यादा का उल्लंघन किया क्योंकि कृष्ण नवों रसों में है और राधा उनके शृंगाररूप की हेतु है[9] । शृंगार के दोनों पक्षों का

---

1. रामचरितमानस - अयोध्याकाण्ड, पृ.119
2. रामचन्द्रिका - पूर्वार्द्ध, पृ.163
3. रामचन्द्रिका - उत्तरार्द्ध, पृ.54
4. वही, पृ.61
5. वही, पृ.54
6. वही, पृ.55
7. विज्ञानगीता, पृ.72
8. वही, पृ.16 छन्द - 41
9. रसिकप्रिया - प्रथम प्रकाश छन्द - 1.

चित्रण उन्होंने किया ही, प्रत्येक के प्रच्छन्न और प्रकाश दो-दो भेद भी उन्होंने किये । सीता की दासियों तक का नखशिखवर्णन उन्होंने किया । जाति के अनुसार पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी और नायक के सम्बन्ध मे स्वकीया, परकीया, सामान्या आदि नायिका भेदों का चित्रण उन्होंने किया है । अंत में कवि ने स्त्रियों के तीन तीन भेद उत्तमा, मध्यमा और अधमा करके अपनी सभी नायिकाओं की संख्या 360 बताई[1] ।

भानुमिश्र कृत रसमंजरी को ही मुख्य रूप मे आधार मानकर मम्मट के आदर्श को लेकर चलनेवाले प्रथम आचार्य आचार्य चिन्तामणि की नारी वही शृंगारकालीन नारी है जो अन्य रीतिकवियों द्वारा वर्णित की गई है । शृंगार के दोनों पक्षों में संयोग को उन्होंने "दम्पति का विलासपूर्ण विहार" माना और मिलन के अभाव को वियोग । उन्होंने नायिका केलिए "कलान प्रवीन विलासिनी सुन्दरता की खानि होना" आवश्यक बताया[2] । कवि ने नायिकाओं की जाति के अनुसार दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या तथा धर्म के अनुसार स्वकीया, परकीया, वेश्या आदि भेद किए हैं । सारांश यह है कि आचार्य चिन्तामणि की नारी भी विलासिता और शृंगार में पगी हुई है और आचार्य मतिराम की नारी प्रेम की प्रति-मूर्ति है । फिर भी उन्होंने नारी के सदाचार और नैतिकता पर ज़ोर दिया है । उन्होंने साबित किया कि परनारी प्रेम अशान्ति का कारण है । परकीया नायिकाओं में भी आशान्ति और असफलता ही दिखाई गई है[3] । उनका मत है कि परस्त्री गमन से जो सुख मिलता है, वह अपने घर में ही प्राप्त हो सकता है[4] ।

---

1. रसिक प्रिया - सातवाँ प्रकाश छन्द 37,78
2. कवि कल्प तरु - चिन्तामणि - 5,2,1.
3. सतसई - छनद 81
4. "छोडि आपनो भौन तुम भौन कौन ते जात"
   - मतिराम - सतसई - छन्द 660

अपने युग में नैतिक मूल्यों का पतन देखकर कवि का उद्बोधन है कि कुलनारि अपना भूषण लज्जा न छोडे[1]। उन्होंने यहाँ तक कहा कि अपने पति को नपुंसक जानकर भी नारी को उन की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए[2]।
उन्होंने प्राचीन शैली के अनुसार नखशिख वर्णन के अंतर्गत अलग अलग अंग प्रत्यंगों का वर्णन नहीं किया। किन्तु "शरीर और अंग", "सामूहिक और आंगिक" दोनों ही प्रकार के वर्णन आपकी रचनाओं में मिलते हैं[3]। केशव के पश्चात् नायिका भेद की परम्परा को आगे बढ़ाकर जीवन प्रदान करनेवाले मतिराम ही थे।

सरस भावुक कवि "देव" का दृष्टिकोण रीतिकाल के शुद्ध श्रृंगारिक और शुद्ध प्रेमी कवियों का मध्यवर्ती है। अन्य रीतिकालीन कवियों के समान रसिकता में डूबकर ही उन्होंने नारीचित्रण किया, परन्तु उनका दृष्टिकोण अनैतिक नहीं था। उन्होंने स्वकीया के प्रेम को ऊँचा बताया और परकीया तथा सामान्या का तिरस्कार किया एवं विषयासक्ति को कुत्सित कहा। उन का मत है कि मुक्ति और भोग का मूल काम है और काम का साधन नारी के द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है। उन के अनुसार समस्त जीव नारी-संग से सुखी रह सकते हैं। यहाँ काम का अर्थ विषय नहीं है। उन्होंने दम्पति-प्रेम को महत्वपूर्ण माना और प्रेमहीन स्त्री को वेश्या कहा। उनके अनुसार नारी के प्रेम से सारा विषाद दूर हो जाता है। उन्होंने अनेक रूपों में श्रृंगार वर्णन किया है, इसलिए रीतिकाल के श्रृंगारिक कवियों में उनको उच्चस्थान प्राप्त हुआ है। नख-शिख वर्णन में उन्होंने परम्परागत वर्णन करते हुए भी बाह्य सौन्दर्य की ओर न जाकर आत्मतत्व की ओर अधिक ध्यान दिया है। रस की दृष्टि से उन्होंने नायिका को ही नायक से अधिक प्रधान माना और उस के आठ प्रकार के भेदोपभेद किये।

---

1. ललित ललाम - छन्द - 174
2. गुरुजन दूजे ब्याह को प्रतिदिन करत रिसाई।
   पति की पति राखें बहू आपुन बाँझ कहाइ।" - मतिराम - सतसई, छन्द-9
3. वही, पृष्ठ - 96

रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बिहारीलाल ने[1] "स्वान्तिन: सुखाय" कविता करने पर भी अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को बचाने की भरसक कोशिश की है । अपनी एकमात्र रचना "सतसई" के द्वारा उन्होंने भक्ति और श्रृंगार की धारा प्रवाहित की । संयोग श्रृंगार के अद्वितीय कवि बिहारी ने अनेक प्रकार के रूपों, भंगिमाओं, चेष्टाओं द्वारा शारीरिक आकर्षण को चित्रित किया । उनके वियोग के दोहों में एक कसक और प्रेम की तीव्रता के दर्शन होते हैं । प्रिय दर्शन की भूखी एक नायिका अपनी आँखों की दुर्विधि पर परिताप करती है[2] । बिहारी का विरह वर्णन कभी कभी अस्वाभाविक, अतिशयोक्तिपूर्ण और हास्यास्पद हो जाता है । उनका चमत्कार उस समय अपनी चरमसीमा पर पहुँचता है जब विरह से अतिकृशा बनी नायिका को देख न सकने के कारण मृत्यु के लौट जाने की बात कही गई[3] । उनके नखशिख वर्णन में आचार्य केशवदास का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । इस के अंतर्गत नायिका के विभिन्न अंगों का वर्णन किया गया है[4] । एक युवति के नेत्र तो काजल लगाये बिना ही कंजों और खंजनों को जीतनेवाले हैं[5] । सामाजिक दृष्टि से बिहारी ने नायिकाओं के तीन भेद किए है - स्वकीया, परकीया और सामान्या । उनके काव्य में स्वकीया का वर्णन संक्षिप्त रूप में है और परकीया का विस्तृत रूप में । लक्षिता[6], गर्विता[7], मानिनी, कलहांतरिता[8] आदि अनेक प्रकार की नारियों का वर्णन सतसई में है ।

---

1. हिन्दी साहित्य - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.325-329
2. इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरज्योई नाहिं ।
   देखे बनै न देखते, बिनु देखे अकुलाहिं ।। रीति-श्रृंगार - डा.नगेन्द्र{बिहारी}
   पृ.54
3. केरी विरह ऐसी तउ गैल न छाडतु नीचु ।
   दीने हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु ।।" सतसई दोहा - 140
4. वही - दोहा - 266
5. रस सिंगार मंजनु किए, कंजन भंजन दैन ।
   अंजन रंजनहू बिना, खंजन गंजन नैन ।।
6. सतसई - बिहारी दो.508,523,577, 631, 688, 599.
7. वही, दो.122,325,246,475.
8. वही, दो.72, 108,273,309.

विभिन्न जाति की स्त्रियों का वर्णन भी इस में मिलता है[1]।

कवि भिखारी दास ने भी शृंगार के उभय पक्षों का मार्मिक वर्णन किया है। उन्होंने नायिका भेद के अंतर्गत स्वकीया के ही अधिक लक्षण बताये हैं। अपने "शृंगारनिर्णय" में उन्होंने सखी और दासी के कर्म भी बताये हैं तथा नायिका के विविध हाव-विभाव और दशाओं का भी चित्रण किया है। जिस प्रकार केशवदासजी की नायिका की सेवा में नाइन, धाय, पर्वनिहारिन, सुनारिन, नटी, सन्यासिनी आदि स्त्रियाँ हैं, उसी प्रकार भिखारीदास जी के "रससाराश" में नाइन, नटिन, धोबिन, कुम्हारिन, बरइन सब प्रकार की दूतियाँ हैं। ये धन मिलने के लिए परकीया के दूत कार्य करती हैं।

रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि भी नायिका - भेद तक सीमित थी। लेकिन उनकी नायिकायें सजीव एवं हाव-भाव-पूर्ण मूर्तियाँ हैं।

रीतिमुक्त कवि "सेनापति" भी दरबारी कवि थे, अत: नारी-संबंधी उनकी भावना भी अन्य रीतिकालीन कवियों के अनुसार ही थी। उनका शृंगार वर्णन यद्यपि रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार नहीं है, तो भी शृंगाररस के सारे अंग मौलिकतापूर्ण रीति से उनकी कृतियों में चित्रित है। राम-सीता की दाम्पत्यरति का वर्णन करते समय कवि की संयोग शृंगारिक भावना उच्चकोटि पर पहुँचती है[2]। उनकी वियोगिन तो जोगिन

---

1. सतसई - बिहारी - दो·708
2. कवित्तरत्नाकर - सेनापति - 4,21 4, 2

बनकर समस्त सुखों को त्यागकर आँसू बहाती ही रहती है ।[1] षड्ऋतुओं के वर्णन के अलावा "बारहमासा" की परम्परा को भी निभाने की चेष्टा उन्होंने की है[2]। दूसरी तरंग में उन्होंने नायिका के अंगप्रत्यंगों का भी वर्णन किया है[3]। सेनापति ने अन्य कवियों की भांति नायिका के कई भेदोपभेद नहीं किये हैं । तो भी मुग्धा[4], वचनविदग्धा, खंडिता आदि नायिकाओं का वर्णन किया है[5]।

कविराज पद्माकर के सर्वश्रेष्ठ श्रृंगाररस पूर्ण ग्रंथ "जगत्-विनोद" में परम्परा के अनुसार कृष्ण और राधा को ही नायक नायिका बनाया है । सावन के महीने में हिंडोले पर झूलती हुई गोरी नवल किसोरी के चित्रण में संभोग श्रृंगार की पूर्णता दर्शनीय है । कृष्ण के बिना राधिका की दशा का[6] चित्रण उनके वियोग श्रृंगार के अंतर्गत आता है[7]। उन्होंने परम्परागत पद्धति के अनुसार शास्त्रीय शैली में नखशिख का वर्णन न कर के नायिका के नेत्र, हास आदि का वर्णन किया है[8]। पद्माकर के नायिकाओं के स्वकीया, परकीया और गणिका ये तीन भेद किए हैं और इन्हें त्रिविध नायिका कहा है[9]।

---

1. कवित्तरत्नाकर - सेनापति - 1,2,23
2. वही, तीसरी तरंग - 3,10·15,2125,40,44 आदि
3. वही - 2,1,7·
4. वही, 2,50,2,30
5. वही, पृ·2,31,36
6. जगत् विनोद - पद्माकर - छन्द - 615
7. हे हरि तुम बिन राधिका, सेज परी अकुलाति ।
   तरफराति तमकति, नचाति, सुसकति सूखत जाति । पद्माकर छंद 194
8. पद्माभरण - पद्माकर छन्द 21
9. जगत् विनोद - छनद 16

उन्होंने नायिका भेद का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। दम्पति प्रेम को उन्होंने "सोने में सुगंध" माना है[1]।

रीतिमुक्त कवि घन-आनन्द की रचनाओं में भी दरबारी श्रृंगारिकता की स्पष्ट छाप है। अन्य कवियों के समान बाह्य रूपवर्णन में अधिक रुचि न दिखाकर उन्होंने भावपक्ष पर बल दिया है। संयोग श्रृंगार के अंतर्गत प्रेम में पगी नायिका का सजीव चित्र उन्होंने अंकित किया है[2]। उनकी अधिकांश रचनायें "सुजान" के वियोग में लिखी गई हैं। उनकी विरहिणी की आँखों में सदा सावन की छटा छायी रहती है[3]। उनकी नायिका की विरह तीव्रता कभी कभी उन्मादावस्था तक पहुँचती है[4]। उसके लिए वसन्त पतझर बन जाता है[5]। उन्होंने अंगप्रत्यंगों का अलग अलग परम्परागत रीति से वर्णन नहीं किया। नायिका भेद का भी विस्तृत वर्णन उन्होंने नहीं किया। कृष्ण के प्रति परकीया भाव से उन्होंने उपासना की है। इसलिए परकीया नायिका के वर्णन में अधिक बल दिया गया है। तो भी प्रोषितपतिका स्वकीया नायिका का भी हृदयस्पर्शी चित्र उन्होंने खींचा है[6]।

कवि आलम ने अपनी नायिका का सौन्दर्य चित्रण तीन रूपों में किया है। पहला नायक - नायिका का आलम्बन रूप में चित्रण है[7], दूसरा दूती के माध्यम से नायिका के सौन्दर्य का वर्णन है[8] और तीसरा

---

1. जगत् विनोद - छनद 18
2. पदावली - घन आनन्द - छन्द 51
3. विरह-निवेदन - छन्द 21
4. पदावली - छन्द 177
5. सुजान - हित प्रबंध - 59
6. विरहविथा की मूरि, आँखिन में राखौं पूरि,
   धूरि तिनि पायन की हा हा नेकु आनि दे ।।" छन्द 258
7. आलम कहे हो बडे बार, हे सेवार भए,
   तेरी तरूणाई सुजराइ सी जगति है ।
   मोतिन को वार दिए हिलोतो पहिरे नहीं,
   पाते ही के छटा अपछटा सी लगति है ।" आलमकेलि
   वही, पृ.26 छन्द 60
8.

नायक द्वारा नायिका पर रीझने का वर्णन है।[1] यशोदा का विरहवर्णन हृदयविदारक है।[2] गोपियों का विरह-चित्रण अत्युक्तिपूर्ण है।[3] नखशिख वर्णन में शास्त्रीय पद्धति के अनुसार अंग प्रत्यंग का अलग अलग वर्णन तो नहीं किया, किन्तु आलम्बन श्रृंगार में आठों अंगों का सुन्दर वर्णन किया है।[4] कवि ने नायिका-भेद का वर्णन परम्परागत शास्त्रीय रीति से नहीं किया, किन्तु नवोढा, मानिनी, अभिसारिका आदि का चित्रण किया है। मानिनी नायिका की चर्चा कवि ने विस्तार से की है।[5]

भारत में राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन और नारी जीवन पर उनका प्रभाव

ईस्वीं शताब्दी से इस्लाम के संपर्क तक नारी

ईस्वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में कन्यायें सत्रह अठारह वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रह सकती थीं। सामाजिक जीवन में नारी को आदरणीय स्थान प्राप्त नहीं था। विलासी समाज में नारी भोग्या-मात्र थी। अन्तःपुर में सुन्दरी स्त्रियों की संख्या बढ़ रही थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार उच्चवर्ग में स्त्रियों के पृथक्करण की प्रथा अवश्य थी, किन्तु पर्दा-प्रथा नहीं थी। नवीं शताब्दी से उच्च शिक्षा केवल उच्च वर्ग में ही

---

1. आलमकेलि, पृ. 143 (श्यामलमूर्ति), छन्द 368
2. जरि-जरि रहे मेरी छाती बरि बरि उठे,
   आलम छिनहि छिन-छौना बिनु छीजिए
   - आलम केलि, पृ. 95 छन्द - 225
3. वही, छन्द - 228
4. वही, पृ. 31 छन्द - 72
5. वही, मानिनी, पृ. 11 से 21, छन्द 24, 30, 34, 36, 38, 41, 44, 45, 47.

सीमित रह गयी । शिक्षित नारियों की संख्या क्रमशः कम होने लगी । "वैदिक प्रक्रियाओं का विधिपूर्वक सम्पादन करनेवाली, वैदिक ऋचाओं की रचनाकर्त्री नारी को मंत्रों के उच्चारण का भी अधिकार न रहा, और वह शूद्र के स्तर पर आ गई[1] । 600 ई॰ से विधवा-विवाह की प्रथा समाप्त हो गई । नारी के इस पतनकाल में भी सम्पत्ति संबंधी अधिकारों के क्षेत्र में वह प्रगति की ओर थी । पति चुनने का अवसर न मिलने के कारण पारिवारिक स्तर पर परस्पर सामंजस्य स्थापित न हो पाता था । परिणामस्वरूप पत्नी पती की आज्ञाकारिणी दासी बन गई ।

मध्यकाल में {600 ई॰ से 1800 ई॰ तक} नारियों की स्थिति में और भी पतन दीख पड़ता है । धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों की ओर नारियाँ अधिक प्रवृत्त हुई । शिक्षा की कमी के कारण उनकी चेतनाशक्ति और ज्ञानमार्ग का बराबर ह्रास होता गया । नारी विलास की सामग्री थी । मुस्लिम शासन स्थापित होने से ऊँची श्रेणियों में भी नारी-शिक्षा समाप्तप्राय हो गई । देवदासी प्रथा का प्रचलन था । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक शिक्षा केवल वेश्याओं तक सीमित थी । नारी को स्वतंत्र जीविकोपार्जन के साधन या अधिकार प्राप्त नहीं था । बालविवाह के कारण उसे अल्पायु में ही परिवार संभालना पड़ता था । विधवाविवाह अमान्य हो गया और समाप्त हो गया । मुसलमानों के आतंक के कारण आक्रांत हिन्दू परिवारों में कन्या-जन्म अमंगल सूचक माना जाने लगा ।

---

1. राधाकुमुद और रमेशचन्द्र मजूमदार - दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी - सामाजिक जीवन, पृ॰564

फलस्वरूप शिशु-हत्या की प्रथा भी प्रचलित थी । ऋण-भार का भय भी इस का एक दूसरा कारण था ।

"अवरोध प्रथा के आरंभ, शिक्षा के अभाव ने कोमल नारी को पराश्रयी बना दिया । उस की सहज समर्पण और सेवा की भावना को दासत्व की स्वीकृति मानकर उसे जीवन की किसी भी अवस्था में स्वतंत्र रहने का निषेध किया । ज्ञान के आलोक के अभाव में जीवन के कंकरीले-पथरीले मार्ग ऊंची-नीची पगडंडियों पर जब उस के श्रृंखलाबद्ध पग डगमगाए, अभिभावक और संरक्षक कही जानेवाली पुरुष-जाति ने उस से संवेदना के दो शब्द भी नहीं कहे । प्रत्युत उस की स्वभावगत सुकुमारता को दुर्बलता की संज्ञा दी । शिक्षा और संस्कृति के अभाव में नारी में स्वयं ही हीनता की भावना ने जड पकड ली थी ।"[1]

<u>सामन्ती व्यवस्था का विलास-वैभव और नारी</u>

वैभव और विलास को ही जीवन का चरम लक्ष्य माननेवाले सामन्तों में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं था ।

"अनागत दु:ख (अपहरण) के भय से पलायन कर इन सामन्तों ने नारी के सुरभित आँचल एवं मदिरा की मादकता का सहारा लिया । सम्राट के अनुकरण पर इन के अन्त:पुर में भी विवाहिताओं एवं रक्षिताओं का

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना, पृ.27

समुदाय था । नारी उन की विलासिता का एक उपकरण, विश्रांति के क्षणों की संगिनी मात्र थी । विलास और वैभव की उस अतुलित राशि में निवास करनेवाली नारी, उस का एक अंग मात्र थी, उस की उस से पृथक सत्ता अथवा व्यक्तित्व न था ।[1]"

सन् 1193 ई॰ को भारत में हिन्दू जाति का ध्वंस शुरू हो गया था और मुस्लिम साम्राज्य का प्रभाव जम गया था । तत्कालीन समाज में नारी के प्रति दो विरोधी मनोवृत्तियाँ दिखाई देती थीं - §1§ विरागी वर्ग उसे मानवोन्नति का अवरोध मानकर उस से दूर रहने का निर्देश देता था । §2§ विलासी वर्ग उसे जीवन की अत्यावश्यक सामग्री मानकर उसके सान्निध्य को सुखमय मानता था ।

"इस रूढ़िग्रस्त वातावरण में नारी व्यक्तित्वहीन अशक्त थी । इन्हीं अगतिशील परम्पराओं के मध्य वह जन्म लेती । निग्रह एवं आत्मदमन, आज्ञापालन एवं पतिपरायणता का उपदेश पाकर अपरिपक्व अवस्था में श्वसुरगृह में प्रवेश करती । अपनी सामाजिक मर्यादाओं एवं परम्पराओं में केन्द्रित, अनादर अथवा आदर प्राप्त कर जीवन व्यतीत कर देती थी । उस में न स्वाभिमान की भावना ही होती और न मातृत्व के गर्व, पत्नी की गरिमा की अनुभूति ही । फिर भी उस का जीवन त्याग और बलिदान का जीवन था[2] ।"

1· मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी - भावना, पृ·47
2· वही, पृ·48

भारत के इस्लाम के साथ सम्पर्क ने परोक्षरूप से उस की नारी भावना को भी प्रभावित किया । मुहम्मद साहब के आविर्भाव के पूर्व अरब में नारी पुरुष वर्ग के अत्याचार और प्रपीडन से त्रस्त थी । पुत्री-जन्म को अभिशाप मानकर जन्मते ही उसे भूमि में गाड देने की प्रथा भी प्रचलित थी । पर मुहम्मद साहब मातृशक्ति का यह अनादर सह न सके । उन्होंने मुस्लिम नारी के पथ पर से अवरोध तिरोहित कर उसे प्रशस्त किया । कुरान में स्त्री-पुरुष को समान पद दिया गया है ।

भारतीय सामन्त इस्लामी सभ्यता का अनुकरण करनेवाले थे । रक्षिताओं तथा पत्नीत्व की मर्यादा पा लेनेवाली दासियों के कारण नारी अनादर की दृष्टि से देखी जाने लगी । अन्त:पुरों में नपुंसक दास नियत किये गये थे । उच्च वंशों में विधवा-विवाह की प्रथा नहीं थी । सामन्त की मृत्यु पर पत्नी भी चिता पर जलकर भस्म हो जाती थी ।

"वैभव के स्वप्निल अंचल, विलास के मधु-कानन में विश्राम करनेवाली इन नारियों का जीवन पुष्पशय्या की भाँति न था । एक सामान्य सन्देह पर या अकारण ही वह पति द्वारा परित्यक्त की जा सकती थी । ऐसी दशा में निरुपायनारी, जिसने परिश्रम करना जाना ही नहीं था, पथ की भिखारिणी, दासी अथवा पतिता बन जाती थी, या आत्मघात कर लेती थी ।"[1] इस युग की नारी की गणना शोषित वर्ग में की जा सकती है । नैतिक आदर्शों के अभाव में नारी की गौरव-गरिमा विनष्ट हुई ।

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी - भावना, पृ.55

"सामन्तयुग के स्त्री-पुरुष संबंधी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यन्त संकुचित लगता है । उस का नैतिक मानदण्ड स्त्री का शारीरयष्टि रहा है । उस सदाचार के एक अचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बाल-विधवा अपनी छाती से चिपकाए हुई है, और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या । "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" के अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई भी स्थान नहीं और वह पुरुष की संपत्ति समझी जाती रही[1] ।"

इस्लाम के अंतर्गत नारी

मुहम्मद साहब ने पत्नियों की संख्या चार तक सीमित की । स्त्री और पुरुष दोनों पर पवित्रता का समान बंधन था । पति की अनुमति से ही नारी भी विवाह - विच्छेद कर सकती थी । इस्लाम स्त्री-शिक्षा के विपक्ष में था । पहले पर्दे की प्रथा नहीं थी । किन्तु कुरान के चौबीसवें शरूह के एक पद्य में पर्दा-प्रथा की घोषणा है । इस्लाम के नियमों के कारण नारी-जीवन में दुःख-दैन्य की काली छाया पड़ी ।" "हरम" के सीमित जीवन में मुस्लिम नारी की बुद्धि संकीर्ण हो गई, धारणायें अगतिशील हो गई और जीवन के प्रति उस का दृष्टिकोण सीमित और संकुचित हुआ । अन्य जातियों के

---

1. पन्त - आधुनिक कवि भूमिका, पृ॰23, सं॰वि॰2003, इलाहाबाद

समान इस्लाम में भी परम्पराओं ने नारी को शैतान के कोड़े बनाकर उसे अविश्व-सनीय तथा अपकर्ष का कारण घोषित किया । पर मुहम्मद साहब ने मातृचरणों में स्वर्ग देखा । अपनी भारतीय बहन की तुलना में फारस की स्त्री उन्नति कर रही थी । मुगल शासकों का प्रेरणास्थल फारस था, परन्तु उन्हें पत्नियों की संख्या की सीमा अमान्य थी । मुगल शासकों की वासना परितृप्ति के लिए सुन्दरतम नारियाँ थीं । इन अलंकृत महिलाओं के विनोद संगीत, पतंग उड़ाना, शतरंज आदि थे । गुलबदन बानू, सलीमा बेगम, जेबुन्निसा आदि नारियाँ काव्यरचना भी करती थीं । नारी-समाज में नैतिकता का मूल्य घट गया था । वैभवपूर्ण होने पर भी उनका जीवन रिक्त था ।

"सौन्दर्य की हाट, रूप की प्रतिद्वन्दिता में प्रतिक्षण एक दूसरे को तुच्छ बनाने को प्रस्तुत "हरम" की स्त्रियों के समक्ष कर्मण्यता अथवा उत्सर्ग का अवसर न था । यह अन्त:पुर वैभव और विलास में इन्द्रलोक की समता करता था । किन्तु यह युद्धप्रांगण भी था, जहाँ ईर्ष्या एवं द्वेष, कपट एवं सन्देह के घात-प्रतिघात होते । नैतिकता के शव पर, वासना की झंझा में कुचले हुए नारीत्वपुष्प धूल-धूसरित होते रहते ।"[1]

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, पृ.54

इस ज़माने में नारी को अपना प्राचीन गौरव प्राप्त नहीं था, तो भी उसकी हालत सर्वथा गिरी हुई नहीं थी । राजपूत और पेर्स्यन पारम्पर्य के अनुसार माता को महनीय स्थान प्राप्त था । राजनीति में भी नारियों का भाग महत्वपूर्ण था । इल्तुमिष की पुत्री रज़िया का सिंहासनारोहण इस बात का प्रमाण है कि नारी परमाधिकार की प्राप्ति की प्रतियोगिता में विजय पा सकती है। बीबी राज़ी, मालिका - ऐ - जहाँ आदि नारियाँ भी यहाँ उल्लेखयोग्य हैं । राजनीति में भाग लेनेवाली कई नारियों का उल्लेख मुगलों के आगमन के बाद के इतिहास में मिलता है[3] । जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ साम्राज्य का शासन करती थी । शाहजहाँ की पत्नी मुमताजमहल और पुत्री जहाँनारा का उसकी नीति-निर्धारण में भाग था । औरंगज़ेब अपनी बहन रोशन-आरा के मत को महत्व देता था । राजनीति को खिलौना समझनेवाली मुस्लिम महिलाओं में नूरजहाँ अग्रगण्य थी । वह प्रथम और अन्तिम मुगल स्त्री थी, जिस का नाम सिक्कों पर अंकित हुआ था ।

शाहजहाँ के सिंहासनारोहण के बाद वह राजनीति के क्षेत्र में नहीं आयी । उस ने पेन्शन ली । यह इस बात का प्रमाण है कि जहाँगीर के प्रति ही उस का समस्त तात्पर्य था । सोलहवें शतक की मुस्लिम नारियों में चाँद बीबी अत्यन्त महत्वपूर्ण थी । सत्रहवीं सदी में स्याहिबाजी ने, जो शाहजहाँ के दरबार के एक अमीर की पुत्री थी और काबुल के गवर्नर अमीरखाँ की स्त्री थी, अपने पति की मृत्यु के उपरान्त नये गवर्नर के पहुँचने के समय तक अफगानों पर शासन किया । राजनीति के क्षेत्र में विराजनेवाली हिन्दू नारियों की भी कमी नहीं । जीजीबाई (1594-1676) एक कुशल राजनीतिज्ञा और प्रभावशाली शासिका ही नहीं, बल्कि पुत्र शिवाजी को राजनीतिक सफलता का मूलमंत्र देनेवाली भी थीं । उस के स्नेहमय सतर्क निरीक्षण में शिवाजी का चरित्र निर्माण हुआ था । शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी ताराबाई में प्रतिभा और प्रशासकीय क्षमता विद्यमान थीं । राजनीति और युद्ध दोनों में उस ने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया । गोंडवाने के मांडलिक साम्राज्य की स्वामिनी रानी दुर्गावती राजनीति में निपुण थी । पति की मृत्यु के बाद उसने शासन भार संभाला और पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद शत्रु द्वारा अपमान के भय से स्वयं तलवार द्वारा जीवनांत कर लिया । मेवाड की रानी कर्णावती ने अपने पुत्र के कुप्रबंध के दोषों को दूर करने का प्रयास किया और अंत में जौहर द्वारा प्राणों को त्याग दिया । अहल्याबाई (1715-95) कुशल

राजनीतिज्ञा एवं प्रशासिका थीं । मुगल काल में नारी को सिंहासनारोहण का अधिकार न था, तो भी वह राजनीति को बराबर प्रभावित करती रही । अपने सौन्दर्य एवं अधिकारपूर्ण व्यक्तित्व के बल पर नूरजहाँ ने परोक्ष रूप से शासन भी किया । उपरोक्त नारियों ने पुरुषों से कहीं अधिक निपुणता दिखाई ।

मध्ययुगीन आर्थिक जीवन में नारी को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था । निम्नवर्ग की स्त्रियाँ स्वावलम्बिनी थीं । वेश्यायें संगीत आदि व्यवसाय के रूप में करती थीं । लेकिन उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पुरुष की मुखापेक्षी थीं । उस काल की स्त्रियों को पुरुष से पृथक कोई आर्थिक जीवन था ही नहीं । सामन्तवादी व्यवस्था में नारी हमेशा पुरुष पर अवलम्बित थी । बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति, वृद्धावस्था में पुत्र या अन्य किसी संबंधी के आश्रय में ही उसे जीना था । पुत्री-जन्म अशुभ माना जाता था और नारी केवल कामतृप्ति का साधन थी । पर्दे का प्रारंभ मुसलमानों के शासनकाल में एक प्रथा के रूप में हुआ । उस काल में भी कृषक स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थीं । फिरोजशाह ने (1388) पर्दे को सार्वजनिक रूप से लागू किया । मुस्लिम स्त्रियों की यह प्रथा हिन्दू अभिजात वर्ग के लिए आदर्श बनी । विजेता की कामलोलुप दृष्टि से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा केलिए भी उन्होंने पर्दा-प्रथा अपनायी । विवाह की आदर्श आयु आठ, नौ या दस वर्ष की थी । राजपूतों में जौहर की प्रथा प्रचलित थी ।

कुछ स्त्रियाँ पति की मृत्यु पर स्वयं चिता में कूदकर सती होती थीं। लेकिन कभी कभी स्त्रियों को बलपूर्वक अग्निप्रवेश कराया जाता था। मुसलमान सुलतानों की हरम-प्रथा, बहु विवाह की रीति और विलासलालसा ने वेश्या वृत्ति की प्रथा को प्रोत्साहन दिया। अकबर ने उन के लिए शैतानपुरी नामक एक पृथक् बस्ती ही बसा दी।

हिन्दू स्त्रियों में साक्षरता केवल राजपूत और ब्राह्मण महिलाओं को थी। नर्तकी वर्ग तथा वेश्याओं में शिक्षा तथा ललितकलाओं का प्रचार था। राजपूत एवं मरहठा परिवारों में विवाह की आयु सोलह सत्रह वर्ष की थी। अत: उनको प्रशासकीय एवं अस्त्र-शस्त्र-संचालन की शिक्षा की सुविधा थी। जवाहरबाई ताराबाई, अहिल्याबाई आदि नारियाँ यहाँ उल्लेखनीय है।

मुगलकाल में राजवंश की नारियों को जागीरें प्राप्त थीं। उनके अधीन अनेक कर्मचारी थे। उनसे मुगल शासक सम्मानपूर्वक व्यवहार करते थे। औरंगज़ेब केवल जहाँनारा को ही प्यार और आदर की दृष्टि से देखते थे। जहाँनारा, ज़ेबुन्निसा, ज़ीनतउन्निसा आदि धर्म के प्रति आस्था रखनेवाली नारियाँ थीं। नूरजहाँ, मुमताजमहल, जहाँनारा, ज़ेबुन्निसा आदि नारियों ने शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किये हैं। माहम अनगा ने दिल्ली में एक मदरसा स्थापित किया और जहाँनारा ने आगरा में। महमूद शाह की पत्नी बीबी राज़ी ने एक

कालिज की स्थापना की । शिकार, युद्ध, कला, विनोद आदि में भी ये नारियाँ पीछे नहीं थीं । आभूषण इनको प्रिय थे । औरंगज़ेब के बाद की नारियों के संबंध में श्रीमति रेखा मिश्रा के कथन से स्पष्ट होता है कि निम्न वर्ग की नारियाँ भी महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर राजनैतिक, सामाजिक और बौद्धिक क्षेत्रों में अग्रसर हो रही थीं ।

डॉ॰ उषा पांडेय के अनुसार मध्ययुगीन नारी ~~का~~ कार्यक्षेत्र केवल गृह ही रहा और नियामकों ने उसपर आदर्शों का भार लाद दिया । वह नहीं जानती थी कि उसके पैर शृंखलाबद्ध हैं । वह पुरुष के इंगित पर नाचनेवाली कठपुतली बन गयी । उस में चेतना या व्यक्तित्व का अभाव था । उसकी दशा दिनों दिन गिरती गई ।

मुगलों से पूर्व सुल्तानों के शासन में उनकी बेगमों का कोई स्थान न था । रज़ियाबेगम उनकी इस नीति का अपवाद थी ।

मुगल सम्राट अपने परिवार की वयस्का महिलाओं और अपनी बहनों के प्रति अत्यंत आदर और श्रद्धा का भाव रखते थे । हुमायूँ अपने परिवार की स्त्रियों से राजनीतिक विषयों पर भी परामर्श लेता था ।

नारी के इस पतनकाल में भी राजस्थान की नारियों ने स्वदेशाभिमान, आत्मगौरव, सतीत्व और साहस का परिचय दिया । पारस्परिक वैमनस्य, संघर्ष, मुगल तथा अन्य आक्रमणकारियों के आक्रमण आदि के कारण राजपूत नारी का जीवन अनिश्चित परिस्थितियों के बीच बीत रहा था । अनेक नारियाँ चिता में पति से मिलीं । चित्तौड के सरदार चन्द्रावत की नवविवाहिता पत्नी ने पति को अपनी ओर से निश्चिंत करने केलिए स्वकरों से सिर काटकर पति को भेज दिया । त्यागमयी पन्नाधाय राजस्थान की नारी थी । इस युग में जौहर की प्रथा अधिक प्रचलित थी । धन और पद के मोह से कुछ राजपूत अपनी कन्याओं को यवनों के अन्तःपुर की श्रृंगार केलिए भेजा । इन कन्याओं ने बलि पशु के समान परिवारहित में योग दिया ।

सार्वजनिक जीवन में नारी का कोई स्थान न था । किन्तु जनसाधारण के हृदय में मातृशक्ति के प्रति श्रद्धा की भावना थी । उसको अवध्या माना जाता था । बौद्धिक योग्यता और शिक्षा के अभाव से परिवार में उसकी स्थिति उपेक्षणीय थी । पुरुष को बहुविवाह का अधिकार था, पर नारी केलिए आदर्श विधान और कडा हो गया । धर्मशास्त्रकारों और स्मृतिकारों ने उसे पति को परमेश्वर मानने का निर्देश दिया था । संयुक्त परिवार प्रणाली भी स्त्री की प्रगति में बाधक थी । पितृ सत्तात्मक आदर्श पर पत्नी की स्थिति का निर्धारण होता था । पुरुष से पृथक् उसका कोई व्यक्तित्व नहीं था । पति के जीवनकाल में गृहव्यवस्था का उसे पूर्ण अधिकार था । निम्न अथवा श्रमिक वर्ग की स्त्रियों का जीवन अभिजात वर्ग की

स्त्रियों के जीवन की अपेक्षा कठोर होने पर भी आत्मनिर्भर था । परित्यक्त किये जाने पर वह दूसरा विवाह भी कर सकती थी । मध्ययुग की नारी के संबंध में डॉ॰ उषा पाडेय का मत है - "गृह प्रबंध की संलग्नता में वह आत्मतुष्ट थी । उस मूक पशु के समान जो किसी भी खूँटे से बाँध देने पर कुछ समय पश्चात् चर्वण कार्य करने लगता है । परिवार की परम्पराओं में सीमित नारी ने अपनी परिस्थिति से समझौता सा कर लिया था । यद्यपि तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक विषमताओं में उसे उन्नति एवं गौरव उपलब्धि के अधिक अवसर नहीं थे, किन्तु अपने परिवार के मध्य वह सुखी थी[1] ।"

भारत में नव-जागरण

उन्नीसवीं शताब्दी में सुधारवादी आन्दोलनों के कारण धार्मिक रूढियों में लोगों की आस्था कम हो गयी । ये रूढियाँ विकास के मार्ग में बाधा डालनेवाली थीं । नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप जनता में नवजागृति और नवचेतना का उदय हुआ था । उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वप्रथम धार्मिक सुधार आन्दोलन 1828 में "ब्रह्मसमाज" की स्थापना से शुरू हुआ । इस के प्रवर्तक राजा राममोहनराय थे । उन्होंने बहुविवाह, छुआछूत, मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया । उस समय भारतीय समाज में विधवा की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । उसे कोई आर्थिक आधार न था ।

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना - पृ॰58

पति की मृत्यु के पश्चात् या तो वह सती होती थी, या दासी के समान जीवन बिताती थी । अधिकांश आत्महत्या कर लेती थीं या वेश्यावृत्ति अपना लेती थीं । राममोहनराय ने विधवा-विवाह पर ज़ोर दिया । उनके आन्दोलन के परिणामस्वरूप लार्ड विलियम बेन्टिक ने सती प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया । राममोहनराय ने अपने समाचारपत्रों के माध्यम से नारी की दशा सुधारने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया ।

1875 ई॰ में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की । स्वामी ने विधवाविवाह के प्रचलन पर बल दिया । आर्य समाज ने नारियों के कल्याण के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये । उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । आर्यसमाज ने विधवा आश्रमों की स्थापना की और नारी शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार किया । फलत: लड़कियाँ विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने लगीं ।

बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस (1826 - 1886) इसी प्रकार के धार्मिक पुनरुत्थान कार्य में संलग्न थे । अन्य धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन "थियोसफिकल सोसाइटी" की स्थापना कर्नल अल्कार और ब्लैवटस्की के द्वारा 7 दिसंबर 1857 को न्यूयार्क में हुई । भारत में इसका पहला केन्द्र 1875 में मद्रास में स्थापित हुआ । समाज में प्रगतिशीलता लाने का प्रयत्न इस सोसाइटी द्वारा हुआ । इस में श्रीमति ऐनी बसेंट सदृश महिलायें थीं जिन्होंने हिन्दू नारियों के सामने ऊँचे आदर्श प्रस्तुत करके उनमें नवचेतना का संचार किया और अपने कर्तव्य के प्रति सचेत किया ।

इसी बीच भारत में राजनैतिक क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन हुए । मुगल शासन का वैभव समाप्त हुआ और देश अंग्रेज़ी शासन के अधिकार में आ गया सन् 1757 के प्लासी युद्ध ने अंग्रेज़ों की नींव भारत में जमा दी थी

और ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन धीरे धीरे समस्त भारत में फैल गया । जब जनता को मालूम हुआ कि अंग्रेज़ व्यापारी से शासक बनते जा रहे हैं तो जनशक्ति जाग्रत हुई और अंग्रेज़ों को भारत से निकालने के प्रयत्न शुरू हुए । सन् 1857 ऐसा सर्वप्रथम प्रयत्न में किया गया ।

स्वतंत्रता संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई

सन् 1857 के संघर्ष को अंग्रेज़ "सिपाही विद्रोह" कहते थे । पर हमारे लिये वह "स्वतंत्रता-संग्राम" था । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने इस संग्राम का नेतृत्व ले लिया था । झाँसी के महाराजा गंगाधर राव की मृत्यु के एक दिन पूर्व उन्होंने दामोदरराव को दत्तक लिया था । लेकिन गवर्नर जनरल मालमाल्कम ने यह दत्तक विधान स्वीकार नहीं किया और झाँसी राज्य बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेन्ट मेज़र एलिस के अधीन किया गया । ब्रिटिश प्रतिनिधि से यह हृदयविदारक बात सुनकर विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने पर्दे की आड में बैठकर कहा - "मेरी झाँसी नहीं दूँगी ।" यह उद्गार उनके झाँसी के प्रति अपार प्रेम, आत्माभिमान और आत्मविश्वास का द्योतक है ।

राज्य हडपने के बाद ब्रिटिश सरकार रानी को अधिकार हीन, वैभव हीन, साधारण स्त्री समझकर जीवन निर्वाह के लिए पाँच हज़ार रुपये मासिक पेंशन देने लगी । परिस्थितियों को प्रतिकूल समझकर समस्त अन्याय को वह चुपचाप सहती रही । पर भीतर ही भीतर एक ज्वालामुखी धधक रही थी।

---

1 रानी लक्ष्मी बाई - श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर, नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (प्राक्कथन)

गंगाधरराव पर जो कर्ज था, उसे चुकाने का भार भी रानी पर लाद दिया गया तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि राज्य का अधिकार न रहने के कारण कर्ज का दायित्व भी मुझ पर नहीं है । अंग्रेज़ इस तेजस्विनी वीरांगना के गुप्त आत्माभिमान, धर्माभिमान और देशाभिमान अपमानों की ठोकरों से जगा रहे थे । उस समय समस्त देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध असंतोष फैला था । नाना साहब ने उनके विरुद्ध क्रांति की योजना बनाई । क्रांति की ज्वाला झाँसी में भी फैल गयी । अपनी प्रिय रानी के प्रति किये गये अत्याचारों से झाँसी की जनता पहले ही अंग्रेज़ों से रुष्ट थी । सारे बुन्देलखण्ड की आँखें रानी की ओर लगी हुई थीं । उनका बाह्य जीवन भले ही ऐसा दिखाई देता हो मानों वे अन्याय, अत्याचार और अपमान को भूल सी गई हैं, पर इसके विपरीत 1857 के वर्ष ने उन्हें गंभीर चिन्तन में लगी हुई और बदला लेने केलिए व्याकुल पाया ।" लेकिन उनका व्यवहार ऐसा था कि अंग्रेज़ों को उनपर ज़रा भी सन्देह नहीं हुआ । विद्रोहियों ने किले को घेरा तो अंग्रेज़ कष्ट में पड़े । रानी का सहज कोमल हृदय स्त्रियों और बच्चों को भूख से तडपते देख न सका । अत: उन्होंने उनकी सहायता की । तो भी झाँसी के हत्याकाण्ड के लिये अधिकतर अंग्रेज़ लेखक रानी को ही दोषी मानते हैं । लेकिन इस हत्याकांड के लगभग बाईस वर्ष बाद मार्टिन नामक एक अंग्रेज़ ने रानी को निर्दोष घोषित किया ।

विद्रोही सिपाही दिल्ली की ओर रवाना हुए तो झाँसी रानी के अधीन आ गई । राज्य के शासन में उन्होंने अपनी प्रतिभा और योग्यता का परिचय दिया । केवल दस मास के स्वराज्य में रानी के झाँसी में

एक बृहद और कार्यक्षम शासन की स्थापना की । उनकी स्त्रीसेना विशेष उल्लेखनीय है । उस ने अफसर मुन्दर, मुन्दर और काशीबाई थीं । रानी कचहरी जाते समय कभी पुरुषवेष धारण करती थीं, कभी स्त्री वेष । वे साक्षात् गौरी की तरह दिखाई देती थीं[1]।

सन् 1857 में सारे बुन्देलखण्ड में तथा उसके आसपास के इलाके में क्रांति की ज्वालायें फैलीं । दिल्ली के लाल किले पर यूनियन जेक के स्थान पर क्रांति का हरा झंडा फहरा । अब रानी के सामने दो मार्ग थे - संधि या युद्ध । पहला मार्ग आत्मसम्मानशून्य था और दूसरा आत्मगौरवपूर्ण । उस समय रानी ने अपनी राजनीतिज्ञता दिखाई और मित्रता तथा युद्ध की तैयारी, इन दोनों परस्पर विरोधी बातों का सुन्दर सन्तुलन अपने व्यवहार में रखा । जनरल ह्यूरोज़ रानी को जीवित पकडना चाहते थे । पर उनकी एक चाल भी न चली । नि:शस्त्र होकर अंग्रेज़ छावनी में आने का सन्देश उन्हें दिया गया, पर रानी का उत्तर था - "....... रियासत की रीति के अनुसार हथियार बन्द लोगों के साथ दीवानजी मिलने आयेंगे । मैं स्त्री हूं, अत: मेरा आना संभव नहीं । इस के बाद आपकी मर्जी ।" ह्यूरोज़ के दु:साहस पूर्ण पत्र तथा रानी के आत्मगौरवपूर्ण उत्तर ने झाँसी में युद्ध की दुन्दुभि बजा दी । रानी की सुप्रसिद्ध "घनगर्जन" तोप की अचूक मार से अंग्रेज़ों के कई मोर्चे उड गए । पर अंग्रेज़ों के पास कसे हुए गोलन्दाज़, अच्छी बारूद और बढिया गोले होने के कारण किले को और शहर को बडा नुकसान पहुंचा[2]। रानी ने नगरनिवासियों को सहायता देने की व्यवस्था की ।

1· माझा - प्रवास - पृ·55-56

2· वही, 68

28 अप्रैल, सन् 1857 को भयंकर युद्ध छिड़ गया । एक ओर थी अनुभवी और योग्य सेनानियों के अधीन शिक्षित और अनुशासित सेना जिसके पास अच्छी तोपें तथा उन्नत प्रकार के शस्त्र थे और दूसरी ओर एक स्त्री की अधीनता में अशिक्षित सेना थी जिसके पास पुराने ढर्रे की तोपें तथा पुराने शस्त्रास्त्र थे । तो भी रानी ने झाँसी को पराधीन न होने देने का दृढ संकल्प लेकर वीररस की साक्षात्मूर्ति की तरह युद्ध किया । आठ दिनों के भीषण संग्राम से भी अंग्रेज़ उन्हें झुका न सके । पर अंग्रेज़ों की भेदनीति के फलस्वरूप झाँसी की पराजय हुई । शोकावेग में रानी ने आत्माहुति करने की ठानी । पर अपने पितृतुल्य वृद्ध सरदार की सलाह से वे पुन: कर्मक्षेत्र में उतरीं । ग्यारह दिनों तक भयंकर युद्ध करने के बाद अंग्रेज़ों ने झाँसी पर अधिकार कर लिया । रानी की सेना ने अत्यन्त वीरता, आत्मनिष्ठा और साहस से मोर्चा लिया था । स्त्रियों द्वारा संचालित तोपखाने ने भी इस युद्ध के इतिहास पर अपनी कुशलता, वीरता और देशप्रेम की जो अमिट छाप अंकित की है, वह भारतीय रणकौशल की अमर धरोहर है । अंग्रेज़ों ने झाँसी पर जो विजय प्राप्त की, वह उनकी वीरता अथवा सैनिकशक्ति की विजय नहीं थी, पर वह विजय थी झाँसी के सरदारों के विश्वासघात की[1] ।

फिर रानी ने काल्पी को अपना क्रान्तिकेन्द्र बनाया । ह्यूरोज़ ने काल्पी पर विजय पाने का प्रयत्न किया । तब रानी की रण कुशलता देखकर गोरे सैनिक घबरा गये । अंग्रेज़ी तोपखाने ने आक्रमणकारियों पर गोले बरसाना आरंभ कर दिया । इससे अनेक क्रान्तिकारी इस लोक से चल बसे । यह देख रानी अपने घुड़सवारों के साथ घोड़े की लगाम अपने मुँह में दबाए तथा अपने दोनों हाथों में तलवारें लेकर उन्हें बिजली की गति से चला कर अंग्रेज़ सैनिकों को यमलोक रवाना करते हुए अंग्रेज़ी तोपखाने पर चढ़ गई ।

---

1. रानी लक्ष्मीबाई - श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर, पृ. 17।

तोपखाने के गोरे गोलन्दाज़ भागने लगे[1]। लेकिन द्रुतगामी ऊँटसेना की सहायता से ह्यूरोज़ ने क्रान्तिकारियों को पराजित किया ।

रानी रावसाहब के साथ गोलालपुर पहुँची और क्रान्तिकारियों की सभा में दूरदर्शितापूर्ण सुझाव दिया कि हमें ग्वालियर पर अधिकार कर लेना चाहिए । यह सुझाव सब को स्वीकार्य था । ग्वालियर पर अधिकार कर लेने के बाद विजयोल्लास में डूबकर समय बरबाद करनेवाले रावसाहब से रानी असन्तुष्ट हो गयीं । पर तात्याटोपे के अनुरोध से वे फिर रणक्षेत्र में उतरीं । उन्हें मालूम था कि यह उनका अंतिम युद्ध है । फिर भी एक कर्मयोगिनी की भाँति के कर्तव्यपालन केलिये सैनिक पोशाक धारण करके उत्साह, साहस और आवेश के साथ अपनी सेना में पहुँचीं ।

"ब्रिगेडियर स्मिथ ने रानी की सेना पर ज़ोरदार आक्रमण किया । रानी भी सिर पर जरी का चन्देरी साफा, शरीर पर तमानी का अंगरखा, पैरों में सुन्दर पाजामा और गले में मोतियों का हार पहने साक्षात् रणचण्डी के रूप में एक जानदार घोडे पर आरूढ होकर तथा हाथ में नंगी तलवार लेकर अपनी सेना के बीच आ गई । उनकी प्रिय सखियाँ-सुन्दर और काशी सैनिक वेश में घोडों पर सवार होकर, हाथों में नंगी तलवारें लेकर अपनी स्वामिनी का साथ देने के लिए उनके दायें-बायें चल रही थीं[2]। गोरे घुडसवारों द्वारा घेरे जाने पर भी वे कुशलता से उस घेरे को तोडकर बाहर निकल गई । गोरे घुडसवारों ने गोलियाँ दागते हुए उनका पीछा किया ।

---

1. रानी लक्ष्मीबाई - श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर, पृ.204
2. वही, पृ.233

एक गोली उनकी जाँघ में लगी । फिर भी वे आगे बढ़ी । पर अपनी सखी मुन्दर की चीत्कार सुनकर वे तुरन्त कूद पड़ी और उन्होंने क्रुद्ध होकर अपनी सखी के हत्यारे को मार डाला । पुन: उन्होंने घोड़ा दौड़ाया । पर मार्ग में एक नाला था जिस से घोड़ा अटक गया । इतने में घुड़सवार पास आये । एक अँग्रेज़ सवार ने पीछे से रानी के मस्तक पर प्रहार किया, फिर उनके हृदय में सगीन से वार किया । रानी अपने आक्रमणकारी पर वार कर उनकी अंतिम बलि लेकर भूमि पर गिर पडी[1] । 18 जून सन् 1858 को बाबा गंगादास की कुटी में उनके अंतिम क्षण बीते । रानी ने अपने साथियों से कहा था कि उनके शरीर को फिरंगी स्पर्श न कर पावे । इस निश्चय को उनके विश्वसनीय साथियों ने पूरा किया । उनकी मृत्यु का समाचार पाकर ह्यूरोज़ को भी कहना पड़ा - "विद्रोहियों में वह सब से महान और सर्वश्रेष्ठ वीर थीं ।"

कुछ अँग्रेज अफसर और लेखक रानी को चरित्रहीन और लम्पट मानते हैं । लेकिन झाँसी के तत्कालीन पालिटिकल एजेन्ट मेजर मालकम के अनुसार रानी चरित्रवान और महान महिला है और वह झाँसी में बड़ी लोकप्रिय है । मर्टिन ने रानी के वीरोचित गुणों की ओर संकेत करके उन्हें अँग्रेज़ों का प्रबल शत्रु माना । शासनकुशलता, न्यायप्रियता, उदारता, धर्म के प्रति आस्था, सौन्दर्य आदि अनेक गुण उनमें विद्यमान थे । वे अश्वविद्या में निपुण थीं । विद्या और कला से उनका प्रेम था । वे एक आदर्श माता भी थीं । युद्ध क्षेत्र में भी बालक दामोदरराव को पीठ पर लादकर ही वे पहुँचती थीं ।

---

1. रानी लक्ष्मीबाई - श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर, पृ.235

ऐसी पराक्रमी और कर्तव्यनिष्ठ माता का इतिहास से अन्य उदाहरण खोज निकालना सरल नहीं है । मृत्युशय्या पर पड़ने पर रानराव देशमुख पर उन्होंने पुत्र की रक्षा का भार सौंपा । वे सहयोगियों केलिए योग्य और दूरदर्शी सलाहकार थीं, प्रजा तथा कर्मचारियों के लिए माता थीं, सैनिकों की दृष्टि में वीरांगना और साहसी सेनानी थीं तथा शत्रु के लिये रणचंडी थीं ।

समाज में स्त्रियों के स्थान के संबंध में नवीन दृष्टिकोण

ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज आदि सामाजिक सुधार आन्दोलनों के द्वारा हिन्दू नारियों में नवचेतना का संचार हुआ । सर सैयद् अहमद ने मुसलमानों में प्रचलित पर्दा-प्रथा की कठोर निन्दा की और वैज्ञानिक विचारों तथा इस्लामी धर्म में समन्वय करने की चेष्टा की, जिस से इस्लामी धर्म से भी रूढ़ियाँ समाप्त हो जायें । उन्होंने मुसलमानों में शिक्षा का प्रचार किया, विशेष रूप से लड़कियों की शिक्षा का प्रचार किया । चिराग अली [लगभग 1844-1895] ने मुसलमानी लड़कियों को ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी । मौलाना शिबली नूमानी [1375-1914] ने पर्दाप्रथा के समाप्त करने एवं मुस्लिम नारियों को सामाजिक तथा राजनीतिक सम्मान प्रदान करने के लिए अथक परिश्रम किया । धार्मिक सुधार आन्दोलनों द्वारा और यूरोपीय विचारधारा के प्रभाव द्वारा जनता में परम्परा के प्रति जो मोह था, दूर हुआ और शिक्षा के प्रचार के कारण भारतीय नारी को जो अभी तक उपेक्षिता थी, भोगवस्तु थी, अपने अधिकारों का ज्ञान हुआ । पहले समाज में उसे प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी और राजनीति में भी उसका सहयोग नहीं था । "पर इन धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने नारियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया और घर की चहार दिवारी में बन्द रहनेवाली निर्जीव गठरियों ने प्रथम बार नवीन प्रकाश के अंतर्गत अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर चरण बढ़ाया । उनके धर्मगत आडम्बरों और भय में कमी हुई तथा धीरे धीरे उन में आत्मविश्वास और सजगता की वृद्धि हुई[1] ।

1. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ. 23

पचास-साठ वर्षों के अन्दर ही उस रूढ धारणा में परिवर्तन हुआ जिस के अंतर्गत बालविवाह का प्रचलन था । स्त्री का कार्य केवल सन्तानोत्पत्ति न रहकर वकालत, डाक्टरी, राजनीति आदि क्षेत्रों में भी वह सफलतापूर्वक कार्य करने लगी । नारी ने अपनी प्रखर चेतनाशक्ति, सूझबूझ और तर्क शक्ति का परिचय देकर साबित किया कि वह किसी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं है । डेनमार्क, चेकोस्लोवेकिया, जर्मनी आदि देशों में लड़कियों को पारिवारिक और मातृत्व संबंधी शिक्षा देनेवाले स्कूल थे । पर भारत में सन् 1947 ई॰ तक ऐसे स्कूल नाममात्र को ही थे । पुस्तकीय शिक्षा के साथ इस प्रकार की शिक्षा भी लडकियों के व्यक्तित्व-विकास केलिए आवश्यक थी ।

विदेशों में नारी की स्थिति सुधारने के अनेक प्रयत्न हो चुके थे । फ्रेंच क्रांति के साथ ही समस्त यूरोप के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में नवोन्मेष फैल गया था । उस समय तक नारी का लक्ष्य अपने को आकर्षक बनाना मात्र था । रूसो जैसे महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति भी नारी की उस शिक्षा का समर्थन करते थे जिस के अनुसार वे पुरुषों को अपनी ओर अधिकाधिक रिझा सकें और उनका जीवन सुखी एवं सम्पन्न बना सकें ।[1] उस काल में सुन्दरी नारी का जीवन सुखपूर्ण था । सौन्दर्य के अभाव में नारी का जीवन कष्टपूर्ण था । नारी हेय है, अवश है, उसकी रक्षा करनी चाहिए - यही उस काल की धारणा थी । सौन्दर्य के अलावा अच्छा भोजन पकाना भी नारी का प्रधान गुण समझा जाता था । हेनरी फिल्डिंग के प्रसिद्ध उपन्यास "आन् ओल्ड मान् थाद् विस्डम्" की नायिका लूसी ऐसी भावना को पुष्ट करती है । एक महिला "मेरी वाल्स्टन क्रेफ्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक

1· हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ·23-24

"ए विन्डिकेशन आफ दि राइट्स आव विमेन" (1892) में नारी पर होनेवाले अत्याचारों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया । फलत: चिन्तकों ने नारी की दशा सुधारने का निश्चय किया । न्यूज़ीलैंड में 1893 में तथा दक्षिणी आस्ट्रेलिया में 1894 में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हुआ । इस के बाद युद्धकाल में अस्पतालों और रेडक्रोस केन्द्रों में वे नर्स का काम करने लगीं । शारलट पर्किन्स गिलमैन की प्रसिद्ध पुस्तक "वुमन एण्ड इकनोमिक्स" के अनुसार कार्यनिर्वहण की शक्ति में नारी पुरुष की बराबरी कर सकती है, अत: उसे भी वही शिक्षा देनी चाहिए जो पुरुषों को दी जाती है । उन्नीसवीं सदी में पुरुषों के समान अधिकारों की माँग को बल मिला और फलस्वरूप सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में वह सक्रिय भाग लेने लगी । अच्छी नौकरियाँ उसे मिलने लगीं वह उच्च पद की भी अधिकारिणी हुई । भारतीय नारी को भी इस नवचेतना से स्फूर्ति मिली । सन् 1914 में डॉ॰ ऐनी बेसेंट ने मद्रास में ""भारत जागो" शीर्षक से एक भाषण किया जिसमें भारतीय नारियों से अपनी दासता और अशिक्षा समाप्त करने, बालविवाह न करने तथा निम्न जातियों को सम्मानित स्थान प्रदान करने की अपील की गई । सन् 1917 मई में प्रथम महिलासंघ की स्थापना हुई । "विमेन्स इंड्या असोसियेशन" की अध्यक्षा एनी बेसेंट थीं । इस संस्था ने नारी को अनाचारों और अंध विश्वासों से मुक्त होकर प्रगति के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी । "दी विमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन" की शाखायें जगह जगह खोली गयीं । दि नाशनल लिबरल एसोसिएशन" में वे पुरुष और नारी सदस्य थे जो विशेष रूप से अधिकारी वर्ग से संबंधित थे । "ब्रह्मसमाज" की नारी शाखा, सेवासदन, और "भारतस्त्रीमहामंडल" ने नारी के सुधार में योगदान दिया । दिसंबर 1917 को श्रीमति सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में चौदह महिलाओं का एक प्रतिनिधि मण्डल मद्रास में वाइसराय तथा इंग्लैंड में भारतीय सचिव ई॰एस॰ मांटेग्यु से मिला । उस प्रतिनिधि मंडल ने शिक्षा की ओर अधिक

सुविधाओं, स्वास्थ्य एवं अस्पताल की अच्छी सेवाओं और पुरुषों के समान ही मताधिकार की माँग पेश की । यह मताधिकार के लिए प्रथम सम्मिलित माँग थी । इस माँग की स्वीकृति के फलस्वरूप 1921 में मद्रास विधान परिषद में तथा बिहार परिषद में नारी को मताधिकार प्राप्त हुआ ।

1917 ई० के प्रारंभ से ही स्त्रियों और बच्चों की स्वास्थ्य-रक्षा की समस्या सुलझी जा रही थी । "रेडक्रास" ने इसी प्रकार की एक संस्था "आल इंडिया मेटार्निटी एन्ड चाइल्ड वेलफेयर एसोसिएशन संगठित किया जिस के द्वारा स्त्रियों और बच्चों के स्वास्थ्य सुधार की ओर नारियाँ प्रवृत्त हुईं । रूढिवादी अभिभावकों में भी मानसिक परिवर्तन हुआ । अक्टूबर 1926 में "अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस" का जन्म हुआ । बेथून कालेज, कलकत्ता की एक सभा में बंगाल के शिक्षा इंस्पेक्टर ने पुरुषों के हाथों में महिला शिक्षा का स्वरूप निर्धारित न करने की चेतावनी दी । महात्मागांधी जी ने नारी की जागृति की ओर विशेष ध्यान दिया । पश्चिमी देशों में नारी के उत्थान के लिये जो प्रयत्न किये जा रहे थे, उन का प्रभाव भी भारतीय नारीसमाज पर पड़ा ।

पाश्चात्य शिक्षा के कारण नारी की पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन आया । पुरुषों के साथ नारियाँ भी राजनीतिक और आर्थिक संघर्षों में भाग लेने लगीं । स्वतंत्रता-संग्राम में नारियों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण था । संयुक्त परिवार की प्रणाली और बालविवाह की प्रथा समाप्त हो गई । तो भी जाति प्रथा और पर्दे की प्रथा पूर्ण रूप से समाप्त न हुई । सन् 1935 में भारत के लिए नये विधान की रचना हुई तो स्त्रियों के लिए मताधिकार तथा सुरक्षित सीटों की व्यवस्था की गई । 1937 में "हिन्दू विमेन्स राइट्स प्रोपर्टी एक्ट" के द्वारा विधवा पत्नी को लड़के के बराबर का भाग मिलने की व्यवस्था हुई ।

स्वाधीनता आन्दोलन में ऐनी बेसेंट, सरोजिनी नायडू आदि के नेतृत्व में सभायें हुई थीं और जुलूस निकले थे। इन नारियों ने अपनी सहिष्णुता और त्यागवृत्ति से पुरुषों को प्रेरणा दी। क्रान्तिकारी दल में भी नारियों ने महत्वपूर्ण कार्य किए। गाँधीजी नारियों को उत्तरदायित्व सौंपने के पक्ष में थे, लेकिन कुछ अन्य नेताओं को इस बात में मत भेद था। आज़ादी की लडाई में स्त्रियों का यह सक्रिय सहयोग ऐतिहासिक महत्व रखनेवाला है।

नारी-जागरण के फलस्वरूप सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। सन् 1940 में भारतीय विधान सभाओं में अस्सी महिलायें प्रतिनिधित्व कर रही थीं। श्रीमति ऐनी बेसेंट 1917 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की प्रथम महिला अध्यक्षा थीं। सन् 1928 में सरोजिनी नायडू कांग्रेस की अध्यक्षा निर्वाचित हुई। डॉ॰ मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी भारतीय विधान सभा की प्रथम महिला सदस्या थी। उनका निर्वाचन निर्विरोधकिया गया था। गाँधीजी की गिरफ्तारी पर उन्होंने इस्तीफा भी दिया था। जिससे स्पष्ट है कि नारी सिद्धान्तों के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ को तुच्छ समझती है। बम्बई में श्रीमति नायडू को मेयर पद के लिए आमन्त्रित किया गया। सन् 1928-32 के असहयोग आन्दोलन बन्दी होनेवाली श्रीमति सरोजिनी नायडू प्रथम भारतीय महिला थीं। सन् 1937 में प्रान्तों में कांग्रेस ने सरकार बनाई तो मंत्रि पद का भार भी उनपर पडा। भारत स्वतन्त्रता संग्राम में नारियों ने जो सहयोग दिया, उसके बराबर के उदाहरण इतिहास में विरले ही मिलेगा।

शासन व्यवस्था में परिवर्तन होने के साथ साथ सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में परिवर्तन होता रहता है। इस का प्रभाव नारी जीवन पर भी पड़ता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में आज वह पुरुष में बराबरी कर सकती है। अपनी धैर्य, साहस और सहिष्णुता के कारण समाज में उसने आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया है। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने पर भी उसने पारिवारिक जीवन को टूटने न दिया। सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यों के साथ ही उसने पारिवारिक जीवन का समन्वय कर लिया है।

"जीवन के विविध क्षेत्रों में उसे पुरुष के समान ही उत्कर्ष तथा विकास के अवसर हैं। अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से उसने रूढ़ियों का पुरातन वस्त्र उतार फेंका है। स्वावलम्बन तथा आत्मसम्मान की भावना उस में प्रमुख है। अपने कर्तव्यों से अधिक अपने अधिकारों के प्रति वह जागरूक, सचेत और प्रयत्नशील है। आधुनिक नारी में शिक्षा, चेतनता तथा व्यक्तित्व है।"[1]

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना - भूमिका, पृ.6

दूसरा अध्याय

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी (प्रेमचन्द युग तक)

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी (प्रेमचन्द युग तक)

नव युग में नवचेतना के उदय के साथ साथ नारी के प्रति मनोभाव में परिवर्तन हुआ। महात्मा गांधीजी, एनी बेसेंट, महर्षि कर्वे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन आदि समाज सुधारक नारी सुधार में भी प्रवृत्त हुए। फलतः स्त्री शिक्षा पर ज़ोर दिया गया और विधवाओं के प्रति सहानुभूति दर्शायी गई। पंजाब केसरी लाला लजपतराय ने कहा कि परतंत्र नारी से यथार्थ नर पैदा करने की आशा विफल है। स्वामी विवेकानन्द का मत था कि देश की उन्नति स्त्री जाति की उन्नति पर निर्भर है और भारत में स्त्री जीवन के आदर्श का आरंभ और अंत मातृत्व में है[1]।

---

1. भारत - नारी - विवेकानन्द, पृ.23,26,32.

महर्षि दयानन्द तो मनु के इस कथन की पुष्टि करनेवाले थे कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ।" सती-प्रथा पर्दा-प्रथा, बालविवाह, वृद्धविवाह आदि के विरूद्ध आवाज़ उठाने के साथ साथ महात्मा गाँधीजी ने घोषित किया कि नारी पुरुष की सहगामिनी है[1] । इन सबके कारण नारी में आत्म सम्मान का भाव जाग्रत हुआ ।

अंग्रेज़ों के आधिपत्य के फलस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता और ईसाई धर्म का प्रचार हुआ तो सनातन धर्म की रक्षा के लिए ब्रह्म-समाज, आर्यसमाज, थियोसफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज आदि धार्मिक संस्थाओं का जन्म हुआ । सन् 1857 की क्रांति की असफलता से जनता की स्वातंत्र्येच्छा में कोई कमी नहीं हुई । सन् 1885 में "नाशनल कांग्रेस" की स्थापना हुई । स्वराज्य की प्राप्ति के लिए महात्मा गाँधीजी के नेतृत्व में "सविनय अवज्ञा आन्दोलन" प्रारंभ हुआ । इस आन्दोलन में नारियों ने भी सक्रिय भाग लिया । नारी संबंधी दृष्टिकोण बदला । सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ साथ आधुनिक युग की नारी भी जाग उठी और अनाचारों के विरूद्ध जूझने लगी । अपने आश्रयदाताओं के मनोविनोद के लिए भौतिक प्रेम की वाग्धारा बहानेवाले कवियों को भी सचेत होना पड़ा ।

भारतेन्दु युग की नारी

भारतेन्दुयुग हिन्दी कविता का प्रथम उत्थानकाल है ।

---

1. यंग इंड्या - मो.क. गाँधी, 4,2.1926., 14.10.1926, 15.9.1927 के अंक

"शताब्दियों से भक्ति या श्रृंगार, चुम्बन और आलिंगन, रति और विलास, रोमांच और स्वेद, स्वकीया और परकीया की लड़ियों में जकडी हुई हिन्दी कविता को भारतेन्दु ने सर्वप्रथम विलास-भवन और लाल कुंजों से बाहर लाकर लोकजीवन के राजपथ पर ला खडा कर दिया[1]।" इस काल के कवि देश-प्रेम और मानव प्रेम की ओर भी उन्मुख हो गये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी कृतियों में प्राचीनता और नवीनता का सामंजस्य स्थापित किया। उनकी नारी अपनी विवशता की अभिव्यक्ति अत्यन्त सरलता से करती है[2]। भारतेन्दु के नारी-प्रेम का आदर्श उनकी "चन्द्रावली नाटिका" में मिलता है। उन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। उनकी निःशंक विहार करनेवाली परकीया नायिका को लोकलाज की भी चिंता है[3]। उन्होंने रीतिमुक्त रचनायें भी प्रस्तुत की हैं। उनके "सुन्दरीतिलक" में नायिका के कई भेदोपभेद मिलते हैं। कृष्ण के विरह में चन्द्रवली की दशा का चित्रण हृदयस्पर्शी है[4]। अपने प्रियतम के ध्यान में नायिका इतनी डूबी हुई है कि वह जडवत् बन गई है[5]। वल्लभ कुल सम्प्रदाय के अनुयायी भारतेन्दु राधा-कृष्ण की युगल छवि के उपासक और कृष्ण के सखा तथा राधा रानी के गुलाम थे। विरह-व्यथा से बावली राधा अपने को ही कृष्ण समझने लगती है। "बालबोधिनी" में भारतेन्दु ने अपनीनारी भावना का स्पष्ट उल्लेख किया है।

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ. सुधीर, पृ.26
2. सखी ये नैना बहुत बुरे
   तब सों भए पराए, हरि सों जब सों जाइ जुरे।"
   भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - प्रेममालिका, चन्द्रावली, पृ.70
3. प्रेममाधुरी, पृ.23
4. चन्द्रावली - अंक - 1.
5. वही - अंक - 4

भारतेन्दु युग के कवियों के अग्रणी बाबा सुमेरसिंह साहबज़ादे "सुमेटहरि" की परकीया नायिका में कृष्ण के रूपामृतपान की तीव्र अभिलाषा के कारण बदनामी की भी चिन्ता नहीं[1]। इस युग के, भारतेन्दु को छोड़कर, सब से बड़े कवि माने जानेवाले उपाध्याय श्री· बद्रीनारायण चौधरी "प्रेमघन" के "प्रेमघन-सर्वस्व" में प्राचीन महिलाओं का गुणगान किया गया है। कवि ने धान के खेत में काम करनेवाली भोली-भाली ग्राम वधुओं की "वन में भटकी चकित मृगी सी छवि" दर्शायी है[2]। उनकी मृगलोचन मंजु मयंक मुखी, मृदुहासिनी अहीरनी का चित्र अतीव सुन्दर है[3]। नारी की सामाजिक हीनावस्था[4] का चित्रण करने के साथ साथ अनमेल विवाह और वृद्धविवाह के कारण दुःखी नारी[5] का तथा विधवा नारी के तपस्विनी वेश का हृदयस्पर्शी चित्र उन्होंने खींचा है[6]। हिन्दी के श्रेष्ठ निबंधकार श्री·प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविताओं के द्वारा आह्वान दिया है कि बालविवाह की प्रथा समाप्त करें[7] और स्त्रीगण शिक्षिता तथा पतिव्रता हों[8]। प्रेम और प्रकृति के स्वच्छन्द कवि ठाकुर जगमोहनसिंह ने एक ग्रामकन्या श्यामा की चातुरी का अनूठा चित्र उपस्थित किया है[9]। नारी-सुधार को कीर्ति और सम्पत्ति का

1· सुन्दरी तिलक - 107

2· प्रेमघन - सर्वस्व" जीर्ण जनपद, 535,537

3· प्रेमपीयूषवर्षा

4· प्रेमघन - सर्वस्व [जीर्ण जनपद] - 619-20

5· वही, पृ·547-48

6· वही, पृ·281

7· ग्रंथावली, पृ·114

8· प्रताप-लहरी, पृ·160

9· भारतेन्दु और सहयोगी कवि, पृ·46

आधार माननेवाले राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ने पति के साथ प्रेमालाप करनेवाली सुन्दरी का अंग प्रत्यंग वर्णन किया है[1]। रचनाकाल की दृष्टि से भारतेन्दु मण्डल के अन्तिम कवि श्री॰ बालमुकुन्द गुप्त ने "सभ्य बीबी की चिट्ठी" शीर्षक अपनी कविता में आधुनिक शिक्षित नारी पर और "ज़ोरूदास" शीर्षक कविता के द्वारा पत्नी-भक्त पुरुषों पर तीखा व्यंग्य कसा है। श्री॰ अम्बिका दत्त व्यास, श्री॰राधाचरण गोस्वामी, भारतेन्दु की गायिका और नर्तकी माधवी, भारतेन्दु की आश्रिता मल्लिका, बारवधू हुस्नानागरी, भोपाल की बेगम साहिबा "रूपरतन" आदि भारतेन्दुकालीन अन्य कवियों की रचनायें भी नारी-संबंधी भावना को समझने में उपयोगी हैं।

रीतिकालीन कवि नारी के बाह्य सौन्दर्य के चित्रण में तत्पर थे। पर भारतेन्दु युग के कवियों ने नारी की दीन हीन हालत की ओर सहानुभूति प्रदर्शित की और उनके सुधार की भावना से ओतप्रोत कवितायें रचकर नवीनता का परिचय दिया।

"नीलदेवी" के आमुख में भारतेन्दु ने भारतीय स्त्रियों की दीनदशा पर दुःख और उनको उन्नति के पथ पर लाने की लालसा प्रकट करके नारी सुधार की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की है[2]।

1· लाली जेहि बाला के ········ कोऊ समता को नहीं पावती ।।

(पूर्ण संग्रह)

2· हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डॉ॰रामरतन भटनागर, पृ॰313

द्विवेदीयुग की नारी

द्विवेदीयुग में नारी-संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ । नायिकाभेद की ओर इस युग के कवियों की रुचि न रही । कवियों द्वारा यह अनुभव किया जाने लगा कि नारी के उचित सम्मान के बिना समाज की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति संभव नहीं । अत: नारी समाज के सुधार की भावना से प्रेरित हो कवियों ने अपनी लेखनी उठायी । "श्रृंगारकालीन सामंती विलासिता का उपकरण मानी जानेवाली नारी अब पुरुष की कामवासना की पूर्ति का साधन मात्र न रहकर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में उस की सहकर्मिणी बन गई । इस युग में हम प्रथम बार नारीत्व की उच्च भावना का क्रमश: विकास होता देखते हैं[1] ।" द्विवेदीजी ने अपने समकालीन कवियों को नवीन सुधारों को काव्यविषय बनाने की प्रेरणा दी । द्विवेदीजी आदर्श नारियों के चरित्र चित्रण से भारतीय नारी समाज को सुधारना चाहते थे । बालविधवाओं की दीन हालत से दु:खी होकर उन्होंने विधवा-विवाह को धर्मसंगत बताया[2] ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के एक प्रमुख शिष्य श्री· रामचरित उपाध्याय ने स्त्री को क्रूरता, अविवेक, निर्लज्जता आदि दुर्गुणों का भण्डार बताया[3] । उनके अनुसार स्वच्छन्दकारिणी स्त्री संसार में कभी

1· हिन्दी काव्य में नारी, पृ·513·

2· द्विवेदी काव्य माला - बालविधवा विलाप, पृ·210

3· रामचरित चिन्तामणि - सर्ग - 5, पृ·66-82

यश न पाती[1]। यद्यपि आधुनिक युग के आरंभ में वय:संधि के एकाध उदाहरण प्राप्त होते हैं,[2] तो भी इस युग के कवियों की दृष्टि नायिका की वय:संधि और रूपयौवन की ओर मात्र न जाकर उस में निहित गुणों की ओर भी पड़ी। इस युग के एक श्रेष्ठ कवि पंडित श्रीधर पाठक ने भारतीय नारी में शक्ति के दर्शन किये है[3]। नारी को शक्ति और सौन्दर्य की मूर्ति माननेवाले पं. रामनरेश त्रिपाठी के काव्य "मिलन" की नववधु विजया पति-विरह सहने की शक्ति न रहने पर भी पति के डूब जाने पर कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होती है[4] और लोकसेवा में लग जाती है[5]। "पथिक" में माता की पुत्रवत्सलता दर्शनीय है[6]। उनके "स्वप्न" खण्डकाव्य में वसन्त को पत्नी सुमन देश की संकट दशा की बात कह कर कर्तव्यपथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है[7]। लाला भगवानदीन जी की दृष्टि में नारी अबला नहीं[8]। वह शक्तिस्वरूपा है, कर्तव्यपरायणा है और स्वावलम्बिनी है।

पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" जीने अपने महाकाव्य "प्रियप्रवास" में कृष्ण के विरह से दु:खी राधा, यशोदा और अन्य गोपिकाओं का मार्मिक चित्रण किया है। उनकी राधा एक साधारण प्रेमिका नहीं है।

---

1. रामचरित चिन्तामणि - सर्ग - 11, पृ.151
2. श्रृंगार शतक (वय:संधि) -डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र, पृ.3
3. भारतगीत - आर्यमहिला, पृ.160
4. मिलन - सर्ग - 2
5. वही, सर्ग - 4
6. पथिक - रामनरेश त्रिपाठी, सर्ग - 4
7. स्वप्न - रामनरेश त्रिपाठी, सर्ग - 3
8. वीरपंचरत्न - दीन, पृ.273

वह लोकमंगल के लिए सब कुछ त्यागने को तैयार है । वह कृष्ण को सविधि वरण करना चाहती है[1]। पर यह आशा सफल नहीं होती । कृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात् वह बावली-सी हो जाती है[2]। "राधा एकान्त प्रेमिका नहीं है । उसका हृदय दुःख से अधिक विचलित होकर सम्वेदनशील हो उठा है । इसलिए तो उस में पथ के श्रान्त पथिकों के, लज्जाशील पथिक-महिला के, मधुप-मधुपी के, कलान्ता कृषक ललना के सुख दुःख की भी अनुभूति है[3]।" उसका कृष्णप्रेम विश्वप्रेम में परिणत होता है और वह लोकसेवा में लग जाती है । लावण्यलीलामयी, मृदु भाषिणी, मृगदगी[4] राधा स्त्रीजातिरत्नोपमा[5] और दोनों की बहन तथा अनाथाश्रितों की जननी है[6]। "इस प्रकार "हरिऔध" की राधा न तो सूर की राधा है जो प्रभु की आह्लादिनी शक्ति मानी गयी है और न रीतिकालीन परम्परावाली नायिका राधा ही, किन्तु वह तो अत्यन्त गंभीर, समाजसेविका तथा विश्वहितैषिणा में लीन एक प्रौढा रमणी है । उस ने आजन्म आदर्श नारी के कर्तव्य का निर्वाह किया है । निस्सन्देह "हरिऔध" की राधा जयदेव की विलासिनी, विद्यापति की मुग्धा नायिका, चण्डीप्रसाद की परकीया नायिका, सूरदास की नागरी, नन्ददास की तार्किक अथवा रीतिकाल की उच्छृंखल एवं किशोरी राधा न होकर आधुनिक युग की जागृत एवं प्रबुद्ध नारी है[7]।" अपने प्राणप्यारे के विरह की व्यथा में विलाप करनेवाली यशोदा का मातृरूप भी अविस्मरणीय है[8]।

---

1. प्रियप्रवास - हरिऔध, पृ.4,35
2. वही, पृ.25,17
3. हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ.सुधीन्द्र, पृ.504
4. प्रियप्रवास हरिऔध, पृ.17
5. वही, पृ.17
6. वही, पृ.49
7. आधुनिक कविता का मूल्यांकन - डॉ.इन्द्रनाथ मदान, पृ.20
8. प्रियपति वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है ? ....
   वह हृदय हमारा नेत्रतारा कहाँ है ? - प्रियप्रवास - हरिऔध,पृ.7,11

"हरिऔध" जी के करुणरस प्रधान महाकाव्य "वैदेहीवनवास" में नारी के समाजसेवी और विश्वकल्याणकारी रूप को अधिक महत्त्व दिया गया है।[1] पत्नी-धर्म का पालन ही सब कुछ समझनेवाली "देवी" सीता में राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन युगीन नारी में आवश्यक सभी गुण विद्यमान हैं। "रसकलश" में उन्होंने देशप्रेमिका, जातिप्रेमिका, जन्मभूमि प्रेमिका, धर्मप्रेमिका, लोकसेविका आदि नायिका के नवीन भेद प्रस्तुत किये हैं। रूपवर्णन में नेत्रों की नयी उद्भावना भी बेजोड है।[2] इससे स्पष्ट है कि युगानुसार परिवर्तित नारी भावना के साथ-साथ परम्परागत नारी भावना की ओर भी कवि आकर्षित हुए थे।

खडीबोली कविता के प्रचार के इस काल में भी व्रजभाषा में व्रजपति से संबंधित गीत गानेवाले श्री·सत्यनारायण कविरत्न के "भ्रमरदूत" नामक अपूर्ण काव्य में भ्रमर को दूत बनाकर माता यशोदा द्वारा श्रीकृष्ण को सन्देश भिजवाया गया है। इस में नारी शिक्षा का अनादर करनेवालों को अनाडी कहा गया है।[3] व्रजभाषा की पुरानी परिपाटी के एक प्रतिभा सम्पन्न कवि श्री·जगन्नाथदास "रत्नाकर" जी के "उद्धवशतक" में गोपियों की अधीरता, भावोत्कर्ष, समर्पण भाव तथा विरहाकुल दशा का मार्मिक चित्रण किया है।[4]

1· वैदेही वनवास - हरिऔध, सर्ग - 8

2· रसकलश - हरिऔध, पृ·78

3· नारी शिक्षा अनादरत जे लोग अनारी

xx xx xx

विद्याबल लहि मति परम अबला सबला होई।

भ्रमरदूत - श्री·सत्यनारायण "कविरत्न"

4· उद्धवशतक - रत्नाकर, छन्द - 26,33

नारी के पातिव्रत - धर्म और स्वार्थ-त्याग की झाँकी "उद्धवशतक" में मिलती है । "रत्नाकर जी की रचना "शृंगारलहरी" में नायिका का रूपवर्णन, सद्य: स्नाता का नायक से भेंट होने पर लज्जा-भाव का स्वाभाविक चित्रण आदि अनूठे हैं[1] । उनके ग्रंथ "हरिश्चन्द्र" में रानी शैव्या का त्याग और सेवाकार्य अनुकरणीय हैं और पुत्र की मृत्यु पर उनका करुण-क्रन्दन हृदयविदारक है । व्रजभाषा के वर्तमान साहित्य की सर्वोत्तम कृति "दुलारे दोहावली" में श्री·दुलारेलाल भार्गव ने नायिका के नेत्रों का अनूठा चित्र खींचा है[2] । कलहांतरिता, आगतपतिका, कुलटा आदि नायिका भेद भी दोहों में वर्णित है[3] । व्रजभाषा के अन्य सफल कवि श्री·वियोगी हरि ने अपने "वीरसतसई" में अतीत की वीरांगनाओं का उल्लेख किया है । धर्म की रक्षा के लिए राख होनेवाली पद्मिनी, कुतुबुद्दीन-गज-गंजिनी कर्मदेवी, प्रभु-शिशु की रक्षा के लिए अपने प्रिय लाल को कटानेवाली पन्ना धाय, "खड्ग-धर्म की लाज" रखनेवाली सती दुर्गावती, मुगलों पर सिंहनी के समान झपटनेवाली चाँदबीवी, मदोन्मत्त शत्रु की छाती पर सवार होकर कटार से उस का काम तमाम करनेवाली पंजाब की वीर क्षत्राणी नीलदेवी, प्रत्यक्ष कालिका के समान रणक्षेत्र में कूदकर शत्रु संहार करनेवाली महारानी लक्ष्मीबाई आदि वीरनारियों का यशगान उन्होंने अपने ग्रंथ में किया है[4] "हाटबाट नित बैठि निज जोबन बेचनवारि" वेश्याओं और "असिव्रत पालनहारि" तरुण तपस्विनी विधवाओं को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है[5] । प्रखर प्रतिभा सम्पन्न आशुकवि श्री·नाथूराम शंकर शर्मा की आति,

---

1· शृंगारलहरी - रत्नाकर - छन्द 22,39

2· हरिश्चन्द्र - रत्नाकर - सर्ग 4, पद 44

3· दुलारे दोहावली - दुलारेलाल भार्गव दोहा - 24,62

4· वही, दोहा - 10, 42, 48·

5· वीरसतसई - वियोगी हरि - चौथा शतक दोहा 48,17,20,21,24,25
पाँचवाँ शतक - दोहा - 32

समाज और देश के उत्थान की चिन्ता थी । इसलिए उन्होंने विधवाओं, बालविवाह और वृद्ध विवाह के सम्बन्ध में कई स्थानों पर दुःख प्रकट किया है[1] । भारत की मतिमन्द अनार्या नारी और ~~कर्कशा नारी के चित्र~~ भी "अनुरागरत्न" में उपलब्ध है[2] । "गर्भ-रण्डा-रहस्य" नामक प्रबंध काव्य में उन्होंने विधवाविवाह की समस्या पर प्रकाश डाला है । अहल्या, सीता, गौरी आदि पौराणिक नारियों और कादम्बरी, रंभा, प्रियंवदा आदि सुप्रसिद्ध काव्यनायिकाओं का रूपवर्णन उन्होंने किया है । उनकी नायिका के नेत्रों और मांग का वर्णन बेजोड है[3] । श्री · अनूप शर्मा के शृंगाररस प्रधान महाकाव्य "सिद्धार्थ" में नायिका गोपा की अतिशय सुन्दरता, विरहवेदना, नगरनारियों की समवेदना आदि का मार्मिक चित्रणकिया गया है[4]। मध्य प्रदेश के सुप्रसिद्ध राजनेता और साहित्यिक पं· द्वारिकाप्रसादमिश्र के बृहद् महाकाव्य "कृष्णायन" में राधा के बालसखि रूप, प्रेमिकारूप और प्रेमसाधिका रूप दृष्टव्य हैं । सत्यभामा, रुक्मिणी, मित्रविंदा आदि नारीपात्रों का चित्रण भी इस कृति में हुआ है । इन नारियों के चरित्र में हमें नारीहृदय की आकुलता, दुर्बलता और उदारप्रेम का यथार्थ रूप मिलता है । इस महाकाव्य में कालिन्दी प्रेमसाधिका कृष्णप्रिया है, द्रौपदी आदर्श वधू, आदर्श नारी और स्वाभिमानिनी है, कुन्ती सहनशक्ति की प्रतीक है और सुभद्रा वीरपुत्री, वीरपत्नी, वीरमाता और वीरद्वय भगिनी है[5] । "सर्वस लेय देय इक श्यामु" कहनेवाली यशोदा में

1· अनुराग रत्न - नाथूराम शंकर शर्मा, पृ·219

2· वही, पृ·233,235

3· शंकरसर्वस्व - नाथूराम शंकर शर्मा, पृ·179

4· सिद्धार्थ - अनूपशर्मा, पृ·72,198,200

5· कृष्णायन - पं·द्वारिकाप्रसाद मिश्र, पृ·299, 709

/

ममता और वेदना कूट कूटकर भरी है[1]। बालविवाह, बहुविवाह, स्त्री-अपहरण इत्यादि विषयों की ओर भी कवि ने समाज का ध्यान आकर्षित किया है। एक ओर वसुदेव द्वारा "अबला वध सम पाप न आना" कहलानेवाले कवि ने दूसरी ओर भीष्म द्वारा "मृगया, द्यूत, मद्य अरु नारी।

समय सुयश धन बल अपहारी ।।" कहलवाकर

नारी-निंदा भी की है[2]।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने काव्यजगत् की उपेक्षिताओं को प्रमुख स्थान देकर काव्यरचना करके नारी समाज के प्रति उदारता प्रदर्शित की। काव्यजगत् की उपेक्षिता ऊर्मिला के दो चित्र उनके महाकाव्य साकेत में हैं - एक विरहिणी रमणी का चित्र है जो पार्थिव है और दूसरा चित्र है कल्याणी नारी का जो अपार्थिव है। कवि के अनुसार ऊर्मिला विधि के हाथों ढाली गई सजीव सुवर्ण प्रतिमा है[3]। चौदह वर्ष विरहाग्नि में तपकर उसका प्रेम परम पवित्र बन जाता है। जब पुनर्मिलन होनेवाला था, तब सखी उन्हें सजाने को उद्यत होती है तो वह कहती हैकि मैं वस्त्रालंकार से अपने पति को धोखा देना नहीं चाहती, मैं जैसी हूं, वैसा ही नाथ मुझे पावें[4]। इस नायिका प्रधान महाकाव्य में ऊर्मिला प्रोषितपतिका नायिका है। अवधि शिला का गुरु-भार वहन करती हुई, दृगजल धार बहाती हुई वह सती अपने मानस मन्दिर में पति की प्रतिमा थापकर उस विरह में स्वयं आरती बनी जलती थी[5]।

---

1. कृष्णायन - पं॰द्वारिकाप्रसाद मिश्र, पृ॰112
2. वही, पृ॰18,202
3. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त प्रथम सर्ग, पृ॰27, 28
4. वही, द्वादश सर्ग, पृ॰495
5. वही, नवम सर्ग, पृ॰267,68

उसका प्रत्यक्ष विरहनिवेदन हिन्दी काव्य में अभूतपूर्व है । ऊर्मिला का लोकमंगल कारी रूप भी साकेत में दिखलाई पड़ता है । वह भोग की अपेक्षा त्याग को महत्व देनेवाली है । वह सदा स्वामी की दासी के रूप में रहना चाहती है । वह शासन की नहीं, सेवा की प्यासी है[1] । पति को शक्ति के आघात से संज्ञाहीन जानकर रणोद्यत हो लंकापुरी की ओर जाने को तैयार होनेवाली ऊर्मिला सच्ची क्षत्राणी है । कैकेयी के प्रति भी साकेतकार ने सहानुभूति दर्शायी है । उसके सत् असत् दोनों रूप साकेत में दृष्टिगत होते हैं । अपने पुत्र की भलाई सोचकर ही वह दशरथ से भरत को राज्य और राम को चौदह वर्ष तक वनराज्य देने के वरें मांगती है । बाद में उसे पश्चात्ताप होता है । उस पश्चात्ताप में नारी की महानता प्रदर्शित की गई है[2] । "नारी रूप में कैकेयी का चित्रण सहनशील नारी के रूप में हुआ है । वह पति के कटु वाक्य, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के अपशब्द तो सहन कर लेती है, किन्तु भरत के तिरस्कृत शब्द सुनकर उस का हृदय भी टूट जाता है, उस का बल नष्ट हो जाता है । उसका मातृगर्व पानी पानी हो जाता है और वह उन्मादिनी सी हो जाती है[3] । पति को ही गति मानकर उनके साथ वनगमन करनेवाली सीता नारी समाज केलिए आदर्श है[4] । चित्रकूट मे रहते समय जानकी के हाथों में तकली और चरखा के साथ साथ खुरपी और कुदाली भी देखकर हम समझ लेते हैं कि गुप्तजी ने उसको स्वावलंबिनी साधारण नारी का रूप दिया है । चित्रकूट में वृक्षों को सींचनेवाली सीता माता की अनुपम छवि[5] और माण्डवी की रूप माधुरी[6] का

---

1. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त द्वादश सर्ग, पृ.496
2. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त अष्टम सर्ग, पृ.249
3. साकेत - एक अध्ययन - डॉ.नगेन्द्र, पृ.47
4. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त
5. वही, अष्टम सर्ग, पृ.220-21
6. वही, सर्ग - 11, पृ.391

चित्रण अत्यन्त मनोहारी है । "यशोधरा" चम्पूकाव्य में उन्होंने नारी-चरित्र को उभार दिया है और विभिन्न परिस्थितियों में उसके विविध रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है । नायिका यशोधरा में पत्नी, माता, विदुषी तथा विरहिणी जैसे भिन्न भिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं । उसे इस बात का दुःख है कि पति चोरी-चोरी गये[1] । विरह-वेदना से उन्मत्त होकर वह मृत्यु को सुन्दर मानने लगती है । पर वह मर भी नहीं सकती, क्योंकि अपनी मलिन गूदड़ी के लाल की रक्षा का भार उस पर है[2] । बस, आँचल में दूध और आँखों में पानी भरे, रह जाती है[3] । यशोधरा की यह विवशता प्रत्येक अबला की विवशता है । कर्तव्य पालन के लिए उसे सब कुछ सहकर जीना पड़ता है । ममतामयी माता यशोधरा मानिनी भी है । अतः बुद्ध को स्वयं उसके पास आना पड़ता है और नारी जाति की महिमा की प्रशंसा करनी पाती है[4] । गुप्त जी के मतानुसार पुरुष ने ही नारी को बन्धनों में जकड़ दिया है[5] । "गुप्तजी की मध्यकालीन नारी में आदर्श आवश्यकता से अधिक है । कवि ने, जो गृहस्थ को पृथ्वीतल का सब से ऊँचा स्तूप समझते है, नारी पर गृहस्थ की सारी मान-मर्यादा का भार लाद दिया है ।

---

1. सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात ।
   पर चोरी-चोरी गए यही बड़ा व्याघात ।
   सखि, वे मुझ से कहकर जाते,
   कह, तो क्या मुझ को वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?"
   यशोधरा, पृ.24

2. स्वामी मुझ को मरने का भी दे न गये अधिकार,
   छोड़ गये मुझ पर अपने, उस राहुल का सब भार । यशोधरा, पृ.40

3. अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
   आँचल में है दूध और आँखों में पानी । यशोधरा, पृ.47

4. वही, पृ.146

5. नर-कृत शास्त्रों के सब बन्धन, हैं नारी ही को लेकर
   अपने लिए सभी सुविधायें पहले ही कर बैठे नर ।
   - पंचवटी, पृ.33

इसलिए नारी सब कुछ सहकर भी अपने अश्रुसलिल से कुल के समस्त कलंक को धो डालती है और उसके मन में केवल यही बात अरती है कि चलो, कोई बात नहीं, वह अपने भी तो है, "वे सर्वस्व हमारे भी हैं यही ध्यान में लाती है[1]।" गुप्तजी के अनुसार पुरुषों के कारण ही स्त्रियाँ अविद्या की मूर्ति सी बनी हुई हैं[2]। उनका कहना है कि सिद्धि प्राप्तिकरने के लिए नारियों का आदर आवश्यक है[3]। नारी के कच, कुच, कटाक्षों पर कविता करनेवालों का वे परिहास करते हैं[4]। नर जाति की जननी और शुभ-शान्ति की स्रोतस्विनी नारी जाति की दुर्गति पर उन्हें दुःख है[5]। गुप्तजी ने "जयद्रथ वध" में उत्तरा का पति प्रेम, "शकुन्तला" में शकुन्तला की क्षमाशीलता, "सिद्धराज" में मीनलदे का पुत्र-वात्सल्य और रानकदे की धर्मपरायणता का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया है। "द्वापर" में उपेक्षिता, प्रपीड़ित और निरादृत नारी विधृता, जो पति के सम्मुख प्राण त्याग करती है, विवाहोपरान्त नारी की स्वतंत्रता की सीमा की समस्या समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है[6]। नायिका राधा कृष्ण पर सर्वस्व समर्पण करनेवाली है और चिरविरह को भी ईश्वरीय देन समझकर सहनेवाली है। गुप्तजी के अनुसार सह धर्मिणी के बिना जनसेवा भी अधूरी रह जाती है[7]। "द्वापर" में यशोदा और देवकी मातृहृदय के तथा राधा, कुब्जा एवं गोपिकायें प्रणय-पूर्ण युवती-हृदय के व्यंजक हैं। विधृता नारी जागरण की, देवकी बन्धनमुक्त

---

1. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.547
2. भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, पृ.136
3. वही, पृ.136
4. जय भारत, भविष्यत् खण्ड, पृ. 92
5. वही, वर्तमान खण्ड, पृ.228
6. द्वापर, पृ.23
7. अनघ, पृ.91

भारतमाता की और यशोदा वीरप्रसविनी जननी की प्रतीक है।[1] चैतन्य महाप्रभु की सहधर्मिणी विष्णुप्रिया को नायिका बनाकर गुप्तजी ने "विष्णु प्रिया" नामक नायिका प्रधान खण्ड काव्य लिखा । कन्या के भाग्य के बारे में विष्णुप्रिया और सखी का मत प्रत्येक काल के प्रत्येक देश की कन्या के लिए सच निकलता है[2]। नारी और नर के प्रति समाज के दृष्टिकोण पर तीखा व्यंग्य भी इस में किया गया है[3]। कवि के अनुसार नारी का मूल्य है "दो दो कौर अन्न" और "चार धोतियाँ"[4]। गुप्तजी नारी और पुरुष को समान अधिकार देने के पक्ष में हैं[5]। उनकी नारी अबला होने पर भी सबला है, अत्याचार से जूझनेवाली है । दानव के लिए चण्डिका है[6]।

दमयंती, गार्गी, गांधारी, जानकी आदि विश्रुत नारियों की जन्मभूमि में होने पर भी अविधामूर्ति रहनेवाली नारियों की दुर्गति पर क्षुब्ध होनेवाले[7] कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह जी ने वैवाहिक समस्याओं, विधवाओं के कष्टों, पर्दा-प्रथा के दुष्परिणामों और नारी के पतित माने जानेवाले रूप को एक मानवतावादी दृष्टिकोण से देखा है । स्वयं दु:ख सहकर औरों को सुख देनेवाली पतिता मानी जानेवाली नारियाँ[8] और विचित्र बलिदान करनेवाली देवदासियों के प्रति कवि का करुणापूर्ण दृष्टिकोण है[9]।

---

1. साहित्य सन्देश - सितम्बर 1966 - द्वापर एक मूल्यांकन, पृ.100
2. बाप देख सुन के ही बेटियाँ को देते हैं,
   आगे भाग्य उन का, यही तो एक बात है । - विष्णुप्रिया, पृ.22
3. अबला के भय से भाग गये, वे उस से भी निर्बल निकले ।
   नारी निकले तो असती है, नर यती कहाकर चल निकले । वही,पृ.57
4. वही, पृ.66
5. राजा-प्रजा [प्रथम आवर्त्ति] पृ.34
6. सैरंध्री वचन - जय भारत, पृ.246
7. संचिता - डॉ.गोपालशरण सिंह, पृ.156
8. मानवी [वीरांगना] पृ.66
9. वही, देवदासी, पृ.35

"ठाकुर साहब ने नारी की करुण कथा को अनेक चित्रों में चित्रित किया है । सतयुग की शकुन्तला, त्रेता की सीता, द्वापर की राधा और कलियुग की अनारकली की कथा वर्णित कर उन्होंने नारी-समस्या को सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है[1] ।"

श्री गुरुभक्त सिंह "भक्त" ने "नूरजहाँ" में नारी के विविध रूपों का अंकन किया है । अत्याचार से जूझनेवाली नारी का उज्वल चित्र भी उन्होंने खींचा है[2] । परस्पर प्रेम और सद्भाव पूर्ण व्यवहार के अभाव में शादी को केवल सौदा मात्र माननेवाली है उनकी नारी[3] । प्रेम को खिलवाड समझनेवाली जमीला को प्रस्तुत करके उन्होंने नारी के असद् रूप के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित किया है[4]। उनके प्रबन्धकाव्य "विक्रमादित्य" की नायिका ध्रुवदेवी के प्रभाव से विश्वविजयी घोषित किये जाने पर चन्द्रगुप्त को भी कहना पडा कि नारी अमरलोक की देवी है, उस की थाह लेने में नर अभी तक असमर्थ ही हैं । श्री· सोहनलाल द्विवेदी ने "वासवदत्ता" में पुरुष को अपना यौवन समर्पित करने केलिए तैयार होनेवाली वासवदत्ता और उर्वशी के चित्र प्रस्तुत किये हैं[5] । उनके "कुणाल"[6] में कुणाल की सौतेली माँ का चरित्र इस बात का प्रमाण है कि वासना की कठपुतली नारियाँ स्वयं पतन की ओर जाती है और दूसरों का भी सर्वनाश करने पर तुल जाती हैं । सोहनलाल द्विवेदीजी ने सरदार चूडावत् की नवविवाहिता पत्नी का त्यागोज्वल रूप भी

1· हिन्दुस्थानी - जनवरी 1938, पृ·193

2· नूरजहाँ - सर्ग 4, पृ·32

3· वही, सर्ग 11 - पृ·17

4· वही, सर्ग 7 - पृ·52

5· वासवदत्ता, पृ·3

6· वही, उर्वशी, पृ·15

प्रस्तुत किया है[1]। स्वतंत्रता संग्राम में पुरुषों के साथ भाग लेनेवाले महिलाओं को भी हम द्विवेदी जी की रचना में पाते हैं[2]। अपनी सतीत्वरक्षा के लिए रणचंडी का रूप धारण करनेवाली और अंत में जौहर की चिता में जलकर राख होनेवाली पद्मिनी का चित्रण करके श्री· श्यामनारायण पांडेय ने साबित किया है कि नारी का सौन्दर्य कभी कभी उस के लिए अभिशाप बन जाता है[3]।

संक्षेप में द्विवेदीयुग के हिन्दी कवियों ने अपनी नारी सम्बन्धी रचनाओं के द्वारा नारी में पुन:प्रेरणाशक्ति और उच्चादर्शों की स्थापना कर उसे "रीतिकालीन घोर श्रृंगारिक वीथिकाओं से उबारकर सामाजिक आदर्शों और राष्ट्रीय मान्यताओं के विस्तृत राजमार्ग पर ला खड़ा कर दिया। "फलत: नारी समाज और साहित्य में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगी और उस का कार्यक्षेत्र भी विस्तृत हो गया[4]।"

छायावाद - रहस्यवाद युग की नारी

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, स्थूल दृष्टि और साहित्यिक मान रूढ़िग्रस्त हो गये और नवीन सूक्ष्म सौन्दर्यदर्शिनी दृष्टि का विकास हुआ। कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकता से मुख मोड़ स्वप्नों के संसार में विचरना आरंभ किया और उन की वृत्ति भी अन्तर्मुखी बन गयी[5]।" श्रीमति महादेवी वर्मा का कथन है, "सृष्टि के बाह्याकार पर

1· वासवदत्ता, सरदार कुंडावत्, पृ·24-25

2· भैरवी - दांडी-यात्रा, पृ·72-73

3· जौहर, 28वीं चिनगारी, पृ·215

4· हिन्दी काव्य में नारी, पृ·562

5· वही, पृ·562

इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा । स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है[1] । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो "छायावाद" शब्द का प्रयोग दो अर्थों में मानते हैं एक रहस्यवाद के अर्थ में और दूसरा काव्यशैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में[2] । रीतिकालीन कवियों ने नारी के बाह्य सौन्दर्य का ही वर्णन किया था । लेकिन छायावादी कवियों ने उस के मन और आत्मा के सौन्दर्य को प्रधानता दी । "छायावाद में वर्णित नारी की छवि कोई अस्थि-मांस से निर्मित मानवी की मूर्ति नहीं प्रतीत होती, बल्कि एक अपरूप माया के अवगुंठन से लिपटी, लज्जावती लता-सी अपने आप में सिमटी-सकुची, कोई अदृश्य अस्पृश्य छाया-सी दृष्टि गोचर होती है, जो स्वयं कवि के हृदय में अनुभूति-मात्र सी बनकर रह जाती है[3]। नारी को जितने अधिक पहलुओं में जितने अधिक प्रकार से इस युग में चित्रित किया गया है, सम्भवत: हिन्दी साहित्य के अन्य किसी भी युग में अथवा काल में नहीं किया गया । नारी का सौन्दर्य, नारी का आकर्षक रूप, नारी का प्रेयसी रूप, नारी का ममतापूर्ण माता रूप, नारी का शक्तिमयी कल्याणी रूप, नारी के असत् और अकल्याणकारी रूप, जितने भी नारी रूपों की कल्पना हो सकती थी, छायावादी कवि ने उन सब का चित्रण किया है । उसने अपने आसपास के कण-कण में नारी का आरोप किया और उस से प्रेरणा ग्रहण करने का प्रयास किया । वह नारी के केन्द्रिक सौन्दर्य के प्रति भी आकर्षित हुआ और उस केन्द्रिकता में भी

1· महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ·59-60

2· हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल [पंचम संस्करण] पृ·668

3· अवन्तिका मासिक [काव्यालोचनांक] पृ·213

उसके अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के स्पर्श से प्राण डाल दिए । द्विवेदी साम्राज्य से बहिष्कृत नारी जो अब तक आँखों में सावन - भादों लिए जी रही थी, वही छायावादी कवियों के हृदय की सम्राज्ञी बनी ।[1]"

हिन्दी में छायावाद के चार स्तंभ हैं जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा । "छायावादी कविता में जहाँ स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना गया है, वहाँ यह भी मान लेना चाहिए कि छायावाद नारी की महत्ता को प्रतिपादित करने का परोक्ष तथा अपरोक्ष प्रयास है और इस प्रयास के अगुआ हैं छायावाद के प्रतिष्ठापक श्री॰ जयशंकर प्रसाद, जिन का समस्त साहित्य नारी मनोविज्ञान की कुंजी है । प्रसादजी प्रेम, यौवन, सौन्दर्य के साथ मूलतः नारी आत्मा के कवि हैं। नारी के अन्तर्प्रदेश का जितना सजीव और संश्लिष्ट चित्रण उन्होंने किया है, वैसा इन पिछले चालीस पचास वर्षों के काव्य में पाना कठिन है ।[2]" प्रसादजी नारी की दुरवस्था से क्षुब्ध होकर नारी-स्वातंत्र्य के समर्थक होकर साहित्य क्षेत्र में आये[3] । वे नारी सौन्दर्य पर मुग्ध हैं । उन के अनुसार नारी का सौन्दर्य सूने पतझड में हरियाली ला देता है[4] । "काननकुसुम में उन्होंने रमणी हृदय के अथाह रूप को सिन्धु हृदय के अथाह रूप में देखने का प्रयास किया । इसका विकास "झरना" में है । "आँसू" में उन्होंने नारी सौन्दर्य में स्नेह सौहार्दादि गुणों का समावेश भी किया । "उनका सौन्दर्य बाह्य अवयवों की सीमा लाँघकर हृदयलोक में आलोकित होता है और अंत में आत्मा की दीप्ति बन जाता है जिसके बाहर प्रकाश और भीतर रस है ।[5]" प्रसाद जी ने

1· आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान-डॉ॰रामयतनसिंह "भ्रमर",पृ॰95
2· हिन्दी काव्य में नारी, पृ॰566
3· प्रसाद के नारीचरित्र - डॉ॰देवेश ठाकुर, पृ॰305
4· कामायनी [निर्वेद], पृ॰223
5· विशाल भारत [जुलाई 1950] प्रसाद की सौन्दर्यानुभूति - श्री॰रामसुरेश त्रिपाठी

प्रकृति और नारी में एकरूपता की कल्पना की[1]। नारी का प्रमुख मनोभाव है लज्जा[3]। प्रसादजी ने सलज्ज नारी[2] का और मातृत्व के बोझ से दबी हुई नारी का सौन्दर्य चित्रित किया है। नारी पुरुष को पथभ्रष्ट होने से बचानेवाली है। श्रद्धा के मार्ग-निर्देश से कर्तव्य-पथ पर आये मनु को कहना पड़ा कि

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास
रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के
सुन्दर समतल में[4]।"

युद्ध में शारीरिक सौन्दर्य के साथ साथ लोक कल्याण की भावना भी भरकर कवि ने नारी को पुरुष से कहीं अधिक ऊँचा स्थान प्रदान किया है। श्रद्धा हृदय का प्रतीक है और इडा बुद्धि का। श्रद्धा का मातृत्व भी दर्शनीय है। उसके पुत्र कुमार को देखकर इडा का मातृत्व भी जाग उठता है। "युग की विभिन्न समस्याओं से व्यग्र महाकवि ने कामायनी में युग की प्रमुख समस्या "नारी और जीवन की मुख्य पहेली "पुरुष-नारी" पर बडा सुन्दर मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला है। नारी का मूक रुदन, मूक पीडन स्वत: फूट पड़ा है - 'तुम भूल गये पुरुषत्वमोह में कुछ सत्ता है नारी की[5]।" प्रसाद की नारी मध्य युगीन नारी की भाँति केवल भोग्या नहीं वह पुरुष की सहकर्मिणी और पथ प्रदर्शिका है। वह स्नेहमयी, त्यागमयी, भावमयी और विवेकशील

---

1. कामायनी, पृ.46
2. वही, [वासना], पृ.93
3. वही, [ईर्ष्या], पृ.142
4. वही, [लज्जा], पृ.106
5. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.552

नारी सांसारिक संघर्षों से क्लान्त पुरुष को अपने स्नेह से शीतलता प्रदान करती है, साथ ही साथ उसे नैतिक पतन से बचाती है। प्रसादजी ने पुरुष को जड और नारी को चेतन माना है[1]।

छायावादी कवियों में नारी के श्रृंगारिक चित्रण में अश्लीलता के स्थान पर गंभीरता का समावेश कर सकनेवाले दूसरे युगप्रवर्तक कवि महाप्राण "निराला" है[2]। उन्होंने प्रकृति और नारी में एकात्मकता स्थापित की है[3]। वे प्रकृति के कण-कण में नारी-सौन्दर्य देखते हैं। उनकी दृष्टि में संध्या-सुन्दरी परी है जो दिवसावसान के समय धीरे-धीरे आकाश से उतर रही है[4]। "पंचवटी-प्रसंग" शूर्पणखा का चरित्र एक नवीन दृष्टिकोण से अंकित किया गया है। उस के नेत्रों में वशीकरण, मारण और सम्मोहनकी त्रिवेणी विद्यमान है[5]।" "तुलसीदास" में नारी को ही उन्होंने आत्यन्तिक विजय प्रदान किया है। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोडनेवाली नारी और इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी विधवा नारी कवि की विद्रोह भावना को जगाती हैं और वे पत्थर की कारा तोडने का आह्वान देते हैं।

प्रमुख छायावादी कवि पंतजी ने नारी को विविध रूपों में देखा। उन्होंने कभी नारी के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण किया तो कभी आंतरिक सौन्दर्य का। नारी के प्रति अपार ममता ने कवि को अतिशय

---

1. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.573
2. वही, पृ.573
3. परिमल (जुही की कली), पृ.191
4. वही, पृ.135
5. आधुनिक कविता का मूल्यांकन - डॉ.इन्द्रनाथ मदान, पृ.253

कोमल और लज्जालु बना दिया है[1]।" "चिदंबरा" में श्यामवर्णा" ग्रामयुवति[2]" और स्वस्थ "ग्रामनारी[3]" के चित्र अत्यन्त आकर्षक हैं। उनकी संध्या-नारी रूपसि है[4]। पति की सहचरी न होकर अनुचरी बनी नारी का चित्र भी उन्होंने खींचा है[5]। लोल लहरों का विलास कवि की दृष्टि में मुग्धा की मुस्कान है और उस मुस्कान में वे खो जाते हैं[6]। नारी के मृदुहृदय को वे स्वर्गागार मानते हैं[7]। मज़दूरनी उनके लिए मानवी है, लोकहितकारिणी है[8]। छाया में कवि नारी के विभिन्न रूप देखते हैं और उसके दु:खी रूप से दु:खी हो कवि उसे हृदय से लगाकर शीतलता प्रदान करना चाहते हैं[9]। वे नारी को पूजनीय मानते हैं[10]। उनकी दृष्टि में नारी विलासिता की वस्तु नहीं। पर नारी के प्रति संसार कीमान्यतायें अपनी मान्यताओं के विपरीत देखकर वे कराह उठते हैं - चिरबंदिनी नारी को मुक्त करो[11]।" वे कह उठते हैं -

---

1. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.579
2. चिदंबरा, पृ.67
3. वही, [ग्रामनारी], पृ.69
4. पल्लव, पृ.95
5. युगवाणी [नर की छाया], पृ.60
6. पल्लव - वीचिविलास, पृ.77
7. वही, नारी रूप, पृ.119
8. चिदंबरा - मज़दूरनी के प्रति, पृ.94
9. छाया, पृ.107
10. पल्लव - आँसू, पृ.73
11. चिदंबरा - नारी, पृ.85

"नारी को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करो[1]। उनके अनुसार नारी में नरक भी है और स्वर्ग भी है[2]। पंत जी की नारी स्नेहमयी, मंगलमयी और त्यागमयी है। "देवि, माँ, सहचरी, प्र ाण" इन चार शब्दों में पन्तजी की नारी समाई हुई है।

"आधुनिक मीरा" श्रीमति महादेवी वर्मा परमात्मा और जीवात्मा में पुरुष और नारी का आरोप करती है। "महादेवी वर्मा परमात्मा और जीवात्मा में पुरुष और नारी का आरोप करती हैं। "महादेवी जी रहस्यवादी कवयित्री और नारी होने के नाते नारी के मूल भावों को समझने में अधिक सफल हुई है और उनके चित्रण में अधिक स्वाभाविकता ला सकी हैं। उनकी आत्मा चिरन्तन सुहागिनी रूप में प्रस्तुत हुई है[3]।" विरह और वेदना की यह गायिका प्रियतम को अपने में ही पाती है[4]। उन्हें विरह भी मिलन के समान मधुर है। "महादेवी की आत्मा सच्चे रूप में नारी बनकर "नीर भरी दुःख की बदली" के समान बनने और मिटने की क्रिया चलाती रहती है[5]।" "छायावाद के वसन्तवन की सब से मधुर, भाव - मुखर पिकी महादेवीजी ने नारी में विविध रूपों का आरोप कर उस की महानता में अस्थिरता नहीं आने दी। उनके काव्य में विश्व-नारी के अतृप्त प्रेम, अविकसित रागभावना की विशुद्ध हृदयानुभूति है। उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी तथा वैयक्तिक ही है[6]।"

---

1. चिदंबरा - नारी, पृ.85
2. ग्राम्या (स्त्री), पृ.82
3. सान्ध्यगीत - महादेवी वर्मा, पृ.51
4. दीपशिखा, पृ.55
5. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.589
6. महादेवी का काव्य - पं.सुमित्रानन्दन पंत
   सम्पादक डॉ. इन्द्रनाथ मदान

छायावादी कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण नवीन है। वह केवल भोग्या नहीं, मात्र आदर्शकृती भी नहीं। "छायावादयुग की नारी मानव की चिरसंगिनी, नवीन उत्साह, धैर्य और आशा की ओर प्रेरित करनेवाली वास्तविक मानवी है[1]।" पन्तजी ने जिन रूपों में उसे देखा है, उन्हीं रूपों में अन्य छायावादी कवियों ने भी उसे देखा है[2]।

प्रगतिशील - प्रयोगवादी युग की नारी

"जिस प्रकार द्विवेदीयुगीन स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह के कारण "छायावाद" का जन्म हुआ, उसी प्रकार छायावादी सूक्ष्म के प्रति स्थूल ने विद्रोह किया और प्रतिक्रिया स्वरूप "प्रगतिवाद" का उद्भव हुआ। इस परिवर्तन के युग को पहले प्रगति-युग कहा गया, किन्तु जब प्रगतिशीलता मात्र रोटी-कपडे तथा राजनैतिक वाद-विशेष की प्रतिनिधि बन गई तो कविता में पुन: क्रांति हुई और उस के निश्चित स्वरूप, शैली, विषय आदि को लेकर नवीन प्रयोग होने लगे[3]।" इस प्रकार प्रयोगवाद का उद्भव हुआ। प्रगतिवादी कवि नारी को शोषितों में प्रमुख मानते हैं। नर उसके शोषक हैं। नारी को विलास की सामग्री माननेवाले सामन्ती आदर्शों का वे विरोध करते हैं। कविवर पन्तजी के अनुसार सामन्तयुग की नारी नर की छाया मात्र रही है[4]। "पंतजी ने इसी भावना को लेकर "युगवाणी" में ऐसी नारी की

---

1. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.592
2. पल्लव - सुमित्रानन्दन पंत
3. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.592
4. आधुनिक कवि - पर्यालोचन, पृ.23

सृष्टि की है जो जीवन समुद्र की उत्ताल तरंगों में भी अपने पैर जमा सके, आर्थिक विषमताओं एवं वैयक्तिक कुण्ठाओं में पुरुष की सहचरी बनकर उसे सहारा दे सके और मात्र अबला न रहकर सबला भी बन सके[1]।"

श्री· हरिकृष्णप्रेमी जी की रचनाओं में छायावाद, निराशावाद और प्रगतिवाद के दर्शन होते हैं। उनकी दृष्टि में नारी महिमामयी, गौरवमयी और अंधकारपूर्ण जगत में पथ-प्रदर्शन करनेवाली ज्योति की साकार प्रतिमा है। विधाता ने उस की रचना करके अपना ही स्वरूप विस्तार किया है[2]। उसके दर्शन से सारे द्वन्द्व मिट जाते हैं[3]। उसका कोमल हृदय मधुर भावों का स्वर्गागार है[4]। वह शक्तिस्वरूपा नारी संकटग्रस्त जग का सहारा है[5]। जब वह भीषण रूप धारण करती है तो विश्व काँप उठता है[6]।

श्री· सियारामशरण गुप्तजी के "विषाद" में दृष्टव्य करुणा व्यक्तिगत है तो आर्द्रा" में सामाजिक और मानवीय हो जाती है। "एक फूल की चाह" शीर्षक कविता में एक अछूत कन्या की कामना-पूर्ति न होने पर और उसकी अकाल मृत्यु होने पर उसके पिता के भग्नहृदय की झांकी दर्शनीय है[7]। पुत्री, माता, बहन, पत्नी आदि नारी के विविध रूपों का चित्रण सियारामशरण गुप्त जी ने किया है। पर वे रति की आलम्बन प्रकृत नारी के रूप तथा मन का उद्घाटन नहीं कर सके हैं।

1· हिन्दी काव्य में नारी, पृ·594

2· जादूगरनी - प्रेमी, पृ·3

3· वही, पृ·19

4· चाँद - नवम्बर 1934, नारी-गीत, उत्तमचन्द श्रीवास्तव

5· जादूगरनी - प्रेमी, पृ·85 और 91

6· वही, पृ·66

7· आर्द्रा (एक फूल की चाह) - श्री सियारामशरण गुप्त

डॉ॰ रामकुमारवर्मा ने नारी में सुख-सुगन्धि, रूप और प्रगतिशीलता के दर्शन किये हैं । छायावादी कवि के रूप में वे रजनीबाला से पूछते हैं, ये तारोंवाले गजरे तुम कहाँ बेचने ले जाती हो?[1] उन के अनुसार नारी अंधकारमय जगत में प्रकाश लानेवाली है[2] और आवश्यकता पडने पर रणक्षेत्र में कूद पडनेवाली है[3] । "एकलव्य" में मातृहृदय की वेदना का मार्मिक चित्रण है[4] । द्रोणाचार्य से अपने नेत्र ले लेने की विनती में वेदना के साथ साथ व्यंग्य भी छिपा हुआ है[5] ।

श्री॰ माखनलाल चतुर्वेदी "भारतीय आत्मा" की रचनाओं में यत्र-तत्र नारी चित्रण के दर्शन होते हैं । उनकी नारी देश के लिए मर मिटने को तैयार है[6] । उनकी वीरांगना का मत है, पुरुष प्रलयंकर शंकर है तो नारी दुर्गा[7] ।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने नारी के प्रेयसी पत्नी और मातृरूप को स्थान दिया है । वैभव और विलास के उपकरणों से सुसज्जित दिल्ली उनकी दृष्टि में परकीया है[8] । उनके मतानुसार नारी प्रेम केलिए जीती-मरती है । रति, राधा, पार्वती, सीता, द्रौपदी, यशोधरा, कस्तूरबा आदि आदिकाल से अब तक की सभी शक्तियों के दर्शन उन्हें हुए हैं । राधा को माता माननेवाले कर्ण से कुन्ती का कथन अबला की दीन-दशा का

---

1. आधुनिक कवि - 3 - अंजलि, पृ॰96
2. रूप-राशि - श्री॰वर्मा, पृ॰4
3. चित्तौड की चिता, पृ॰85
4. एकलव्य - अष्टमसर्ग, पृ॰148
5. एकलव्य - पृ॰304
6. हिमकिरीटिनी, पृ॰30
7. वही [सिपाहिनी], पृ॰139
8. दिनकर के काव्य - श्री॰लालधर त्रिपाठी प्रवासी, पृ॰64

परिचायक है[1]। रति की साकार प्रतिमा, अनुपम सुन्दरी अपसरा उर्वशी सनातन नारी का प्रतीक है, पुरूरवा की महारानी औशीनरी असहाय आदर्श गृहिणी का प्रतीक है और च्यवनपत्नी सुकन्या आदर्श पतिव्रता नारी का प्रतीक है। च्यवन की दृष्टि में नारी एक सेतु है[2]। दिनकरजी की रचनाओं में नारी के अंगों के प्रति अस्वस्थ आकर्षण कहीं भी नहीं।

देशवासियों में राष्ट्रप्रेम और बलिदान की भावना जागृत करनेवाली श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने मर्दानी झाँसी की रानी की वीरगाथा से निर्जीवों में भी प्राण फूंक दिये[3]। प्रेम और वात्सल्य की साकार प्रतिमा नारी के सर्वस्व-समर्पण का भाव उनकी कविता में दर्शनीय है[4]। पतिताओं के प्रति भी सहानुभूति दर्शानेवाली इस कवयित्री को इस बात पर दुःख है कि नारी के नित्य नूतन श्रृंगार को संसार देखता है, पर उसके हृदय में छिपे हाहाकार को कोई नहीं सुनता।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध हालावादी कवि डा; हरिवंशराय बच्चन को नारी "मधुबाला" के रूप में और उसका यौवन "मधुशाला" के रूप में दिखाई देता है[5]। उनकी दृष्टि में नारी मादकता की सजीव मूर्ति है जो संसार के ताप-तप्त मनुष्यों की व्यथाओं को प्रणय के मधुदान से शान्त कर देती है। इसी मधु का स्वाद लेने के लिए संसार हलाहल भी पी जाता है[6]।

---

1. रश्मिरथी, पृ.70
2. उर्वशी, पृ.117
3. झाँसी की रानी - सुभद्राकुमारी चौहान, पृ.64
4. मुकुल, पृ.45
5. मधुशाला, पृ.66
6. हलाहल - बच्चन, पृ.1

"नागिन" शीर्षक कविता में उन्होंने नारी को पुरुष को मन्त्र-मुग्ध कर डसनेवाली नागिन कहा है ।

हिन्दी के एक सफल प्रगतिवादी कवि श्री• भगवतीचरण वर्मा के अनुसार पुरुष के जीवन में नारी असफलता के पट पर अंकित आशा की लेखा के समान है[1]। जीवन के मौन रहस्यों की सुलझी हुई कहानी है[2] और नारी का हृदय अनुराग का अक्षय भंडार है तथा पुरुष के जीवन की निधि है[3]। "नववधु के प्रति उत्सुकता होने पर भी वे नारी की मांसलता में खोये नहीं रहते ।

नारी-प्रेम-संबंधी कविताओं केलिए विख्यात पण्डित नरेन्द्रशर्मा के प्रारंभिक श्रृंगारी रचनाओं में ऐन्द्रिकता और स्थूलता की अधिकता पायी जाती है[4]। कुछ स्थलों पर वे प्रकृति में प्रिया के रूप देखते हैं[5]। उनके अनुसार द्रौपदी पंचतत्वों की जीवनी शक्ति है[6]। वे नारी के अश्रुबिन्दु में प्रलय का पारावार देखते हैं[7]।

श्री• रामेश्वर शुक्ल अंचल की प्रारंभिक रचनाओं में नारी का वासनात्मक रूप अधिक पाया जाता है[8]। वासना के वेग में कवि ने

1• प्रेमसंगीत, पृ•18

2• वही, पृ•29

3• मधुकण - स्वागत, पृ•38

4• प्रभातफेरी - नरेन्द्रशर्मा, पृ•79

5• मिट्टी और फूल, पृ•64

6• द्रौपदी, पृ•12

7• वही, पृ•51

8• मधूलिका - वेणी - अंचल, पृ•16

निरंकुश हो अपनी प्रारंभिक रचनाओं में स्पष्ट ही कह दिया है - एक वासना ही मुखरित है अतल वितल में प्रबल प्रिये ।" तथा "मैं अर्थ बताता द्रोह भरे जीवन का, मैं नग्न वासना को गाता उच्छृंखल[1] ।" उनकी कुछ कविताओं में नारी-शोषण के भाव भी दृष्टिगत होते हैं[2] । वेश्याओं की हीन दशा पर दुःखी कवि का कथन है कि वे एक दिन ज्वालामुखी उगलेंगी[3] । "यौवन के उद्दाम खेल में निरत कवि "अंचल" भी सामाजिक भावनाओं के प्रवाह में अपनी वासना का कीचड धो सकने में समर्थ हुए हैं[4] ।" नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण ही बदला[5] ।"

श्री· बालकृष्णशर्मा नवीन के गीत संग्रह "कुंकुम" में कवि की प्रेयसी "नयनों की चोट देकर ओट" हो जाती है । उनकी नायिका प्रिय के समीप पहुँचने के लिए अत्यधिक आतुरता दिखाती है[6] । प्रतीक्षा मग में दीपक लिए अपलक नेत्रों से प्रिय की बाट जोहनेवाली उर्मिला की विरहदशा का मार्मिक चित्रण उन्होंने किया है[7] । "नर यदि खर दोपहरी तो नारी है शीतल छाया" कहकर उन्होंने नारी की महानता ही प्रदर्शित की है[8] । नवीनजीके स्फुट दोहों में शृंगार की रीतिकालीन छटा दिखाई देती है[9] ।

1· हिन्दी काव्यधारा में प्रेमप्रवाह - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ·266

2· किरणवेला, पृ·125

3· वही, पृ·60

4· हिन्दी काव्य में नारी, पृ·618

5· काव्य धारा - 1955

6· क्वासि {डोलेवाली} - नवीन, पृ·47

7· उर्मिला - श्री·नवीन - सर्ग - 4, पृ·387

8· वही - सर्ग - 6, पृ·612

9· नवीन और उनका काव्य, पृ·229

"प्रगतिशील कवियों की रचनाओं में युग-युग से पीड़ित और शोषित नारी के प्रति पर्याप्त सहानुभूति व्यक्त की गई और साथ ही उसे स्वतन्त्र अस्तित्व के विकास के लिए प्रेरित भी किया गया[1]।"

हिन्दी में प्रयोगवाद नाम के चलने का श्रेय "तारसप्तक" (सन् 1943) के सम्पादकीय और कुछ अन्य व्यक्तियों को है[2]। अज्ञेय जी ने इस नामकरण का विरोध किया था[3]। सन् 1954 से डॉ॰ जगदीशगुप्त और श्री॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रयोगवादी कविताओं का एक अर्द्ध वार्षिक संग्रह "नयी कविता" नाम से निकलने लगा। इस कारण भी प्रयोगवादी कविताएँ अब "नयी कविता" नाम से पुकारी जाने लगी है[4]।"

अतियथार्थवादी अथवा प्रयोगवादी अथवा नई कविता के प्रवर्तक श्री॰सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" जी "नारीमनोविज्ञान का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि पुरुष और स्त्री का संबंध पति और पत्नी का नहीं, चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का संबंध अनिवार्यतः एक गतिशील संबंध है[5]।" अपनी सहज प्रवृत्तियों से युक्त नारी अच्छी है अथवा घृणास्पद, सत् है अथवा असत्, इसे कवि नहीं कहना चाहते[6]। अपने को अबला का सहायक करनेवाला घमंडी पुरुष[7] फिर उसे अनन्तप्रणयिनी मानकर उसके

---

1. हिन्दी काव्य में नारी, पृ॰622
2. हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ - प्रयोगवाद - डॉ॰नामवरसिंह, पृ॰43
3. दूसरा तारसप्तक - सम्पादक अज्ञेय, पृ॰6
4. हिन्दी काव्य में नारी, पृ॰622
5. वही, पृ॰623
6. वही, पृ॰623
7. चिन्ता (विश्वप्रिया) - अज्ञेय, पृ॰20

सामने भिक्षुक बन जाता है[1] और दूसरे क्षण उसके अभिमान को तोड़ने का दंभ प्रकट करता है[2]। तथा पुन: पश्चात्ताप प्रकट करता है[3]। नारी को "छ्लनामयी प्रतिमा" माननेवाला पुरुष ही दर्प और अभिमान से रहित होने पर उसे प्रकाशरेखा मानता है[4]। "अज्ञेय ने पुरुष को आराध्य देव के रूप में चित्रित किया है और नारी को उनकी उपासिका के रूप में। पुरुष को उन्होंने विजयी माना है और नारी को विजित, पुरुष दानी और नारी दान स्वीकार करनेवाली। "विश्वप्रिया" के गीतों में उन्होंने नारी को तितली, छ्लनामयी प्रतिमा, छलना, पंक का जन्तु, प्रकाण्ड निर्लज्जता कहकर नारी को हेय ठहराया है और पुरुष को नारी से ऊंचा माना है[5]।" रतिकार्य में प्रस्तुत विवस्त्रा नारी का चित्र भी अज्ञेयजी ने खींचा है[6]। इस प्रकार अज्ञेय ने मनोविज्ञान के आधा पर पुरुष और नारी के विचारों का स्पष्ट विश्लेषण प्रस्तुत किया है। नारी पुरुष के आसपास सप्तपर्णी की छाया की भांति छायी रहती है। पुरुष इसी सप्तपर्णी की छाया में विश्राम का अनुभव करता है[7]।" यद्यपि आज के प्रगतिवाद ने नारी को यौन स्वतंत्रता प्रदान कर दी है किन्तु उसकी आड में उसे नग्न किया जा रहा है। जिस छायावाद में कवियों ने नारी के अंग प्रत्यंग को वासना की आधार माना प्रगतिवाद में वही नारी रीतिकालीन नारी है की तरह व्यक्त की जा रही है[8]।"

---

1. चिन्ता, पृ.36
2. वही, पृ.48
3. वही, पृ.61
4. वही [विश्वप्रिया] -अज्ञेय, पृ.98
5. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.624-625
6. चिन्ता, अज्ञेय, पृ.119
7. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.615
8. बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य - डॉ.प्रतिपालसिंह, पृ.82

श्री· आरसीप्रसाद सिंह की रचना "नई दिशा" में अपने पौरुष पर गर्व करनेवाला पुरुष नारी से पूछता है, हे सुन्दरि, किसने कहा कि मैं तुमको प्यार करता हूँ ?[1] कवि की दृष्टि में नारी काली नागिन और भूखी मायाविनी वाघिन है[2]। लेकिन "पूनो" और "माघ शुक्ला त्रयोदशी में कवि का दृष्टिकोण बदल जाता है[3]। नारी को वे विप्लववादिनी के रूप में देखते हैं[4]। नारी का यह उग्र रूप देखकर कवि पुकार उठते हैं, हे पिपासिते, तू दुष्ट दुराचारियों के उष्ण रक्त पीकर क्यों अपनी प्यास नहीं बुझाती[5] होना बन्द करके कुछ कर दिखाने का उद्बोधन भी वे नारी को देते हैं[6]।

धर्मवीर भारती के "ठण्डालोहा" में नारी में प्रेम में फँसे रहने की माया का चित्रण किया गया है। नारी के उदास चेहरे को वे सुन्दर मानते हैं[7]। "उनकी नारी में आत्मविश्वास है प्रेम का। वह मानती है कि उस की आत्मा में यदि पुरुष का स्नेह संबल है तो वह अंतिम साँसों तक जीवन से हार नहीं मानेगी। कवि भी नारी के इस विश्वास पर अपना प्यार टिकाकर "घबराहट की शाम" में सब काम-काज छोड़कर नारी से अपने पास बैठे रहने की इच्छा प्रकट करता है। किन्तु इस प्रेम-प्यार की दुनिया में खोये रहने पर अचानक कवि नारी में अंधकार के कुहासे की कल्पना करता है। वह नारी के इस कुहासे-परिपूर्ण घुटन भरे प्यार से निकलकर भागना चाहता है, पर भाग नहीं पाता। तब वह उस अँधियारे को भी सहर्ष स्वीकार करता है।

1· नई दिशा - किसने कहा कि सुन्दरि तुमको, पृ·8
2· नई दिशा, पृ·68-69
3· वही, पूनो, पृ·18-19
4· वही, पृ·129
5· संचलिता {कपालिका}, पृ·127
6· संचलिता {अग्रदूत}, पृ·176
7· ठण्डा लोहा, पृ·15

उस में प्रकाश की कल्पना करता है[1]।"

आज के कवियों को नारी के प्रेम सूत्र में बँध रहने का अवकाश नहीं है। उनके अनुसार नारी पुरुष को कर्म पथ पर अग्रसर होने देनेवाली और छल का पर्याय है[2]। आज के कवि को नारी सौन्दर्य अस्पष्ट की मरीचिका-सी दीख पड़ती है[3]। वे नारी के मातृरूप की कल्पना भी करते हैं[4]। शोषित नारी के प्रति वे हमदर्दी प्रकट करते हैं[5]। उनके अनुसार नारी छन्दों की आदि प्रेरणा और प्रथम श्लोक की पृथुल वेदना है[6]।

इस प्रकार भारतेन्दु युग से नयी कविता के युग तक नारी भावना में विकास और ह्रास दृष्टव्य हैं। कभी उस का वासनात्मक रूप उभर आता है तो कभी क्रान्तिकारी रूप।

नयी कविता के "वाद" के बाहर के कुछ कवियों की नारी भावना भी उल्लेखनीय है। श्री· रामवृक्ष बेनीपुरी की "नई नारी" के घूँघट को उलट दिया है, पर्दे को फाड फेंका है और प्राचीरों को ध्वस्त डाला है[7]। श्रीमती गंगारानी वर्मा नारी समाज की ओर से पुरुषों को

1· हिन्दी काव्य में नारी, पृ·628
2· मंजीर [प्रेम से पहले], गिरिजाकुमार माथुर, पृ·60
3· नयी कविता - श्री·कुँवर नारायन [तुम नहीं], पृ·36
4· नयी कविता - मृत आत्मा की वीसयत - श्री·लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ·62
5· हँस [जुलाई 1947 - मुक्तिबोध
6· तारसप्तक - प्रभाकर माचवे, पृ·53
7· नई नारी - श्री·रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ·9

मोहनिद्रा त्यागने का आवाहन कर रही है और पुरुषोत्तमकुमार अपनी "आधुनिक शकुन्तला" में एक परित्यक्त नारी की वास्तविक वेदना को व्यक्त कर रहे हैं[1]।" हिन्दी के हास्य कवि पद्मश्री गोपाल प्रसाद ने एक नवीन वाद "पत्नीवाद" और एक नवीनरस "परिवाररस" की स्थापना की है। पत्नीपीड़ित पतियों का भी चित्र उन्होंने खींचा है[2]। हाथ रस के लोकप्रिय हास्यकवि "काका हाथरसी" अंग्रेज़ी शिक्षा से प्रभावित भारतीय युवतियों के[3] मोटी पत्नी[4] के और स्वतंत्र पत्नी[5] के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। उनके अनुसार चार प्रकार की नायिकायें हैं - तुष्टा, रुष्टा, दुष्टा और पुष्टा[6]।

"रीतिकालीन जिस नारी के "काननचारी नैन मृग नागर नरन शिकार थे, वे अब अपने कटाक्ष की कटारी से कुटिलों का शिकार करनेवाले बन गये हैं। जिस नारी के "आनन ओप उसास से, चहुंदिसि पूनो" ही रहती थी, उसी तरुणी का तेज तरणि से भी अधिक तेज़वान हो गया है[7]।"

नाटक

काव्य के दो भेद माने गये हैं - दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य की परम्परा हमें वैदिक युग से मिलती है। नाटक दृश्यकाव्य है।

---

1. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.634
2. धर्मयुग [6 फरवरी, 1966] - कविवर व्यास और हास्य - विजयेन्द्र स्नातक
3. काका की फुलझड़ियाँ, पृ.51
4. वही, मोटी पत्नी, पृ.88
5. वही, स्वतंत्र पत्नी, पृ.90
6. काकदूत - हाथरसी, पृ.69
7. हिन्दी काव्य में नारी, पृ.641

अन्य कोई भी साहित्यिक विधा इतने प्रत्यक्ष रूप से जनसामान्य से जुड़ी हुई नहीं है जितनी कि नाटक ।

नाटकों में स्त्री-पात्र

भारतीय आचार्यों ने नायिकाओं की विभिन्न कोटियाँ निर्धारित की हैं । नायक की पत्नी या प्रेमिका ही नाटक में नायिका के लिए उपयुक्त है । नाट्याचार्यों ने विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है । नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि के अनुसार नायिका के चार भेद हैं - दिव्या, नृपतिनी, कुलस्त्री और गणिका[1] । भावप्रकाशकार शारदातनय राजा की विभिन्न पत्नियों तथा प्रेमिकाओं को महिषी, महादेवी, देवी, सहभोगिनी, आश्रिता, नाटकीया तथा कामुका कहते हैं[2] ।

"दशरूपक" में नायिका भेद की प्रसिद्ध शृंखला है । इस में तीन प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख है - स्वकीया या स्वीया, परकीया या अन्या और गणिका या साधारण स्त्री । धनंजय ने स्वकीया का लक्षण यों बताया है - उत्तम चरित्रवाली, पतिव्रता, महान अन्तःकरणवाली, लज्जायुक्त एवं पति के प्रति अपने व्यवहार में कुशल[3] । स्वकीया तीन प्रकार की है - मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा[4] । मुग्धा के चार प्रकार हैं - वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा और कोपमृदु[5] । मध्या के तीन भेद हैं - यौवनवती,

---

1· रूपक - रहस्य, पृ·89
2· अभिनव नाट्यशास्त्र में उल्लिखित शारदातनय का मत, पृ·198
3· हिन्दी दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृ·98
4· वही
5· वही, पृ·99

कामवती और मोहन्त सुरक्षा[1]। मध्या नायिका की तीन कोटियाँ भी निर्धारित की गयी हैं - धीरा, अधीरा और धीराधीरा। प्रगल्भा के तीन भेद हैं - यौवनांधा, स्मरोन्मत्ता और रतिप्रगल्भा[2]। प्रगल्भा की अन्य तीन कोटियाँ हैं - धीरा, अधीरा और धीराधीरा। तीन मध्या और तीन प्रगल्भा के ज्येष्ठा, कनिष्ठा दो-दो भेद भी हैं। इस प्रकार स्वकीया नायिका के बारह भेदोपभेद हैं। परकीया नायिका दो प्रकार की है - अविवाहित कन्या और किसी की परिणीता स्त्री अथवा अन्योढा। गणिका की विशेषताएँ हैं - प्रगल्भता, धूर्तता और कला की भिज्ञता। इनके अतिरिक्त अवस्थाभेद के कारण आठ प्रकार की नायिकायें हैं - स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खण्डिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका और अभिसारिका[3]।

उपर्युक्त सारे भेद-प्रभेदों पर दृष्टि डालने से हम समझ सकते हैं कि नायिका की कल्पना नायक की प्रेम या कामसंबंधी चेष्टाओं तथा सामाजिकों की शृंगारिक प्रवृत्ति पर आधारित है, क्योंकि अधिकांश नायिकायें अपने आंतरिक प्रेम के द्वारा संचालित होती हैं। संस्कृत नाटकों में नायक को प्रेरणा देकर कर्तव्यपथ पर चलानेवाली नायिकायें भी दृष्टव्य हैं, पर अधिकांश नायिकायें या तो पति या प्रेमी के साथ सुख-भोग करती हैं या विरहाग्नि में जलती हैं। किसी का पति दूरदेश गया होता है तो किसी को पति या प्रेमी से मिलने में अनेक बाधायें होती हैं। इसी प्रकार के प्रतिबंधों के कारण उन नायिकाओं की प्रेम-व्यथा अत्यधिक तीव्र हो जाती है। इसे दूर करने केलिए भारतीय आचार्यों ने नायिका के कुछ सहायक पात्रों का उल्लेख किया है। दासी, दूती, सखी, नीचजाति की स्त्रियाँ, प्रतिवेशिका, लिंगिनी, शिल्पिनी

---

1. हिन्दी दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृ. 102
2. वही, पृ. 106
3. वही, पृ. 163

आदि ऐसे सहायक पात्रों के अंतर्गत आती हैं[1]।

किसी भी नाटक में प्रधान रस के आलम्बन के रूप में कन्या नायिका का वर्णन तो किया जा सकता है । अन्योढा नायिका का नहीं[2]।

जहाँ नाटक का नायक राजा या कोई दिव्य पात्र हो, वहाँ गणिका का वर्णन नहीं होना चाहिए । उस को रूपक के अन्य प्रकारों में नायक से अनुरक्त चित्रित किया जा सकता है, परन्तु प्रहसन में ऐसा विधान नहीं होना चाहिए[3]। सन्यासिनियों, महादेवी, मंत्री की पुत्री तथा वेश्या के लिए कहीं कहीं संस्कृत में वार्तालाप का विधान हो सकता है[4]।

हिन्दी में नाटक-साहित्य

हिन्दी नाटक को साहित्यिक भूमिका प्रदान करने का सर्वप्रथम प्रयास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया । उसके पूर्व साहित्यिक नाटकों का अभाव था । भारतेन्दु ने स्वयं नाटक लिखे और अपने सहयोगियों को लिखने की प्रेरणा दी । साथ ही साथ उन्होंने रंगमंच की भी नींव डाली । भारतेन्दु द्वारा स्थापित नाटक और रंगमंच की परम्परा को प्रसाद ने नया जीवन और नयी दिशा प्रदान की । हिन्दी नाटक तीन युगों में विभक्त हैं - भारतेन्दुयुग, प्रसादयुग और प्रसादोत्तर युग । श्री• जयनाथ "नलिन" के शब्दों में "नवजागरण के मंगल प्रभात में भारतेन्दु की प्रतिभा किरण प्रकाश का सन्देश देकर

1• हिन्दी दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृ•120

2• वही, पृ•112

3• वही, पृ•143

4• वही, पृ•144

असमय में विलीन हो गयी । साहित्य में फिर शिथिलता और जड़ता का अंधकार छा गया । अनेक साहित्य स्रष्टा अपनी प्रतिभा से कुछ न कुछ प्रकाश प्रदान करते ही रहे । जागरण की गोद में प्रसादजी अलौकिक प्रतिभा लिये दिव्य प्रकाश पिण्ड के समान प्रकट हुए । प्रसाद ने साहित्य के हर क्षेत्र के सुदूर कोने तक को प्रकाशित किया । उनका महान व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में वरदान के समान उदित हुआ । प्रसादजी भारतीय सांस्कृतिक जागरण के देवदूत थे । उनके व्यक्तित्व में बौद्धों की करुणा, आर्यों का आनन्दवाद और ब्राह्मणों का तेज था ।"

हिन्दी के कुछ प्रमुख नाटककारों के नाटकों में स्त्री-पात्र

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार स्व.जयशंकर प्रसादजी कवि और नाटककार के रूप में विशेष प्रसिद्ध है । राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि एक दर्जन से अधिक नाटक उन्होंने लिखे हैं । उनके नाटक मुख्यत: ऐतिहासिक हैं । कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से प्रसाद के प्रमुख नाटक हैं स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी ।

प्रसादजी के नाटकों की एक विशेषता है नारीपात्रों को महत्वपूर्ण स्थान देना । हिन्दी नाटक में ही नहीं, समस्त हिन्दी साहित्य में नारी को जैसा महत्व छायावादी कवियों द्वारा प्राप्त हुआ, वैसा अन्य कवियों द्वारा नहीं । प्रसाद जी के छायावादी दृष्टिकोण का प्रभाव उनके नाटकों पर भी है । उनके नाटकों में नारी के सत् और असत् दोनों रूपों का चित्रण हुआ है । उनकी नारियाँ पुरुष के पीछे पीछे चलनेवाली निर्जीव कठपुतलियाँ

नहीं हैं, उनका अपना व्यक्तित्व, अपनी बुद्धि और अपना मस्तिष्क है। वे पुरुष का पथ-प्रदर्शन करती हैं, उसे त्याग, शौर्य और बलिदान की प्रेरणा देती हैं और इन से प्रभावित होकर अत्याचारी पुरुष भी उदात्त भावनाओं से अभिभूत हो जाता है।

प्रसाद जी के नाटकों के विविध नारी-पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

1. आभिजात्यवर्ग

राजघरानों से संबंधित स्त्री पात्र इस वर्ग के अंतर्गत हैं, उदा. रानी,[1] वासवी,[2] छल्ना,[3] पद्मावती,[4] वासवदत्ता,[5] शक्तिमती,[6] बाजिरा,[7] वपुष्टमा,[8] देवकी,[9] अनन्तदेवी,[10] जयमाला,[11] देवसेना,[12] राज्यश्री,[13] अलका,[14]

---

1. विशाख, पृ.9
2. अजातशत्रु, पृ.22
3. वही, पृ.22
4. वही, पृ.22
5. वही, पृ.22
6. वही, पृ.22
7. वही, पृ.22
8. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.8
9. स्कन्दगुप्त, पृ.8
10. वही
11. वही
12. वही
13. राज्यश्री, पृ.10
14. चन्द्रगुप्त, पृ.46

कल्याणी,[1] ध्रुवस्वामिनी,[2] मन्दाकिनी[3] आदि उपर्युक्त पात्रों को पुन: दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

{1} राजमहिषियाँ - उदा. रानी, वासवी, छलना, वासवदत्ता, शक्तिमती, वपुष्टमा आदि

{2} राजकुमारियाँ - उदा. पद्मावती, बाजिरा, देवसेना, कल्याणी, मन्दाकिनी आदि । इन में कुछ राजमहिषियों की चित्तवृत्ति कोमल है तो कुछ महिलाओं की कलुष । वासवी,[4] देवकी,[5] रानी,[6] और वपुष्टमा,[7] मार्दव, सारल्य, सौजन्य आदि गुणों से पूर्ण है, वे अपने पतियों के अनुकूल रहनेवाली हैं । छलना,[8] शक्तिमती[9] और अनंतदेवी[10] राजनीति को खिलवाड समझनेवाली दुष्ट प्रकृति की नारियाँ हैं । जयमाला एक और प्रकार की राजमहिषी है जिसमें स्त्री सहज दुर्बलतायें हैं, पर पति की प्रेरणा से उसमें गुणों का विकास होता है । राज्यश्री और ध्रुवस्वामिनी चौथे प्रकार की राजमहिषियाँ है जो स्त्रीजनोचित वैशिष्ट्य, सौन्दर्य, सारल्य और सहृदयता से युक्त होती हुई भी परिस्थितिवश परवश है । राज्यश्री शत्रुओं के हाथ में पड जाती है

---

1. चन्द्रगुप्त, पृ. 46
2. ध्रुवस्वामिनी, पृ.12
3. वही, पृ.18
4. अजातशत्रु, पृ.85
5. स्कन्दगुप्त, पृ.73
6. विशाख, पृ.62
7. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.95
8. अजातशत्रु, पृ.84
9. वही, पृ.117-118
10. स्कन्दगुप्त, पृ.104

तो ध्रुवस्वामिनी कायर, क्लीब पति के हाथ में । अंत में दोनों का उद्धार होता है ।

आभिजात्यवर्ग की राजकुमारियाँ स्वतंत्र व्यक्तित्व से सम्पन्न है और वे पाठकों के मन पर अमिट छाप अंकित करती हैं । ये तीन रूपों में मिलती हैं -

1. पति के साथ जीवनयापन करनेवाली - उदा. पद्मावती ।
2. राजनीति में सक्रिय भाग लेने मात्र के लिए की गई कल्पित सृष्टि - उदा. मन्दाकिनी ।
3. प्रेमिकायें - उदा. बाजिरा, कल्याणी और देवसेना ।

इनमें बाजिरा का साहस सराहनीय है । वह अजातशत्रु से प्रेम करती है । अपने पिता के उग्र कोप की भी परवाह न करके वह अपने यहाँ बन्दी अजातशत्रु को मुक्त करती है[1] । आखिर उसे अपने प्रेमी की प्राप्ति होती है । कल्याणी को चन्द्रगुप्त के प्रति अपनी प्रेमपीडा को दबाना पडा, क्योंकि चन्द्रगुप्त उसके पिता के विरोधी हैं[2] । अंत में वह असफल प्रेमिका आत्महत्या करती है । स्कन्दगुप्त को अपने "इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य माननेवाली देवसेना का प्रेम-भाव उच्च स्तर पर है[3] ।

2. मध्यवर्ग

इस वर्ग की नारियाँ समाज के प्रतिष्ठित वर्ग से संबंधित हैं । इनमें कुछ पात्र अपने विशिष्ट चरित्र के कारण आदर्श पात्र है उदा - चन्द्रलेखा[4], मल्लिका[5] और मणिमाला[6] । सौन्दर्य, सरलता, आस्तिकता, प्रेम की अनन्यता आदि विशिष्ट गुणों के विकास से चन्द्रलेखा नायक की

---

1. अजातशत्रु, पृ.109 2. चन्द्रगुप्त, पृ.160
3. स्कन्दगुप्त, पृ.149 4. विशाख, पृ.9
5. अजातशत्रु, पृ.22 6. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.8

पत्नी बनती है[1]। मल्लिका में वीरता, पतिपरायणता और उपकार-भावना है[2]। नागकन्या मणिमाला सत्वगुणवाली आर्या है, जनमेजय की पत्नी बनकर वह दो जातियों का उपकार करती है[3]। इनके अतिरिक्त मध्यवर्ग के सामरथ्य गुणवाले स्त्री-पात्र हैं - सरमा, मनसा, तरला, शीला, कमला, रामा आदि। घटनाओं को विकास देना, अन्य पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को मुखरित करना और परिस्थिति विशेष में सामान्य नारी के उद्‌गारों का प्रतिनिधित्व करना इनकी सृष्टि के उद्‌देश्य हैं।

3. प्रेमिका वर्ग

मालविका, कोमा और देवसेना इस वर्ग में आती है। चन्द्रगुप्त की निश्चल प्रेमिका मालविका अपने प्रिय के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है[4]। अपने अंतिम क्षणों में चन्द्रगुप्त की शय्या पर बैठकर वह कहती है - "अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन बन जा[5]।" उसके संबंध में डॉ.सुरजकान्त शर्मा का मत है, "मालविका अपने प्रेम की सुगंध विकीर्ण करनेवाली मधुर कोमल कलिका है जो विकास से पूर्व ही उड गई[6]।" प्रेमपात्र को चुनने में भूल करने के कारण धोखा खानेवाली कोमा का कथन है - "प्रेम करने के लिए एक ऋतु होती है[7]।" उसके बारे में डॉ. सुरजकान्तशर्मा का कथन है, "उसके चरित्र की अनेक विशेषताएँ और सुकुमार मधुर सहृदयता लहलहाकर शकराज के

---

1. विशाख, पृ.34 से 36 तक
2. अजातशत्रु, पृ.71-72
3. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.95
4. चन्द्रगुप्त, पृ.141
5. चन्द्रगुप्त, पृ.169
6. हिन्दी नाटक में पात्रकल्पना और चरित्र चित्रण - डॉ.सुरजकांत शर्मा, पृ.107
7. ध्रुवस्वामिनी, पृ.35

नैष्ठुर्य और दौर्बल्य में झुलस जाती है । अपने प्रेमपात्र के मरने पर भी वह उसके शव के साथ समाप्त होकर उच्च आदर्श का पालन करती हुई वेदना का तीर छोड़कर चली जाती है ।[1]" प्रिय के सुख-दुःख की सच्ची संगिनी देवसेना जीवन-भर प्रेम का निर्वाह करती है । वह ऐसी प्रेमिका है जो उसी के शब्दों में "धूमदान की क्षीण गंध-रेखा" है[2] ।

4. विलासिनियाँ

स्त्रीपुरुषों में परस्पर आकर्षण सहज है । पर अनियंत्रित श्रृंगारिक भावनायें निंद्य हैं । ऐसी संयमहीन नारियाँ विलासिनियाँ है । उनमें साहस, छल, क्रूरता और पश्चाताप भरे रहते हैं । मागंधी, दामिनी, विजया, सुवासिनी, सुरमा, मालिनी आदि ऐसी नारियाँ हैं । मागंधी और मालिनी वेश्यायें हैं । गुरुपत्नी होते हुए भी दामिनी संयम खोकर उत्तंग के प्रति आकर्षित होती है[3] । मालिन सुरमा कभी शान्तिदेव की प्रेमिका होती है[4] तो कभी देवगुप्त[5] की और पुनः विकटघोष की[6] । सुवासिनी राक्षस, चाणक्य आदि के चक्र में घूमती रहती है तो विजया स्कन्दगुप्त, भटार्क आदि के चक्र में ।

5. विदेशी

चन्द्रगुप्त में कार्नेलिया और सखी एलिस विदेशी स्त्री पात्र हैं । इसमें कार्नेलिया के मन का मधुर पक्ष दर्शनीय है । सिल्यूकस की पुत्री से चन्द्रगुप्त का

---

1. हिन्दी नाटक में पात्रकल्पना और चरित्र चित्रण, पृ.107
2. स्कन्दगुप्त, पृ.132
3. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.19
4. राज्यश्री, पृ.11
5. वही, पृ.13
6. वही, पृ.45

विवाह ऐतिहासिक घटना है । इस पर कल्पना का रंग चढ़ाकर रोचकता की सृष्टि की है । कार्नेलिया के आदर्श और मान्यताएँ भारतीय है, अतः जन्म से विदेशी होने पर भी प्रकृति से वह भारतीय है[1] ।

6· विविध

इरावती, रमणी, सखियाँ सेविकायें आदि स्त्री पात्र विविध वर्ग के अन्तर्गत हैं ।

नायिकायें

साधारणतया नायक की पत्नी को नायिका कहते हैं । नायिका नाटक की मुख्य घटनाओं से संबद्ध होती है, उसे फलप्राप्ति भी होती है । ऐसी ही नारियाँ प्रसादजीके नाटकों की नायिकायें हैं । विशाख में चन्द्रलेखा, अजातशत्रु में बाजिरा, जनमेजय का नागयज्ञ में वपुष्टका और मणिमाला, राज्यश्री में राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी में ध्रुवस्वामिनी, स्कन्दगुप्त में देवसेना और चन्द्रगुप्त में कार्नेलिया नायिकायें हैं । वपुष्टमा और राज्यश्री स्वकीयायें हैं । चन्द्रलेखा, बाजिरा, मणिमाला, ध्रुवस्वामिनी, देवसेना और कार्नेलिया परकीयायें हैं ।

1· चन्द्रगुप्त, पृ·204

उपर्युक्त नायिकाओं में देवसेना की स्थिति निराली है। वह नायक स्कन्दगुप्त से प्रेम करती है, पर परिणीता नहीं बनती। नाटक में प्रमुख स्थान होने के कारण वह नायिका है। स्कन्दगुप्त ही उसका सर्वस्व है, वही उसके "इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य है। श्मशान में प्रपंच बुद्धि के सामने होने पर वह चिल्ला उठती है - "प्रियतम! मेरे देवता युवराज। तुम्हारी जय हो"[1]। इस से स्पष्ट है कि वह स्कन्दगुप्त को अपने पति ही मानती थी, आत्मिक संबंध से वह स्कन्दगुप्त की प्रियतमा है, इसलिए भी वह नायिका हो सकती है। देवसेना की सारी अलौकिकता, त्याग, देशप्रेम, सहिष्णुता और रहस्योन्मुखी भावनायें सब एक गांभीर्य से आच्छादित है। संगीत की प्रेमिका वह जीवन और जगत् के कण-कण में एक लय और तान देखती है। युद्ध और प्रेम में वह संगीत का योग चाहती है। भावुकता की जीती-जागती प्रतिमा देवसेना अपने प्रिय के सुख के लिए अपनी कोमलतम भावनाओं की आहुति दे देती है। इस मूक आत्मसमर्पण में देवत्व है। इस स्थल पर पहुँचकर देवसेना का रूप सामान्य मानव भूमि से ऊपर उठता है। वह स्कन्द को सब कुछ देती है, पर बदले में कुछ लेना नहीं चाहती। उसके द्वन्द्वभरे हृदय से निकले ये उद्गार कितने हृदयस्पर्शी है - "हृदय की कोमल कल्पना, सो जा। जीवन में जिसकी संभावना नहीं, जिसे द्वार पर आये हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिये अच्छी बात है? इस पुकार मचाने में जो मानव-प्रकृति है, वह देवसेना को केवल देवता होने से बचा लेती है। वह सच्ची क्षत्राणी है। हूणों के आक्रमणकाल में छुरी लेकर अपने शरीर तथा अन्तःपुर की रक्षा में योग देती है। उसका देशप्रेम इतना है कि पर्णदत्त के साथ भीख मांगने में भी उसे संकोच नहीं होता। देशप्रेम से ही

---

1. स्कन्दगुप्त, पृ. 86

प्रेरित होकर वह स्कन्दगुप्त के उस प्रस्ताव का विरोध करती है जिस में उन्होंने एकान्त में, किसी कानन के कोने में उसे देखते हुए जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट की । वह अपने प्रियतम को कर्तव्यच्युत देख नहीं सकती । अत: कहती है कि स्कन्दगुप्त को अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित नहीं रहेगी ।

देवसेना को छोड़कर बाकी सभी परकीयायें अंत में नायक-पत्नी बन जाती हैं । ये परकीयायें दो प्रकार की हैं - कन्या और प्रौढा । चन्द्रलेखा, बाजिरा, मणिमाला, देवसेना और कर्णेलिया कन्या हैं । ध्रुव-स्वामिनी प्रौढा है । प्रसादजी की सभी नायिकायें सुन्दरियां हैं । उनमें यौवन का उल्लास, समर्पण की चाह और उत्सर्ग का उत्साह है । "पिता की सारी झिडकियां मैं सुन लूंगी । उन का समस्त क्रोध मैं अपने पर वहन करूंगी । राजकुमार, अब तुम मुक्त हो जाओ ।[1]" बाजिरा का प्रस्तुत कथन अजातशत्रु के प्रति उस के असीम प्रेम का परिचायक है । प्रसाद की नायिकायें सहायिकायें या प्रतिनायिकाएं नहीं रखतीं ।

प्रसाद के अन्य स्त्री पात्रों में कुछ स्त्रियां सात्त्विक वृत्ति की है और कुछ विलास लोलुप महत्त्वाकांक्षिणियां । सात्त्विक वृत्ति की नारियों में सरलता, उदारता, क्षमा, त्याग आदि गुण हैं । मल्लिका, वासवी, देवकी, रामा, शक्तिमती, पद्मावती और जयमाला ऐसी नारियां हैं । राज्यश्री और मल्लिका हत्यारों तक को क्षमा करती हैं[2] । वासवी अपनी

1· अजातशत्रु, पृ·109

2· राज्यश्री, पृ·69

सपत्नी के पुत्र अजातशत्रु से द्वेष नहीं करती ।

वैभव और विलास चाहनेवाली नारियों में अनेक दुर्बलताएं होती हैं । मागंधी, छलना, दामिनी, सुरमा, विजया, अनन्तदेवी, सुवासिनी आदि ऐसी नारियां हैं । इन में दुस्साहस, छल आदि अनेक दोष हैं ।

मालव की कुबेर-कन्या विजया ऐसी महत्वाकांक्षिणी नारियों में प्रमुख स्थान रखती है । धन-लिप्सा उसकी वर्गगत विशेषता है । उसके अनुसार अर्थ देकर विजय खरीदना देश की वीरता के प्रतिकूल है । उस चंचल रमणी में विवेक की कमी है । वह पहले स्कन्द के प्रति आकर्षित होती है । पर उसकी विरक्ति देखकर वह भी उस ओर से विरक्त होती है । सौन्दर्य के साथ महत्वाकांक्षा भी उसे है । स्कन्द में महत्वाकांक्षा की कमी देखकर वह चक्रपालित की ओर उन्मुख होती है, क्योंकि चक्र पालित में ये दोनों वह देखती है । भटार्क में इन दोनों का योग देखकर वह उस ओर मुडती है । वह प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति है । देवसेना से वह कहती है "राजकुमारी, आज से मेरी ओर देखना मत । मुझे अभिशाप की ज्वाला समझना और मुझे न छोड़ना । मैं तुम्हारी शत्रु हूं । उपकारी की ओट से मेरे स्वर्ग को छिपा दिया मेरी कामना-लता को समूल उखाड़कर कुचल दिया ।" बदले में वह देवसेना को श्मशान के बलिस्थान पर ले जाकर कापालिक प्रपंच बुद्धि के सम्मुख छोड़कर भाग जाती है । जब उसे मालूम होता है कि अनंतदेवी भटार्क को अपने चंगुल से नहीं निकलने देती और विजया को पुरगुप्त की ओर लगाये रहती है, तो उसका विरोध अनंतदेवी से छिड जाता है । यहाँ भी उसे असफलता ही हाथ लगी । वह "कहीं की न रही । वह सोचती है, "स्नेहमयी देवसेना का शंका से तिरस्कार किया, मिलते हुए स्वर्ग को घमण्ड से तुछ समझा ।

देवतुल्य स्कन्दगुप्त से विद्रोह किया । किसलिए ? केवल अपना रूप, धन, यौवन दूसरों को दान करके उन्हें नीचा दिखाने के लिए ।" उसका हृदय-परिवर्तन होता है, उसके मन में कल्याण कामना जाग्रत होती है । पर उसके मूल में भी क्षुद्र भौतिक स्वार्थ था । उसने स्कन्द को मूल्य देकर खरीदना चाहा । उसके पास जो रत्नगृह बचे थे, उनसे सेना एकत्र करके हूणों को पराजित करने की और बचे हुए दिन साथ-साथ आनन्द पूर्वक बिताने की उसकी प्रार्थना स्कन्द ने अस्वीकार की और सहसा वहाँ आगत भटार्क ने उसे भर्त्सना दी तो वह सब प्रकार से अपमानित हो आत्महत्या कर लेती है । उस के चरित्र की दुर्बलताएँ - दंभ, चंचलता, लोलुपता, अविवेक आदि के कारण ही उसे जीवन में हार खानी पड़ी और जीवन से हाथ धोना पड़ा ।

सुरमा और सुवासिनी भी विजया के समान चंचल-प्रकृति की है । सुरमा पहले शांतिदेव से प्रेम करती है,[1] फिर देवगुप्त से[2] और अंत में पुन: शांतिदेव के पास आकर क्षमा माँगती है[3] सुवासिनी, मागधी आदि भी ऐसी हैं । अपने पति के शिष्य उत्तंग का प्रेम चाहनेवाली है दामिनी । छलना और अनन्तदेवी राज्यवैभव के दुर्मोह से अत्याचार और दुष्कृत्य करने में भी नहीं हिचकती ।

प्रसाद के नाटक में कुछ राष्ट्र प्रेमिकायें भी हैं - उदा॰ अलका, मन्दाकिनी आदि ।

---

1. राज्यश्री, पृ॰1
2. राज्यश्री, पृ॰13
3. वही, पृ॰48

आदर्श पात्रों में मनुष्य-सहज दुर्बलतायें और दुर्बल पात्रों में भी मानवीयगुण प्रसादजी के नारी पात्रों की विशेषता है। एक आलोचक का कथन है - "आदर्श के उत्तुंग शृंग पर प्रतिष्ठित होकर भी वह जीवन के धरातल पर विचरण करती है।[1]" छलना का अंत में बिम्बसार का चरण पकड कर पश्चात्ताप करना इस बात का प्रमाण है कि प्रसादजी ने दुर्बल पात्रों में भी मानवीय गुणों का समावेश किया है। देवसेना और मालविका विचित्र चरित्रवाली रमणियाँ हैं तो अलका और मन्दाकिनी पर नवीन नारी-आन्दोलनों का प्रभाव है। आधुनिक समस्याओं से ग्रसित नारीपात्र का उदाहरण है ध्रुवस्वामिनी। छलना का हृदय परिवर्तन मानव को सुधार की ओर ले जाने की भावना का द्योतक है।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में स्त्री-पात्र

रामचन्द्रशुक्लजी के अनुसार जयशंकर प्रसाद और हरिकृष्ण प्रेमी ही वर्तमान नाटक क्षेत्र के उत्कृष्ट नाटककार हैं। दोनों के नाटक अधिकतर ऐतिहासिक हैं। प्रसाद जी ने हिन्दूकाल चुना तो प्रेमीजी ने मुस्लिम-काल।[2]"

हरिकृष्णप्रेमी के नाटकों के नारीपात्रों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं - (1) क्षत्राणियाँ (2) मुगलानियाँ (3) मध्य वर्गीय स्त्रियाँ (4) वारांगनायें।

---

1. प्रसाद के नाटकीय पात्र, पृ.11-12
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.611

1· क्षत्राणियाँ

कर्मवती, जवाहरबाई, जीजाबाई, लाल कुँवरि, हीरादेवी, अमरकुँवरि, चन्द्रकला, महारानी, कृष्णा, किरणमयी, प्रभा, ताण्डवी, कमला, सुधीरा, दुर्गा, ज्वाला, पद्मा, चम्पा शारदेवी, तारा और दुर्गा क्षत्राणियाँ हैं । इन में अधिकांश नारियाँ चरित्रवान्, वीर और देश भक्त हैं । कर्मवती, जीजाबाई, लालकुँवरि, ज्वाला, सुधीरा, दुर्गा, महारानी देवल, चपला और ताण्डवी वीरांगनायें हैं । इन के चरित्र प्रायः एक सी भावनाओं से पूर्ण हैं । "विशेष प्रकार के ढाँचे में ढलने के कारण वे टाइप हो गई हैं[1] ।" उन के गुण स्त्री-जाति के गौरव के चिह्न हैं "यदि प्राणों का इतना मोह है तो चूड़ियाँ पहनकर घर बैठो, लाओ, यह तलवार मुझे दो[2] ।" कर्मवती का उपर्युक्त कथन उसकी वीरता और पौरुष का परिचायक है । लालकुँवरि आपत्ति के समय अपने पति चंपतराय को तलवार से मारकर स्वयं तलवार भोंककर स्वाभिमान की रक्षा करती है[3] । मेवाड की राजकुमारी कृष्णा विषपान करके अपना अंत करती है और इस प्रकार राजपूतों को विपत्ति से बचाती है[4] । महारानी देवल अपने पुत्रों की वीरमृत्यु पर आँसू तक नहीं बहाती । उसका कथन है - "अग्निपुत्रियाँ आँसू नहीं बहाती । मुझ जैसी सौभाग्य शालिनी नारी कौन होगी ? मेरे पुत्रों ने देश की मान-रक्षा के लिए, राजपूती आन के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी[5] ।" विधवा कमला में शौर्य और

1· हिन्दी नाटक, पृ·107

2· रक्षाबन्धन, पृ·31

3· प्रतिशोध, पृ·73

4· विषपान, पृ·102

5· आहुति, पृ·73

श्रृंगार दोनों द्रष्टव्य हैं । हमीर से उसका प्रेम फिर विवाह में परिणत होता है ।[1]

2. मुगलानियाँ

रोशनारा, जहाँनारा, जेबुन्निसा, नादिरा, अनवरी, अख्तरी, हमीदा, उदयपुरी, जीनतमहल आदि मुगलानियों में जेबुन्निसा का स्थान महत्वपूर्ण है । शिवासाधना, प्रतिशोध और बिदा नाटकों में चित्रित किये गये उसके चरित्र में प्राय: एक ही बातें हैं । नृत्य और संगीत से अनुरक्त कला की वह उपासिका औरंगज़ेब जैसे कठोर पिता के सामने भी अपनी भावाभिव्यक्ति करने में नहीं चूकती । साहस, सहानुभूति, स्वच्छन्दता और सौन्दर्य की मूर्ति जेबुन्निसा का हृदय शिवाजी के प्रति प्रेम से पूर्ण है[2] । रोशनारा और जहाँनारा राज्यसत्ता के अनुसार चलनेवाली नारियाँ हैं । बहादुरशाह की बेगम ज़ीनतमहल पति के अनुकूल चलनेवाली बेबस स्त्री है[3] । उदयपुरी प्रेम के दिखाने से औरंगज़ेब को वश में रखती है और औरंगज़ेब जिस शराब से घृणा करता है, उसे उसी की नाक के नीचे पीती है[4] । उदयपुरी की दृष्टि में स्त्री का एकमात्र जादू उसका सौन्दर्य है[5] ।

---

1. बिदा, पृ.2
2. शिवासाधना, पृ.9-10
3. रक्तदान, पृ.181
4. बिदा, पृ.42
5. वही, पृ.57

3. मध्यवर्गीय स्त्रियाँ

मध्यवर्गीय स्त्रियों में चारिणी का चरित्र महान है । वह देशभक्ति को उद्दीप्त करनेवाले गीत गाकर वीरों को उत्साहित करती है[1] । श्यामा भीलनी के विक्षोभ को शान्त करके उसे सत्पथ पर चलाती है[2] । श्यामा से वह कहती है कि चारिणियाँ हटना नहीं जानतीं[3] । यहाँ उसकी शक्ति और साहस दर्शनीय है । "वीरों, समरभूमि में जाओ[4] ।" कहकर वह ग्रामवासियों को रणक्षेत्र में जाने का उद्बोधन देती है । "स्वप्नभंग" में वीणा और "प्रतिशोध" में विजया उत्कृष्ट चरित्रवाली नारियाँ हैं ।

4. वारांगनायें

प्रेमीजी के नाटकों में चित्रित वारांगनायें केवल वारांगनायें नहीं, राजनीति में भी सक्रिय भाग लेनेवाली हैं । "कीर्तिस्तंभ" में यमुना जासूसी के कार्य करती है और "शीशदान" में अज़ीज़न स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेती है । उसके यहाँ नानासाहब और तात्यातोपे राजनीतिक प्रश्नों पर विचार किया करते थे ।

---

1. रक्षाबंधन, पृ.14
2. वही, पृ.17
3. वही, पृ.15
4. वही, पृ.59

"वीणा {स्वप्नभंग में}, चारिणी {रक्षाबंधन में}, विजया {प्रतिशोध में}, कर्मवती {रक्षाबंधन में}, जहाँनारा {स्वप्नभंग में} तथा जेबुन्निसा {शिवासाधना में} के चरित्र संसार को भ्रातृत्व, देशभक्ति तथा आत्मसम्मान आदि का सन्देश देते हैं।"[1] प्रस्तुत मत प्रेमीजी के नारीपात्रों के चित्रण की सोद्देश्यता का परिचय देनेवाला है।

प्रेमीजी ने कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक नाटक भी लिखे हैं। छाया {छाया} और सरला {बंधन} जैसे उच्च आदर्शवाली स्त्रियों के साथ माया {छाया} और ज्योत्स्ना {छाया} जैसी तथाकथित आधुनिक नारी के चरित्रों का अंकन करके नाटककार ने समाज की यथार्थता को चित्रित किया है। सुहासिनी, पार्वती, मन्दाकिनी {शपथ} और सरस्वती {संवत् प्रवर्तन} आदि स्त्रीपात्रों के चरित्र में सांस्कृतिक परम्परा के उल्लेख के साथ साथ आधुनिकता भी दिखाई देती है।

उदयशंकर भट्ट के नाटकों में नारी-पात्र

भारत के गौरवशाली अतीत के प्रति आस्था रखनेवाले उदयशंकर भट्ट जी ने ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटक लिखे हैं। उन के स्त्रीपात्र चरित्रचित्रण की दृष्टि से उत्तम हैं। आलोचकों ने भट्टजी के नारीपात्रों के चरित्रांकन की सफलता की प्रशंसा की है[2]। उनके नाटकों के प्रमुख स्त्री पात्र हैं चन्द्रलेखा और अनंगमुद्रा {विक्रमादित्य में}, बर्हि {सगर-विजय में}, अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका {विद्रोहिणी अम्बा में}, सूर्यदेवी और परमाल {दाहर अथवा सिंधपतन में}, सरस्वती {शकविजय में}

---

1. हिन्दी नाटक - साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ.228
2. हिन्दी नाटककार, पृ.170

और गोपा (मुक्तिदूत में) । ये नारियाँ पाँच प्रकार की है - (1) पतिपरायणा महिलायें (2) वीरांगनायें (3) विद्रोहिणियाँ (4) ईर्ष्यालु नारियाँ (5) विरक्त नारियाँ ।

1. पतिपरायणा महिलायें

चन्द्रलेखा, अम्बिका, अम्बालिका और गोपा पतिपरायणा महिलायें हैं । इन में अम्बिका और अम्बालिका का चरित्र अधिक विकसित नहीं हो पाया है। अम्बिका थोडी बुद्धिवादिनी है । अपने पति विक्रमादित्य के प्रति श्रद्धा मिश्रित अनुराग रखनेवाली चन्द्रलेखा अपनी सखी के साथ युद्ध स्थल में जाकर शत्रु के षड्यंत्रों से पति की रक्षा करती है और अंत में स्वयं विक्रमादित्य के आघात से धोखे में उसकी मृत्यु हो जाती है[1] ।"

2. वीरांगनायें

अनंगमुद्रा, सूर्यदेवी और परमाल ये तीनों वीरांगनायें हैं । अनंगमुद्रा ही चन्द्रलेखा को उत्साहित करके रणक्षेत्र में ले जाती है और वेश बदलकर शत्रु के षड्यंत्र का पता लगाती है[2] । निर्भीकता, शक्ति और शौर्य की प्रतिमूर्ति अनंगमुद्रा तीर चलाने में निपुण हैं और चन्द्रकेतु को नीचे गिराती है[3] । दाहर की पुत्रियाँ सूर्यदेवी और परमाल में वीरता वंशगत विशेषता है । युद्धकाल में सूर्यदेवी देश-भर में देश भक्ति की भावना भरती है और व्यक्तियों को युद्ध की प्रेरणा देती है[4] आ तथा स्त्रियों को घायलों की सेवा के लिए आगे लाती है[5]

---

1. विक्रमादित्य, पृ.81
2. वही, पृ.59
3. वही, पृ.81
4. दाहर अथवा सिंधपतन, पृ.56
5. वही, पृ.82

वह मुहम्मद बिन कासिम से बदला लेती है और अंत में एक दूसरे को खंजर भोंककर मृत्यु का वरण करती है । सूर्यदेवी में आधुनिकता की भी छाप है ।

3· विद्रोहिणियाँ

अम्बा विद्रोहिणी है । वह अपने पिता काशिराज के यहाँ से भीष्म द्वारा अम्बिका और अम्बालिका के साथ अपहृत की जाती है । वहाँ वह व्यक्त करती है कि उसने शाल्व को वरण किया है । शाल्व के पास जाने पर वह उसे स्वीकार नहीं करता और कहता है, "स्त्री ही संसार में ऐसा एक पदार्थ है जो एक बार केवल एक बार स्पर्श किया जाता है[1] ।" वह उसे जूठन कहकर निकाल देता है । तभी वह प्रतिज्ञा करती है कि स्त्री जाति के अपमान से समूचे भारत का नाश होगा[2] । अम्बा के प्रयत्न से परशुराम और भीष्म का भयंकर युद्ध होता है । वह शिव की तपस्या करके वर प्राप्त करती है कि अगले जन्म में शिखण्डी बनकर भीष्म का नाश करेगी। अंत में यही होता है । भीष्म को अम्बा के अनादर का फल भोगना पड़ता है । भीष्म की मृत्यु के समय व्यास ने कहा - "काशिराज की कन्या अम्बा की प्रतिहिंसा का फल भीष्म को भोगना पड रहा है । एक स्त्री के अनादर का फल यह महाभारत हुआ और दूसरी स्त्री के अनादर का फल है भीष्म की मृत्यु[3] ।" अम्बा के चरित्र द्वारा भट्टजीने आधुनिक युग की नारियों की स्थिति को भी व्यंजित किया है । राय बहादुर चम्पाराम मिश्र ने इस नाटक के प्राक्कथन में यही व्यक्त किया है - "स्त्रियों के वर्तमान स्वतंत्रता के विचारों को भली-भाँति

1· विद्रोहिणी अम्बा, पृ· 76

2· वही, पृ·78

3· वही, पृ·98

अम्बा एवं उनकी बहनों द्वारा प्रकट किया है।[1]"

4. ईर्ष्यालु नारियाँ

"सगर विजय" में सगर की विमाता बर्हि ईर्ष्यालु स्त्री है। उसकी ईर्ष्या इतनी तीक्ष्ण है कि भूमण्डल पर विजयी होकर सगर लौटता है तो वह जलन से भर जाती है और असह्य ईर्ष्या के कारण आत्महत्या कर लेती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में नारी

हिन्दी के सर्वप्रथम समस्यानाटककार श्री·लक्ष्मीनारायण मिश्रजी ने स्त्री-पात्रों के चरित्र-चित्रण में केवल प्रेम और विवाह की समस्याओं को ही उभारा है। ये स्त्रियाँ प्रेम किसी और से करती हैं और विवाह किसी और से। "सिन्दूर की होली" की चन्द्रकला ही एक ऐसी नारी है जो रजनीकांत से प्रेम करती है और उसी के हाथ से सिन्दूर लगवा लेती है। थोडी देर बाद रजनीकान्त की मृत्यु होती है। अतः विवाह के सुख की प्राप्ति चन्द्रकला को भी नहीं होती। हमें लगता है कि नाटककार की प्रेम और विवाह की समस्या पर इब्सन के इस कथन का प्रभाव है - "यदि तुम विवाह करना चाहते हो तो प्रेम में मत पडो और यदि प्रेम करते हो तो प्रिय से अलग हो जाओ।" इस मान्यता के निर्वाह के फेर में पडकर इनके पात्र कभी कभी प्रभावहीन हो जाते हैं। "मुक्ति का रहस्य" में आशादेवी उमाशंकर को प्रेम करती है, उसकी बीमार

---

1. विद्रोहिणी अम्बा- प्राक्कथन, पृ·1

पत्नी को डॉ॰ त्रिभुवननाथ से विष लेकर देती है[1]। इस रहस्य को खोलने की धमकी देकर त्रिभुवननाथ उस के शरीर का उपभोग करता है; फिर उसे ही पति के रूप में स्वीकार करके पवित्रता की दुहाई देने में उसे ज़रा भी संकोच नहीं होता। डॉ॰ मांधाता ओझा ने मिश्रजी की आलोचना यों की है - "नारी समस्या के चित्रण में नाटककार ने प्रेम की प्रकृतिवादी और विवाह की मर्यादावादी विचार-दृष्टि अपनाई है। इस प्रकार के समाधान को सतीत्व और विवाह की प्राचीन आदर्शवादी भावना के साथ युक्त करना समीचीन प्रतीत नहीं होता[2]।" स्वच्छन्द प्रेम के साथ आदर्श और मर्यादा का मोह उनके स्त्री-पात्रों के जीवन को दुःखद बना लेता है। सेक्स संबंधों के बेमेल होने के कारण उनका जीवन उलझनों से पूर्ण हो जाता है और इसी कारण से उनके अन्य गुणों का विकास नहीं हो पाता। किरणमयी का अभिप्राय है कि यदि वह चालीस वर्ष की विधवा होती तो उसका विवाह स्वाभाविक होता[3]। मालती अपने प्रेमी विश्वकांत को छोड़कर रमाशंकर से विवाह करके कहती है - "मैं ने ऐसे आदमी से विवाह किया है जिसे तुम जीवन-भर घृणा करते रहे हो[4]।" चम्पा अपने प्रेमी नरेन्द्र को प्रेम करती रहती है और वैवाहिक जीवन को नरक मानती है[5]। एक से अधिक प्रेमी रखनेवाली मायावती जैसी आधुनिक स्त्रियों का चित्रण भी मिश्रजी ने किया है[6]।

1· मुक्ति का रहस्य, पृ·142
2· हिन्दी समस्या नाटक, पृ·104
3· सन्यासी, पृ·108
4· वही, पृ·178
5· राजयोग, पृ·90
6· आधी रात, पृ·143

गोविन्द वल्लभ पंत के नाटकों में स्त्री-पात्र

गोविन्द वल्लभ पंत जी प्राचीन परम्परा की रक्षा करते हुए नाट्यसाहित्य की सृष्टि करनेवाले नाटककार हैं। उनका पौराणिक नाटक "वरमाला" मार्कण्डेय पुराण के आधार पर रचा गया है। इस की नायिका वैशालिनी विदिशा के राजा की पुत्री है। निर्भीकता, साहस, समवेदना आदि विशिष्ट गुणों से पूर्ण उसका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। वह स्पष्ट शब्दों में राजकुमार अवीक्षित् के प्रेम का तिरस्कार करती है[1]। "मैं सूखे वृक्ष से अनुराग करूँगी, कुटिल चन्द्र को प्यार करूँगी, मूक पत्थर की प्रतिमा से विवाह कर लूँगी, कुमारी ही मर जाऊँगी, पर तुम ? तुम मेरे पति न होओगे[2]।" सुदृढ स्वर में ऐसा कहनेवाली वैशालिनी मानवता के नाते बाण चलकर नक्र से अवीक्षित की रक्षा करती है[3] और निरायुध अवीक्षित् शत्रुओं से घायल होता है तो समवेदना के कारण उसकी सेवा करती है[4]। धीरे-धीरे घृणा प्रेम में बदल जाती है।" इस हृदय परिवर्तन के बाद उस का कथन है, "नारी संसार की परवा नहीं करती, रमणी चलकर फिर गति नहीं बदला करती। वह अपने मनोभावों की दासी है[5]।" अवीक्षित के चले जाने पर वह संन्यासिनी बनती है और पुनः प्राप्ति पर वरमाला पहनाती है[6]।

---

1. वरमाला, पृ.18
2. वही, पृ.19
3. वही, पृ.28
4. वही, पृ.33
5. वही, पृ.39
6. वही, पृ.82

श्री॰ गोविन्द वल्लभ पंत जी के ऐतिहासिक नाटक "अन्त:पुर के छिद्र में पद्मावती और मागंधिनी तथा "राजमुकुट" में पन्ना और शीतलसेनी प्रमुख नारी-पात्र हैं। इनमें पद्मावती और पन्ना के चरित्र उत्तम हैं तो मागंधिनी और शीतलसेनी के अधम। अपने पति की चहेती पत्नी पतिव्रता पद्मावती अमिताभ को देखने के लिए अन्त:पुर के कमरे में छिद्र बनाती है तो मागंधिनी देख लेती है और षड्यंत्र रचती है। फलत: वह तिरस्कृत होती है। तो भी वह पति के विरुद्ध नहीं होती। स्वामिभक्ति के लिए प्रसिद्ध पन्ना बनवीर की आज्ञा से विक्रम को बन्दी करने केलिए सैनिकों के आने पर निडर हो कटार निकालकर कहती है - "मैं धाई ही नहीं, राजपूतनी भी हूँ। मेरे जीवित रहते कोई महाराणा को बन्दी नहीं कर सकता।"[1] उदयसिंह की रक्षा के लिए उसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। उदयसिंह के राज-तिलक के अवसर पर वह बनवीर को मुक्त करके क्षमा कर देती है।[2] मागंधिनी सपत्नी होने के कारण और पद्मावती के गुणों के आगे अपनी हीन भावना के कारण उससे ईर्ष्या करती है। अमिताभ ने उसके विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। अत: उस से भी उसका वैर था। अमिताभ को देखने के लिए पद्मावती ने अन्त:पुर के कमरे में छिद्र बनाया तो उसे वैर-निर्यातन का अच्छा अवसर मिला। लेकिन दैवयोग से मालिन द्वारा लाया गया साँप उसे ही डँस लेता है। "भिक्षा केलिए नहीं, अपना अधिकार प्राप्त करनेकेलिए आयी[3] शीतल सेनी विक्रम चूर्ण कर दूगी, उसका कोसमूल नष्ट करना चाहती है। इस नीच राज्य लिप्सा के पीछे "राजमाता बनने की बलवती इच्छा है[4]। महत्वाकांक्षा से क्रूर हो वह बनवीर को आदेश देती है।

---

1. राजमुकुट, पृ॰36
2. वही, पृ॰118
3. वही, पृ॰18
4. वही, पृ॰21

कि विक्रम का वध करो और रक्त सूखने से पहले ही उसी कटार से उदयसिंह का भी ।

पंतजी के सामाजिक नाटक "अंगूर की बेटी" में मिस बिन्दु, कामिनी और मिस प्रतिभा उल्लेखनीय हैं । बिन्दु और प्रतिभा का चरित्र फिल्म की शौकीन युवतियों की परिस्थिति को व्यक्त करता है ।

कथा

मनुष्य का प्रारंभिक साहित्य कथा-प्रधान है । "अपनी अपनी प्रभावोत्पादक स्मृतियों को सुनाने में ही पहली कहानी की रचना हुई होगी, परिणामत: उत्सुकता और कौतूहल के कारण मानव ने अपनी खोजवृत्ति के द्वारा जिन घटनाओं का, तत्वों का विस्तार किया, वही समय पाकर कथा और कहानी बन गयी[1] ।" कथा सरित सागर की भूमिका में श्री· पेंजर ने कहा है कि भारतवर्ष कथा साहित्य की सच्ची भूमिका है[2] । वैदिककाल की कथायें देवताओं की स्तुति और यज्ञ कर्मों के बीच छिपी रहीं । उनका लक्ष्य धार्मिक था । उपनिषद्काल में कथायें आत्मज्ञान और अध्यात्म-चर्चा से भरी रहीं । पौराणिक काल तक आते-आते उनमें जीवन की सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्ति होने लगी । धर्म, समाज और राजनीति का समावेश होने लगा । धर्म, समाज और राजनीति का समावेश होने लगा । इस प्रभाव का उदाहरण सम्पूर्ण परवर्ती संस्कृत कथा साहित्य में मिलता है । पाली साहित्य में कथायें

1· आधुनिक हिन्दी कथा - साहित्य और चरित्र-विकास, पृ·3

2· कथा सरित्सागर, भूमिका, पृ·2।

अपेक्षाकृत छोटी होकर धर्मप्रचार में उपयुक्त हुई । प्राकृत और अपभ्रंश में कथायें जीवन के लौकिक और यथार्थ धरातल पर आयीं । इसी समय प्रेमाख्यान और मनोरंजक कथाओं की सृष्टि हुई । क.था के इस विकास का चरम उत्कर्ष चारणकाल और गाथाकाल में हुआ एवं मध्ययुग के प्रेमाख्यानों और वार्ताओं में उनका पर्यवसान हुआ[1] । "प्राचीन कथाओं में घटनाओं का क्रमिक विकास होता था । परन्तु आधुनिक उपन्यास तथा कहानियों में घटनाओं का विन्यास कुछ टेढा और चमत्कारिक भी हो चला है ।[2]" पुराने ढंग की कथा कहानियों में कथा का प्रभाव अखण्ड गति से एक दिशा में चलता जाता था जिसमें लक्ष्य की पूर्ति केलिए घटनायें क्रम क्रम से जुड़ती चली जाती थीं । पर यूरोप में जो नये ढंग के कथानक "नावेल" नाम से चले और जो बंग भाषा में "उपन्यास" तथा मराठीमें "कादम्बरी" के नाम से प्रचलित हुए, वे कथा के भीतर की किसी भी परिस्थिति से प्रारंभ होते हैं, उनमें घटनाओं की श्रृंखला लगातार सीधी न जाकर इधर-उधर तथा श्रृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है । घटनाओं की योजना का यही टेढापन और वैचित्र्य आधुनिक उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है। ये विशेषताएं उन्हें पुराने ढंग की कथा कहानियों से अलग करती हैं[3] ।"

कहानी अपने आप में पूर्ण है ।

---

1. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ.41
2. हिन्दी साहित्य कोश, पृ.140
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.62

कहानी और उपन्यास

संस्कृत में कथाओं के पाँच भेद माने गये हैं - आख्यायिका, कथा, खंड-कथा, परिकथा और कथानिका[1]। आधुनिक साहित्य में "कथा" कहने से उपन्यास और कहानी इन दो रूपों का बोध होता है। किसी वृत्तान्त या विवरण को कथा कहते हैं। यदि वह विवरण कल्पित हो तो वह कथा है, यदि ऐतिहासिक हो तो आख्यायिका है[2]। कथात्मक गद्यसाहित्य के दो रूप उपन्यास और कहानी में कथा ही मुख्य है। दोनों पाठक की कुतूहल वृत्ति जाग्रत करते हैं। आकार की दृष्टि से उपन्यास बृहत् है तो कहानी लघु। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ गौण कथायें भी हैं, पर कहानी में केवल एक ही कथा है। उपन्यास में जीवन के व्यापक अंगों का चित्रण होता है, लेकिन कहानी में जीवन के एक अंश की झाँकी है। "साहित्य के अन्य अंगों, यानी नाटक, काव्य, प्रबन्धकाव्य - जिनका रूपविधान भी अलग है - उपन्यास और कहानियाँ यथार्थ से अधिक निकट हैं। इसीलिए उपन्यास और कहानी के पाठक वर्णित पात्रों के उत्थान-पतन, उनकी मनोभावना से शीघ्र अपनापन स्थापित कर लेते हैं, उनके दुःख से दुःखी, सुख से सुखी होते हैं और यही यथार्थ की पकड रचनाओं को सफल या असफल बनाती हैं। यही कारण है कि विष्णुशर्मा से लेकर प्रेमचन्द तक सामाजिक यथार्थ जिस मात्रा में मिलता है, उतना वाल्मीकि से लेकर दिनकर तक नहीं[3]।" उपन्यासों में चरित्रविकास का जैसा अवसर प्राप्त होता है, वैसा कहानी में नहीं।

---

1. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, पृ.2
2. वाङ्मय विमर्श, पृ.54
3. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास, पृ.26

हिन्दी साहित्य में कहानी

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु से पूर्व का - 1800 ई से 1858 ई॰ तक कथा साहित्य मुख्यत: पौराणिक आख्यानों पर आधारित है । इस काल की प्रमुख कृतियाँ हैं श्री॰ लल्लूलाल का "प्रेमसागर", सदलमिश्र का "नासिकेतोपाख्यान" और इंशा अल्लाखाँ की "रानी केतकी की कहानी ।" "प्रेमसागर" और नासिकेतोपाख्यान पौराणिक आधार पर विरचित हैं और "रानी केतकी की कहानी" मौलिक कृति है । इंशा अल्ला खाँ ने इस लम्बी कथा को कहानी कहा है । अत: हिन्दी के कुछ आलोचकों ने इसे हिन्दी की पहली कहानी माना है । "भारतेन्दु के पूर्व तक का हिन्दी कथा-साहित्य उपन्यास और कहानी किसी भी क्षेत्र में नहीं जा सकता, क्योंकि न उसमें उपन्यास कहानी की शिल्पविधि थी और न कोई भावविशेष[1] ।" पूरी उन्नीसवीं सदी में केवल एक दो कहानियाँ लिखी गयीं - एक "राजा भोज का सपना", दूसरी "अद्भुत अपूर्व सपना" । इसी समय में अनेक उपन्यास लिखे गये, लेकिन आधुनिक कहानियों का प्रारंभ बीसवीं शताब्दी में ही हुआ[2] । भारतेन्दुयुग में मुख्यत: दो प्रकार के पात्रों का सृजन हुआ - चमत्कारिक और सामयिक । इस युग में चरित्रों का विकास अल्प मात्र ही हुआ । हिन्दी कहानी क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से युगांतर उपस्थित हुआ । उनके "बडे भाई साहब" नामक कहानी में चरित्र के विकास का नहीं, निर्देशन का मौका मिला । प्रेमचन्द तो कहानी-सम्राट माने जाते हैं । उनका काल "प्रेमचन्द युग" माना जाने लगा और "प्रेमचन्दस्कूल" के अनेक कहानीकार हुए । उसी प्रकार जयशंकर प्रसाद जी का प्रभाव भी हिन्दी साहित्य पर पडा और प्रसादस्कूल के

1· हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ॰39

2· हिन्दी गद्य साहित्य, पृ॰80

कहानीकारों ने भी कहानी साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान दिया । इन दोनों युगप्रवर्तक साहित्यकारों के बाद दिन ब दिन हिन्दी-कहानियों का विकास कालानुकूल परिवर्तनों के साथ होता जा रहा है ।

हिन्दी कहानियों में नारी-पात्र

नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि के अनुसार मनुष्य का स्वभाव तीन प्रकार का है - उत्तम, मध्यम और अधम[1] ।" उत्तम प्रकृति के मनुष्य सदाचारी, जितेन्द्रिय, ज्ञानवान, अनेक शास्त्रों के विद्वान, ऐश्वर्यवान, दीनों के सेवक और प्रतिपालक, गंभीर, उदार, धीर और त्यागी हैं । मध्यम प्रकृतिके मनुष्य व्यवहार-कुशल, शिल्पशास्त्र में प्र वीण, मिष्ट भाषी और मधुर व्यवहार करनेवाले हैं । अधम प्रकृति के मनुष्य दुष्ट, रुक्ष, क्रोधी, हिंसक, मित्र-घाती, कामी, कृतघ्न, आलसी, घमण्डी, उद्दंड, झगडालू, छिद्रान्वेषी, चोर और पापी हैं । इसी प्रकार आचरण की दृष्टि से पुरुषों के समान स्त्रियों की भी प्रकृति तीन प्रकार की मानी गयी है । "पात्रों के आचार-व्यवहार, रहन-सहन, कथोपकथन आदि संबंधी कोई अयुक्तिकर या बेठिकाने की बात न कही जाय, इसी दृष्टि से पात्रों का वर्गीकरण किया गया है[2] ।" पुरुष की अपेक्षानारी का स्वभाव कुछ अधिक दुर्बोध है[3] । भरतमुनिके नाट्यशास्त्र में नायिकाभेद का सांगोपांग वर्णन है । यही ग्रंथ इस विषय का सर्वप्रथम उद्गम स्थल है । नायिका भेद तो काव्यशास्त्र के अंतर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है जिसका उल्लेख नारीमन के विकारों के अध्ययन के लिए आवश्यक था, जिससे दृश्य और श्रव्यकाव्यों में पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई अस्वाभाविक बात न

1· अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ·113

2· आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास, पृ·70

3· दि टाइम्स आफ इंडिया, दिनांक रविवार जून, 1961
{इंटरव्यू आफ प्रो· युंग}

आ सके । किन्तु ब्रजभाषा के अनेक कवि नायिकाओं की संख्या वृद्धि के पचड़े में पड़कर अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक गये थे।[1] आधुनिक कथासाहित्य इस परम्परागत वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि यह वर्गीकरण वर्ग है, व्यक्तिगत नहीं । यह केवल प्रेम के बाह्य रूपों पर आधारित है, इस से मनुष्य की किसी सामाजिक समस्या का हल निकाल नहीं सकते ।

प्रेमचन्द की कहानियों में स्त्री-पात्र

भारतीय नारियों में उत्थान और जागरण की भावना का उदय बीसवीं सदी में हुआ । आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता का योगदान, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू आदि राजनैतिक नेताओं का समर्थन इत्यादि के कारण राजनैतिक आन्दोलन के साथ साथ नारी आन्दोलन भी ज़ोर पकड़ा । नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हुई । इसी सदी के पूर्वार्द्ध में शोषित, पीड़ित नारी के वकील बनकर कहानी-सम्राट प्रेमचन्दजी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए । महात्मा गाँधी के समान प्रेमचन्द भी नारी को उसकी महानता और देवी गुणों के कारण पुरुष से श्रेष्ठ मानते उनका मत है कि सेवा, त्याग और वात्सल्य नारी के नैसर्गिक गुण हैं और उ जीवन का आधार है प्रेम । "शान्ति" नामक कहानी में उन्होंने लिखा है, "नारी को जीवन में प्यार न मिले तो उसका अन्त हो जाना ही अच्छा ।"[3]

---

1. अवन्तिका (काव्यालोचनांक), पृ.142, सन् 1954 जनवरी

मानसरोवर, भाग - 1 (इलाहाबाद, सन् 1954 ई.), पृ.42

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रेमचन्द की कहानियों में चरित्रों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है - §1§ प्रथम काल §1917 से 1920 ई॰ तक§ §2§ द्वितीयकाल §1920 से 1930 ई तक§ §3§ तृतीयकाल §1930 से 1936 ई॰ तक§ प्रथमकाल या प्रारंभिक काल की कहानियों में आचार, द्वितीयकाल या विकासकाल की कहानियों में चरित्र एवं उनके मनोभाव तथा अंतिमकाल या उत्कर्षकाल में उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का चित्रण किया गया है ।

प्रथमकाल के स्त्री पात्रों पर आदर्शवादऔर मर्यादावाद का प्रभाव है । उनकी मान्यताएँ परम्परागत हैं और वे लोकनिन्दा से डरती हैं[1]। "मर्यादा की वेदी" की प्रभा के लिए घर का जीवन असह्य है । आत्महत्या करने की इच्छा तक उसे होती है । तो भी उस का दृढ निश्चय है कि वह कभी घर से बाहर पैर न रखेगी । समाज भी मान्यताओं के कारण तिल-तिल मिट जानेवाली मर्यादावादिनी नारी का रूप यहाँ दृष्टव्य है । "बडे घर की बेटी" की आनन्दी ने अपनी अतिशय सहनशीलता और सद्व्यवहार से साबित किया कि वह सचमुच बडे घर की बेटी है । "पँच परमेश्वर" की खाला में एक असहाय अबला का करुण चित्र दृष्टव्य है । न्याय केलिए इधर-उधर दौडनेवाली उस आश्रय विहीना नारी की अन्तिम जीत वास्तव में मानुषिक मूल्यों की ही जीत है । "सौत" की गोदावरी, रानी सारंधा, पाप का अग्निकुंड की राजनन्दिनी, अमावस्या की रात्रि की गिरिजा और मम्ता की आदि ऐसे ही स्त्री-चरित्र हैं । ऐसा लगता है कि स्त्री-चरित्र की इन मान्यताओं के पीछे भारतीय स्त्रियों कीआदर्श संयुक्त परिवार में आस्था की परम्परागत भावना है । लेखक की स्त्रीचरित्रों के बारे में शिवं सुन्दरम् की भावना भी इन में निहित है[2]।

1· शिल्पविधि, पृ·77

2· प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ·156

विकासकाल की कथाओं में स्त्रियों का रूप उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के माध्यम से प्रस्तुत होता है[1]। उनका चरित्र-विकास अधिक स्पष्ट है। यहाँ हम पात्रों का चरित्र और उनके व्यक्तित्व के बिखरे हुए स्वरूप का दर्शन करते हैं। इस काल में चरित्र विश्लेषण या व्यक्तित्व प्रतिष्ठा की आधारशिला व्यक्ति है, उस की दुर्बलताएँ और आन्तरिकता है। उनके द्वन्द्व, संघर्ष और उनकी समस्त अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं[2]। बूढ़ी काकी के मनोभावों का करुणाजनक चित्र कितना मर्मस्पर्शी है। "एक पूड़ी मिलती तो ज़रा हाथ में लेकर देखती। क्यों न कड़ाह के पास ही चलकर बैठूँ। पूड़ियाँ छन छनकर तैरती होंगी। कड़ाह से गरम गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी[3]।" वृद्धजनों की खाद्यपदार्थों के प्रति लालच और परिवार के अन्य सदस्यों की बूढ़ों के प्रति लापरवाही का हृदय भेदक चित्र यहाँ प्रस्तुत हुआ है। इस काल की स्त्रियों में क्रांति की भावना जागृत होती है। "शंखनाद" में नारी का स्वर गूँज उठता है - "अब समझाने बुझाने से काम नहीं चलेगा, सहते सहते हमारा कलेजा पक गया। "आभूषण" में यह स्वर और अधिक तीव्र हो जाता है, "मुझ में जीव है, चेतना है, जड़ क्योंकर बन जाऊँ,···· मैं अपने को अभागिन नहीं समझती पग पग पर शंका को घोर अपमान समझती हूँ ········ कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता फिरे यह असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्य विधाता है, स्त्री क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे, क्यों उसका मुँह ताके।" "ब्रह्म के स्वांग" की वृन्दा पुरुष के खोखलेपन पर क्रुद्ध होकर घर को जेल समझती है, फिर भी वह आशा-वादिनी है। इस काल की स्त्रियाँ यथार्थ के धरातल पर खड़ी होकर स्वयं को पहचानने का यत्न करती है।

1· शिल्पविधि, पृ·111

2· वही, पृ·66

3· प्रेम पच्चीसी, पृ·133

उत्कर्षकाल की स्त्रियों में आदर्शवादी रूप के साथ साथ क्रांतिकारी रूप भी दिखाई देता है । इस काल के एक नारी पात्र मिस पद्मा का चित्रण अति आधुनिक दृष्टिकोण से किया गया है । पति को देवता, गुरु, राजा कहकर उपेक्षा न करने की अपेक्षा करनेवाली कुसुम अंत में तंग आकर कहती है - "ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है । जो आदमी इतना दंभी, स्वार्थी और नीच है, उस के साथ मेरा निर्वाह नहीं होगा[1] ।" उत्कर्षकाल के स्त्री-चरित्र नारी-मनोविज्ञान के परिचायक सहज और यथार्थ हैं ।

जयशंकर प्रसाद जी की कहानियों में नारी पात्र

हिन्दी के प्रख्यात महाकवि, नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार श्री·जयशंकर प्रसाद जी ने प्रेमचन्द की ही तरह सैकड़ों कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य को सम्पन्न किया । प्रसादजी को नारीपात्रों के चित्रांकन में अधिक सफलता मिली । उनके आदर्शपूर्ण पात्र व्यष्टि को समष्टि केलिए बलिदान करनेवाले है जिन्हें हम सतोगुणी पात्र भी कह सकते हैं[2] । उनके कतिपय नारी पात्रों का वर्गीकरण नायिका भेद की प्रणाली के आधार पर भी किया जा सकता है । "बिसाती" कहानी की नायिका को हम परकीया मान सकते हैं । उसका मूकप्रेम और परिणाम मन में मधुर वेदना उत्पन्न करनेवाला है । समुद्र संतरण" में मुग्धा नायिका की झांकी मिलती है ।

1· मानसरोवर, पृ·24

2· जयशंकर प्रसाद, पृ·278

नारी चरित्र और उनका विश्लेषण ही मुख्य रूप से प्रसाद की कला का केन्द्र-बिन्दु है । ये नारियाँ अपने अप्रतिम रूप-आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व द्वारा कहानियों का सूत्रसंचालन करती हुई अपने अंतर में घात-प्रतिघात अन्तर्द्वन्द्व विद्रोह और उत्सर्ग के तत्व छिपाये रहती है[1] । इन नारीपात्रों की परिधि में घूमनेवाले हैं उनके पुरुष पात्र । अत: उनका चित्रण अपेक्षाकृत अप्रधान और संक्षिप्त बन गया है । प्रसादजी की नारियाँ पुरुष को पतन के मार्ग से बचाकर कर्तव्य के पथ पर अग्रसर करनेवाली हैं । डॉ॰लक्ष्मीनारायण लाल ने प्रसाद के नारीपात्रों को दो पक्षों में बाँटा है करुण और भावुक[2] । "ममता" कहानी की नायिका ममता करुणा की मूर्ति है । रोहतास दुर्ग के अधिप के मंत्री चूडामणि की इकलौती बेटी है वह । उसे किसी का भी अभाव न था । पर वह विधवा थी । इसी कारण से उसका जीवन शोकमय बना । उसका चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी के सभी गुणों से पूर्ण है । अपने पिता का यवनों का उत्कोच स्वीकार करना वह पसन्द नहीं करती । उस ब्राह्मण वंशजा का कथन है कि ब्राह्मण अपरिग्रही हैं, भविष्य में भिक्षा माँगकर जीवन बिताना पडे तो भी वह धर्म के मार्ग से विचलित होना पसन्द न करेगी । उसकी आशंका सच निकली । यवनों ने धोखे से दुर्ग पर हमला करके चूडामणि की हत्या की । सब उनके अधीन हो गये, पर ममता न मिली । वह एक निर्जन प्रांत में तपस्विनी का-सा जीवन बिता रही थी । सभी विधर्मियों को वह करुणा के लिए अपात्र समझती थी, तो भी एक दिन संध्या को एक शरणागत को, विधर्मी जानते हुए भी, उसने अभयदान दिया । उसके अनुसार वह मात्र कर्तव्य पालन था । प्रत्युपकार के रूप में ममता की झोंपडी के स्थान पर महल बनाने का आदेश सुनकर वह भयभीत हो गयी । अपनी झोंपडी का नष्ट होना उसे असह्य था । अंत में मृत्युन्मुख ममता ने जान लिया कि उसने जिसकी प्राणरक्षा की थी, वह मुगल सम्राट हुमयूँ था और उसका पुत्र अकबर

1· शिल्पविधि, पृ·77

2· वही, पृ·204

अपने मृत पिता के आग्रहानुसार वहाँ महल बनवाने आया है । जो हो, ममता की मृत्यु के बाद वहाँ महल बन गया और एक शिलालेख भी खुदवाया गया जिसपर हुमायूँ और अकबर का नाम था, पर ममता का नाम नहीं था । इसलिए ममता के अपूर्व त्याग का कोई भी उल्लेख इतिहास के पन्नों पर नहीं हुआ । प्रेम, त्याग, सेवा आदि महद् गुणों से सम्पन्न होने पर भी इतिहास द्वारा विस्मृत अनेक नारियों के प्रतीक के रूप में ममता का त्यागोज्वल चित्र अंकित किया गया है ।

उनके नारी पात्र स्थान स्थान पर कर्मप्रधान है । वे कभी प्रतिहिंसा के लिए क्रियाशील हुई हैं, कहीं "चूडीवाली" सी अपूर्व साधिका का बनकर अपनी तपस्या से पुरुष को पाती हैं[1] । विभिन्न देशकाल की नारियों का चित्रण करते समय उन्होंने सर्वत्र स्त्रीत्व की महत्ता को समन्वयवादी दृष्टिको से अंकित किया है । "उनके नारी चरित्रों के विकास में बौद्ध-दर्शन का भी प्रभाव पडा है और इसीलिए उनमें प्रेम, दया, क्षमा, करुणा और उत्सर्ग की भावना की प्रचुर मात्रा ने मिलकर उन्हें आदर्श प्रतिमा बना डाला है[2] ।

लोकमंगल की भावना से अभिभूत स्नेहस्वरूपिणियाँ भी प्रसाद की कहानियों में हैं । "आकाशदीप" की चम्पा उस प्रकार की आराध्य नारी है । जाह्नवी नदी के तट पर स्थित चम्पा नगरी की एक क्षत्रिय बालिक है वह । उसके पिता वणिक मणिभद्र के यहाँ काम करते थे । रात को जब वे मणिभद्र की सेवा के लिए समुद्र की गहराइयों में खो जाते थे तो चम्पा की माता आकाशदीप जलाकर नाविकों का मार्गनिर्देश करती थी । एक दिन पापवासना से उद्भ्रान्त मणिभद्र ने चम्पा से अन्याय की चेष्टा की । चम्पा के पिता आग-बबूला हो गये । फिर एक दिन सात जलदस्युओं को मारकर

1· शिल्पविधि, पृ·205

2· प्रसाद की कहानियाँ, पृ·38

चम्पा के पिता ने वीरगति प्राप्त की । मणिभद्र ने पुन: चम्पा से घृणित प्रस्ताव किया । चम्पा ने उसे गालियाँ दीं तो उसने उसे बन्दी बनाया । जलदस्यु बुद्धगुप्त भी मणिभद्र के जहाज़ में बन्दी था । चम्पा ने अपने कटार से बुद्धगुप्त की जंजीर काटकर उसे मुक्त किया और फिर स्वयं मुक्त हुई । दोनों एक द्वीप में पहुँच गये, उस द्वीप का नाम रखा गया चम्पा । दोनों साथ रहने लगे । परस्पर आकृष्ट होने पर भी चम्पा ने बुद्धगुप्त के प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि बुद्धगुप्त का स्थान उन जलदस्युओं के बीच है, जिन्होंने चम्पा के पिता की हत्या की थी । इस प्रकार प्रेम और प्रतिहिंसा का संघर्षस्थल बन गया उसका हृदय । बुद्धगुप्त को उसने उसकी जन्मभूमि पर लौटाया । फिर वह अकेली उस द्वीप में द्वीपवासियों की सेवा कर उनकी रानी बनकर जीने लगी । हर रोज़ शामको वह द्वीप में आकाश दीप जला देती थी ताकि कोई नाविक रास्ता न भूले । इस कहानी में चम्पा का चरित्र ही सर्वप्रमुख है । व्यक्तिगत प्रेम और आदर्शस्वरूप प्रतिहिंसा के बीच पड़ने से वह मन से चाहने पर भी बुद्धगुप्त को स्वीकार नहीं कर सकती अंत में वह अपनी कटार समुद्र में फेंक देती है । इस प्रकार अपनी प्रतिहिंसा की भावना को भी समुद्र में फेंककर वह तपस्विनी-का-सा जीवन व्यतीत करती है । अपनी निस्वार्थ सेवावृत्ति, प्रेम-भावना और सच्चरित्रता के कारण यह त्यागमयी मानिनी पाठक की श्रद्धा की पात्री बनती है ।

"पुरस्कार" की मधूलिका, "सालवती" की सालवती आदि भी इस प्रकार लोककल्याणकारी भावना से ओतप्रोत रमणियाँ हैं ।

"प्रेमचन्द स्कूल" के सर्वप्रमुख कहानीकार श्री· विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में उल्लेखयोग्य है ताई, रक्षाबन्धन आदि कहानियाँ ।

"ताई" में नारी की दुर्बलता और कोमलता दोनों का सामंजस्य है । आचार्य चतुरसेन शास्त्रीजी की कहानियों पर प्रसाद जी का स्पष्ट प्रभाव है । दुखवा मैं कासे कहूँ मोरीसजनी, नूरजहाँ का कौशल आदि कहानियों के स्त्री पात्र इसके उदाहरण है ।

श्री॰सूर्यकांत त्रिपाठी निरालाजी के प्रथम कहानी संग्रह की "सुकुल की बीबी" एक सामाजिक और व्यंग्य-प्रधान कहानी है ।

श्रीमति गजानन्द शास्त्रिणी में एक ऐसी असती स्त्री का चित्रण हुआ है जो अपने पति को प्रसन्न रखने और प्रेमी को चिढाने के लिए पतिव्रत धर्म पर निबन्ध लिखती है । सखी, लिली इन कहानी-संग्रहों में भी नारी-चरित्रों के चित्रण को प्रमुखता दी है । निरालाजी स्त्री की स्वतंत्रता के समर्थक हैं, पर उच्छृंखलता के नहीं । नारी के प्रेमपूर्ण, शिक्षित और संस्कृत चरित्र को प्रदर्शित करने का प्रयास उन्होंने अपनी कहानियों में किया है ।

श्री॰ वृन्दावनलाल वर्मा की चरित्र प्रधान कहानियाँ हैं राखीबन्द भाई, तातार, एक वीर राजपूत, कलाकार का दण्ड, शेरशाह का न्याय, सौन्दर्यप्रतियोगिता आदि । इन में चरित्र-विकास की प्रेमचन्द परम्परा का निर्वाह हुआ है ।

उपन्यास

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद हिन्दी में गद्य साहित्य का अविर्भाव हुआ । "शासन संबंधी आवश्यकताओं तथा जीवन की नवीन परिस्थितियों के कारण गद्य जैसे नवीन साहित्यिक माध्यम की आवश्यकता हुई और गद्य के द्वारा ही हिन्दी में आधुनिकता का बीजारोपण

हुआ (उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में) न कि काव्य द्वारा । डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ (राजकमल प्रकाशन, बम्बई) , निबंध संग्रह की भूमिका) पृ॰3) सन् 1857 की क्रान्ति के बाद हिन्दी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ । यह गद्य खड़ीबोली गद्य था ।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक उपन्यास साहित्य का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ और उसके साहित्यिक रूप का विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ । साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा है उपन्यास । हिन्दी साहित्य में उपन्यास आधुनिककाल की उपज है । यह मानव जीवन के अनुभवों का प्रतिबिम्ब है और मानवीय अनुभव की सीमा का विस्तार करता है । उपन्यास चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक हो या ऐतिहासिक हो, पाठक को विशेष प्रकार के आनन्द की उपलब्धि होती है । अत: वह मनोरंजन का साधन है, साथ ही साथ उससे पाठक के ज्ञान और अनुभव की भूख भी शान्त होती है । इसकी लोकप्रियता का एक कारण है, इसकी गद्यात्मकता ।

उपन्यास शब्द संस्कृत के "अस्" धातु से उत्पन्न हुआ है जिस का अर्थ होता है "रखना" असुक्षपणे (विश्वनाथ "साहित्य दर्पण" षष्ठ परिच्छेद (जीवानन्द विद्या सागर भट्टाचार्य कलकत्ता, 1934) "उप" और "नि" पूर्वक "अस्" धातु में धञ् प्रत्यय जो उनसे ही "उपन्यास" शब्द बना है । इस आधार पर उपन्यास का अर्थ हुआ वह रचना जिस में जीवन के अनेक पक्षों का प्रक्षेपण निकट या समीप से किया गया हो । इसकी दूसरी व्याख्या के अनुसार "अर्थ" को युक्तियुक्त रूप में उपस्थित करना ही उपन्यास है ।

हिन्दी के उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के मत में "उपन्यास गद्य साहित्य का वह अंग है जो मानव के चरित्रों का चित्र उपस्थित करते हुए उसके जीवन पर प्रकाश डालता है, और रहस्यों का उद्घाटन करता है[1]। उपन्यास में सुन्दर कथानक और भलीभाँति चित्रित पात्र होते हैं।

उपन्यास के बारे में यशपाल जी कहते हैं "उपन्यास से मेरा अभिप्राय है समाजधारा और विचारधारा के आधार में तारतम्य को प्रकट करना। उपन्यास में जिन घटनाओं की हम कल्पना करते हैं, वे स्थान और पात्रों के परिवर्तन से प्राय: घटती रहती है[2]। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपन्यास मनोरंजक साहित्यांग है[3]।
"उपन्यास मानव के विविध व्यापारों तथा तत्संबन्धित परिस्थितियों की वास्तविक अनुभूतियों को काल्पनिक धरातल पर प्रस्तुत करता है। उसका बाह्य पक्ष काल्पनिक किन्तु आभ्यंतर पक्ष यथार्थ होता है[4]।

---

1. प्रेमचंद कुछ विचार, पृ.41
2. साहित्य सन्देश आधुनिक उपन्यास, अंक सन् 1959, पृ.74
3. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - साहित्य का साथी, पृ.83
4. डॉ. तहसीलदार दूबे - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्प विधि का विकास - भूमिका, पृ.5

मि॰राल्फ फॉक्स का कथन है,

"The novel is not merely prose, it is prose of man's life, the first art to attempt to take the whole man and give him expression"

मुक्तक काव्य, प्रबंध काव्य, नाटक, कहानी एवं उपन्यास आदि सभी में उपन्यास का तत्व (कथांश) समाहित रहता है । यह श्रव्यकाव्य के अंतर्गत आता है ।

रिचर्ड चर्च के अनुसार "The novel is the child of poetry".

डॉ॰तहसीलदार दूबे के अनुसार उपन्यास और महाकाव्य ~~एक ही क्यारी के~~ दो फूल है, आत्मा एक है और शरीर रचना भिन्न । (डॉ॰तहसीलदार दूबे स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास, भूमिका, पृ॰11) उपन्यास और कहानी कथा-साहित्य के दो रूप हैं । उपन्यास को यदि मानव का सम्पूर्ण जीवन मान लिया जाए तो कहानी उस जीवन में घटित होनेवाली एक घटना होगी । नाटक दृश्यकाव्य है । उपन्यास में वर्णनात्मकता अनिवार्य है और नाटक में संवादात्मकता ।

---

1. Ralf Folx - Novel and the poeple, p.52
2. Richard Church - The growth of English novel,p.126

उपन्यास के छः रचना तत्व है - कथानक, कथोपकथन, पात्र एवं चरित्रचित्रण, देश-काल अथवा वातावरण, विचार एवं उद्देश्य, भाषा-शैली ।

हिन्दी उपन्यास

आधुनिक उपन्यासों का विकास यूरोप में हुआ । हिन्दी उपन्यासों का विकास केवल पाश्चात्य उपन्यासों की प्रेरणा से ही नहीं हुआ । हिन्दी से पहले बंगला में उपन्यासों की रचना होने लगी थी । उन्हें हिन्दी में अनुवादित किया गया और स्वतंत्र रचनाओं की भी सृष्टि हुई । भारतेन्दु हरिश्चन्द ने स्वयं पूरा उपन्यास लिख न पाने पर भी इस प्रकार के अनुवादित और मौलिक कृतियों की सृष्टि केलिए प्रोत्साहन दिया । उनके समकालीन लाला श्रीनिवास दास जी ने सन् 1882 में अंग्रेज़ी ढंग पर परीक्षागुरु" नामक उपन्यास की रचना की । इसे हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है । उसके बाद हिन्दी में कई सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के अलावा ऐय्यारी, तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास भी लिखे गये । अम्बिकादत्त व्यास का "आश्चर्यवृत्तान्त", बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान", "नूतन ब्रह्मचारी" आदि उल्लेखनीय हैं । देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी और घटना वैचित्र्य-प्रधान उपन्यास "चन्द्रकांता" और "चन्द्रकांता-संतति" ने पाठकों को आकृष्ट किया । "सोभद्रा", "चतुरा चंचल", "नये बाबू" आदि गोपाल राम गहमरी के जासूसी उपन्यास हैं । किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं "तारा", "सौतिया डाह", "लवंगलता" आदि । ठाकुर जगमोहनसिंह का "श्यामास्वप्न", व्रजनन्दन सहाय का " "सौन्दर्योपासक" आदि भावप्रधान उपन्यास हैं । आचार, धर्मनीति और समाज सुधार की भावनाओं से ओतप्रोत और मनोरंजन के लिए लिखे गये इन उपन्यासों की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि सन् 1915 ई॰ तक हिन्दी में ऐसे उपन्यासों की बाढ रही । "इस साहित्यिक नवजागरण का आभास हिन्दी के प्रथम उपन्यास "परीक्षागुरु" से ही मिल जाता है । इस के प्रकाशन के पूर्व हिन्दी भाषा-भाषी जनता संस्कृत, अरबी-फारसी के रोमानी, विस्मयजनक,

आदर्शमूलक और बनावटी साहस, छल-छद्म से भरे आख्यानों से ही अपना मनोरंजन कर रही थी ।[1] ये उपन्यास साहित्य की स्थायी सम्पदा न बन सके । मुंशी प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यासों को प्रौढ़ता और गरिमा प्रदान की जो बंकिम, रवीन्द्र और शरद् ने बंगाली उपन्यासों को या महान पाश्चात्य उपन्यासकारों ने यूरोपीय उपन्यासों को प्रदान की । वस्तुत: आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की परम्परा का प्रारंभ प्रेमचन्द से ही होता है।[2]

हिन्दी उपन्यासों में पात्र एवं चरित्र-चित्रण

उपन्यास के छ: रचनातत्वों में पात्रों का अधिक महत्व है । उपन्यासकार आत्माभिव्यक्ति को साकारना प्रदान करने के लिए शब्द-मूर्तियों की रचना करते हैं । ये शब्द-मूर्तियाँ हैं पात्र[3] । प्रसिद्ध उपन्यासकार थैकरे का कथन है - "I do not control my characters Iam in their hands and they take me Where they please"

पात्रों के स्वतंत्र विकास की ओर ध्यान देने से वे पूर्ण सत्य प्रतीत होंगे । उनको सजीव बनाने के लिए उनके रूप में किसी जीवित व्यक्ति का पूर्ण प्रतिबिम्ब स्थापित करना चाहिए[5] । डॉ॰रामलखन शुक्ल के अनुसार कथानक उपन्यास का मेरुदण्ड है और चरित्र-चित्रण उसके प्राण[6] । एक उपन्यास में अच्छा कथानक और अच्छी तरह चित्रित पात्र होते हैं[7] ।

1· आलोचना (उपन्यास अंक), पृ·64
2· हिन्दी गद्य साहित्य, पृ·58
3· ई·एम·फार्स्टर, ऐस्पेक्ट्स ऑफ द नॉवेल (जनवरी 1944, लन्दन, पृ·64)
4· डब्ल्यू·एच·हड्सन - आन् इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ लिटरेचर (1949)पृ·144
5· वही, पृ·146
6· हिन्दी उपन्यास कला, पृ·23
7· नार्मन कज़िन्स द्वारा सम्पादित राइटिंग फॉर लव और मनी (1949)
-लांगमैनग्रीन

पूर्वप्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में चरित्र चित्रण का स्थान गौण है । इस युग के उपन्यासकार चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कथानक घटनाओं के समायोजन एवं उद्देश्यपूर्ति पर अधिक ध्यान रखते थे । उनके उपन्यासों के पात्र मानवीय है, पर उनका विकास न हो पाया, उनका पूर्ण रूप सामने न आ पाया ।[1]" इसलिए उनमें स्वाभाविकता और असामान्यता नहीं है । प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार इनमें सद् और असद् पात्र है । लेखकों के कठिन आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण पात्रों के चरित्र-चित्रण में बाधा हुई है । इसलिए प्रेमचन्द तक आते-आते चरित्रों के विकास में ऐसा रूपात्मक परिवर्तन हो गया कि पहले के कथा-चरित्रों से इन नये चरित्रों का संबंध-जोड़ने में लोग संकोच करने लगे । मानव चरित्रों के सूक्ष्म उद्घाटन और सामाजिक वास्तविकता के विशद और मार्मिक चित्रण के द्वारा प्रेमचन्द ने हिन्दी के कथा चरित्रों में क्रांति उपस्थित कर दी[2] ।" द्विवेदीयुग में श्री·चन्द्रधरशर्मा गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद के अविर्भाव ने चरित्र एण्ड कम्पनी, कनाडा, नामक पुस्तक में एडिथ व्हार्टन का निबंध चित्रण के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित की । गुलेरीजी की कहानी "उसने कहा था" को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने "महाकथा" या "एपिक" की संज्ञा दी है[3] ।

भेदोपभेदकी दृष्टि से पात्रों के दो भेद हैं - प्रधान पात्र और गौण पात्र । प्रधान पात्र कथानक का नेतृत्व करते हैं, घटनाओं में उनका प्रमुख भाग है । नायक, नायिका, सहनायक और सहनायिका प्रधान पात्र है । इन पर सम्पूर्ण कथानक आश्रित है । मुख्य पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने और उनको महत्ता प्रदान करने केलिए तथा कथानक को तीव्रता प्रदान करने केलिए गौण पात्रों की सृष्टि होती है । चरित्र-विकास की दृष्टि से पात्रों के

1· आलोचना [उपन्यास अंक], पृ·64

2· आलोचना, पृ·13

3· आधुनिक साहित्य, पृ·198

दो भेद है - स्थिर और गतिशील । स्थिर पात्र आद्यन्त एक समान, परिवर्तन विहीन रहते हैं । वे व्यक्ति नहीं, टाइप हैं और वर्ग के प्रतिनिधि होने के कारण जातीय है । उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व दृष्टिगत नहीं होता । गतिशील पात्र वातावरण के अनुसार परिवर्तित होते हैं । प्रेमचन्द और उनके युग के अधिकांश उपन्यासकारों के चरित्र वर्ग के प्रतिनिधि हैं । "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है ।[1]" ऐसा कहकर प्रेमचन्दजी ने उपन्यास में चरित्र तत्व की अनिवार्यता प्रकट की है ।

उपन्यास में नारी

मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं । मनुष्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं । समाज में पुरुष और नारी हैं, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों मिलकर समाज का निर्माण करते हैं । मानव समाज की मूल पृष्ठभूमि में नारी है । नारी की स्थिति के विकास से ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास प्रतिबिम्बित होता है । समाज को प्रेरणा, शक्ति, प्रेम और विश्वास देनेवाली नारी ही है । पुरुष जब जीवन संघर्ष में असफल होता है, और जब उसका मन अशांति, अवसाद और पीडा से अस्वस्थ होता है, तब नारी उसकी सहायता करती है । पुरुष ने अकेले ही निर्माण की प्रक्रिया पूरी नहीं की है । सत्य स्थिति तो यह है कि पुरुष अराजकता उत्पन्न कर सभ्यता की लम्बी दौड में वास्तविक संस्कृति को जन्म देने में सदैव असफल रहा है ।

---

१. प्रेमचन्द कुछ विचार, चौथा संस्करण, १९६१, बनारस, पृ.३८

लेकिन नारी उसे अपनी, ममता, सहानुभूति और आत्मविश्वास प्रदान करके सभ्यता के मार्ग में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है । पुरुष अपने जीवन की व्यक्तिगत बातों के संबंध में ही सोचता है और वास्तविक मूल्यों की अवहेलना करता है[1] । विकास क्रम में पुरुष नारी के पीछे है । उनमें थोडी पशुता है । वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर यह सृष्टि थमी हुई है और ये नारियों के सर्वप्रधान गुण हैं[2] । पृथ्वी की भाँति धैर्यवान, सहिष्णुता शक्तिसम्पन्न और त्यागमयी नारी अपने अस्तित्व को पूर्णतया मिटाकर अपने पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है[3] । नारी के अभाव में सृष्टि मूल्यहीन है, मानव जीवन और समाज अपूर्ण है । उपन्यास का जीवन से संबंध है, अत: उसमें नारी चित्रण भी होता है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आधुनिककालतक सभी उपन्यास लेखकों ने नारी को मानवता, राष्ट्र, समाज और उस के अपने व्यक्तिगत जीवन के परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका चित्रण किया है, उसके जीवन का मूल्य आँका है । उन्होंने नारीजीवन की अनेक समस्याओं के साथ सामाजिक कुरीतियों और पाखंडों की ओर ध्यान दिया । xx xx xx भारतीय नारियों के नवोत्थान की दृष्टि से यह युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है । शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार हुआ, नवचेतना का विकास हुआ और रूढियाँ समाप्त हुई । अत: नारियाँ प्रगति की ओर उन्मुख हुई । उनकी शिक्षा का स्वरूप, समाज में उनका स्थान, राजनीति में उनका भाग इनके संबंध में उपन्यासकार ध्यान देने लगे[4] ।

---

1. सिगमण्ड फ्राइड - सिविलिज़ेशन एण्ड इट्स डिसकटेंटस {1930} लन्दन, पृ.7
   हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.66
2. प्रेमचन्द कर्मभूमि, बनारस, पृ.200
3. प्रेमचन्द गोदान, {1936}, बनारस, पृ.154
4. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.41

मानवजीवन के प्रतिबिम्ब उपन्यास में पुरुष के समान ही नारी का भी भाग है । कुछ उपन्यासों में नारीपात्रों को ही प्रमुखता है । साहित्य समाज का दर्पण है । नारी और पुरुष के सहयोग से ही समाज का निर्माण होता है, अतः साहित्य में दोनों के चित्रण का समान महत्त्व है । वाई॰एम॰ रीग के अनुसार नारी पुरुष से हीन नहीं । उसकी अपनी मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ हैं, उसका व्यक्तित्व पुरुष के व्यक्तित्व के समान ही महत्त्वपूर्ण है । सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में पुरुषों के समान ही भाग लेनेवाली और स्वतंत्रता संग्राम की नींव की पत्थर असंख्य नारियों का तथा पुराणेतिहास प्रसिद्ध आदर्शमयी, त्यागमयी वीरनारियों का उल्लेख हमने अन्यत्र किया है । समाज के इस महत्त्वपूर्ण अंग की उपेक्षा साहित्य में कैसे की जा सकती है ? उपन्यास में नारी पात्रों के रूप और उनकी संख्या कथावस्तु के अनुसार न्यून या अधिक होंगे । उदाहरण केलिए "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई में स्त्री पात्र अधिक हैं जब कि प्रेमाश्रम में पुरुष पात्र अधिक है ।

भारत की ही नहीं, समस्त विश्व की नारियों के सम्मुख अपनी हीनावस्था की समस्या थी । नारी की शिक्षा, प्रगति, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार की प्राप्ति आदि समस्याओं की ओर समाज का ध्यान या तो गया ही नहीं, और गया भी था तो परम्परा के प्रति मोह के कारण उनका हल करने में बाधाएँ उपस्थित होती थीं । अधिकांश नारियों में इन समस्याओं का हल करने में तत्परता भी नहीं थी ।

ऐसी परिस्थिति में साहित्य-क्षेत्र में सामाजिक उपन्यासकारों का पदार्पण हुआ जिनके सामने सबसे बड़ा विषय नारी था । वह हिन्दी समाज की चिर लांछिता, चिरवंचिता, चिर बंदिनी नई दीप्ति के साथ हमारे सामने आयी । उसकी समस्यायें ही सारे देश की समस्यायें थीं । बाल विवाह, विधवा-विवाह, दोहजू, आभूषण-प्रियता, कलहप्रियता, पुरुष से हीनता - ये सब विषय सामाजिक उपन्यासकारों के मुख्य विषय रहे हैं । इन सब विषयों में नारी अत्यन्त निकट से लिपटी हुई थी ।[1]"

अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, विधवा विवाह, नारी की आर्थिक स्वतंत्रता, पारिवारिक जीवन, प्रेम इत्यादि समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न उपन्यासकारों ने किया । उपन्यास में नारी-पात्रों के दो वर्ग है - (1) नायिका अथवा सहनायिका । (2) गौण पात्र । इनमें नायिका का स्थान मुख्य है । नायिका के चरित्र को स्पष्ट करने, वातावरण को नवीन दिशा प्रदान करने अथवा नवीन वातावरण की सृष्टि करने के लिए हैं गौणमात्र । पाश्चात्य देशों में आदम और हौवा तथा भारत में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना इस बात का प्रमाण है कि आदिकाल से स्त्री-पुरुष का संबंध रहा है । इस संबंध में वासना का प्रमुख स्थान है । अत: नारी के वासनात्मक और अवासनात्मक दो रूपों की कल्पना की गयी है । पत्नी, प्रेमिका, वेश्या आदि नारी के वासनात्मक रूप के उदाहरण हैं । अवासनात्मक के अंतर्गत परम्परागत एवं नवीन दो विभाग हैं । माँ, बहन, सास आदि परम्परागत रूप हैं, अध्यापिका, वकील आदि आधुनिक रूप हैं । निम्नलिखित प्रकार से भी उपन्यास के नारीपात्रों का श्रेणी-विभाजन किया गया है -

---

1. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डॉ॰ रामरतन भटनागर

§1§ सफल प्रेमिकायें §2§ असफल प्रेमिकायें §3§ सफल गृहस्थ नायिकायें §4§ असफल गृहस्थ नायिकायें §5§ फेशन परस्त विलासिनी नायिकायें §6§ विधवा नायिकायें §7§ वेश्यायें §8§ नर्तकी नायिकायें §9§ राजनीति में भाग लेने वाली नायिकायें §10§ वीरांगनायें §11§ कृषक बालायें §12§ मज़दूरिनें §13§ जासूस नायिकायें ।

हिन्दी उपन्यास - साहित्य के इतिहास को सुविधा के लिए युगों में विभक्त किया जा सकता है, उदा॰ पूर्वप्रेमचन्दयुग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग इत्यादि ।

पूर्वप्रेमचन्द काल

सन् 1882 ई॰ से सन् 1916 ई॰ तक के काल को हम पूर्व-प्रेमचन्दकाल मान सकते हैं । यह हिन्दी उपन्यास का बाल्यकाल है । इस काल के संबंध में श्रीमती ओम शुक्ल का कथन है, "हिन्दी उपन्यास का बाल्यकाल शिक्षात्मक तथा काल्पनिक साहित्य सृजनमें व्यतीत हुआ । यह साहित्य तिलस्मी, ऐय्यारी, प्रेम, वियोग और उपदेशात्मक कथाओं में रमा रहा । वास्तविक जीवन के ठोस आधार के अभाव तथा कल्पना क्षेत्र के विचरण के फलस्वरूप औपन्यासिक कला का विकास न हो सका ।"[1] इस युग के उपन्यासकार कथासूत्रों और भविष्य में होनेवाली घटनाओं का संकेत स्वयं देते हैं । घटनाओं को पात्रों की अपेक्षा अधिक महत्त्व इस युग में दिया गया है और पात्र एवं चरित्र-चित्रण काल्पनिक बन पडे हैं । इन उपन्यासों में एक काल्पनिक जगत का निर्माण किया गया है और मनोरंजन ही इनका ध्येय है

1· हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, पृ॰129

किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "लवंगलता" (1889) "स्वर्गीय कुसुम" (1890) "त्रिवेणी" (1894), "प्रणयिनी-परिणय" (1890) "हृदयहारिणी" (1890) "इन्दुमती" (1906), "चन्द्रावली" (1903) "हीराबाई (1905), "चन्द्रिका" (1905), "मल्लिकादेवी" (1905), गोपालराम गहमरी का उपन्यास "तीन पतोहू" (1905) रूपनारायण पांडेय का उपन्यास "रमा" (1905) रामनरेश त्रिपाठी का उपन्यास "वीरांगना और वीरबाला" (1911) लाल किशोर सहाय पांडेय का उपन्यास "रोहिणी" (1916) आदि पूर्व-प्रेमचन्द काल में रचे गये हैं ।

पूर्वप्रेमचन्दकाल के उपन्यासों में नारी

पूर्वप्रेमचन्दकाल के उपन्यासों में यानी हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में नारी की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । इन में विमाता, विधवा, गृहस्था, वीरांगना आदि विविध प्रकार के स्त्रीपात्रों का चित्रण मिलता है । "पुरुष प्रधान समाज में नारी सदा से रहस्य चिन्तन, जिज्ञासा और संघर्ष की वस्तु रही है । पुरुष की प्रधानता ने नारी को लेकर अनेक समस्यायें खडी कर दी हैं । नारी को अनेक बंधनों में बाँध कर अपनी सुविधा के लिए उसने उसे पंगु बना डाला है । रीतिकालीन साहित्य में नारी दौत्य, अभिसार, मानमोचन और रतिक्रीडा का ही विषय रही है । पुरुष के सारे जीवन में भी उसका प्रवेश नहीं हो पाया है, समाज की तो बात ही क्या है । वह समाज का इतना दीन-दुर्बल और गलित अंग है कि उसकी उपेक्षा सरलता पूर्वक की जा सकती है । भारतीय नारीजीवन के सभी पहलुओं को हमारे उपन्यासों ने चुना ।"[1]

---

1. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डॉ. रामरतन भटनागर

संयुक्त परिवार संबंधी परम्परागत मूल्यों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से "भाग्यवती" §1877§, और "ठेठ हिन्दी का ठाठ" §1899§ महत्वपूर्ण हैं। संयुक्त परिवार की ह्रासात्मक स्थिति का प्रथम सूत्र "हिन्दू गृहस्थ" में मिलता है।

विवाह-संबंधी परम्परागत और आधुनिक मूल्यों का संघर्ष भी इस युग के उपन्यासों में दृष्टव्य है। "भाग्यवती" में भाग्यवती के पिता अपनी पत्नी के सामने बालविवाह का विरोध करते हैं। "त्रिवेणी" में सोलह वर्ष का मनोहर और तेरह वर्ष की त्रिवेणी का विवाह होता है। किशोरीलाल गोस्वामी के अनुसार रजस्वला लड़की छिन भी भी क्वांरी रखने लायक नहीं[1]। प्रेमविवाह के संबंध में भी नारी की भावना में अधिक परिवर्तन नहीं आ पाया है। उदाहरण के लिये "श्यामास्वप्न" §1885§ में श्यामा का कथन ही पर्याप्त है। श्यामसुन्दर ने प्रेमविवाह की बात छेडी तो श्यामा कहती है, "मान्यवर, प्यारे, यह क्या व्यापार है ? यह किस वेद का मार्ग है ? " स्वर्गीय आत्मिक कुसुम" की कुसुम कुमारी छिपकर वसन्तकुमार से विवाह कर लेती है, पर खुलकर उस के साथ रहने का नैतिक साहस उसमें नहीं है। विवाह पूर्व प्रेम की मान्यता के संबंध में भी इस युग की नारियाँ एकमत नहीं हैं। "हृदय-हारिणी वा आदर्श रमणी §1890§ की कुसुम का व्यवहार इसका समर्थन करता है[2] तो "अधखिला फूल" §1907§ की देवहूती विवाह के पहले अपने प्रेमी से बातचीत करना भी अनुचित समझती है[3]। पूर्वप्रेमचन्द काल के उपन्यासकार

---

1. "चपला" §1903§, पृ.36
2. हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी - वृन्दावनप्रकाशन, पृ.88
3. अधखिला फूल - डॉ.प्रतापनारायण टंडन - हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ.112 से उद्धृत

विधवा-विवाह के पक्ष में नहीं हैं । श्री॰राधाचरण गोस्वामी "विधवा विपत्ति" §1888§ नामक उपन्यास में अपना मत प्रकट करते हैं कि विधवाओं को पुनर्विवाह की बात न सोचकर केवल पति की स्मृति में सात्त्विक जीवन व्यतीत करना चाहिए । मेहता लज्जाराम शर्मा तो "सुशीला विधवा" §1906§ में यहाँ तक कहते हैं कि पति के मरने पर सती होना ही परमधर्म है, पर यह कालानुसृत नहीं है, इसलिए स्वप्न में भी पराये पुरुष को न देखकर सदा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करनेवाली विधवा ज़रूर परलोक में अपने पति से मिलेगी[1] । किशोरीलाल गोस्वामी के "कनक कुसुम मस्तानी" §1903§ में यवनबाला मस्तानी और बाजीराव का विवाह अन्तर्जातीय विवाह का उदाहरण है । विवाह में कुलमर्यादा को भी महत्व दिया जाता था । बालमुकुन्दवर्माके "मालती" §1904§ में सजातीय होने पर भी गरीब रत्नचन्द्र और अमीर मालती का विवाह न होने पाता । परम्परागत विवाह के मूल्यों में विवाह का आत्मिक संबंध, जन्मजन्मांतर का संबंध, पूर्वनिश्चित संबंध आदि स्वीकृत है । आदर्श हिन्दू §1914§ में मेहता लज्जाराम शर्मा के कथनानुसार पति पत्नी का हृदयेश्वर है, सुख-दुःख का समभागी है और जन्मजन्मांतर का संगी है[2] ।

दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा, सती प्रथा, बहु विवाह, आदि सामाजिक कुरीतियों पर भी उपन्यासकारों की दृष्टि पडी है । लक्ष्मीनारायण गुप्त के "दर्शनी हुंडी" §1912§ में दहेज-प्रथा के विरूद्ध नारी का प्रथम विद्रोहात्मक उद्गार गूंज उठा । धनलोभ से मंजरी का विवाह बूढे से होनेवाला था तो वह आत्महत्या कर लेती है, उसके पहले वह कहती है, "हे जगदाधार ! तू उन भले मानुसों से भली प्रकार समझियो, जो बेचारी निरपराध बालिकाओं को

1· सुशीला विधवा - पृ·152

2· आदर्श हिन्दू - भाग-1, पृ·4

भेड-बकरी की तरह योग्य अयोग्य सब ही के साथ धन पाकर हाँक देते हैं[1]।" मेहता लज्जाराम शर्मा "सुशीला विधवा" (1906) में पर्दा-प्रथा का समर्थन करते हैं[2]।" उनके अन्य उपन्यास "आदर्श हिन्दू" (1915) की प्रियंवदा भी पर्दा-प्रथा का समर्थन करती है[3]। सत्ययुग में सती-प्रथा समादरणीय थी, पीछे बल पूर्वक सती बनाने की कुरीति चली तो समाज सुधारकों के प्रयत्न से उसे नियम विरुद्ध घोषित किया गया। तो भी तत्कालीन उपन्यासकार इस प्रथा के आकर्षण से मुक्त न हुए। "आदर्श हिन्दू" में एक वृद्धा ने अपने पति की मृत्यु का वरण किया तो उपन्यासकार उसकी प्रशंसा करते न थकते[4]। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "राजकुमारी" में जमना सती होती है तो उसका पक्ष लेकर उपन्यासकार का कथन है कि सती-प्रथा के उठने पर भी सती सती ही होती है[5]। किशोरीलाल गोस्वामी के "पुनर्जन्म वा सौतिया डाह" (1907) में सुशीला यह कहकर पुरुष के बहुविवाह का समर्थन करती है कि "धर्मशास्त्र में स्त्री केलिए केवल एक ही विवाह की व्यवस्था है पर पुरुष असंख्य विवाह कर सकते हैं[6]।" लेकिन गोपालराम गहमरी ने "डबल बीबी" नामक उपन्यास में साबित किया है कि दो विवाह दुर्गत हैं।

प्रेम, गार्हस्थ्य जीवन आदि के आधार पर वर्गीकरण करें तो पूर्व प्रेमचन्द युगीन नारीपात्रों में सफल प्रेमिकायें, असफल प्रेमिकायें, सफल गृहस्थ नारियाँ आदि हैं। ऐसे कुछ प्रमुख नारीपात्रों का उल्लेख आगे किया जायगा

---

1. दर्शनी हुंडी - डॉ. प्रतापनारायण टंडन हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ. 185-186 से उद्धृत
2. सुशीला विधवा - बम्बई संस्करण, पृ. 116
3. आदर्श हिन्दू - काशी संस्करण, पृ. 67
4. आदर्श हिन्दू - पृ. 150
5. राजकुमारी, पृ. 134
6. पुनर्जन्म वा सौतिया डाह, पृ. 31

कुसुमकुमारी

किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "स्वर्गीयकुसुम" §1889§ की नायिका कुसुमकुमारी आरा के राजा कर्णसिंह की पुत्री है। तीन वर्ष की अवस्था में उसे देवदासी बनना पडा। पंडे ने उसे वेश्या के हाथों बेच दिया। कार्तिकी पूर्णिमा में नाव टूट जाने से वह बह जाती है। वसन्त कुमार उसे बचाता है। फिर वह अपने गाँव वापस आती है और छिपकर रहती है।

वह वसन्तकुमार से प्रेम करती है, पर उसकी छोटी बहन गुलाब से वसन्तकुमार का विवाह होता है तो उसे अपने प्रेम का दमन करना पड़ता है। देवदासी प्रथा का उन्मूलनाश करने की प्रतिज्ञा वह करती है।

गुलाब की तीखी व्यंग्योक्तियाँ सुनकर वह आत्महत्या का प्रयत्न करती है, पर बच जाती है। प्रेम में त्याग की भावना प्रदर्शित करनेवाली कुसुमकुमारी एक असफल प्रेमिका है।

सरोजिनी

पं· देवीप्रसाद शर्मा उपाध्याय के उपन्यास "सुन्दर सरोजिनी" §1893§ की नायिका सरोजिनी अतीव सुन्दरी और सर्वगुण सम्पन्न है। वह स्वप्न में सुन्दर से प्रेम करने लगती है और अंत में दोनों का विवाह भी होता है। इस प्रकार वह पूर्वप्रेमचन्द युग की सफल प्रेमिका है।

सीता, सावित्री आदि पौराणिक आदर्श नारियों की अनुगामिनी सरोजिनी के चरित्र में अलौकिकता है, दिव्यता है। उसका प्रेम पवित्र है। लेखक के अनुसार सुन्दर और सरोजिनी आधुनिक नायक नायिकाओं के समान कोर्टशिप की भावना रखनेवाले नहीं।[1]"

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास "चन्द्रकांत" (1891) की नायिका चन्द्रकांता, किशोरीलाल गोस्वामी कृत "राजकुमारी (1902) की नायिका सुकुमारी, बाबू बालमुकुन्द वर्मा कृत "मालती" (1904) की नायिका मालती आदि पूर्वप्रेमचन्दकाल की सफल प्रेमिकायें हैं। इनमें मुंगेर के ज़मीन्दार राजा हीराचन्द की पुत्री सुकुमारी में कुछ कुछ आधुनिकता का भी समावेश है। वह एक साधारण युवक माणिक से प्रेम करती है और अपने प्रेमी के साथ "एक दूसरे का हाथ पकडे हुए" गंगा के तट पर घूमने फिरने में संकोच नहीं करती। इस के विपरीत मालती विवाह पूर्व प्रेमी का स्पर्श भी निषिद्ध मानती है[2]। जैनेन्द्र किशोर कृत "कमलिनी (1892) की नायिका कमला भी विवाह पूर्व शारीरिक संबंध को निषिद्ध माननेवाली है।

किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "चपला" की नायिका चपला घनश्याम की प्रेमिका है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीने का साहस दिखा कर साबित करती है कि वह अपने नाम के अनुकूल चपला नहीं[3]। श्री·रामप्रसाद सत्याल कृत "किरणशशि" (1909) की नायिका किरणशशि का जगमोहन के प्रति प्रेम अनेक प्रतिबन्धों के मध्य से होकर अंत में सफल तो हो

1· पं·देवीप्रसाद उपाध्याय - सुन्दर सरोजिनी, (1893) काशी, पृ·36

2· बालमुकुन्द वर्मा मालती (1904) काशी, पृ·5-6

3· किशोरीलाल गोस्वामी, "चपला" वा नव्य समाज का चित्र (1903) पृ·12

जाता है, लेकिन जगमोहन को चाहनेवाली सुकेशी के वार से पति की रक्षा करने के प्रयत्न में उसे मृत्यु का वरण करना पड़ता है । अपनी प्राण प्रिया के चिरवियोग से व्यथित जगमोहन का यह उद्गार कि संसार में किरणशशि स्त्री भी कुल कामिनी पैदा होती है जो अपने प्राण-पयारे के लिए अपना अमूल्य जीवन भी देती है,[1] उसके आदर्श त्यागोज्वल चरित्र का परिचायक है । यहाँ नारी के दुरंत का कारण नारी ही है । सुकेशी प्रस्तुत उपन्यास की खल नारी है

बाबू जयरामदास गुप्त कृत "लक्ष्मीदेवी" (1914) की नायिका लक्ष्मी, किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "त्रिवेणी" (1888) की नायिका त्रिवेणी आदि पूर्व प्रेमचन्द युग की सफल गृहस्थ नारियाँ हैं ।

लक्ष्मी

बाबू जयरामदास गुप्त के उपन्यास "लक्ष्मी देवी" की नायिका लक्ष्मी काशी निवासी बाबू अयोध्यादास की पुत्री है । उसकी बहन है श्यामा । पिता के मरणोपरांत दोनों को सौ सौ रुपये की आर्थिक सहायता मिलती है । श्यामा अध्ययन छोड़कर मोतीलाल नामक युवक से विवाह करती है और संबंध विच्छेद होने पर एक के बाद एक पति को स्वीकार करती है तथा अंत में दर दर भटकती है । इसके विपरीत लक्ष्मी डाक्टर बनकर नारायण प्रसाद के साथ विवाह करके अपने सतीत्व एवं सेवा भाव से सफल गार्हस्थ्य जीवन बिताती है ।

---

1. रामप्रसाद सत्याल किरणशशि (1909), काशी, पृ॰82

लक्ष्मी हिन्दी उपन्यासों में प्रथम सुशिक्षित डाक्टर नायिका है। पर उपन्यासकार उसे पर्दे में रखना चाहते हैं। उनका कथन है, "पर्दे का यथार्थ मतलब तो यही है कि जहाँ तक संभव हो न तो सूरत दिखाई जाय और न आवाज़ सुनाई जाय और इसी प्रकार यथासंभव न पर पुरुष का मुख देखा जाय न शब्द सुना जाय।"[1]

प्रेमदास की तेरह वर्षीया पुत्री त्रिवेणी का विवाह मनोहर दास वैश्य से होता है। पिता की मृत्यु के बाद तीर्थ यात्रा करते समय नाव टूट जाने से दोनों का विछोह होता है और देवकृपा से कुंभ के मेले के अवसर पर पुनर्मिलन होता है। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास "हृदय हारिणी" (1890) की नायिका कुसुम कुमारी और "लवंगलता" की नायिका लवंगलता विधर्मियों के हाथ पड़ने पर भी आत्मसम्मान की रक्षा करनेवाली सद्‌गृहिणियाँ हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के इस प्रारंभिक काल की स्वावलंबि नारियाँ हैं भाग्यवती और व्रजमंजरी।

भाग्यवती

स्त्री शिक्षा का प्रचार करने के लिए और भारतीय नारी को गार्हस्थ्य धर्म के प्रति सजग करने के लिये श्री. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने "भाग्यवती" नामक उपन्यास की रचना की। स्वयं ग्रंथकार ने इस उपन्यास को "संसारी वार्ता" कहा है। प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका से ही स्पष्ट है कि तत्कालीन

---

1. जयरामदास गुप्त - लक्ष्मीदेवी (1914) काशी, पृ. 9

नारी समाज की हेय एवं शोचनीय परिस्थितियाँ देखकर सुधार भावना से प्रेरित हो लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है[1]। इसकी नायिका भाग्यवती पूर्वप्रेमचन्द काल की नायिकाओं में सब से अधिक सबल, आकर्षक और कर्मठ व्यक्तित्ववाली है। काशी में रहनेवाले पंडित उमादत्त की यह बुद्धिमती, शिक्षिता कन्या सीने-पिरोने और व्यंजन बनाने में भी निपुण है। मनोहरलाल से उसका विवाह होता है। ससुराल में भी वह आदरणीया बनी। लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव से वह पति-गृह से ही नहीं, स्वयं पति से ही त्यक्ता हुई।

पति-परित्यक्ता होने पर भी उसकी सक्रियता में कोई कमी नहीं हुई। उसके अनुसार प्रयत्न करना मानव का धर्म है[2]। अपने प्रयत्न से ही वह सुखपूर्ण जीवन बिताती है। "हिन्दी उपन्यास जगत् की वह पहली ऐसी नायिका है, जो आर्थिक रूप से स्वावलंबिनी बनने का प्र यत्न करती है। लगभग चालीस वर्षों के बाद जिस आर्थिक समस्या की ओर जैनेन्द्रकुमार तथा इलाचन्द्र जोशी आदि उपन्यासकारों ने चित्रण कर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया, उसकी यथार्थता श्रद्धाराम फिल्लौरी ने सन् 1877 ई॰ (भाग्यवती" सन् 1877 में लिखा गया था पर प्रकाशित 1887 ई॰ में हुआ।) में ही समझ ली थी[3]।" उसके चरित्र में आधुनिकता है, पर उच्छृंखलता नहीं। "अपनी रूढिविमुखता, क्रियाशीलता एवं विचारबुद्धि के कारण वह अपने युग में तो अकेली नायिका है ही, प्रेमचन्द युग एवं प्रेमचन्दोत्तर युग की नायिकाओं में भी वह अपने ढंग की अकेली ही है। उसके चरित्र प्रकाशन में लेखक को अपार सफलता इसलिए प्राप्त हुई है कि उसने अपने दृष्टिकोण को आदर्शवादी बनाये

1· श्रद्धाराम फिल्लौरी भाग्यवती - भूमिका - 1887, काशी,

2· वही, पृ·55

3· हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ·167

रखते हुए भी यथार्थवाद का दामन कहीं नहीं छोड़ा, जिस से भाग्यवती का चरित्र यथार्थवादी सृजनप्रक्रिया का श्रेष्ठ कलात्मक कौशल बन पड़ा है[1]।"

बाबू व्रजनन्दन सहाय के उपन्यास "अरण्यबाला" (1915) की नायिका व्रजमंजरी सुन्दरी, सुकुमारी, सुशीला और सच्चरित्रा है। वन पंछी-सी स्वतंत्र और भोली-भाली व्रज मंजरी जीविका के लिए कठिन परिश्रम करती है। उसका प्रेमी है मुकुन्द। भाग्यवती के बाद वही हिन्दी उपन्यास जगत की दूसरी स्वावलंबिनी नारी है।

पूर्वप्रेमचन्दकालीन उपन्यासकारों का नारी-संबंधी दृष्टिकोण

उपन्यासकारों के नारी-संबंधी प्रमुख दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं -
(1) सुधारवादी (2) आदर्शवादी (3) रोमांटिक (4) यथार्थवादी
(5) आदर्शोन्मुख यथार्थवादी (6) समाजवादी (7) व्यक्तिवादी
(8) मनोविश्लेषणवादी।

पूर्वप्रेमचन्दकाल के अधिकांश उपन्यास सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। किशोरीलाल गोस्वामी ऐसे उपन्यासकारों में प्रमुख हैं। कट्टर सनातन धर्मी और नारी-शिक्षा के घोर विरोधी गोस्वामी जी का मत है कि नारी-सुधार का ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे सुकन्या सुगृहिणी होकर सुमाता बने और सुपुत्र को जन्म दे[2]। उनके अनुसार लड़कियों को पढ़ने के लिए

---

1. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ. 168
2. किशोरीलाल गोस्वामी - माधवी माधव वा मदन मोहिनी, (1916) - पृ. 220

पाठशाला भेजने से कई आपत्तियाँ हो सकती हैं[1]। अतः त्रिवेणी को शिक्षा नहीं दी जाती और ग्यारह वर्ष की होने पर माधवी का नाम स्कूल से कटवा दिया जाता है। सुशीला[2] और काशीबाई[3] के कथन उपन्यासकार के इस मत को स्पष्ट करते हैं कि पुरुष बहुविवाह कर सकते हैं, पर स्त्री नहीं। लवंगलता का कथन[4] भी लेखक के सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। मेहता लज्जाराम शर्मा का दृष्टिकोण भी यही है। उन्होंने स्वयं पर्दा-प्रथा का समर्थन किया,[5] साथ ही साथ अपने एक नारी-पात्र प्रियंवदा के ही मुँह से पर्दा-प्रथा की प्रशंसा करवाकर नारी-स्वतंत्रता के प्रति अपना विरोध प्रकट किया[6]। "सुशीला विधवा" की सुशीला भी उनके इसी दृष्टिकोण का परिचय देती है। वे विधवा विवाह के विरोधी थे[7]। विधवा जीवन के प्रति उनका अभिप्राय भी उनके इसी दृष्टिकोण का परिचायक है[8]। हिन्दू आदर्श के अनुरूप ही वे नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की उपेक्षा करते हैं। वेश्यावृत्ति से घृणा होने पर भी वे उन्हें आवश्यक मानते हैं क्योंकि उनके अभाव में कुलवधुएँ वह वृत्ति ग्रहण कर

---

1. किशोरीलाल गोस्वामी - माधवी माधव वा मदनमोहिनी, (1916) वृन्दावन, पृ॰75-76
2. किशोरीलाल गोस्वामी - पुनर्जन्म का सौतिया डाह, (1907), पृ॰31 काशी,
3. किशोरीलाल गोस्वामी - कनक कुसुम वा मस्तानी (वृन्दावन), पृ॰51
4. किशोरीलाल गोस्वामी - लवंगलता वा आदर्शबाला (1884) वृन्दावन, पृ॰41
5. मेहता लज्जाराम शर्मा - सुशीला विधवा (1907) प्रयाग, पृ॰116
6. मेहता लज्जाराम शर्मा - आदर्श हिन्दू", पृ॰6-7
7. मेहता लज्जाराम, पृ॰95
8. मेहता लज्जाराम शर्मा - सुशीला विधवा, पृ॰152

बिगड़ेंगी[1]। उपर्युक्त दोनों उपन्यासकारों ने अपने पुरातनवादी और और हास्यास्पद दृष्टिकोण के द्वारा स्त्री-स्वातंत्र्य पर कुठाराघात किया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" जी ने भी नारी का आदर्शरूप चित्रित करके सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया। उनके उपन्यास "अधखिला फूल" की प्रधान नारी पात्र देवहूती का कथन उनके इस दृष्टिकोण का परिणाम है[2]। उनके एक अन्य उपन्यास "ठेठ हिन्दी का ठाठ" की देवबाला भी परम्परागत नारीत्व की सजीव प्रतिमा है। नारी की स्वतंत्रता एवं अस्तित्व के प्रति उदासीन "हरिऔध" जी का मत है, "जो स्त्री अपने पति के चरणों की सेवकाई करती है, पति को ही देवता मानती है, उन्हीं की पूजा करती है, उन्हीं में मन लगाती है, सपने में भी उनके साथ बुरा बर्ताव नहीं करती, भूलकर भी उनको कड़ी बात नहीं कहती, कभी उनके साथ छल-कपट नहीं करती, वह भी मरने पर अपने पति के साथ रहकर स्वर्गसुख लूटती है[3]।" हरिऔधजी रूढ़िवादी होने पर भी नारी-शिक्षा के समर्थक है[4]। पाश्चात्य पभाव से नारी समाज के पतन की संभावना से ही उन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया।

पूर्वप्रेमचन्दकाल में पं॰टीकाराम तिवारी के उपन्यासों में आदर्शवादी दृष्टिकोण लक्षित होता है। देवीप्रसाद शर्मा के उपन्यास "सुन्दरसरोजिनी" (1893) की आदर्शनारी सरोजिनी का चरित्र लेखक के

---

1. मेहता लज्जाराम शर्मा - आदर्श हिन्दू, (1914), पृ॰219
2. अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" - अधखिलाफूल (1907), बनारस, पृ॰177
3. वही, पृ॰53
4. वही, पृ॰240

उपर्युक्त दृष्टिकोण का परिचय देता है ।

मानवजीवन में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है । इसलिए उपन्यासों में भी रोमांटिक दृष्टिकोण प्रकट होता है । पूर्वप्रेमचन्दकाल में वासनापरक प्रेम की कल्पना तक नहीं थी ।

कला के प्रति सत्यता और ईमानदारी यथार्थवादी साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है । विभिन्न नारीपात्रों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक समस्याओं को यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयत्न उपन्यासकारों ने किया है । पूर्वप्रेमचन्दकाल में केवल किशोरीलाल गोस्वामी के "स्वर्गीयकुसुम" में कुसुम का असफल प्रेम और उसकी मृत्यु का चित्रण करके यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है ।

हर समस्या में उपन्यासकार का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है । नारी पात्रों का चारित्रिक विकास भी उन्होंने समाज की प्रचलित मान्यताओं को ठुकराकर व्यक्तिवादी ढंग से चित्रित किया । पूर्वप्रेमचन्द काल के उपन्यासकार समाज से अलग व्यक्ति की सत्ता की कल्पना भी नहीं कर सकते थे । उनके नारी पात्रों का स्वरूप समाज और परिवार तक ही सीमित था । अत: इस काल के उपन्यासकारों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण विकसित नहीं हुआ ।

प्रेमचन्द युग के उपन्यास

सन् 1916 ई॰ से सन् 1936 तक के काल को "प्रेमचन्दयुग" माना जाता है । युग के नाम से ही स्पष्ट है कि इस युग के सर्वप्रमुख उपन्यासकार हिन्दी कथा-संसार के ही अनिषेध्य सार्वभौम मुंशी प्रेमचन्द हैं । उनकी मृत्यु से इस युग का भी अंत हुआ । इस युग को हम हिन्दी-उपन्यास साहित्य का विकासकाल कह सकते हैं । समाज में क्रांति उपस्थित करने का श्रेय प्रेमचन्द और उनके युग को ही है । इस युग के अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैं जयशंकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, ऋषभचरण जैन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक", पांडेय बेचनशर्मा "उग्र", भगवतीप्रसाद वाजपेयी, आचार्य चतुर सेनशास्त्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि । हिन्दी उपन्यास को कल्पना के आकाश से यथार्थ के धरातल पर लाने का श्रेय प्रेमचन्दजी को देते हुए श्रीमती कृष्णा नाग का कथन है, "प्रेमचन्द के आगमन ने साहित्यकारों को कल्पना के आकाश पर से यथार्थ के धरातल पर लाकर आसीन कर दिया।[1]" यद्यपि इस युग में सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक उपन्यासों की रचना हुई है, तो भी सर्वाधिक महत्व सामाजिक उपन्यासों को है । सामाजिक उपन्यासों में प्रेमचन्द के सभी उपन्यास, प्रसाद के "कंकाल" एवं "तितली", "कौशिक" के "मां" और "भिखारिणी", आचार्य चतुरसेन शास्त्री के "हृदय की परख", "आत्मदाह" तथा अन्य उपन्यासकारों के अधिकांश उपन्यास आते हैं । अनमेल विवाह, दहेज-प्रथा, विधवा-समस्या आदि सामाजिक समस्याओं को इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है । इस युग के उपन्यास केवल मनोरंजन के लिये नहीं, समस्याओं का उद्घाटन ही प्रमुख है । प्रेमचन्द का मत है,

---

1· हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, पृ॰207

"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है, यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है । साहित्यकार का पद इस से कहीं ऊंचा है । वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है - हम में सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है; कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।[1] उनके उपन्यास कथा-निष्ठ नहीं, चरित्रनिष्ठ है ।

प्रेमचन्द के तीन उपन्यासों में राजनैतिक समस्या का चित्रण हुआ है । वृन्दावनलाल वर्मा के अधिकांश उपन्यास, प्रसादजी का अंतिम एवं अपूर्ण उपन्यास इरावती आदि इस युग के ऐतिहासिक उपन्यास हैं ।

प्रेमचन्दकाल के उपन्यासों में नारी पात्र

प्रेमचन्दकाल के उपन्यास समस्या प्रधान हैं । इन में घटनाओं और समस्याओं को पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । प्रेमचन्दजी उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मानते हैं । उनके अनुसार मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।[2] इस से स्पष्ट है कि प्रेमचन्दजी उपन्यास में चरित्रचित्रण शिल्प को अधिक महत्त्व देनेवाले हैं । इस युग के अन्य उपन्यासों में भी चरित्र-चित्रण आकर्षक है । लेकिन प्रेमचन्दके चरित्र सब से आगे हैं । उनके पात्र वर्ग या समाज के प्रतिनिधि हैं। अन्य उपन्यासकारों के पात्र स्वयं के प्रतिनिधि हैं । प्रसादजी के पात्र रहस्यात्मक ढंग से पाठकों के सम्मुख आते हैं । इस युग के एक दूसरे प्रमुख उपन्यासकार

1. कुछ विचार, पृ.52

2. वही, पृ.47

श्री·वृन्दावनलाल वर्मा जी ने चरित्र-चित्रण की एक अलग परम्परा ही स्थापित की । उनके पात्र ऐतिहासिक है जिनमें सामन्त, मध्यम तथा निम्न सभी वर्गों के प्रतिनिधि हैं । उन्होंने पात्रों के व्यक्तित्व एवं गुणों पर विशेष ध्यान दिया है । इसके संबंध में डॉ· लक्ष्मीकान्त सिन्हा लिखते हैं, "वर्माजी के उपन्यासों में पात्रों की भरमार है, किन्तु खूबी यह है कि सब के व्यक्तित्व की विशेषता का ध्यान रखा गया है[1]।" पात्रों के आत्मचिंतन द्वारा भी चरित्रोद्घाटन करना वर्मा जी की विशेषता है ।

प्रेमचन्दकाल के उपन्यासकारों ने नारी समस्या का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । पर्दे में कैद पद पद पर लांछित नारी की महिमा के ज़बर्दस्त वकील[2] प्रेमचन्दजी ने तो नारी समस्या को अपना मुख्य विषय बनाया है । निर्मला, सेवासदन आदि उपन्यास प्रेमचन्दजी के नारी संबंधी दृष्टिकोण के परिचायक हैं । प्रेमचन्द के आगमन के समय नारियों में स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने, उच्च शिक्षा प्राप्त करने और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने की भावना का पूर्ण विकास हो रहा था, उनमें नवचेतना और नितांत जागरूकता पैदा हो गई थी । उपन्यासकारों ने भी अपने नारीपात्रों के माध्यम से तत्कालीन नारी-समाज की भावनाओं का स्वाभाविक चित्रण किया । राजनैतिक और सामाजिक जीवन में नारियों के जितने रूप थे, उन सबका चित्रण उपन्यासकारों ने किया ।

1· हिन्दी उपन्यास - साहित्य का उद्भव और विकास, पृ·266
2· विचार और वितर्क - डॉ· हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ·50

विधवा, वेश्या, संयुक्त परिवार, विवाह आदि नारी जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं को इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है ।

"सेवासदन" में उमानाथ का अपनी आश्रयहीना बहन गंगाजली को आश्रय देना और सुमन तथा शांता का विवाह करा देना पत्नी जाह्नवी को पसन्द नहीं । यहाँ संयुक्त परिवार की विघटनात्मक स्थिति का परिचय मिलता है । "प्रेमाश्रम" में राय कमलानन्द के अनुसार संयुक्त परिवार के टूटने का कारण सम्पत्ति है[1] । "प्रेमपथ" में अशिक्षित जेठानी और शिक्षित देवरानी की रुचियों में अंतर आने के कारण भाइयों को अलग होना पड़ता है और संयुक्त परिवार का विघटन होता है । परिवार के निराश्रय सदस्यों को आश्रय देने में अनिच्छा होना भी संयुक्त परिवार के विघटन का एक कारण है । "निर्मला" में तोताराम अपनी विधवा बहन को एक नौकरानी की हैसियत से घर में रखता है । "बहनों, किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना तो जब तक अपना अलग घर न बसा लो, चैन की नींद मत सोना[2] ।" "गबन" की रतन की प्रस्तुत उक्ति में संयुक्त परिवार के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है । इस विद्रोह के कारण हैं - संयुक्त परिवार में सम्पत्तिगत अधिकार का अभाव और घर के काम काज का बोझ । इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचन्दजी को संयुक्त परिवार के प्रति आस्था होने पर भी उसके खोखले युगनिरपेक्ष जीवन के प्रति अनास्था है । "तितली" की नायिका तितली स्वेच्छा से संयुक्त परिवार में रहती है[3] । "पतिता की साधना" में विधवा बहन नन्दा को प्रयाग के मेले में निस्सहाय छोड दिया जाता है ।

---

1. प्रेमाश्रम, पृ.438
2. गबन, पृ.269
3. तितली - संस्करण, सं.2002, पृ.259

विवाह संबंधी समस्याओं में एक बालविवाह की प्रथा का उदाहरण जैनेन्द्रकुमार के "परख" में मिलता है । "परख" में कट्टोर का विवाह चार वर्ष की अवस्था में होता है। "वरदान", "सेवासदन", "प्रतिज्ञा" और "कायाकल्प" में माता-पिता की इच्छानुसार अनमेल विवाह होते हैं । "कर्मभूमि" में नैना पिता के आग्रहानुसार चलना अपना कर्तव्य समझती है । शिक्षा और पाश्चात्य प्रभाव के कारण प्रेम विवाह को समर्थन मिलने लगा । "अनाथ पत्नी" §1928§ की प्रतिभा मरते समय अपने पति का हाथ रजनी के हाथ में देकर प्रेमविवाह का समर्थन करती है । "गोद" §1932§ में शोभा राम और किशोरी का विवाह तथा तितली में तितली और मधुबन का विवाह प्रेमविवाह के उदाहरण है । वृन्दावनलाल वर्मा के "प्रेम की भेंट" §1933§ के सरस्वती और धीरज प्रेम-विवाह के समर्थन में अपना बलिदान करते हैं । "कंकाल" की यमुना तो प्रेम करने के अपराध केलिए जो भी मिले, उसे स्वीकार करने को तैयार है[1] । "भिखारिणी" में नन्दराम और सोना, "गोदान" में गोबर और झुनिया तथा मातादीन और सिलिया, "रंगभूमि" में विनयसिंह और सोफिया एवं कर्मभूमि में अमरकान्त और सकीना परम्परागत वैवाहिक मूल्यों की उपेक्षा करके प्रेमविवाह के मूल्यों की प्रतिष्ठा करनेवाले हैं । "कंकाल" में तारा और मंगल विवाह किये बिना साथ रहते हैं तो सुभद्रा कहती है कि तुम्हारा इस प्रकार रहना समाज की दृष्टि में अच्छा नहीं होगा[2] । विवाह पूर्व प्रेम को यहाँ अमान्य कहा गया है ।

समाज-सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप विधवा-विवाह के संबंध में परम्परागत मान्यताओं में कुछ कुछ परिवर्तन लक्षित होते हैं । पर समाज का भय अभी तक छूटा नहीं । अतः "प्रतिज्ञा" §1922§ के विधुर अमृतराय

1· कंकाल - आठवाँ संस्करण, पृ·277

2· वही, पृ·47

विधवा पूर्णा को चाहने पर भी विवाह नहीं कर पाता । "प्रेमपथ" में रमेश विधवा साली तारा से और "परख" के सत्यधन विधवा कट्टो से प्रेम करते हैं । "संगम" §1934§ में विधवा गंगा और रामचरण का विवाह विधवा-विवाह के संबंध में परिवर्तित भावना का सूचक है ।

"चन्दहसीनों के खुतूत §1923§ में मुरानी कृष्ण और नर्गिस का तथा "तितली" §1933§ में इन्द्रदेव और शैला का विवाह, "कर्मभूमि" §1922§ में अमरकांत और सकीना का प्रेम, "गोदान" §1936§ में मातादीन और सिलिया तथा गोबर और झुनिया का संबंध आदि अंतर्जातीय विवाह के उदाहरण हैं ।

कुलमर्यादा अथवा सामाजिक स्थिति के मूल्यों के महत्त्व के आधार पर "वरदान" में बचपन के साथी गरीब लड़का और अमीर लड़की का विवाह न हो पाता, पर "कायाकल्प" में इस महत्त्व का बहिष्कार किया गया है । लौंगी का कथन इसका प्रमाण है[1] ।

विवाह को आत्मिक संबंध और जन्मजन्मान्तर का संबंध माना जाता है । "कायाकल्प" में राजकुमार इन्द्रविक्रमसिंह का कथन[2] और "गदर" §1932§ में मैना के विचार[3] इस मान्यता की पुष्टि करते हैं । "परख" §1930§ में बिहारी और कट्टो आजीवन विवाह न कर "दो तन एक प्राण" होकर साथ रहने की प्रतिज्ञा करते हैं । विवाह के परंपरागत मूल्यों की अवहेलना यहाँ की गयी है । "सुनीता" में पति-पत्नी के ऊबने पर संबंध-

---

1· कायाकल्प, पृ·309

2· वही, पृ·86

3· गदर, पृ·114

विच्छेद नहीं होता, उसी प्रकार "कंकाल" में मंगल प्रेम के सामने विवाह के मूल्य को तुच्छ समझते हुए भी समाज के प्रचलित नियमों में आबद्ध होना उचित समझता है[1]। इसके विपरीत "गोदान" की मालती का मत है कि मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुकर है[2]। आजन्म अविवाहित मित्र रहने का निश्चय करके मेहता और मालती ने विवाह-संस्था को चुनौती दी है। विवाह को बन्धन मानने पर भी मेहता का अभिप्राय है कि उस सामाजिक समझौते को तोडने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। "रंगभूमि" की इन्दु कहती है, "आप के साथ विवाह हुआ है कुछ आत्मा नहीं बेची है[3]।" और संबंध-विच्छेद कर देती है। "तीन वर्ष" की प्रभा के अनुसार विवाह स्त्री और पुरुष के बीच आर्थिक समझौता है।

दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों के फलस्वरूप भी नारी का जीवन नरक बन जाता है। "सेवासदन" की सुमन, "निर्मला" की निर्मला और "गोदान" की रूपा के अनमेल विवाह का कारण दहेज का अभाव है। "अगर तुमने एक पैसा भी दहेज लिया तो मैं तुमसे ब्याह न करूँगी[4]।" भावी पति को यह सन्देश भेजकर गोदान की सोना नारी के आत्मसम्मान का परिचय देती है।

विदेश से लौटनेवालों को बहिष्कृत करने की रिवाज़ पहले थी, युगपरिवर्तन, अंतर्राष्ट्रीय संबंध आदि के कारण यह मूल्य टूट गया। "प्रेमाश्रम" में अमेरिका से लौटे प्रेमशंकर का जाति द्वारा बहिष्कार होता है,

---

1. "कंकाल" संवत् 2013, पृ.49
2. गोदान - बनारस संस्करण, पृ.343-344
3. रंगभूमि - दूसरा भाग, पृ.398
4. गोदान - संस्करण 1956, पृ.269

उनकी पत्नी श्रद्धा भी प्रायश्चित्त करने पर ज़ोर देने लगी, अंत में पति की महत्ता से अभिभूत होकर उसके मनोभाव में परिवर्तन होता है। तितली के इन्द्रदेव की इंग्लैंड यात्रा के बाद उसकी माँ उससे अलग रहने लगती है, पर बादमें उसे स्वीकार करती है। मिस मालती विदेश से डाक्टरी पढ़कर आयी है।

बहु विवाह के संबंध में भी प्रस्तुत युग में परिवर्तित मनोभाव प्रकट हुए हैं। "कायाकल्प" का राजा विशालसिंह तीन विवाह करता है, पत्नी रोहिणी को कुछ एतराज नहीं।[1] लेकिन कुंडलीचक्र की पूना और "भिखारिणी" की यशोदा दूसरी पत्नी बनने को हरगिज़ तैयार नहीं।

प्रेम, गार्हस्थ्य जीवन आदि के आधार पर प्रेमचन्दयुग के नारी पात्रों का वर्गीकरण किया जा सकता है। ऐसे कुछ उल्लेख योग्य नारी-पात्रों का विवेचन आगे किया जायगा।

पुष्पकुमारी

पं. टीकाराम तिवारी के "पुष्पकुमारी" (1917) उपन्यास की नायिका है पुष्पकुमारी। वह रामचन्द्र की पुत्री है और कमलकिशोर पर मोहित है। उसे पता चलता है कि अठारह वर्ष की अवस्था में वह विधवा

---

1. "स्त्री कभी पुरुष का खिलौना है कभी उनके पैरों की जूती। इन्हीं दो अवस्थाओं में उस की उम्र बीत जाती है। हम स्त्रियों को ईश्वर ने इसलिए बनाया है। हमें यह सब चुपचाप सहना चाहिए। विरोध करना तो जीवन का सर्वनाश करना है।"
   "कायाकल्प", पृ. 375-376

हो जाएगी । इस मे मुक्ति पाने के लिए वह कठिन तप करती है । इस तप के फलस्वरूप उसका ग्रह टल जाता है और उसकी इच्छा-पूर्ति होती है । कमल किशोर से उसका विवाह सम्पन्न होता है ।

पुष्पकुमारी का चरित्र पार्वती, सीता, सावित्री आदि पौराणिक नारियों की याद दिलानेवाला है । पार्वती के समान कठोर तप करके वह अपने प्रेमी को पाती है । उसकी पातिव्रत्य-निष्ठा सीता और सावित्री के समान है । उसकी गिनती सफल प्रेमिकाओं में की जा सकती है ।

श्री॰ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के उपन्यास "निरुपमा" (1936) की नायिका निरुपमा भी प्रेमचन्दयुग की सफल प्रेमिका है । सरल स्वभाव की उस निष्कपट नारी में पारिवारिक श्रृंखलाओं को विश्रृंखलित करने और रूढियों को तोडने की शक्ति नहीं थी, अत: वह कुमार के प्रति अपने प्रेम को स्पष्ट नहीं कर पाती और मामा के कहे अनुसार यामिनी बाबू से विवाह करने को तैयार होती है । लेकिन कमल का सहयोग पाने से वह मामा का विरोध कर कुमार से ही विवाह कर लेती है ।

मनोरमा

प्रेमचन्द के उपन्यास "कायाकल्प" की नायिका मनोरमा एक भावुक नारी है। वह निर्धन चक्रधर से प्रेम करती है और उस के सार्वजनिक जीवन में सहायता देना चाहती है । परिस्थितिवश उसे प्रेम का दमन करना पड़ता है । प्रेम में असफल होने पर उस के मन में विद्रोह-भावना जाग उठती है और उसकी प्रतिक्रिया उसके स्वभाव पर होती है । वह एक दार्शनिक की तरह जटिल और दुर्बोध हो जाती है ।

"जो विवाह लड़की की इच्छा के विरुद्ध किया जाता है, वह विवाह ही नहीं है।"[1] ऐसा सोचनेवाली मनोरमा राजा विशालसिंह से विवाह करती है और रानी होने के नाते चक्रधर के सार्वजनिक कार्य में भाग न ले सकने पर भी इस की आर्थिक सहायता करती है।

जीवन में सुखी न होने पर भी वह ईर्ष्या, द्वेष आदि से मुक्त थी। निराशा और अपमान सहकर भी उस ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने की भरसक कोशिश की। "वह उद्दण्ड प्रकृतिवाली मनोरमा सब धैर्य और शांति का अथाह सागर है, जिसमें वायु के हल्के हल्के झोंकों से कोई आन्दोलन नहीं होता। वह मुस्कुराकर सब कुछ शिरोधार्य करती जाती है। यह विकट मुस्कान उसका साथ कभी नहीं छोड़ती। इस मुस्कान में कितनी वेदना, विडम्बनाओं की कितनी अवहेलना छिपी हुई है, इसे कौन जानता है?"[2] इन पंक्तियों से पता चलता है कि प्रेमचन्दयुग की इस असफल प्रेमिका का त्यागोज्वल व्यक्तित्व कितना निराला है।

प्रेमी के सुख के लिए आत्मपीड़न में जीवन व्यतीत करनेवाली कट्टो, जस्सो, बिरजन आदि भी असफल प्रेमिकाओं के अंतर्गत आती हैं।

कट्टो

जैनेन्द्र जी के "परख" (1929) उपन्यास की नायिका कट्टो चार वर्ष की अवस्था में ही विधवा होती है। सत्यधन से वह प्रेम करती है, लेकिन सत्यधन के निर्देशानुसार उसे बिहारी से विवाह करना पड़ता है।

---

1. प्रेमचन्द - कायाकल्प (1926), बनारस, पृ.46
2. वही, पृ.334

अपने प्रेमी को निश्चिन्त बनाने के लिए ही वह बिहारी से विवाह करती है[1]। गरिमा के भविष्य की चिन्ता भी इसका कारण था। "पर" के लिए "स्व" का बलिदान करनेवाली त्यागमयी आदर्शनारी कट्टो में ईर्ष्या लेशमात्र भी नहीं है। मानवीय धरातल से ऊपर आध्यात्मिक धरातल पर उसका स्थान है।

जस्सो

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक के उपन्यास भिखारिणी की नायिका जस्सो भिखारी नन्दराम की कन्या और रामनाथ की प्रेमिका है। नन्दराम अपनी मातृविहीना पुत्री के साथ दर दर भटक कर अंत में रामनाथ के यहाँ नौकर हो गया था। जाति का बंधन, रामनाथ में दृढनिश्चय और साहस का अभाव, जस्सो का संकोच इत्यादि कारणों से जस्सो का प्रेम सफल नहीं होता। रामनाथ के छिपकर विवाह करने के प्रस्ताव को वह स्वीकार नहीं करती[2]। अगाध दु:ख होने पर भी वह रामनाथ के विवाह के अवसर पर उसकी पत्नी को सजाती है। यह असफल प्रेमिका आजन्म अविवाहित रहने का निश्चय करती है और अपना सारा धन दान कर पथ की भिखारिणी बनती है।

"वरदान" की विरजन भी अपने बचपन के साथी प्रताप से विवाह न कर सकने पर माधवी के मन में उस के प्रति प्रेमभावना जगाती है। विरजन के आदर्श चरित्र में त्याग की प्रधानता है।

1· जैनेन्द्रकुमार - परख (1929), बम्बई, पृ·61-62

2· विश्वंभर नाथ शर्मा "कौशिक" - भिखारिणी (1929) आगरा, पृ·173

"प्रेमाश्रम" की श्रद्धा, शीलमणि, सुनीता की सुनीता आदि प्रेमचन्दयुग की सफल गृहस्था नारियाँ हैं ।

श्रद्धा

आदर्शवादी परिकल्पना संबंधी दृष्टिकोण अभिव्यक्त करनेवाले लेखकों में प्रमुख हैं प्रेमचन्दजी । उनका सारा साहित्य आदर्शवाद से अनुप्राणित है । उन्होंने अपनी कृतियों में नारियों को प्रमुख स्थान दिया है क्योंकि जैसे नारियों के बिना यह मानवजीवन अपूर्ण है वैसे ही साहित्य भी । वे नारियों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत कर उन्हें ऊपर उठाना चाहते थे, उन्हें समाज में श्रद्धा की पात्री बनाना चाहते थे, इसलिए उन के अधिकांश नारी-पात्र आदर्श रूप में चित्रित किये गये हैं । उनकी दृष्टि में नारी पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शान्ति सम्पन्न है और सहिष्णु है। प्राणियों के विकास में स्त्री का पद-पुरुषों के पद से श्रेष्ठ है क्योंकि नारी में प्रेम, त्याग, श्रद्धा एवं वात्सल्य है । प्रेमचन्द जी का यह आदर्शवादी दृष्टिकोण "प्रेमाश्रम" में श्रद्धा के रूप में सुन्दर ढंग से चित्रित हुआ है ।

लखनपुरके ज़मीन्दार परिवार के लाला जटाशंकर के बडे पुत्र प्रेमशंकर की धर्मपत्नी है श्रद्धा । प्रेमशंकर के लापता होने से श्रद्धा आँसु की घूँट पीकर रह गयी थी । पति के लौट आने पर भी उसके दुर्भाग्य का अन्त नहीं हुआ । क्योंकि अमेरिका से लौटने पर बिरादरी ने उनका बहिष्कार किया था । उस युग में किसी का विदेश जाना धार्मिक दृष्टि से मान्य नहीं था । प्रेमशंकर को सन्देह हुआ कि श्रद्धा भी मेरा बहिष्कार करेगी । यह सन्देह सच निकला । श्रद्धा से मिलने प्रेमशंकर ऊपर गये । श्रद्धा इस समय

द्वार पर इस भाँति खडी थी जैसे पथिक रास्ता भूल गया हो । उस का हृदय आनन्द से नहीं, एक अव्यक्त भय से काँप रहा था । यह शुभ दिन देखने केलिए उसने तपस्या की थी । यह आकांक्षा उस के अंधकारमय जीवन का दीपक, उसकी डूबती हुई नौका की लंगर थी । महीने के तीस दिन और दिन के चौबीस घंटे यही मनोहर स्वप्न देखने में कटते थे । विडम्बना यह थी कि वे आकांक्षायें और कामनायें पूरी होने के लिए नहीं केवल तडपाने के लिये थीं ।

श्रद्धा के लिए प्रेमशंकर केवल एक कल्पना थे । इसी कल्पना पर वह प्राणार्पण करती थी । उसकी भक्ति केवल उनकी स्मृति पर थी जो अत्यन्त मनोरम, भावमय और अनुरागपूर्ण थी । उनकी उपस्थिति ने इस सुखद कल्पना और मधुर स्मृति का अन्त कर दिया । वह जो उनकी याद पर जान देती थी, अब उनकी सत्ता से भयभीत थी, क्योंकि वह कल्पना धर्म और सतीत्व की पोषक थी, और यह सत्ता उनकी घातक । श्रद्धा को सामाजिक अवस्था और आवश्यकताओं का ज्ञान था । परम्परागत बन्धनों को तोडने केलिए जिस विचार स्वातंत्र्य और दिव्य ज्ञान की ज़ुरूरत थी, उस से वह रहित थी । वह एक साधारण हिन्दू अबला थी । वह अपने प्राणों से, अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ धो सकती थी; किन्तु अपने धर्म की अवज्ञा करना अथवा लोक निन्दा को सहन करना उसके लिए असंभव था । प्रेमशंकर का आगमन उसकेलिए भयजनक था और वह भागकर भीतर जाकर एक कोने में खडी हो गयी । प्रेमशंकर का उत्साह भंग हो गया और वे लौट पडे । तब श्रद्धा की दशा अत्यन्त हृदयविदारक थी । "उसका प्रिय पति जिस के वियोग में उस ने सात वर्ष रो-रोकर काटे थे, सामने से भग्न-हृदय हताश चला जा रहा था । और वह इस भाँति सशंक खडी थी मानों आगे कोई बृहत् जलागार है । धर्म पैरों को बढने न देता था । प्रेम उन्मत्त तरंगों की भाँति बार-बार उमडता था, पर धर्म की शिलाओं से टकराकर लौट आता था । एक बार वह अधीर होकर चली कि प्रेमशंकर का हाथ पकड्कर फेर लाउं, द्वार तक आयी, पर आगे न बढ सकी ।

धर्म ने ललकार कर कहा, प्रेम नश्वर है, निस्सार है, कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी ? यह सब माया-जाल है । मैं अविनाशी हूं, मेरी रक्षा करो । श्रद्धा स्तम्भित हो गयी । मन में स्थिर किया, जो स्वामी सात समुन्दर पार गया, वहाँ न जाने क्या खाया, क्या पिया, न जाने किसके साथ रहा, अब उससे क्या नाता ? किन्तु प्रेमशंकर जीने से नीचे उतर गये तब श्रद्धा मूर्च्छित होकर गिर गयी । उठती हुई लहरें टीले को न तोड सकी, पर तटों को जल-मग्न कर गयी ।

प्रेम और धर्म का यह संघर्ष श्रद्धा के जीवन में आगे भी होता रहा । धनाभाव के कारण प्रेमशंकर ने ज्ञानशंकर से अपने हिस्से का मुनाफा मांगा तो ज्ञानशंकर जामे से बाहर हो गया । यह जानकर श्रद्धा ने एक लिफाफा और सन्दूकची प्रेमाशंकर को देने के लिए प्रभाशंकर के हाथ में दी । खत में अपनी विरहदशा का जिक्र किया था, साथ ही यह प्रश्न पूछा गया था कि धर्म को तोड़कर कौन प्राणी सुखी रह सकता है । उसके धर्म को निभाने केलिये प्रायश्चित की व्यवस्था स्वीकार करने की बिनती भी की गई थी । सन्दूकची में कुछ गहने और रुपये थे । प्रेमशंकर को ऐसा लगा कि श्रद्धा एक देवी है, वह त्याग और अनुराग की विशाल मूर्ति है और उसके कोमल नेत्रों से भक्ति और प्रेम की किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं । गौसखाँ की हत्या के मामले में प्रेमशंकर के भी फंसने का सन्देह ज्ञानशंकर ने प्रकट किया तो श्रद्धा सरोष कहती है, "वह अपनी रक्षा आप कर सकते हैं । विद्या का यह कथन कि "तुम उनका स्वभाव जानते नहीं' । वह चाहे दादाजी के साये से भी भागे, पर उनके नाम पर जान देती है, हृदय से उनकी पूजा करती हैं ।" श्रद्धा की पति भक्ति का परिचायक है । प्रेमशंकर के हिरासत में ले लिये जाने की खबर पाकर वह मूर्छित हो जाती है । उनके बरी हो जाने पर वह रात को गंगास्नाई से कृतज्ञता प्रकट करने जाती है तो प्रेमशंकर भी पीछे जाते हैं ।

प्रेमशंकर के इस प्रश्न पर कि घर के लोग तुम्हें यों आते देखकर अपने मन में क्या करते होंगे, वह निर्भीक होकर कहती है, जो चाहे समझें किसी के मन पर मेरा क्या बस है ? पहले लोकलाज का भय था । अब वह भय नहीं रहा, उसका मर्म जान गयी । वह रेशम का जाल है, देखने में सुन्दर, किन्तु कितना जटिल । वह बहुधा धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म बना देता है । तब भी वह धर्म के भय से मुक्त नहीं थी । उसका विचार था कि प्रेमशंकर प्रायश्चित्त करके पवित्र बने । प्रेमशंकर उसे मिथ्यावाद कहा तो श्रद्धा अपने दोनों कान दोनों अंगूठों से बन्द करते हुए बोली, "ईश्वर के लिए मेरे सामने शास्त्रों की निन्दा मत करो । हमारे ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में जो कुछ लिख दिया है, वह हमें मानना चाहिए । उनमें मीन-मेख निकालना हमारे लिए उचित नहीं । हममें इतनी बुद्धि कहाँ है कि शास्त्रों के सभी उपदेशों को समझ सके । उनको मानने में ही हमारा कल्याण है । प्रेमशंकर ने इसे अपने सिद्धान्त के विरुद्ध कहा तो श्रद्धा यह कहकर चली गयी कि आपके चित्त से अभी अहंकार नहीं मिटा । जब तक इसे न मिटाइयेगा ऋषियों की बातें आपकी समझ में न आयेंगी । प्रेमशंकर को ऐसा लगा कि सिद्धान्त-प्रेम ने दोनों का सर्वनाश कर दिया । श्रद्धा से प्रभावित होकर वे सोचते हैं, उसका विश्वास मिथ्या ही सही, पर कितना दृढ है । कितनी नि:स्वार्थ पति-भक्ति है, कितनी अविचल धर्मनिष्ठा । गायत्री से श्रद्धा का निम्नलिखित कथन भी उसके पति-प्रेम का द्योतक है, मुझे उनसे जितना प्रेम है, वह प्रकट नहीं कर सकती । आग में कूद पड़ूं । और मुझे विश्वास है कि उन्हें भी मुझ से इतना ही प्रेम है, लेकिन प्रेम केवल हृदयों को मिलाता है, देह पर उसका बस नहीं है ।

श्रद्धा स्वयं ही भारतीय नारी की भाव-शुद्धि का ज्वलन्त प्रमाण है, तो भी दूसरों की निंदा करना, उसे पसंद नहीं । गायत्री की चारित्रिक दुर्बलता की ओर संकेत करते हुए वह विद्या से कहती है "किसी की बुराई करना तो अच्छा नहीं है और इसी लिए मैं अब तक सब कुछ देखती हुई भी अन्धी बनी रही, लेकिन अब बिना बोले नहीं रहा जाता । मेरा वश चले तो ऐसी कुटिलाओं का सिर कटवा लूँ । यह भोलापन नहीं है, बेहयाई है । दिखाने केलिए भोली बनी बैठी हुई है । पुरुष हज़ार रसिया हो, हज़ार चतुर हो, हज़ार घातिया हो, हज़ार डोरे डाले, किन्तु सती स्त्रियों पर उसका एक मंत्र भी नहीं चल सकता । वह आँख ही क्या जो एक निगाह में पुरुष की चाल ढाल को ताड न ले । जलाना आग का गुण है, पर हरी लकडी को भी किसी ने जलते देखा है ? हया स्त्रियों की जान है, इस के बिना वह सूखी लकडी है जिसे आग की एक चिनगारी जलाकर राख कर देती है । लेकिन जब उसे गायत्री के सद्भाव का परिचय होता है तब वह उसकी आत्मीया बन जाती है और अपनी बीती सुनाने लगती है । श्रद्धा की बीती प्रेम और वियोग की करुण कथा थी जिस में आदि से अंत तक कुछ छिपाने की ज़रूरत न थी वह रो-रोकर अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करती, प्रेमशंकर की निर्दयता और सिद्धान्त प्रेम का रोना रोती अपनी टेक पर भी पछताती । कभी प्रेमशंकर के सद्गुणों की अभिमान के साथ चर्चा करती । अपनी कथा कहने में, अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने में उसे शान्तिमय आनन्द मिलता था । वह गायत्री को ज्ञानोपदेश भी देती थी । श्रद्धा के मन से शनैः शनैः अन्धविश्वास का पर्दा हट जाता है और वह सोचने लगती है कि जिस पुरुष ने अपने मन को, अपनी इन्द्रियों को, अपनी वासना को ज्ञानबल से जीत लिया हो क्या उस केलिए भी प्रायश्चित्त की ज़रूरत है ? लखनपुरवाले जब कैद से छूटे और सब लोग

प्रेमशंकर को आशीष देने लगे तो श्रद्धा का मन उल्लसित हो गया । उस को विश्वास हो गया कि परोपकार की महिमा प्रायश्चित्त से किसी तरह कम नहीं हो सकती, बल्कि सच्चा प्रायश्चित्त तो परोपकार ही है । परिणाम यह हुआ कि चौदह वर्ष के बाद श्रद्धा को अपने प्राणपति की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

मायाशंकर के प्रति उसके मन में जो पुत्रवात्सल्य था, वह उसकी महत्ता को बढाता है क्योंकि नारी का मातृरूप ही अत्यधिक श्रेष्ट है । मायाशंकर के चरित्र को निखारने में उसका कम हाथ नहीं । प्रभाशंकर का कर्ज चुकाने के लिए मायाशंकर ने अपने रुपये खर्च करने की ज़िद पकड़ी तो प्रेमशंकर को वह मान्य नहीं था, पर श्रद्धा इस बात में मायाशंकर की मदद करती है और उसकी युक्ति के आगे प्रेमशंकर को झुकना पडता है । धर्मचिंता से मुक्त होने पर श्रद्धा अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होती है । डॉ॰ मदान के नाम लिखे अपने एक पत्र में प्रेमचन्दजी ने आदर्श नारीत्व के संबंध में जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था, वह यों है "मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना । त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असन्तोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भाँति ऐसी हो, जिसके लिएपछताने की आवश्यकता न पडे ।" इस दृष्टि से देखें तो हमें मालूम होता है कि एक आदर्श नारी में जो जो गुण आवश्क हैं, वे सभी श्रद्धा में विद्यमान है । सेवा की प्रतिमूर्ति पति के साथ समाज कल्याण के यज्ञ में भाग लेकर प्रेमाश्रम में रहनेवाली श्रद्धा हमारी श्रद्धा की पात्री बनती है तो इस में आश्चर्य की बात क्या ?

शीलमणि

प्रेमाश्रम के गौण नारी पात्रों में प्रमुख है शीलमणि। वह डिप्टी कलक्टर ज्वालासिंह की सहधर्मिणी है।

ज्वालासिंह ज्ञानशंकर का सहपाठी था। ज्ञानशंकर अपना स्वार्थ साधने के लिये ज्वालासिंह को वश में करना चाहता है। उसका विचार है कि स्त्रियों के मेल जोल से इन महाशय की नकेल मेरे हाथों में आ जायगी। लेकिन विद्या उस के कहे अनुसार शीलमणि से कुछ कहने को तैयार नहीं थी तो ज्ञानशंकर ने खुद कहा। शीलमणि ने सिफारिश करने का वचन दिया। फलत: ज्वालासिंह बडे असमंजस में पड गये। सामने एक जटिल समस्या थी, न्याय या प्रणय, कर्तव्य या स्त्री की मान रक्षा। शीलमणि ज्ञानशंकर की चालें क्या जाने, शील में पड़कर वचन दे आयी। अब यदि उसकी बात नहीं रखता तो वह रो-रोकर जान ही दे देगी। शीलमणि नहीं जानती थी कि इस अन्याय से पति की आत्मा को दु:ख होगा। आखिर ज्वाला सिंह ने निश्चय किया कि शीलमणि रूठेगी तो रूठे। उसे स्वयं समझना चाहिए था कि मुझे ऐसा वचन देने का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन मुश्किल तो यह है कि वह केवल रोकर ही मेरा पिंड न छोड़ेगी। बात-बात पर ताने देगी। कदाचित् मैके की तैयारी भी करने लगे। यही उसकी बुरी आदत है कि या तो प्रेम और मृदुलता की देवी बन जाएगी या बिगड़ेगी तो भालों से छेदने लगेगी। ज्वालासिंह की ये चिन्तायें शीलमणि की प्रकृति की ओर संकेत करती हैं। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि अपनी बात रखने केलिए पति को अन्याय और अनर्थ करने पड़ेंगे तो वह काँप उठी। उसने इस मामले को इतना महत्वपूर्ण न समझा था। बोली, यदि यह हाल है तो आप वही कीजिए जो न्याय और सत्य कहे। मैं गरीबों की आह नहीं लेना चाहती। मैं क्या जानती थी कि ज़रा-से दावे का यह भीषण परिणाम होगा? किसानों की दीन-हीन हालत का पता लगा तो उसका मन चाहता है कि किसी भी प्रकार उनकी सहायता करनी चाहिए।

ज्वालासिंह नौकरी से इस्तीफा देने वाले थे तो पहले शीलमणि राज़ी न हुई, फिर उसे अनुभव हो गया कि इस नौकरी के साथ आत्मरक्षा नहीं हो सकती । बाबू प्रेमशंकर के साथ रहकर प्रजा की भलाई करने में अब उसे भी सन्तोष है । उसे आते देखकर महरी श्रद्धा से कहती है कि हाँ-हाँ, वही हैं साँवली । पहले तो गहने से लदी रहती थी, आज तो एक मुँदरी भी नहीं है । वह एक उजली साडी पहने हुए थी । गहनों का तो कहना ही क्या, अधरों पर पान की लाली भी नहीं थी । इस से प्रकट है कि उसने जीवन में सादगी को अपनाया है । गायत्री के प्रति उसके कथन उसकी स्पष्टवादिता के प्रमाण है ।

जब प्रेमशंकर और ज्वालासिंह लखनपुरवालों के अपील के लिए धन की फिक्र में थे तो शीलमणि अपने गहने देने को तैयार होती है । वह कहती है, जिस आग से आदमी हाथ सेंकता है, क्या काम पड़ने पर उससे अपने चने नहीं भून लेता ? स्त्रियाँ गहने पर प्राण देती हैं लेकिन अवसर पड़ने पर उतार भी फेंकती हैं । यह कथन उसके मन की महानता और उदारता का परिचायक है ।

सारा आडंबर छोड़कर सीधा सादा जीवन व्यतीत कर समाज कल्याणकारी प्रयत्नों में पति को सहयोग देनेवाली शीलमणि वास्तव में शीलमणि ही है । इस सफल-गृहस्था नारी का चरित्र प्रेमचन्द जी के आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचायक है ।

सुनीता

जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास "सुनीता" की नायिका सुनीता में भाव प्रवणता, त्याग एवं आदर्श कूट कूट कर भरे हैं । उसका पति श्रीकांत अपने मित्र हरिप्रसन्न के जीवन प्रवाह को एक निश्चित गति प्रदान करने के लि पत्नी को साधना बनाना चाहता है । सुन्दरी, सुशीला, उच्चशिक्षिता, पति परायणा और सद गृहस्था सुनीता कर्तव्यपालन में भी पीछे नहीं है । उसके अनुसार पुरुष को ठीक राह पर लाना नारी का कर्तव्य है[1] । हरिप्रसन्न उससे राजनीति में भाग लेने को कहता है तो उसका कथन है, ,,,,,, मेरे लिए तो सारा राष्ट्र सारा समाज, सारा श्रेय जिस व्यक्ति मे समा जाना चाहिए, वह तो मुझे प्राप्त मेरे स्वामी हैं[2] ।"

हरिप्रसन्न को राह पर लाने में तत्पर सुनीता को हरिप्रसन्न विजन वातावरण में अपनी बाँहों में समेट लेता है तो वह विक्षिप्त हो, विवस्त्र हो कहती है, "मुझे लो, मुझे पाओ[3] ।" "नारी में जो जन्मजा लज्जा होती है, उसका पाश्चात्य परम्परा में चाहे कुछ भी स्थान न हो, पर अपनी भारतीय परम्परा में वह नारी का आभूषण समझी गयी है । अपने इसी आभूषण को वह आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति के चौराहे पर नीलाम कर उस से प्राप्त त्याग एवं आत्मोत्सर्ग के धन से हरिप्रसन्न की दमित-शमित वासनाओं की तृप्ति करती है[4] ।" सुनीता पहले पति से खींची खींची सी रहती थीं, श्रीकांत का भी यही हाल था । दूसरे शब्दों में, "घर" एक प्रवं

---

1. जैनेन्द्रकुमार - सुनीता (1936), बम्बई, पृ.74-75
2. वही, पृ.167
3. वही, पृ.208
4. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.177

उजड़ा हुआ था । "बाहर" (हरिप्रसन्न) के प्रवेश से "घर" की स्थिति बदल जाती है, परिणाम स्वरूप सुनीता और श्रीकांत का वैवाहिक जीवन पुन: सुखी होता है । परस्पर विरोधी परिस्थितियों में रहकर सुनीता की पवित्रता, आत्मविश्वास और पातिव्रत धर्म की परीक्षा ली गयी थी; उस परीक्षा में सफल होकर गार्हस्थ्य जीवन में भी वह सफल हुई ।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" के उपन्यास (1933) "अलका" की नायिका शोभा कृषक परिवार से संबंधित है । पति विजय बम्बई विश्वविद्यालय में विद्यार्थी है । "इंफ्लुवेन्ज़ा से माता-पिता की मृत्यु होती, पर शोभा पंडित स्नेहशंकर के घर में उनकी पुत्री की तरह रहती है और तब से वह अलका बनती है । सरल, निष्कपट और उदार अलका दर्शन की अच्छी ज्ञाता और आधुनिक विचारोंवाली है । प्रभाकर नामक युवकपर वह आकृष्ट होती है । उस के कहने से श्रमिकों के एक स्कूल में पढ़ाने जाती है । मुरलीधर आदि एक दिन उसे उड़ा ले जाना चाहते हैं तो वह पिस्तोल से उसकी हत्या करती है और बेहोश हो जाती है । अंत में उसे मालूम होता है कि प्रभाकर विजय है । आधुनिकता की ओर बढ़ने पर भी वह अपना आदर्श नहीं छोड़ती और उच्छृंखल नहीं बनती ।

विद्या -(असफल गृहिणियाँ)

डॉ॰ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "पर्दे में कैद पद पद पर लांछित नारी की महिमा के ज़बरदस्त वकील" प्रेमचन्दजी ने नारी समस्या को मुख्य रूप से अपना विषय बनाया है । उनके उपन्यास "प्रेमाश्रम" के सभी नारीपात्र लेखक के नारी संबंधी दृष्टिकोण का परिचय देनेवाले हैं । प्रेमाश्रम के प्रधान नारी पात्रों में एक है विद्या । उसके द्वारा उपन्यासकार ने एक साधारण गृहस्थ नारी की समस्याओं का जीता-जागता चित्रण किया है ।

विद्या लखनऊ के एक बडे रईस और ताल्लुकेदार रायबहादुर कमलानन्द की छोटी पुत्री है। और लखनपुर के ज़मीन्दार लाला जटाशंकर के पुत्र ज्ञानशंकर की पत्नी है। वह अपनी बडी बहन गायत्री से भी अधिक रूपवती सबसे पहले उसका पत्नी-रूप ही हमारे सामने आता है। एक आदर्श पत्नी के सभी गुण उसमें है। उसे परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक श्रद्धा थी। पति की स्वार्थ-वृत्ति, कूटनीति आदि से वह खूब परिचित है। उसको ठीक मार्ग पर लाने का वह भरसक कोशिश करती है। पर उसकी सब चेष्टायें व्यर्थ होती है क्योंकि ज्ञानशंकर उसे झिडक दिया करते थे। उसके दाम्पत्य जीवन की असफलता कारण ज्ञानशंकर ही था। प्रभाशंकर और प्रेमशंकर के ज्ञानशंकर के दुर्व्यवहार से उसे दुःख है। ज्ञानशंकर का गायत्री की रियासत का मैनेजर बनना उस के सर्वथा अनुचित जान पडा था। ज्वालासिंह को वश में करने के लिए ज्ञानशंकर ने स्त्रियों में मेल जोल बढाया। ज्वालसिंह की पत्नी शीलमणि से सिफारिश करने ज्ञानशंकर आया तो विद्या का मुखमंडल लज्जारुण हो जाता है और वह वहाँ से उठकर ज्ञानशंकर को अवहेलनापूर्ण नेत्रों से देखते हुए चली जाती है। रायसाहब ने जब ज्ञानशंकर के मलिन, कलुषित चित्तवृत्ति की ओर संकेत किया तो विद्या से न रहा गया। यद्यपि वह ज्ञानशंकर की स्वार्थ-भक्ति से भलीभाँति परिचित थी, जिस का प्रमाण उसे कई बार मिल चुका था, पर उसका आत्मसम्मान उनका अपमान सह न सकता था। उनकी निन्दा का एक शब्द भी वह अपने कानों से न सुनना चाहती थी। उसकी धर्म-नीति में यह घोर पातक था। तीव्र स्वर से बोली आप मेरे सामने उनकी बुराई न कीजिए। यह कहते - कहते उसका गला रुँध गया और वह भाव जो व्यक्त न हो सके थे, आँखों से बह निकले। गायत्री को फँसाने केलिए धर्म का जाल बिछाने की बात सुनकर उसकी भौहें तन गयीं, मुखराशि रक्तवर्ण हो गयी। गौरवयुक्त भाव से बोली - पिताजी, मैं ने सदैव आपका अदब किया है और आपकी अवज्ञा करते हुए मुझे जितना दुःख हो रहा है, वह वर्णन नहीं कर

सकती, पर यह असंभव है कि उनके विषय में यह लांछन अपने कानों से सुनूं। मुझे उनकी सेवा में आज सत्रह वर्ष बीत गये, पर मैं ने उन्हें कभी कुवासनाओं की ओर झुकते नहीं देखा। जो पुरुष अपने यौवन काल में भी संयम से रहा हो उसके प्रति ऐसे अनुचित सन्देह कर के आप उसके साथ नहीं, गायत्री बहन के साथ भी घोर अत्याचार कर रहे हैं। इस से आपकी आत्मा को पाप लगता है। इस पर भी रायसाहब कहते हैं कि तुम उस दुष्ट को समझाओ, नहीं तो कुशल नहीं है। तब विद्या रोती हुई कहती है, मैं जिस पुरुष की स्त्री हूं, उस पर सन्देह करके अपना परलोक नहीं बिगाड सकती। वह आपके कथनानुसार दुचरित्र सही, दुष्टात्मा सही, कुमार्गी सही, परन्तु मेरे लिए पूज्य और देवतुल्य हैं। एक पति-परायणा आदर्श हिन्दू नारी का रूप ही यहाँ दृष्टिगत होता है। जब रायसाहब ने सप्रमाण सिद्ध किया कि ज्ञानशंकर ने उन्हें विष खिलाया तो विद्या ग्लानि, लज्जा और नैराश्य से मर्माहत होकर पलंग पर लेट गयी और बिलख-बिलख कर रोने लगी। ज्ञानशंकर की क्रूरता इतनी घोर और घातक हो सकती है उसका उसे अनुमान भी न था। उसे ज्ञानशंकर पर क्रोध आया। तो भी उसे समझाकर सत्पथ पर लाने के उद्देश्य से वह बनारस गयी। उसके मन में जो शंका आरोपित हुई थी उसकी पग पग पर पुष्टि होती गयी। ज्ञानशंकर के कपट व्यवहार का उद्देश्य गायत्री को समझा देने का विचार विद्या के मन में आया। संयोग से विद्यावती रात को गायत्री के कमरे में आयी तो उसने अपने पति और गायत्री को आलिंगन पाश में बद्ध देखा। वह इस समय बड़ी शुभ इच्छाओं के साथ आयी थी, लेकिन निर्लज्जता का यह दृश्य देखकर उसका खून खौल उठा, आँखों में चिनगारियाँ सी उडने लगीं, अपमान और तिरस्कार के शब्द मुँह से निकलनेकेलिए ज़ोर मारने लगे। पर उसके वश में इस के सिवाय और कुछ न था कि वह वहाँ से टल जाय। गायत्री तो उसके पैरों पर गिर पड़ी थी। जब उसने गायत्री को सिर झुकाकर चीख-चीख कर रोते देखा तो उसका हृदय नम हो गया। गायत्री ने मायाशंकर को गोद

लेने की इच्छा प्रकट की तो ज्ञानशंकर की आशा-पूर्ति हुई । जब इसकी तैयारी हो रही थी, तब विद्या अपने कमरे में बैठी हुई रो रही थी । वह एक गर्वशीला, धर्म निष्ठा, सन्तोष और त्याग के आदर्श का पालन करनेवाली महिला थी । यद्यपि पति की स्वार्थ भक्ति से उसे घृणा थी, पर इस भाव को वह अपनी पति-सेवा में बाधक न होने देती थी । पर जब से उसने रायसाहब के मुँह से ज्ञानशंकर के नैतिक अध:पतन का वृत्तान्त सुना था तब से उसकी पति श्रद्धा क्षीण हो गयी थी । रात का लज्जास्पद दृश्य देखकर बची-खुची श्रद्धा भी जाती रही । विद्या की दशा उन्मादिनी की सी हो गयी । उसने चूडियाँ तक तोड डालीं । यह उस के निर्बल क्रोध की चरम-सीमा थी । वह एक ऐश्वर्यशाली पिता की पुत्री थी, यहाँ उसे इतना आराम भी न था जो उसके मैके की महरियों को था, लेकिन उसके स्वभाव में संतोष और धैर्य था । अपनी दशा से सन्तुष्ट थी । ज्ञानशंकर स्वार्थसेवी थे, लोभी थे, निष्ठुर थे, कर्तव्यहीन थे, इसका उसे शोक था । मगर अपने थे, उनको समझाने का, उन का तिरस्कार करने का उसे अधिकार था । उनकी दुष्टता, नीचता और भोगविलास का हाल सुनकर उस के शरीर में आग सी लग गई थी । वह लखनऊ से दामिनी बनी हुई आयी । वह ज्ञानशंकरपर तडपना और उनकी कुवृत्तियों को भस्मीभूत करदेना चाहती थी, वह उन्हें व्यंग्यशरों से छेदना और कटु शब्दों से उनके हृदय को बेधना चाहती थी । इस वक्त तक उसे अपने सोहाग का अभिमान था । रात के आठ बजे तक वह ज्ञानशंकर को अपना समझती थी । रात के निंद्य, घृणित दृश्य ने विद्या के दिल से इस अपनेपन को, इस ममत्व को मिटा दिया था । अब उसे दु:ख था अपने अभाग्य का, शोक था तो अपनी अवलम्बहीनता का । उसकी दशा उस पतंग-सी थी, जिसकी डोर टूट गयी हो, अथवा उस वृक्ष सी जिस की जड कट गयी हो । मायाशंकर को गोद लेने के आनन्दोत्सव में सम्मिलित न हो कर उस ने जहर खा लिया । अंत के समय उसे ऐसा लगा कि ज्ञानशंकर पिशाच है, वह उसे पकडने आ रहा है । वह भयभीत हो चिल्लाकर

कहती है, छोड दे दुष्ट, मेरा हाथ छोड दे । इस से स्पष्ट है कि ज्ञानशंकर के प्रति उसके हृदय में कितनी गहरी घृणा बस गयी थी ।

नारी के परम्परागत रूपों में प्राचीनकाल से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उसका मातृरूप । माँ में ममता का अथाह सागर निहित है । "प्रेमाश्रम" में विद्या का मातृरूप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । मायाशंकर के प्रति उसके स्नेह-वात्सल्य के उदाहरण आद्यन्त मिलते हैं । रायसाहब की चेतावनी कि अगर गायत्री के सतीत्व पर ज़रा भी धब्बा लगे तो तुम्हारे कुल का सर्वनाश हो जायगा, का स्मरण कर वह काँप उठती है । माया शंकर की सूरत आँखों में फिरने लगी । ऐसा जी चाहता था कि पैरों में पर लग जायें और उड़कर उसके पास जा पहुँचूँ । रह रहकर हृदय में एक हूक-सी उठती थी और अनिष्ट कल्पना से चित्त विकल हो जाता था । आत्मा और विवेक का बलिदान कर के ज्ञानशंकर जो जायदाद पाना चाहता है, उसे विद्या नहीं चाहती । अपने पुत्र को भी वह इस पाप का भागीदार न बनाना चाहती । वह सोचती है, मेरा लड़का गरीब रहेगा, और अपने पसीने की कमाई खायेगा, लेकिन जब तक मेरा वश चलेगा मैं उसे इस जायदाद की हवा भी न लगने दूँगी । इस विषय में श्रद्धा से उसका कथन है, अब मुझे पिताजी की चेतावनी याद आ रही है । उन्होंने चलते समय मुझ से कहा था - अगर तू ने यह आग न बुझायी तो तेरे वंश का नाम मिट जायगा । हाय ! मेरे रोयें खडे हो रहे हैं । बेचारे माया पर क्या बीतेगी ? यह हराम का माल, यह हराम की जायदाद उसकी जान की ग्राहक हो जाएगी, सर्पबन कर उसे डँस लेगी ? बहिन, मेरा कलेजा फटा जाता है । मैं अपने माया को इस आग से क्यों कर बचाऊँ ? वह मेरी आँखों की पुतली है, वहीमेरे प्राणों का आधार है । यह निर्दयी पिशाच, यह बधिक मेरे लाल की गर्दन पर छुरी चला रहा है । कैसे उसे गोद में छिपा लूँ ?

कैसे उसे हृदय में बिठा लूँ ? आखिर गायत्री माया को गोद लेती है तो उसकी आशंका चरमसीमा पर पहुँचती है और निरुपाय होकर वह मौत की शरण लेती है । अंतिम समय भी ज्ञानशंकर को देखकर वह चीख उठती है और कहती है, अरे देखो, माया को पकड लिया । कहता है, बलिदान दूंगा । दुष्ट, तेरे हृदय में ज़रा भी दया नहीं है । उसे छोड दे, मैं चलती हूँ, मुझे कुण्ड में झोंक दे, पर ईश्वरके लिए उसे छोड दे । यह कहते कहते वह मूर्च्छित होकर गिर पडती है । उसके मरणोपरान्त उसकी छोटी बच्ची मुन्नी भी बीमार पड गई मातृहृदय की भूखी वह बालिका भी चल रही है । मातृत्व में ही नारी का चरमोत्कर्ष है और उस मातृत्व की अनुपम छटा विद्या में दिखाकर उपन्यासकार उसे आदर्श नारी के उच्चासन पर बिठाते हैं ।

विद्या का भगिनी रूप भी हृदयस्पर्शी है । अपने भाई बाबू रामानन्द की मृत्यु का समाचार पाकर उसके मुँह से एक चीख निकली, वह विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़ी और छाती पीट पीट कर विलाप करने लगी । भाई के षोडशी में दान देने का विचार उसके भ्रातृप्रेम का ही परिचायक है । गायत्री के प्रति उसके हृदय में अगाध ममता है । गायत्री और ज्ञानशंकर के अनुचित संबंध का पता लगता है तो उसे पहले विश्वास ही नहीं होता । उस लज्जास्पद दृश्यको देखने के बाद गायत्री के प्रति उसके मन में जो क्षणिक क्रोध होता है, वह भी तभी गायब होता है जब गायत्री रोती हुई विद्या के पैरों पर गिर पड़ती है । विद्या स्नेह और भक्ति के आवेश से आतुर होकर बैठ जाती है और गायत्री का सिर उठाकर अपने कंधे पर रख लेती है । दोनों बहनें रोने लगती है, एक ग्लानि, दूसरी प्रेमोद्रेक से । वह गायत्री को निर्दोष समझती है । श्रद्धा से उसका निम्नलिखित कथन इसका प्रमाण है । इस में गायत्री बहन का दोष नहीं, सारी करतूत इन्हीं महाशय की है जो जटा बढायें,

पीताम्बर पहने भगत जी बने फिरते हैं । गायत्री बेचारी सीधी-सादी, सरल स्वभाव की स्त्री है । धर्म कीओर उसकी विशेष रुचि है, इसीलिए यह महाशय भी भगत बन बैठे और यह भेष धारण करके उस पर अपना मंत्र चलाता है । उसका यह विश्वास अंत तक अटल रहा उसकी अंतिम चितवन इसकी साक्षी हैं । विद्या की ज़बान बन्द थी, लेकिन आँखें कह रही थीं - मेरा अपराध क्षमा करना । मैं थोड़ी देर की मेहमान हूँ । मेरी ओर से तुम्हारे मन में जो मलाल हो वह निकाल डालना । मुझे तुम से कोई शिकायत नहीं है, मेरे भाग्य में जो कुछ बदा था, वह हुआ । तुम्हारे भाग्य में जो कुछ बदा है, वह होगा । तुम्हें अपना सर्वस्व सौंप जाती हूँ । उसकी रक्षा करना । श्रद्धा भी उसके लिए सहोदर तुल्या है ।

विद्या में आत्माभिमान और संतोषी वृत्ति है । उसमें ईर्ष्या-का लेश-मात्र भी नहीं । मन में तीव्र दुःख का भाव होने पर भी उसमें विद्रोह या प्रतिहिंसा की भावना नहीं । अंत में ज्ञानशंकर को पछतावा होता है और कहता है, मैं ने इसे आज तक न समझा । यह पवित्र आत्मा थी, देवी थी, मेरे जैसे लोभी, स्वार्थी मनुष्य के योग्य न थी । इस बहुप्रिय और सुशील रमणी की मृत्यु ने परिवार के ही नहीं, मुहल्ले भर की स्त्रियों को शोकाकुल बनाया । उसकी दयालुता और दानशीलता ने महरियों तक को प्रभावित किया था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्या एक आदर्श पत्नी, आदर्शमाता, आदर्श बहिन और सर्वोपरि एक आदर्श नारी है ।

निर्मला

प्रेमचन्द के उपन्यास "निर्मला" (1922 - 23) की नायिका निर्मला दहेज की समस्या से उत्पन्न विभीषिका के कारण बेमेल विवाह का बलिवेदी पर अर्पित बलिपशु है जिसकी करुण कथा सामाजिक के मन को झकझोरने वाली है । "निर्मलाके जीवन का गहरा विषाद सम्पूर्ण कथा-प्रसंगों को मानो अपनी परिधि में समेटे रहता है - निर्मला रूपी केन्द्र से विकीर्ण होनेवाली विषाद तरंगें सभी को अभिभूत किये रहती है । और इस दु:ख गाथा का आख्यान करता हुआ लेखक अंत तक नहीं पसीजता । वह समस्या का यथा-तथ्य निरूपण भर कर देता है दहेज, अनमेल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियाँ के दुष्परिणामों को रेखांकित भर करता है - किसी तरह का उपचार प्रस्तुत नहीं करता।[1] वृद्ध और विधुर तथा तीन पुत्रों के पिता तोताराम की पत्नी निर्मला की आयु तोताराम के सोलह वर्षीय बडे पुत्र मन्साराम से कम है । "कली प्रभात समीर के ही स्पर्श से खिलती है । दोनों में समान सारस्य है । निर्मला के लिए वह प्रभात समीर कहाँ था ?"[2] अपने पितृतुल्य पति से वह कैसे प्रेम करेगी ? वे तो आदर के पात्र हैं । उनके पुत्रों को प्यार करके उसका अतृप्त नारी-हृदय मातृहृदय में परिणत होता है । अपनी हृदय-व्यथा का समाधान वह यह कह कर करती है, "संसार में सब के सब प्राणी सुख सेज ही पर तो नहीं सोते । मैं भी उन्हीं अभागों में हूं । मुझे भी विधाता ने दु:ख की गठरी ढोने के लिए चुना है । वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता । उम्र भर का कैदी कहाँ तक रोएगा ? रोए भी तो कौन देखता है ? किसे उस पर

---

1. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी
2. प्रेमचन्द - निर्मला, बनारस, पृ.38

दया आती है ? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनायें तो सहनी ही पड़ती है[1]।" मन्साराम के सामीप्य से उसे थोड़ा संतोष प्राप्त होता था, लेकिन पति उस पर सन्देह करने लगते हैं। "वह एक "टाइप" है जो समाज में नारियों के उस वर्ग की प्रतिनिधि बन कर आती है, जो दहेज की कुप्रथा, अनमेल विवाह और असंगतियों के कारण जीवन-भर असंतोष, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और विषम परिस्थितियों से संघर्ष करती रहती हैं और अंत में उसी में मर जाती है[2]।" मरते वक्त वह अपनी पुत्री को कुपात्र के गले न मढ़ने की प्रार्थना करती है।

निर्मला के गार्हस्थ्य जीवन की असफलता का कारण अनमेल विवाह है तो प्रेमचन्द के एक अन्य उपन्यास "गबन" (1930) की जालपा के पारिवारिक जीवन के असंतोष का कारण उसका आभूषण प्रेम है। पति रमानाथ की वास्तविक स्थिति जानने पर उसे पश्चात्ताप होता है। यहीं से उसका हृदयपरिवर्तन होता है। स्वार्थ के लिए झूठी गवाही देना वह पसन्द नहीं करती। पुरुषार्थ, परिश्रम और सदुद्योग से अभिलाषाओं की पूर्ति करना उसे पसन्द है; पर नीयत खोटी करके, आत्मा को कलुषित करके कमाने की वह निन्दा करती है[3]। "यहाँ जालपा के व्यक्तित्व में परम्परा की लीक पर चलनेवाली नारी के एक अत्यन्त गरिमामय एवं नये रूप का अभ्युदय होता है। हिन्दी उपन्यास में नारी को यहाँ पहली बार इतनी महत्ता प्राप्त हुई वह अपनी आत्मशक्ति एवं विवेक से एक लक्ष्य भ्रष्ट पुरुष का उद्धार कर मानों नये युग का प्रवर्तन करती है[4]।"

---

1. प्रेमचन्द - निर्मला, बनारस, पृ.50
2. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.189
3. प्रेमचन्द - गबन (1930) बनारस, पृ.257
4. हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण महेन्द्र चतुर्वेदी

कल्याणी

जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास "कल्याणी" {1932} की नायिका कल्याणी पतिव्रता, धर्मपरायणा और सहिष्णु है। डॉक्टर होने के कारण वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र है। तो भी वह सफल गृहिणी नहीं बनती। उसके पति डॉ.असरानी के संकीर्ण विचार और धनमोह इसके कारण हैं। अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट होने पर भी उसमें विद्रोह की प्रवृत्ति नहीं। आँसू की घूँट पीकर वह चुपचाप अपने को मिटाती जा रही थी। "मैं जानती हूँ कि मैं अधिक काल नहीं जीऊँगी। ऐसा जीना कठिन है, व्यर्थ है।"[1]

प्रस्तुत कथन उसकी असह्य व्यथा का द्योतक है। वह अपने निजत्व को धीरे धीरे मिटाती है। डाक्टरी छोड कर सफल गृहिणी बनने का प्रयत्न वह करती है। बीच बाज़ार में डॉ. असरानी कल्याणी को जूते से मारते हैं क्योंकि वह एक सभा में निश्चित समय पर नहीं पहुँच पाती और डॉ. भटनागर की पत्नी को देखने चली जाती है। इस अपमान को भी वह चुपचाप पी लेती है। कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिक कारण भी उसके असंतोष के मूल में है। विदेश में प्रीमियर मित्र को निराश करने के प्रति उसके मन पर जो प्रतिक्रिया हुई थी वह और "भारतीय तपोवन" की स्थापना न कर सकने से उत्पन्न निराशा इन कारणों में प्रमुख थे। सब कुछ सहकर जीने पर भी एक दिन उसे खीझ कर कहना पडा, "तुम साफ साफ कह क्यों नहीं देते कि तुम क्या चाहती हो सो वह तो हो रहा है। आखिरी साँस तक मेरा बिक जायेगा।

----

1. जैनेन्द्रकुमार - कल्याणी {1932} बम्बई, पृ.22

तब भी मैं इनकार नहीं करूँगी ।[1] डाक्टरी और गृहस्थी दोनों का समन्वय कल्याणी के लिए दुष्कर है जब कि डॉ· असरानी इन दोनों का समन्वय चाहते थे। इसी अन्तर्विरोध के कारण डाक्टरी छोड कर गृहलक्ष्मी बनने का प्रयत्न करने पर भी वह सफल गृहिणी बन नहीं पाती। मनोविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में कल्याणी के अन्तर्द्वन्द्व को ईगो और इड का संघर्ष कह सकते हैं। अंत में कल्याणी की मृत्यु होती है।

गायत्री {विधवाएँ}

प्रेमचन्दयुग के उपन्यास समस्याप्रधान हैं। घटनाओं तथा समस्याओं को पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। प्रेमचन्द के पात्र सामाजिक समस्याओं के प्रतिनिधि हैं। उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र समझनेवाले प्रेमचन्दजी ने अपने उपन्यास "प्रेमाश्रम" में तत्कालीन समाज की एक प्रमुख समस्या विधवा समस्या पर प्रकाश डालने केलिए "गायत्री" का चित्रण किया है।

"प्रेमाश्रम" के प्रधान नारीपात्रों में एक है गायत्री। वह लखनऊ के एक बडे रईस और ताल्लुकेदार रायबहदुर कमलानन्द की बडी लडकी है। उसका विवाह गोरखपुर के एक बडे रईस से हुआ। पर विवाह के दो साल पीछे वह विधवा हो गयी। उसके पति को किसी घर के ही प्राणी ने लोभवश विष दे दिया था।

1· जैनेन्द्रकुमार कल्याणी {1932}, पृ·87

प्रेमाश्रम का रचनाकाल 1918-19 था, यद्यपि उस समय नारी-जागरण का प्रारंभ हुआ था तो भी समाज में नारियों की स्थिति उतनी अच्छी न थी। विधवाओं की स्थिति और भी शोचनीय थी। इसलिये अपार सम्पत्ति होने पर भी विधवा गायत्री को कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। गायत्री के संबंध में उपन्यासकार का कथन है, "गायत्री उन स्त्रियों में न थी जिन के लिए पुरुषों का हृदय एक खुला हुआ पृष्ठ होता है। उसका पति एक दुराचारी मनुष्य था, पर गायत्री को कभी उस पर सन्देह नहीं हुआ। उसके मनोभावों की तह तक कभी नहीं पहुँची और यद्यपि उसे मरे हुए तीन साल बीत चुके थे, पर वह अभी तक आध्यात्मिक श्रद्धा से उसकी स्मृति की आराधना किया करती थी। उसका निश्चल हृदय वासनायुक्त प्रेम के रहस्यों से अनभिज्ञ था। किन्तु इस के साथ ही सगार्वता उसके स्वभाव का प्रधान अंग थी। वह अपने को उस से कहीं ज्यादा विवेकशील और मर्मज्ञ समझती थी, जितना वह वास्तव में थी। उसके मनोवेग और विचार जल के नीचे बैठनेवाले रोडे नहीं सतह पर तैरनेवाले बुलबुले थे।" विवाह संबंध को वह बहुत पवित्र मानती थी। इसलिए श्रद्धा का प्रेमशंकर से अलग रहना वह अन्याय समझती है और कहती है, जिस पुरुष के साथ विवाह हो गया, उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ठ नारी का धर्म है।

गायत्री की बहन विद्या का पति ज्ञानशंकर रूपवान, सौम्य और मृदुमुख था। गायत्री सरल भाव से इन गुणों पर मुग्ध थी। उस हँसमुख विनयशील, सरलहृदय, विनोदप्रिय रमणी के हृदय में लीला और क्रीडा के लिए कहीं जगह न थी। लेकिन ज्ञानशंकर कीमलिन दृष्टि में गायत्री का प्रत्येक व्यवहार प्रेमाह्वान था। उसे अपनी ओर खींचने केलिए वह बराबर प्रयत्न करता रहा। थियेटर से लौटते समय ज्ञानशंकर ने उसकी कलाई पकड़कर धीरे से दबा दी तो गायत्री ने चौंककर हाथ खींच लिया मानों किसी विषधर ने काट खाया हो। वह आत्मवेदना से तडपने लगी। यहाँ तक कि वह बेहोश हो गयी। तीसरे दिन वह गोरखपुर जाती है। यह घटना उसकी चारित्रिक

निर्मलता का परिचायक है । पर ज्ञानशंकर का पश्चात्ताप उसे फिर अधीर कर देता है । गायत्री की सम्पत्ति और प्रेम के लिए जाल फैलानेवाले ज्ञानशंकर ने "गायत्री देवी" शीर्षक एक लेख उसके चित्र के साथ प्रकाशित किया जिसमें गायत्री की खूब प्रशंसा की गई थी । इसका गायत्री पर अच्छा असर हुआ । अपने इलाकों का प्रबन्ध करने के लिए उसने ज्ञानशंकर को मैनेजर के पद पर विभूषित किया । सरल हृदया गायत्री को वश में करने के लिए ज्ञानशंकर ने भक्ति का स्वांग रचा । रायसाहब की चेतावनी की भी परवाह किये बिना दोनों प्रेम-भक्ति के मार्ग में आगे बढे । ज्ञानशंकर को राय साहब ने गोरखपुर जाने से मना किया था । गायत्री स्वयं माया के साथ बनारस आयी और पुन: भक्ति की लहरों में आमग्न हो गई । गायत्री के शुभागमन के उत्सव में कृष्णलीला हुई जिस में गायत्री ने राधिका का पार्ट लिया और ज्ञानशंकर ने कृष्ण का । रायसाहब से ज्ञानशंकर के बुरे लक्ष्य की सूचना पाकर विद्या दूसरे ही दिन बनारस पहुँची । उसके मन में जो शंका आरोपित हुई थी, उसकी पग-पग पर पुष्टि होती गयी । रात में ज्ञानशंकर ने गायत्री के कमरे में आकर राधा-कृष्ण-प्रेम-वृत्तान्त छेडा तो गायत्री पर एक नशा-सा छा गया । उस के विचारों में वह आध्यात्मिक प्रेम था, इस में वासना का लेश भी न था । वह स्वयं राधा बन गयी और भक्ति के आवेग में ज्ञानशंकर के पैरों पर गिर पड़ी । ज्ञानशंकर ने उसे तुरन्त उठाकर छाती से लगा लिया । तभी विद्या अन्दर घुस आयी तो गायत्री का मन ग्लानि से भर गया । वह रोती हुई विद्या के पैरों पर गिर पडी तो भी ज्ञानशंकर को रोते देखकर उसका मन पुन: चंचल होता है और वह राधा हो जाती है । उसकी इसी चंचलता ने ही ज्ञानशंकर की कूटनीति को सफल बनाया । गायत्री ने मायाशंकर को गोद लिया तो ज्ञानशंकर के जीवन की चिरसंचित अभिलाषा पूरी हुई ।

विधवा होने पर भी गायत्री सुन्दर ढंग से वस्त्राभूषण पहनती थी । उसका रूप अत्यन्त मोहक था । गोरखपुर में रानी गायत्री की बैठक में पहुँचने पर ज्ञानशंकर को "अपने सम्मुख विलासमय सौन्दर्य की एक अनुपम मूर्ति नज़र आयी जिस के एक एक अंग से गर्व और गौरव आभासित हो रहा था । गायत्री के उपाधि प्रदान के जलसे में मंच पर उसकी उपस्थिति के संबंध में ज्ञानशंकर आश्चर्य चकित हो सोचते हैं, "वह मंच पर आयी तो सारा दरबार जगमगाने लगा था । उसके कुन्दन वर्ण पर आसमानी साडी कैसी छटा दिखा रही थी । उसके सौन्दर्य की आभा ने रत्नों की चमक-दमक को भी मात कर दिया था । विद्या इससे कहीं रूपवती है, लेकिन उसमें यह आकर्षण कहाँ, यह रसिकता कहाँ ? इसके सम्मुख आकर आँखों पर, चित्त पर, जबान पर काबू रखना कठिन हो जाता है । रमणीयता और लालित्य के साथ साथ पुरुषों का साहस और धैर्य भी उसमें हैं । यही नहीं उदारता भी उसमें कूट कूट कर भरी है । उसका हृदय पहले भी उदार था, पर प्रेम-भक्ति का रंग चढने पर वह और भी दानशीला हो गयी । उसके यहाँ नित्य सदाव्रत चलता था और जितने साधु-संत आ जायें, सबको इच्छापूर्वक भोजन वस्त्र दिया जाता था । वह देश की धार्मिक और पारमार्थिक संस्थाओं की भी यथासाध्य सहायता करती रहती थी । सनातन धर्म मंडल के वार्षिकोत्सव में सभासदों ने बहुमत से रानी गायत्री को सभापति नियुक्त किया । जल्से में आए सैयद ईजाद हुसैन के "इत्तहादी यतीमखाने"केलिए गायत्री ने एक हज़ार रुपये दिये । उसकी इस उदारता से प्रेरित होकर ही और लोग भी चन्दे देने लगे और कुल चन्दे का योग पाँच हज़ार रुपये हुआ ।

भाषण-कला में भी वह अद्वितीय थी । सनातन-धर्म-मण्डल के वार्षिकोत्सव में रानी गायत्री के व्याख्यान पर समस्त देश में वाह-वाह मच गयी

"पत्रों में उस वक्तृता को पढ़कर लोग चकित हो जाते थे और जिन्होंने उसे अपने कानों से सुना वे उसका स्वर्गीय आनन्द कभी न भूलेंगे। क्या वाक्य शैली थी, कितनी सरल, कितनी मधुर, कितनी प्रभावशाली कितनी भावमयी वक्तृता क्या थी - एक मनोहर गान था।

गायत्री का मन आद्यन्त प्रेम-पूर्ण ही रहा। अपनी बहन विद्या से उसके हृदय में असीम प्रेम है। विद्याने जब उसे ज्ञानशंकर के आलिंगन पाश में बद्ध देख लिया, तो वह अत्यंत ग्लानि से रोती हुई विद्या के पैरों पर गिर पड़ी। दोनों बहने रोने लगी। एक ग्लानि, दूसरी प्रेमोद्रेक से। भगिनी रूप में गायत्री का यह प्रेम भाव हृदयस्पर्शी है। मायाशंकर के प्रति भी उसके मन में अतीव वात्सल्य था। उसे गोद लेने पर वह कृतकृत्य हो जाती है। एक निस्सन्तान विधवा का मातृहृदय देखते ही बनता है। ज्ञानशंकर के प्रति भी उस के मन में अत्यधिक प्रेम था, यद्यपि वह उसे आध्यात्मिक या अलौकिक प्रेम मानती थी। श्रद्ध से भी उसके मन में गहरी आत्मीयता थी।

विद्या की आत्महत्या ने उसकी आँखें खोल दीं। ज्ञानशंकर के षड्यंत्र का ज्ञान उसे हुआ तो उसका प्रेम प्रतिकारवांछा में परिवर्तित हो गया। फिर उसकी प्रेमरसपूर्ण बातों का कोई असर उस पर न हुआ। वह दगा का जवाब दगा से देना सीख गई थी। वह सोचने लगी कि इस व्याध ने अपने ऐश्वर्य-प्रेम के हेतु मेरी प्रकृति के सबसे श्रेष्ठ स्थान पर निशाना मारकर मेरा सर्वनाश कर दिया। वह कभी कभी शोक और क्रोध से इतनी उत्तेजित हो जाती कि उसका जी चाहता कि उसने जैसे मेरे जीवन को भ्रष्ट किया है वैसे ही मैं भी उसका सर्वनाश कर दूं। "मैं दिखा दूंगी कि अबला पानी की भांति द्रव होकर भी पहाडों को छिन्न-भिन्न कर सकती है।"

इसी मनोभाव के कारण वह मायाशंकर को ज्ञानशंकर से दूर रहने की चेतावनी देती है और उसे प्रेमशंकर की निगरानी में रखकर बद्रीनाथ की यात्रा करती है ।

गायत्री ऋषीकेश में तीन महीने रही, इतने में हेमन्त सिर पर आ पहुँचा, बदरीनाथ की यात्रा दुस्साध्य हो गयी । एक दिन गायत्री ने सुना कि चित्रकूट में कहीं से ऐसे महात्मा आये है जिनके दर्शनमात्र से ही आत्मा तृप्त हो जाती है । गायत्री उनके दर्शनों के लिए गयी । स्वामीजी की कुटी एक ऊँची पहाड़ी पर थी । वहाँ पहुँच कर गायत्री ने आश्चर्य से देखा कि वे महात्मा राय कमलानन्द हैं । उन्होंने कहा, गायत्री, मैं बहुत देर से तेरी बाट जोह रहा हूँ । गायत्री के मन में अनेक दुष्कल्पनायें आयीं । इन दुष्कल्पनाओं ने उसे इतना मर्माहत किया कि पश्चात्ताप, आत्मोद्धार और परमार्थ की सारी सदिच्छायें लुप्त हो गयीं । "उसने उन्मत्त नेत्रों से नीचे की ओर देखा और तब जैसे कोई चोट खाया हुआ पक्षी दोनों डैना फैला वृक्ष से गिरता है, वह दोनों हाथ फैलाये शिखर पर से गिर पड़ी । नीचे एक गहरा कुंड था । उसने उसकी अस्थियों को संसार के कटाक्षों से बचाने के लिए अपने अन्तस्तल के अपार अंधकार में छिपा लिया ।

भोली गायत्री के जीवन-पतंग का यह असाधारण पतन प्रेमचन्द जी ने जान बूझकर हमें दिखाया है । यद्यपि उन्होंने तत्कालीन भारतीय विधवा की हीनदशा दिखाने के लिये यथार्थवादी धरातल पर गायत्री का चित्रण किया तो भी वे अपने आदर्शवाद को छोडने को तैयार न थे । विधवा का विवाह या उसका अवैध संबंध प्रेमचन्दजी को सह्य नहीं था । इसलिये उन्होंने गायत्री के प्रेम को आध्यात्मिक जामा पहनाया, पीछे यह थोडी-सी मानसिक विकृति भी गायत्री के लिए मर्मान्तिक पीडा बन गयी और अंत में वह आत्महत्या करने के लिए विवश हो गयी । वास्तव में अतृप्त कामवासना ही अलौकिक प्रेम का छद्म वेष धारण कर-गायत्री के हृदय-तल में छा गयी थी । पर प्रेमचन्दजी का आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण नारी

को इस दशा तक पहुचाने के पक्ष में नहीं था । अत: सरल-हृदया, उदारहृदया, रूपवती रानी गायत्री का पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर आत्माहुति कराना ही उपन्यासकार को अभीष्ट हो गया । वे विधवाओं की स्थापना के अतिरिक्त कोई ठोस सुझाव उपस्थित नहीं कर सके हैं । वे कदाचित् अपनी प्रगतिशीलता के बावजूद भी रूढ परम्पराओं मे अपने को मुक्त नहीं कर पाये हैं ।

पूर्णा

"प्रेमा" और बाद में "विभव के नाम से प्रकाशित प्रेमचन्द के सर्वप्रथम उपन्यास का परिवर्द्धित और परिवर्तित रूप है "प्रतिज्ञा" । "प्रतिज्ञा" और "निर्मला" दोनों उपन्यासों में उन्होंने नारीजीवन की विडम्बना का निरूपण किया है । अर्थप्रधान समाज में पुरुषाश्रित नारी की परवशता का चित्र दोनों में अंकित हुआ है । "प्रतिज्ञा" में मध्यवर्गीय समाज की पृष्ठभूमि पर एक ओर विधवा की समस्या और दूसरी ओर शिक्षित नारी के जीवनमें आनेवाले प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व की समस्या का अंकन हुआ है । विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा अमृतराय ने की थीं, पर वे कर न सके । "प्रतिज्ञा" में वैधव्य की विडम्बना बडा विराट रूप धरकर आती है - एक और स्वस्थ युवा नारी के मन की सहज नैसर्गिक भावनायें हैं, स्नेह पाने की अतृप्त लालसा है, दूसरी ओर वैधव्य की विषम स्थिति जहाँ मन के प्रत्येक आन्दोलन पर कलंक कालिमा पुत जाने का डर रहता है । पूर्णा की द्विधा में उस के मन की अस्थिरता झलक आती है ।[1] कमलाप्रसाद और पूर्णा के प्रसंग में प्रेमचन्दजी ने इन्द्रिय लालसा का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसमें प्रेमचन्दजी का सहज संयम

---

1. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी

और मर्यादा का उल्लंघन हुआ है । इसके द्वारा वे समाज को चेतावनी देते हैं और विधवा-विवाह की अनिवार्यता की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं ।

विधवा की विवशता की साकार प्रतिमा है ऋषभ चरण जैन के उपन्यास "तपोभूमि" की नायिका धारिणी । विवाह के कुछ समय ही उपरांत वह विधवा हुई थी । जेठ सुन्दरलाल के बहकावे में आकर वह गर्भवती होती है । सुन्दरलाल गर्भपात की प्रेरणा देता है । धारिणी इसे नहीं मानती । सुन्दरलाल का कृत्य समाज के लिए क्षम्य था, पर धारिणी को समाज क्षमा नहीं कर सकता था । वह गंगा में कूद जाती है, पर विधवा से वेश्या बनकर उसे जीना पड़ा । आखिर उसे नवीन नामक युवक का आश्रय मिलता है । यहाँ पुरुष की वासना से ही धारिणी को जीवन में विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं ।

बालविधवा कट्टो का अंकन अन्यत्र किया गया है । श्री• भगवती प्रसाद वाजपेयी जी के उपन्यास "पतिता की साधना" में बालविधवा नन्दा के भीतर के असंतोष और व्यथा की ज्वाला इन शब्दों में फूट पड़ती है, "कौन कहता है तुम विधवा हो कौन कहता है तुम्हारा विवाह हुआ था, या तुमने पति नाम की किसी वस्तु को प्राप्त किया था ? वह तो एक खेल था । पुरुषों का नहीं, बच्चों का भी नहीं, उस अंधे समाज का, हिन्दू जाति की अधोगति के कंगाल का, जिसे नष्ट होना है, जिसका नाश ही अभीष्ट है ।"[1] आर्थिक परतंत्रता से विवश उस असहाय नारी से हरिनाम शारीरि

1• पतिता की साधना (1936) भगवतीप्रसाद वाजपेयी, इलाहाबाद, पृ•199

संबंध स्थापित करता है, फलत: वह गर्भवती होती है । तो भी वह आत्महत्या नहीं करती । माया नाम की वेश्या बनकर वह जीवित रहती है । अंत में हरिनाम से उसका विवाह होता है ।

इसी उपन्यास में एक हिन्दू विधवा का मर्मस्पर्शी चित्र यों अंकित किया गया है, "हिन्दू समाज की विधवा नारी जीवित होकर भी मृत्तिका है, पाषाण है । शिलाखण्ड की भांति उसे शब्दहीन, गतिहीन, निस्पन्द, निश्चल और निश्चेष्ट होकर रहना पड़ता है । जगत भर के लिए वर्षा और वसंत, कोयल और मोर, पुष्प और सौरभ, भ्रमर और तितली, ध्वनि और राग, सरोवर और हंस, कपोत और कपोती, हास और क्रीडा सभी जाग्रत और उत्फुल्ल है; किन्तु एक विधवा प्राण, देह, श्वास, रक्त, कांक्षा और विकास रहते हुए भी इन सब से हीन है, सर्वथा रहित । क्योंकि संयम-नियम, आदर्श-उपासना, तपस्या, साधना, त्याग और बलिदान आदि हिन्दू संस्कृति के गर्व तथा गौरव की जितनी भी दिगंतव्यापी ध्वजायें हैं, सब की सब उसी के भाग्य में पड़ी है ।"[1]

सुमन (वेश्यायें)

"सेवासदन" में सुमन और उसकी समस्या ही प्रधान है । वह विनाशकारी दहेज-प्रथा की शिकार बनकर अनमेल विवाह केलिए बाध्य हुई । सेवासदन में प्रेमचन्दजी ने वेश्या समस्या का सजीव चित्रण किया है, और इस समस्या को उससे भी बड़ी समस्या-नारी की पराधीनता की समस्या - का अंग बना दिया है । "सेवासदन" की नायिका सुमन पीड़ित नारी वर्ग की

---

1. भगवती प्रसाद वाजपेयी - पतिता की साधना (1936), इलाहाबाद, पृ.252

प्रतिनिधि है । प्रारंभ में वह दुर्बल चरित्र है । पिता के लाडप्यार और भोग-विलास के वातावरण में पली सुमन को पारिवारिक जीवन सुचारु रूप से बिताने की व्यावहारिक शिक्षा नहीं मिली थी । अत: पति गजाधर की स्नेहहीनता और उनके घर की गरीबी से उसके मन में वितृष्णा का भाव उत्पन्न हो गया । वह सुन्दरी थी और उसमें उच्चता का भाव {सुपीरियारिटी काम्प्लेक्स} था । गजाधर में हीनता भाव {इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स} था । इन कारणों से सुमन में मनोवैज्ञानिक संघर्ष हुआ और फलत: उसमें अतृप्ति, नैराश्य और क्षोभ के भाव जाग्रत हुए । गजाधर ने उसे घर से निकाल दिया । भोली नामक वेश्या को प्राप्त आदर देखकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है, "वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं । उसकी दूकान खुली है, इसलिए ग्राहकों की भीड है, मेरी दूकान बन्द है, इसलिए कोई खडा नहीं होता, वह कुत्तों के भूँकने की परवाह नहीं करती, मैं लोकनिन्दा से डरती हूं । वह पर्दे के बाहर है, मैं पर्दे के अन्दर हूं । वह डालियों पर स्वच्छन्दता से चहकती है, मैं उसे पकडे हुए हूं । इसी इलाज ने, इसी उपहास के भय ने मुझे दूसरे की चेरी बना रखा है[1] ।" परिणाम स्वरूप सुमन ने वेश्यावृत्ति स्वीकार की ।

अपने इस पतन के लिए वह समाज को दोषी बताते हुए कहती है, "ये मुंशी अबुलवफा हैं, जो मेरी आत्मा को, मेरे धर्म को, हृदय को रोज जलाया करते हैं । ये सेठ चिकनलाल हैं और ये पंडित दीनानाथ हैं । ये और ऐसे ही लोग जो दिन के उजाले में समाज का शासन करते हैं, रात के परदे में इस तरह मुँह काला करते फिरते हैं[2] ।" सदनसिंह के प्रति उसके मन में विशुद्ध प्रेम है । उसके प्रति भी उसकी व्यंग्योक्ति है, "आज तुम आकाश के देवता बने

---

1. प्रेमचन्द - सेवासदन, {1916}, बनारस, पृ.3।

फिरते हो । अँधेरे में झूठा खाने को तैयार पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं करते ।[1]" इस प्रकार समाज के प्रतिष्ठित धनी मानी सदस्यों की विलास-लोलुपता को ही वेश्याजीवन का मूलकारण सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है । लेकिन प्रेमचन्दजी केवल समाज को ही इसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराते । व्यक्ति स्वभाव पर भी उसकी थोडी-बहुत जिम्मेदारी है । सुमन विट्ठलदास और पद्मासिंह के सामने सारा दोष समाज के मत्थे मढकर वास्तव में आत्मवंचना करती है । आत्मशोध करने पर वह "विलास लालसा" और "निर्दय अपमान" इन दो तत्वों को अपने पतन के लिए उत्तरदायी समझती है । "विलास लालसा" व्यक्तिपरक कारण है और निर्दय अपमान में विषम विवाह के प्रेरक तत्वों, व्यक्तियों एवं व्यवस्थाओं का अंतर्भाव है ।

"प्रेमचन्द ने यह कहने का प्र यत्न किया है कि हमारे पुरुष प्रधान समाज में नारी चाहे सुमन जैसी विद्रोहिणी, रूपगर्विता एवं स्वाभिमानिनी हो, चाहे शान्ता जैसी शान्त, निरीह एवं समर्पणशील - दोनों को ही समाज के अकारण आक्रोश का भाजन बनना पडता है । ये दोनों जीवन वस्तुत: एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं - इसी में सेवासदन के कथायोजन की सफलता एवं सतर्कता है और यही प्रेमचन्द के कलात्मक उत्कर्ष का प्रमाण है । प्रतिपाद्य की इस एकता के नाते ही सुमन और शान्ता की कहानियों में अन्विति स्थापित हो जाती है - इस दृष्टि से यह कहना विशुद्ध भ्रांति है कि प्रेमचन्द सुमन और शान्ता की कहानियों के बीच कोई संबंध सूत्र स्थापित नहीं कर सके और उपन्यास के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध उक्त दोनों पात्रों की विविक्त कथाओं का शिथिल आयोजन मात्र हैं[2] ।"

------ --

1. सेवासदन, पृ.296

2. देखिए - प्रेमचन्द एक साहित्यिक विवेचन - श्री.नन्ददुलारे वाजपेयी

इन दोनों कथाओं के संयोजन द्वारा प्रेमचन्दजी ने नारी जीवन की समस्या के आधारभूत एकत्व पर बल दिया है । इसके समाधान के रूप में उन्होंने निषेधात्मक धरातल पर विसम्पर्क (वेश्याओं और कुलांगनाओं के बीच) और विध्यात्मक धरातल पर आर्थिक आत्मनिर्भरता अथवा विवाह के हल पेश किये हैं । समाज के इस पतित वर्ग के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति है, घृणा नहीं ।

"सुमन और गजाधर दोनों के ही जीवन की विकृति उपन्यासकार केलिए अनुताप का विषय है. दोनों ही - समाज-सेवा के उद्देश्य के प्रति समर्पित हैं ।"

सुमन अधिक दिन तक वेश्या न रही । वह विधवाश्रम चली जाती है और सेवा द्वारा आत्मोद्धार करने का प्रयत्न करती है । अपने अतीत कृत्यों पर दुःखी होने पर भी सुमन को समाज में वापस लाने का साहस प्रेमचन्द नहीं कर सके ।

यद्यपि प्रेमचन्द जी ने सुमन के माध्यम से वेश्या समस्या का चित्रण किया है, तो भी उपन्यासकार का उद्देश्य यह नहीं है । सफल गृहिणी बनने की शिक्षा प्रारंभ में न देने के दुष्परिणाम के प्रतीक के रूप में सुमन का चित्रण किया गया है ।

"तीन वर्ष" उपन्यास की वेश्या सरोज का चरित्र महान है जब कि भद्र समाज की स्त्री प्रभा पतिता है । "गबन" की जोहरा वेश्यावृत्ति को छोड़कर सेवा, आत्मत्याग और सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लेती है । "पतिता की साधना" की वेश्या नन्दा का विवाह हरीश से होता है । "माँ" की बन्दीजान वेश्या होते हुए भी स्त्री थी, वह सतीत्वहीन होते हुए भी स्त्रीत्वहीन नहीं थी ।" उसकी दो बेटियों का विवाह हो जाता है ।

चित्रलेखा "§नर्तकियाँ§

भगवतीचरण वर्माजी ने प्रेमचन्दयुग के उत्तरार्द्ध में साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया । उनके उपन्यास "चित्रलेखा" में प्रेमचन्द युगीन प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है ।

प्राचीनकाल में राजनर्तकियों का जीवन वैभवपूर्ण था । पर उनके हृदय में असन्तोष की ज्वाला धधक रही थी । अनेक श्रेष्ठ व्यक्ति उन पर आकृष्ट होते थे । पर विवाह के मार्ग पर अनेक बाधायें थीं । इन नर्तकियों को वैभवपूर्ण जीवन की अपेक्षा साधारण दाम्पत्यजीवन ही अधिक काम्य था । प्रेमचन्द युग का एक प्रमुख नारी पात्र चित्रलेखा ऐसी नारी है ।

"चित्रलेखा" §1934§ उपन्यास की नायिका चित्रलेखा पाटलीपुत्र की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है । अठारह वर्ष की अवस्था में वह विधवा हो गयी । कृष्णादित्य नामक सुन्दर युवक पर वह मुग्ध हो जाती है और

विवाह-पूर्व ही गर्भवती हो जाती है । चारों ओर के परिहासशरों से बिद्ध कृष्णादित्य ने आत्महत्या की । उस से उत्पन्न पुत्र की भी मृत्यु हुई । नृत्य की शिक्षा पाकर चित्रलेखा कुशल नर्तकी बनी ।

उसके जीवन में फिर दो पुरुषों का भी प्रवेश हुआ । पहला बीजगुप्त और दूसरा कुमारगिरि है । लेकिन अतृप्ति और निराशा ही उसे हाथ लगी । बीजगुप्त और यशोधरा का विवाह सम्पन्न करने के लिए वह रास्ते से हट जाती है और फिर कुमारगिरि से दीक्षा लेती है । इस प्रकार वह दिखा देती है कि वह केवल प्रेम ही नहीं त्याग भी कर सकती है ।

स्वयं उपन्यासकार के ही अनुसार कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, जो दूसरे व्यक्तित्वको आकर्षित करके उसे दबा देते हैं, और उसको अपना दास बना लेते हैं । चित्रलेखा का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था । एक प्रतियोगिता में वह कुमारगिरि को पराजित करती है । फिर उस भूल पर पश्चात्ताप करती है[1] । कुमारगिरि को आत्मसमर्पण करने के बाद वह उस भूल पर भी पश्चात्ताप करती है । जब उसे मालूम हुआ कि बीजगुप्त ने यशोधरा से विवाह नहीं किया, तब वह अपनी सारी सम्पत्ति दान कर बीजगुप्त के साथ निकल पड़ती है ।

शिष्टता, संयत स्वभाव और सहृदयता से युक्त चित्रलेखा कर्तव्य-पथ को पहचाननेवाली और विषम परिस्थितियों में भी साहस और धैर्य से काम लेनेवाली आर्य ललना है ।

---

1. भगवतीचरण वर्मा - चित्रलेखा (1934), इलाहाबाद, पृ. 112

मिस मालती

प्रेमचन्द जी ने आदर्श और यथार्थ का समन्वय करके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का दृष्टिकोण अपनाया था । इसी आधार भूमि पर उन्होंने अपने अनेक नारीपात्रों की परिकल्पना की थी । वे ऐसे नारीपात्रों का चित्रण यथार्थवादी ढंग से करते थे, पर उन का अन्त आदर्शवादी ढंग से चित्रित करते थे । "गोदान" की प्रधान नारी-पात्र मालती इसका उदाहरण है । नारी जागरण के काल में गोदान की रचना हुई थी । मालती इस जागरूक नारी वर्ग की प्रतिनिधि है ।

इंग्लैंड से उच्च शिक्षा प्राप्त कर लौटी डॉ॰मालती समाज की ऊँची श्रेणी के लोगों से घुलमिलकर रहती थी । भारत की उच्च शिक्षित, पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नारियों पर पश्चिमी नारी का प्रभाव था, जिस में नारीत्व का अभाव था । मालती भी इस प्रभाव से अछूती न थी । उसमें पुरुषों की स्वार्थपरता और कठोरता थी । वह गरीबों को घंटों बिठाती थी, पर कारवालों का स्वागत करती थी । प्रेमचन्द के शब्दों में, "आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा है। गात कोमल, पर चपलता कूट कूटकर भरी हुई, झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक अप में प्रवीण, बला की हाज़िर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद प्रमोद को जीवन का तत्व समझनेवाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है, वहीं हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिस में इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया हो ।[1]" पारिवारिक उत्तरदायित्व का

1· गोदान, पृ·70

भार इसके कंधे पर था, अतः उसके सपने सपने मात्र रह गये । पत्नी और माता बनने की सहज इच्छा प्रत्येक नारी में है ।

उच्च, पवित्र और आदर्श प्रेम की खोज में लगी मालती मेहता के सद्गुणों के कारण उन की ओर खिंच गयी । पर उसे निराश होना पड़ा । मेहता के सम्पर्क से छिछोरी, विलासिनी, तितलीनुमा "सोसाइटी लेडी" मालती में परिवर्तन होता है । आदर्शवादी प्रेमचन्द ने मालती के यथार्थ चित्र को एक आदर्शवादी दिशा दे दी और फलतः वह बाद में एक आदर्श नारी के रूप में हमारे सम्मुख आती है । उसका मत है, "मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। तुम मुझ से प्रेम करते हो, मुझ पर विश्वास करते हो । मैं भी तुम से प्रेम करती हूँ, तुम पर विश्वास करती हूँ.... हमारी पूर्णता के लिए हमारी आत्मा के विकास के लिए और क्या चाहिए[1] ।" दोनों आजन्म अविवाहित मित्र रहने का निश्चय करते हैं । इस के पीछे जो मनोवैज्ञानिक कारण है, उसे हम सैडिज़्म" या "मैसोकिज़्म" कह सकते हैं ।

"प्रेमचन्द के पूर्व और उनके बाद भी कुछ वर्षों तक, जब तब फ्राइड, एडलर, युंग तथा हेवलॉक आदि द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक धारणाओं के अंतर्गत नवीन नारी मनोविज्ञान का हिन्दी उपन्यास साहित्य में पूर्ण विकास नहीं हो गया, नारी की मर्यादा, उसका गौरव तथा उस की महत्ता सभी कुछ उसके स्नेह वात्सल्य एवं मातृत्व के पवित्र गुणों से आँकी जाती थी[2] ।"

---

1. गोदान - बनारस संस्करण, पृ.343,344
2. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.80

पहले फेशनपरस्त प्रेमिका के रूप में चित्रित मालती का परिवर्तित रूप इसी महान, गौरवपूर्ण मातृत्व के भाव से प्रदीप्त हो उठा। मंगल के प्रति ममता जागने से उसकी दमित मातृत्व की भावना साकार हो उठी। परिवारिक जिम्मेदारी लेकर मालती अच्छी गृहिणी बनती है और घर के बाहर भी सेवाकार्य करती है। मालती के इस भारतीय रूप की, जो पुरुष से प्रतिद्वन्दिता का नहीं, बल्कि नारीत्व का विकास करते हुए पुरुष के साथ सहयोग का है, अभ्यर्थना मारगरट कारमैक ने अपनी पुस्तक "दि हिन्दु वुमन में लेडी अबला बोस, सरोज नलिनी और रामाबाई रानाडे के जीवनोद्देश्य द्वारा की है[1]।

विलासी (कृषक नारियाँ)

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी हमेशा निम्न मध्यवर्ग के वक्ता है। वे किसानों के पक्ष में हैं। देहात की नारियों की सादगी, निष्कपटता आदि का चित्रण करने में प्रेमचन्द जी सिद्धहस्त हैं। "प्रेमाश्रम" की विलासी ऐसी ही नारी है।

विलासी लखनपुर के किसान मनोहर की घरवाली है। वह एक आदर्श पत्नी और आदर्श माता है। पहले पहल हम उसे एक साधारण नारी के रूप में देखते हैं जो पति के हठ और पुत्र की उद्दंडता से तंग आकर शांतिपूर्ण जीवन के लिए समझौता करनेवाली है। सारा गाँव घी देने को तैयार हुआ, पर मनोहर तैयार नहीं। पुत्र बलराज भी उसके पक्ष में है। विलासी उन्हें समझा कर हार गयी। वह कादिर मियाँ के साथ चौपाल गई, उसने घी के लिए रुपये देने की बिनती की। गौसखाँ ने मालिक से कहने की धमकी दी तो वह रोती हुई उनके सामने हाथ बाँधकर खडी हो गई और बोली -

---

1. मारगरेट कारमैक - दि हिन्दू वुमन, पृ. 138, 141, 142

सरकार कहीं की न रहूँगी । जो डाँड चाहे लगा लीजिये, जो सज़ा चाहे दीजिये, मालिकों के कान में यह बात न डालिये । इसकी परवाह किये बिना गोमसखाँ घोडे पर सवार हो गये । गिरिधर के कहे अनुसार मालिक के पास जाकर हाथ पैर पडने का उपदेश कादिर मियाँ ने मनोहर को दिया तो उसने यह कहकर टाल दिया कि वहाँ मेरी और भी दुर्गति होगी । तब विलासी कादिर मियाँ के साथ मालिक के पास जाने का तैयार हुई । कादिर संकोच के साथ धीरे धीरे आगे चले । विलासी भी पीछे-पीछे चली । पर रह रहकर कातर नेत्रों से मनोहर की ओर ताकती जाती थी । जब वह गाँव के बाहर निकल गये तो मनोहर कुछ सोचकर शीघ्र उनके पास पहुँचा और विलासी को घर भेजकर स्वयं मालिक से मिलने चला ।

वही सीधी-सादी विलासी चरावर रोक दिये जाने पर सिंहनी बनती है । वह अपने जानवरों को निकाल ले जाने को तैयार न हुई । गोसखाँ से वह कहती है, क्यों निकाल ले जाऊँ ? चरावर सारे गाँव का है । जब सारा गाँव छोड देगा तो हम भी छोड देंगे । गोसखाँ ने फैजू को आदेश दिया कि इसके जानवरों को घेर लो और मवेशी खाने हाँकले जाओ । तब विलासी ने कहा, मैं कहती हूं इन्हें मत घेरो, नहीं तो ठीक न होगा । उसकी धमकी की परवाह किसी ने न की तो विलासी रास्ते में खडी हो गयी और बोली ले कैसे जाओगे ? तब गोसखाँ ने आदेश दिया, न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो । इस पर विलासीकी चेतावनी है, कह देती हूं, इन जानवरों के पीछे लोहू की नदी बह जायगी, माथे गिर जायेंगे । फैजू के इस प्रश्न पर कि हटती है या नहीं चुड़ैल ?, विलासी का निर्भीक उत्तर है तू हट जा दाढीजार । इतना उसके मुँह से निकलना था कि फैजू ने आगे बढकर विलासी की गर्दन पकडी और उसे इतने ज़ोर से झोंका दिया कि वह दो कदम पर जा गिरी । उसकी आँखें तिलमिला गईं, मूर्छा सी आ गयी । एक क्षण वह वहीं अचेत पडी रही, तब उठी और लँगडाती हुई उन पुरुषों से अपनी अपमान कथा कहने चली जो उसके मानमर्यादा के रक्षक थे । लेकिन गाँव के समीप पहुँचने पर

उसके मन में यह प्रश्न उठा कि इसका फल क्या होगा ? बलराज एक ही क्रोधी है, मनोहर उस से भी एक अंगुल आगे। मेरा रोना सुनते ही दोनों भभक उठेंगे। जान पर खेल जायेंगे तब किन्तु आहत हृदय ने उत्तर दिया, क्या हानि है ? लड़कों के लिए आदमी क्यों झींकता है। पति के लिए क्यों रोता है ? इसी दिन के लिए तो। इस कलमुंहे फैजू का मान करदन हो जायेगा ! गौस खाँ का घमंड तो चूर-चूर हो जायेगा। पर मनोहर और बलराज के समीप पहुँचने पर परिणामचिन्ता ने उसे परास्त कर दिया। वह फूट-फूट कर रोने लगी। जानती थी और समझती थी कि यह आँसू की बूँदें आग की चिनगारियाँ है, पर आवेश पर अपना काबू न था। बलराज के इस प्रश्न पर कि यह सारा कपड़ा कैसे लोहूलुहान हो गया, उसका हृदय थर-थर काँपने लगा। इन छींटों को छिपाने केलिए वह इस समय अपने प्राण तक दे सकती थी। अब उसे यहाँ आने से पश्चात्ताप हुआ। बलराज के बार बार रोने का कारण पूछने पर उसने सिर्फ यही बता दिया कि फैजू और गौसखाँ हमारी सब गायें भैंसें कानी हैद शक ले गये। बलराज ने माता की झुकी हुई आँखें और मर्मघात की आभा से युक्त मुख को देखकर स्थिति को कहीं अधिक भयंकर समझ लिया। वह कन्धे पर लट्ठ रखकर चलने लगा तो मनोहर ने रोक लिया। उसने कुछ ठान लिया था। इसका आभास पाकर विलासी के हृदय में एक चोट-सी लगी और आँसू बहने लगे। वह रह-रहकर हाथ मलती थी। हाय ! न जाने इन्होंने मन में क्या ठान लिया है ? आखिर वह मनोहर के सम्मुख बैठ गयी और अत्यन्त दीन-भाव से देख कर बोली - हाथ जोड़कर कहती हूँ, चलकर चबेना कर लो। तुम्हारे इस तरह गुमगुम रहने से मेरा कलेजा दहल रहा है। तुमने क्या ठान रखी है, बोलते क्यों नहीं ? यहाँ विलासी का अन्त: संघर्ष हृदय को छूनेवाला है।

गौसखाँ की हत्या और जेल में मनोहर की आत्महत्या के बाद विलासी हमेशा रोती ही रहती थी। उसे अपने सर्वनाश का इतना शोक न था

जितना इस बात का कि कोई उसकी बात पूछनेवाला न था । जिसे देखिये उसे जली-कटी सुनाता था । न कोई उसके घर आता, न जाता । यदि वह बैठे-बैठे उकताकर किसी के घर चली जाती, तो वहाँ भी उसका अपमान किया जाता । वह गाँव की नागिन समझी जाती थी, जिस के विष ने समस्त गाँव को काल का ग्रास बना दिया । और तो और उसकी बहू भी उसे ताने देती थी । सुक्खू चौधरी के आगमन से उसके मन की यह ज्वाला शान्त हुई । उनका कथन है - हाँ, जब से आया हूँ वही चर्चा हो रही है और उसे सुनकर मुझे तुम पर ऐसी श्रद्धा हो गयी हैं कि तुम्हारी पूजा करने को जी चाहता है । तुम क्षत्राणी हो, अहीर की कन्या होकर भी क्षत्राणी हो । तुमने वही किया जो क्षत्राणियाँ किया करती हैं । मनोहर भी क्षत्री है, उसने वही किया जो क्षत्री करते हैं । वह वीर आत्मा था । इस मन्दिर में अब उसकी समाधि बनेगी और उसकी पूजा होगी । इसमें अभी तक किसी देवता की स्थापना नहीं हुई है, अब उसी वीर-मूर्ति की स्थापना होगी । उसने गाँव की लाज रख ली, स्त्री की मर्जाद रख ली । यह सुनकर विलासी के हृदय में वह गुदगुदी हो रही थी, जो अपनी सराहना सुनकर हो सकती है। विलासी पर उनकी भावना पूर्ण बातों का गहरा असर पड़ा । अब वह किसी दलित दीन की भाँति गाँववालों के व्यंग्य और लाछन न सुनती और न किसी का उस पर उतनी निर्भयता से आक्षेप करने का साहस ही होता था । इतना ही नहीं, विलासी की बातचीत, चाल-ढाल से अब आत्मगौरव टपका पड़ता था । कभी-कभी वह बढ़कर बातें करने लगती, पड़ोसियों से कहती - तुम अपनी लाज बेचकर अपनी चमडी को बचाओ, यहाँ इज्जत के पीछे जान तक दे देते हैं । मैं विधवा हो गयी तो क्या, घर सत्यनाश हुआ तो क्या, किसी के सामने आँख तो नीची नहीं हुई । अपनी लाज तो रक्खी । पति की मृत्यु और पुत्र का वियोग अब उतना असह्य न था । एक दिन उसने इतनी डींग

मारी कि उसकी बहू से न रहा गया । चिढकर बोली, तुम्हें क्या, आज नहीं कल राँड होती । तुम्हारे भी खेलने-खाने के दिन होते तो देखती कि अपने लाज को कितनी प्यारी समझती हो । बिलासी तिलमिला उठी । उस दिन से बहू से बोलना छोड दिया, यहाँ तक कि बलराज की भी चर्चा न करती । जिस पुत्र पर जान देती थी, उसके नाम से भी घृणा करने लगी । बहू के इन अरुचिकर शब्दों ने उस के मातृस्नेह का अंत कर दिया, जो 25 साल से जीवन का अवलंबन और आधार बना हुआ था । कुछ दिन मौनरूप से कोप प्रदर्शन करती थी, फिर अन्य सासों से मिलकर खूब बहुओं की निन्दा होने लगी । बहुओं की भी अलग बैठक हुई और सासों की निन्दा होने लगी । इस व्यंग्य संग्राम में एक अजीब आनन्द था । द्वेष की कानाफूसी शायद मधुर गान से भी अधिक शोकहारी होती है । इस प्रसंग में विलासी के सास रूप की झलक मिलती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द जी ने विलासी में माता, पत्नी और सास के रूप दिखाये हैं । प्रत्येक रूप में स्नेह, वात्सल्य, स्वाभिमान आदि उत्कृष्ट गुणों के साथ साथ मानवीय दुर्बलताओं का भी समावेश करके एक साधारण मानवी के रूप में विलासी का चित्रण किया गया है ।

मुंशी प्रेमचन्दजी का अंतिम और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास "गोदान" की धनिया किसान होरी के संघर्ष की संगिनी है । यथार्थ के कठोर धरातल पर उसकी परिकल्पना हुई है । उसका चरित्र इस बात का प्रमाण है कि नारियाँ कभी संघर्षों से पीछे नहीं भागती और निडर होकर कर्ममार्ग पर अग्रसर होती हैं । उसके पत्नीरूप और मातृरूप खूब निखरे है । उसका अंतिम चित्र पाठक के मन को सालनेवाला है । किसानों की सारी इच्छाओं की अर्थी निकल रही है, किन्तु ग्रामसमाज के अंग अभागी धनिया से गोदान कराना चाहते हैं । तब धनिया की मर्मव्यथा इन शब्दों में प्रकट है, "महाराज ! घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा । यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है ।" और पछाड खाकर गिर पड़ी ।

प्रेमचन्दयुग के उपन्यासकारों के नारी-संबंधी दृष्टिकोण

आदर्शवादी दृष्टिकोण रखनेवाले उपन्यासकारों में प्रेमचन्दजी का अद्वितीय स्थान है। उनके अधिकांश नारीपात्रों का चरित्र आदर्शपूर्ण है। प्रेमचन्दजी के आविर्भावकाल में समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त हेय थी, वह पति की पाददासी थी। प्रेमचन्द जी के अनुसार पुरुषों ने कानून बनाकर स्त्रियों को मूर्ख बनाया है[1]। उनका मत है कि नारी पृथ्वी की भाँति सहिष्णु है, उसका कर्मक्षेत्र अलग है, वह प्रेम, त्याग, श्रद्धा एवं वात्सल्य की खान है। वह केवल माँ है, और कुछ नहीं मातृत्व तो संसार की सबसे बडी साधना, त्याग एवं महान विजय है। नारियों को अपने जीवन का, व्यक्तित्व का, एवं नारीत्व का लय कर देना चाहिए,यही उसकी महानता है। प्रेमचन्द का यह आदर्शवादी दृष्टिकोण उनके अनेक प्रधान नारीपात्रों में अभिव्यक्त हुआ है[2]। प्रेमचन्द जी के "प्रेमाश्रम" की श्रद्धा, "गोदान" की गोविन्दी, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास "विराटा की पद्मिनी" की कुमुद आदि इसी प्रकार की नारियाँ हैं। प्रसादजी के "तितली" उपन्यास का लक्ष्य ही नारीत्व और पत्नीत्व की गरिमा का प्रदर्शन है[3]।"

प्रेमचन्द की दृष्टि में नारी गौरव और पवित्रता की प्रतिमूर्ति है। उसमें प्रेम का उच्च रूप दिखाया गया है। रंगभूमि की सोफिया, वरदान की विरजन, गोदान की मालती सभी में प्रेम का उच्च रूप ही दृष्टव्य है।

---

1. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य (1936), बनारस, पृ.104
2. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.244-245
3. हिन्दी उपन्यास, पृ.126

जैनेन्द्र का रोमांटिक दृष्टिकोण मनोविज्ञान पर आधारित है । भगवती चरण वर्मा के "तीन वर्ष" में वेश्या होने पर भी सरोज का प्रेम त्याग भावना से प्रेरित और पवित्र है । प्रेमचन्द जी के ही समान नारी का स्थान पुरुष से भी श्रेष्ठ माननेवाले वृन्दावनलाल वर्मा जी के उपन्यास "कुण्डलीचक्र" में पुना और "गढ़कुंडार" में तारा आत्मशक्ति और साहस की प्रतीक हैं ।

प्रेमचन्द जी के उपन्यास "निर्मला" में प्रथम बार यथार्थवादी दृष्टिकोण का उचित रूप से परिचय प्राप्त होता है। समाज की विषमताओं में ही निर्मला का जन्म और पालन होता है, समाज के ही अभिशाप से ग्रस्त होकर उसकी मृत्यु होती है । "गबन" की जालपा, "गोदान" की धनिया आदि की परिकल्पना भी यथार्थवादी धरातल पर हुई है । श्री· विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिकजी ने अपने उपन्यास "माँ" और "भिखारिणी" में नारीपात्रों का चित्रण यथार्थवादी दृष्टिकोण से किया है । उनके अनुसार कोई वेश्या वेश्या मात्र नहीं होती । पहले वह नारी है, बाद में कुछ और । उनके एक नारीपात्र बन्दीजान धन केलिए "अरुचि कारक पुरुष से भी प्रेमालाप करती थी । केवल इतना ही नहीं, धन के कारण उसे ऐसे पुरुष का भी तिरस्कार करना पड़ता था, जिससे प्रेमालाप करने में उसके हृदय को आनन्द प्राप्त होता था । इसीलिए वह वेश्या थी - यही उस में वेश्यापन था[1] ।" प्रेम की स्वतंत्र सत्ता को मानने पर भी कौशिकजी इसके लिये समाज की स्वीकृति चाहते थे

1· विश्वंभर नाथ शर्मा. "कौशिक - "माँ" (1929), पृ·313

प्रेमचन्दजी ने आदर्श और यथार्थ का समन्वय करके आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया और इसी आधार पर अनेक नारीपात्रों की कल्पना की । "गोदान" की मालती, "प्रेमाश्रम" की गायत्री आदि का चित्रण इस दृष्टिकोण के आधार पर है । "वरदान" की बिरजन भी प्रेमचन्द जी के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय देती है । प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष में कर्तव्य का विजयी होना भारतीय नारी की मर्यादापूर्ण परम्परा का परिचायक है । "प्रतिज्ञा" की विधवा पूर्णा भी अपने सतीत्व का भंग न होने देती । "सेवासदन" "सुमन को वेश्यावृत्ति से निकाल कर उपन्यासकार ने इसी दृष्टिकोण का परिचय दिया है । इस युग के अन्य उपन्यासकारों ने भी इस दृष्टिकोण को अपनाया है । प्रसादजी के "कंकाल" की तारा, "तितली" की तितली आदि के चित्रण में प्रगतिशीलता का परिचय देने पर भी उपन्यासकार अपने आदर्शवाद को छोड़ने को तैयार नहीं हैं ।

समाजवादी दृष्टिकोण का आधार समता का सिद्धांत है । भगवती चरण वर्माजी के उपन्यास "चित्रलेखा" की चित्रलेखा वैभव और विलास को ठुकराकर साधारण दाम्पत्य जीवन स्वीकार करती है । यहाँ समाजवादी दृष्टिकोण प्रकट है ।

प्रेमचन्द और उनके युग के अन्य उपन्यासकार समाज से पृथक् व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता को महत्त्व देनेवाले नहीं थे । तो भी इस युग के कुछ उपन्यासों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है । श्री॰ भगवती प्रसाद वाजपेयी जीके कुछ उपन्यासों में नारी समस्या पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं, वे उनके व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं । "पतिता की साधना" में बालविधवा नन्दा का चित्रण इस का उदाहरण है ।

"तीन वर्ष" में वेश्या सरोज को भद्रसमाज की प्रभा से अधिक श्रेष्ठ और गरिमामयी मानकर भगवतीचरण वर्मा जी ने अपना व्यक्तिवादी दृष्टिकोण व्यक्त किया है।

मनुष्य का अवचेतन मन हमेशा क्रियाशील है । अतः मानवजन्म से लेकर मृत्यु तक मनोविश्लेषण वादी विचारधारा का स्थान है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्रकुमार के अधिकांश नारीपात्रों में प्रेम और कर्तव्य के बीच अन्तर्संघर्ष होता है । वे अपनी प्राचीन परम्पराओं एवं गौरवशाली मर्यादाओं का परित्याग नहीं करतीं और न रूढिवादिता को ही आत्मसात् करती हैं । वे उपयोगी परम्पराओं एवं मर्यादाओं का नवीनताओं के साथ समन्वय कर आर्यधर्म निबाहने का प्रयत्न करती हैं । सुनीता, कट्टो, कल्याणी आदि इसी प्रकार की नायिकायें हैं जिनके अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण से प्रत्येक नारी की चित्तवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है । श्री· इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "लज्जा" की लज्जा का चारित्रिक विकास मनोविश्लेषणवादी दृष्टिकोण से हुआ है । सियाराम शरण गुप्तजी के उपन्यास "गोद" में पार्वती किशोरी और शोभाराम के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित होने में अपने पति का एतराज पसन्द नहीं करती, तो भी वह दूसरों से पति का पक्ष समर्थन करती है[1] । इस प्रकार गुप्तजी ने उस के अवचेत मन के विस्फोट से कोई विध्वंस होते नहीं दिखाया है, उसे निर्माणोन्मुख करने का प्रयत्न किया है ।

\--

१· सियाराम शरण गुप्त = गोद [1932], झाँसी, पृ·5।

तीसरा अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास तथा नारी पात्र

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास तथा नारी पात्र

सन् 1935 से 1970 तक के काल को निम्नलिखित तीन कालों में विभक्त करके प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासों के नारी पात्रों का विवेचन करना अधिक सुविधाजनक होगा ।

1. स्वतंत्रता पूर्व काल (सन् 1936 ई. से 1947 ई. तक) ।
2. स्वातंत्र्योत्तर काल (1947 ई. से 1960 ई. तक) ।
3. साठोत्तरकाल (1960 ई. से 1970 ई. तक) ।

स्वतंत्रतापूर्व काल

हिन्दी उपन्यास ने प्रेमचन्द के माध्यम से यथार्थ जीवन को अपनाया प्रेमचन्दयुग में प्रतिष्ठित आदर्शों और सामाजिक मर्यादाओं के प्रति विद्रोह का भाव भी जाग्रत हुआ। पर यह विद्रोह प्रच्छन्न रूप से था। किन्तु प्रेमचन्दोत्त युग में व्यक्ति स्वातंत्र्य का ज़ोर पढा। वैज्ञानिक विचारधारा का विकास, समाज के कुरूप यथार्थ का उद्घाटन, सामाजिक बन्धनों और वर्जनाओं के प्रति विद्रोह, वैयक्तिक अधिकारों और सामाजिक समता की माँग आदि इस युग की विशेषताएँ हैं। यौन नैतिकता के प्रति दृष्टिकोण भी अपेक्षाकृत उदार हुआ। उपन्यासकार जीवन के आलोचक नहीं दृष्टा हुए। चरित्र चित्रण की अपेक्षा चरित्र निर्माण की ओर वे अधिक उन्मुख हो गये। स्थूल वर्णन कम हो गया, चिन्तन और मनन को प्रमुख माना गया। उपन्यास को जीवनाभिमुख बनानेवाले प्रेमचन्द की पीढी के कुछ उपन्यासकार इस युग में भी उपन्यास रचना में संलग्न रहे। जैनेन्द्र कुमार, बेचन शर्मा "उग्र" आचार्य चतुरसेन शास्त्री भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि इनमें प्रमुख है। वर्षों से विदेश शक्तियों के अधीन रहने के कारण भारत के लोगों में जो हीनता की भावना उत्पन्न हुई थी, उसे दूर करने में भी ये उपन्यासकार प्रयत्नशील हुए। फलत: राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव तत्कालीन उपन्यासों पर पडा। देशप्रेम को महान आदर्श माना जाने लगा। गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने केलिए सब कुछ सहने की प्रेरणा देने में भी इस युग के उपन्यासकार पीछे नहीं थे। ऐसी परिस्थिति में प्रेमचन्द के बाद स्वतंत्रता-पूर्व उपन्यासों का उदय हुआ।

श्री• भगवतीप्रसाद वाजपेयी एक प्रकार से प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर युग के बीच की कड़ी है। उनके चार-पाँच उपन्यास प्रेमचन्द के जीवन काल में ही रचे गए थे। उनकी अधिकांश रचनाओं का आधार प्रेमपीड़ा है।

उनके उपन्यास पिपासा, निमंत्रण आदि स्वतंत्रतापूर्व उपन्यासों के अंतर्गत आते हैं। हिन्दी उपन्यासों को समष्टि केन्द्रित बिन्दु से व्यष्टि केन्द्रित बिन्दु तक लानेवाले और वैयक्तिक पात्रों का सृजन करनेवाले प्रथम उपन्यासकार श्री. जैनेन्द्रकुमार का "त्यागपत्र, श्रीमती उषादेवी मित्रा का उपन्यास जीवन की मुसकान, आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास "नीलमणि", श्री.बेचनशर्मा "उग्र" का उपन्यास "जीजीजी", श्री. गुरुदत्त का उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर, श्री. राहुल सांकृत्यायन का उपन्यास "सिंह सेनापति" आदि इस युग के कुछ अन्य उपन्यास हैं। संस्कारों और विचारों की द्विधा से मुक्त सामाजिक उपन्यासकार श्री. भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास "टेढे मेढे रास्ते, प्रसिद्ध निबंधकार श्री. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का उपन्यास "बाण भट्ट की आत्मकथा हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार श्री. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय जी का उपन्यास "शेखर एक जीवनी" और इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यास "सन्यासी", "पर्दे की रानी" तथा "निर्वासित" इस युग की महत्त्व पूर्ण कृतियाँ हैं। इसी युग में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में प्रमुख श्री. यशपालजी "दादा कामरेड, दिव्या, देशद्रोही और पार्टी कामरेड, लिखकर हिन्दी उपन्यास को यथार्थवाद के धरातल पर ले आए। नयी पीढी के प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार श्री. रांगेय राघव का उपन्यास "घरौंदे", हिन्दी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार श्री. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, "कचनार" और "रामेश्वर शुक्ल अंचल जी के उपन्यास "चढती धूप", "उल्का" तथा कवि और उपन्यासकार श्री. धर्मवीर भारती का उपन्यास गुनाहों का देवता इस युग के उल्लेखयोग्य उपन्यास है। समाज के निम्न मध्य वर्ग के जीवन के चित्रण में पटु श्री.उपेन्द्रनाथ अश्क का उपन्यास गिरती दीवारें, जो हिन्दी की यथार्थवादी परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, भी इसी युग का है।

स्वातंत्र्योत्तरकाल

भारत के इतिहास में स्वातंत्र्योत्तरकाल अत्यंत महत्वपूर्ण है। लगभग एक सौ वर्ष तक गुलाम रहने के बाद भारत वासी आज़ाद हुए। भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र हुआ। स्वाधीनता प्राप्ति, संविधान का निर्माण, राष्ट्रीयता की भावना का विकास आदिके कारण हर एक हिन्दुस्तानी को अपनी सत्ता पहचानने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जनतंत्र ने व्यक्ति को महत्व पूर्ण स्थान दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ साथ जो भारत विभाजन और हिन्दू मुस्लिम दंगे हुए, उनका विषैला प्रभाव हमारे राष्ट्र शरीर पर पड़ा। साम्प्रदायिकता की आग भारत के वातावरण में फैल गई। पराधीन भारत में राजनैतिक चेतना अंग्रेज़ी शासन के विरोध में हुई थी, नेताओं के निर्देशानुसार जनता आन्दोलन में कार्य करती थी। स्वतंत्र भारत में जन तंत्रीय शासन पद्धति के फलस्वरूप व्यक्तिगत रूप मे जन साधारण राजनीति के प्रति सजग हुए और अनेक राजनैतिक दल यहाँ पनपने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ साथ राजतंत्र और सामन्तवाद का पतन हुआ। प्रत्येक दल समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित करने लगा। इसी बीच भारत में कई सामाजिक परिवर्तन भी हुए जिनको विज्ञान ने तीव्रगति प्रदान की। समाज और साहित्य का अटूट संबंध है, अत: इस सामाजिक क्रांती का प्रभाव साहित्य पर भी पडा विशेषकर उपन्यास-साहित्य पर क्योंकि उपन्यास मानवजीवन का ही चित्र है। मनोविज्ञान, प्राणिविज्ञान, समाज विज्ञान आदि विज्ञान के प्रभाव के प्रमाण है जिनसे मनुष्य के अंतर्जगत के रहस्यों का उद्घाटन हुआ और परिणामस्वरूप साहित्य यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख हुआ। परिवार, जाति-व्यवस्था नैतिकता आदि के संबंध में परम्परागत विचारों में जो परिवर्तन पिछले युगों में ही

दृष्टिगत होने लगे थे, वे अब ज़ोर पकड़ते गये । संयुक्त-परिवार के प्रति लोगों की आस्था बराबर कम होती गयी । स्वतंत्र भारत का संविधान इतना उदार है कि निम्न जाति को अपनी हीन अवस्था से उठने के अवसर प्राप्त हो गये और उच्च वर्ग के समान ही जीवन के समस्त क्षेत्रों में अधिकार प्राप्त करने का सुयोग उसे मिला । नारी जाति की जागृति जो प्रेमचन्द युग में ही दृष्टिगत होने लगी थी, प्रेमचन्दोत्तर युग में तेजी हुई थी और स्वातंत्र्योत्तर युग में और अधिक तेज़ हुई । नवयुग की मान्यताओं ने हमारी परम्परागत संस्कृति को भी प्रभावित किया । प्रेम, सेक्स आदि के संबंध में हमारी नैतिक मान्यताएँ भी शिथिल पड़ने लगी । हमारे समाज सुधारकों ने जिस चिंतन को गति प्रदान की थी, वह चिंतन स्वातंत्र्योत्तर युग में अधिक विकसित हुआ । "स्वाधीनता के बाद व्यक्ति और राष्ट्र जीवन की जो परिस्थितियाँ हैं, विचारों का संघर्ष और उलझनें हैं, जीवन-मूल्यों के अवमूल्यन और पुनर्मूल्यन की समस्या है और जिस प्रकार इस संकुल, जटिल स्थिति के बीच से व्यक्ति और राष्ट्र प्रगति की नई दिशा खोज रहा है, उसी प्रकार देश कीनवीन परिस्थितियों और संघर्षों के सन्दर्भ में साहित्य और साहित्यकार के सामने भी नए प्रश्न हैं, नई समस्यायें हैं, साहित्यकार के दायित्व, साहित्यिक धारणाओं, प्रवृत्तियों एवं विचारों का संघर्ष है । इस संघर्ष में ही स्वाधीन भारत का साहित्य अपनी नयी दिशा खोज रहा है[1] ।"

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित क्रांतिकारी लेखक श्री॰ यशपाल जी ने स्वातंत्र्योत्तर काल में भी अपने विशिष्ट उपन्यासों से हिन्दी साहित्य को सम्पन्न किया । युद्धों द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करने या समस्याओं को सुलझाने की नीति की विफलता दिखाने के लिए उन्होंने

1॰ डा॰ रामगोपालसिंह चौहान - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ॰29

अमिता" नामक उपन्यास लिखा । "दिव्या" के कथानक की भाँति अमिता की कहानी भी इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना है । यशपाल जी की गंभीर चिंता और प्रौढ कल्पना का परिचायक है उनका बृहद् उपन्यास "झूठा सच" । भारत विभाजन की पृष्ठ भूमि पर रचित इस उपन्यास के दो भाग है - "वतन और देश" तथा "देश का भविष्य" । साम्प्रदायिक, विद्वेष और उस विद्वेष की अग्नि को भड़कानेवाले राजनैतिक दाँव-पेंच का सजीव चित्र "वतन और देश" में दर्शनीय है । समाज में व्याप्त अनाचार और विभिन्न राजनीतिक मतवादों के द्वन्द्वों का चित्र "देश का भविष्य" में है । इसी काल के उनके उपन्यास "मनुष्य के रूप" में प्राकृत वाद की प्रवृत्ति दृष्टव्य है। बहुविध पात्रों के व्यंग्य-विद्रूपयुक्त सहज चित्र खींचनेवाले उपेन्द्रनाथ अश्क जी का स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यास "गर्मराख" उनके स्वतंत्रता पूर्व उपन्यास "गिरती दीवारें" की अपेक्षा अधिक सुगठित है । "बड़ी बड़ी आँखें" उनका इसी युग का अन्य उपन्यास है जिस में रोमानी कथानक के तल में राजनीतिक भावना की अन्तर्धारा बहती है । तीस से अधिक हिन्दी उपन्यासों के कर्ता श्री· रांगेय राघव ने स्वतंत्रता के बाद मुर्दों का टीला "बोलते खंडहर" आदि उपन्यास लिखे और तत्पश्चात् "कब तक पुकारूँ" नामक उपन्यास लिखा जिसमें नटों के एक उपजाति विशेष करनटों के जीवन का चित्रण है । बहु भाषा विद्, मननशील और साधनारत साहित्यकार इलाचन्द्र जोशी जी का उपन्यास जिपसी (त्याग का भोग) सामाजिक धरातल पर मनोवैज्ञानिक विषयों को प्रस्तुत करता है तो "सुबह के भूले स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । भगवतीप्रसाद वाजपेयीजी का सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास "यथार्थ से आगे", भगवतीचरण वर्मा जी का कथानक प्रधान उपन्यास "भूले बिसरे चित्र", श्री·धर्मवीर भारती का दूसरा उपन्यास "सूरज का सातवाँ घोड़ा", जैनेन्द्रकुमार जी का दार्शनिक उपन्यास "जयवर्धन" श्री· वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास अमरबेल, अज्ञेय जी का उपन्यास नदी के द्वीप आदि इसी काल में

रचे गये । श्री• फणीश्वरनाथ रेणु के आंचलिक उपन्यास "मैला आँचल" और "परती परिकथा" इसी युग के उपन्यास हैं । संघर्षों की प्रेरणादायी गाथा "बलचनमा", मछुओं के जीवन को सामने लानेवाला प्रथम हिन्दी उपन्यास "वरुण के बेटे" अंचल विशेष की समस्याओं को चित्रित करनेवाला उपन्यास "दु:खमोचन" आदि लिखकर श्री•नागार्जुन ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में प्रेमचन्दीय परम्परा को आगे बढ़ानेवाले उपन्यासकार का स्थान प्राप्त किया । प्रेमचन्द जी की सामाजिक परम्परा के उन्नायक श्री• अमृतलाल नागर के उपन्यास बूँद और समुद्र, "सुहाग के नूपुर आदि इस युग की श्रेष्ठ रचनायें हैं । नयी पीढी के उपन्यासकार श्री•राजेन्द्र यादव ने स्वातंत्र्योत्तर काल में "शह और मात" और "सारा आकाश" लिखकर समाज के विभिन्न रूपों और परिस्थितियों का यथा तथा चित्रण किया । श्री• भैरवप्रसाद गुप्त का स्वातंत्र्योत्तर भारत के साम्प्रदायिक दंगों से प्रभावित उपन्यास है "सती मैया का चौरा" "गंगामैया" भी उनका इसी युग का उपन्यास है जिस में गुप्तजी ने 1948 ई• से 1951 ई• तक की भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की संक्रमणकालीन स्थिति का चित्रण किया है । डॉ• लक्ष्मीनारायणलाल का प्रतीकात्मक लघु उपन्यास बया का घोंसला और साँप तथा "काले फूल का पौधा" इस युग के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं । पं• शिवप्रसाद मिश्र रुद्र का उपन्यास "बहती गंगा", श्री• गिरिधर गोपाल का उपन्यास "चाँदनी के खण्डहर", केशवचन्द्र वर्मा जी का उपन्यास काठ का उल्लू और कबूतर, श्री•लक्ष्मीकांत वर्मा का उपन्यास "खाली कुर्सी की आत्मा, श्री•हिमांशु श्रीवास्तव का उपन्यास "लोहे के पंख", डॉ•देवराज का उपन्यास "अजय की डायरी", श्री•उदयशंकर भट्ट जी का उपन्यास "डॉ•शेफाली" आदि इस युग के कुछ अन्य प्रमुख उपन्यास है ।

साठोत्तर काल

स्वतंत्रता-संग्राम के समय हमने स्वतंत्र भारत के संबंध में कई सुन्दर सपने देखे थे। हमारे राष्ट्र पिता महात्मा गांधीजी ने "रामराज्य" का स्वप्न देखा था। दूसरे राष्ट्रशिल्पियों ने भी एक समत्व-सुन्दर भारत का संकल्प किया था। जनसाधारण ने भी सोचा था कि स्वतंत्र भारत में जनतंत्रीय शासन प्रणाली में ऊँच-नीच के भेद भाव के बिना सब को समान अधिकार प्राप्त होगा और अन्याय, अत्याचार, दमन आदि कुकृत्यों से मुक्ति मिलेगी। पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के अनुभवों से ज्ञात होता है कि ये सपने साकार नहीं हुए। स्वतंत्रता के बाद आपाधापी की राजनीति फैल गयी, ऐसे अनेक राजनैतिक नेतादिखाई दिये जिनमें अधिकार मोह इतना प्रबल था कि हाथ लगी कुर्सी को बनाये रखना ही उनका एकमात्र लक्ष्य रहा। सभी ओर भ्रष्टाचार और नैतिक पतन दिखाई देने लगे, देशसेवक आत्मसेवक हुए। भारत-विभाजन के साथ साथ साम्प्रदायिकता का जो विष राष्ट्र-शरीर में व्याप्त हुआ, उसके दुष्परिणाम का अंत नहीं हुआ। उलटे साम्प्रदायिकता को भड़कानेवाले अनेक राजनैतिक दल समय समय पर पनपने लगे। औद्योगीकरण, मशीनीकरण, दिशाहीन शिक्षा पद्धति आदिके कारण बेरोज़गारी बढ़ी। यद्यपि स्वातंत्र्यानंतर भारत में सामन्तवा का पतन हुआ तथापि नेताओं और प्रशासनिक अधिकारियों के रूप में प्राचीन सामंतों का पुनर्जन्म हुआ। शहरीकरण, औद्योगीकरण, यांत्रीकरण आदि के प्रभाव सामाजिक परिवर्तन में शीघ्रता आयी। साथ ही साथ रहन-सहन, खान पान, व्यवहार आदि में शीघ्र परिवर्तन हुए। अस्पृश्यता को वैधानिक रूप से अपराध घोषित कर दिया गया। नयी पीढ़ी जाति व्यवस्था की परम्परागत मान्यताओं के प्रति उदासीन हुई। पारिवारिक संबंधों में शिथिलता आने लगी। संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया जारी रही और संयुक्त परिवार के स्थापन पर अणिक परिवार को प्रमुखता मिलने लगी। स्त्री-पुरुष संबंधों के

परम्परागत रूप पर भी परिवर्तन दिखाई देने लगा । नारी का व्यक्ति रूप अधिक उभरा । नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था दिन ब दिन कम होती गयी । विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप परम्पराएं टूटने लगीं और इन परम्पराओं पर आधारित हमारी संस्कृति भी संकट में पड गयी । लूट, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता आदि से ग्रस्त समाज में मानव-मूल्यों का ह्रास होता रहा । योजनाएं हमें लक्ष्य प्राप्ति तक पहुंचाने में सफल न हुई, अत: बेकारी बढ़ती गयी और अर्थव्ययवस्था में असन्तुलन आ गया । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर मोहभंग की पृष्ठभूमि पर साठोत्तर उपन्यासों का सृजन हुआ ।

हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, उच्चकोटि के उपन्यासकार तथा सफल कहानीकार एवं नाटककार श्री॰भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दयुग से ही उपन्यास रचना में संलग्न थे, "सामर्थ्य और सीमा", "रेखा" आदि उनके साठोत्तर उपन्यास हैं । इसी प्रकार जैनेन्द्रजी के "अनंतर", "मुक्तिबोध" आदि भी उस उपन्यास श्रृंखला की कडियाँ हैं । जो प्रेमचन्दयुग से लेकर साठोत्तर युग तक व्याप्त है । दस वर्ष के अन्तराल में अज्ञेय जी के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए थे, जिन में साठोत्तरकालीन उपन्यास है "अपने अपने अजनबी" । श्री॰ उपेन्द्रनाथ अश्क ने साठोत्तर काल में "शहर में घूमता आईना" और "एक नन्हीं किन्हील" लिखकर स्वतंत्रता-पूर्व उपन्यास "गिरती दीवारें" की धारा को आगे बढाया । यशपाल जी के "बारह घंटे", "क्यों फँसें" आदि साठोत्तर उपन्यास उनके स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों के समकक्ष रखने लायक प्रतीत नहीं होते । "धरती मेरा घर" नामक उपन्यास इस बात का प्रमाण है कि श्री॰रांगेय राघव ने न केवल स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य को ही सम्पन्न किया, अपितु साठोत्तर उपन्यास साहित्य को

भी सम्पन्न किया है । श्री॰हिमांशु श्रीवास्तव का उपन्यास "नदी फिर बह चली", श्री॰राजेन्द्र यादव का उपन्यास "अनदेखे अनजान पुल", श्री॰हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास "चारु चन्द्रलेख" और श्री॰लक्ष्मी कांत वर्मा का उपन्यास "एक कटी हुई ज़िन्दगी, एक कटा हुआ कागज़" तथा अमृतलाल नागर जी का उपन्यास "अमृत और विष" उल्लेखयोग्य उपन्यास हैं । इसी युग में श्री॰ राजेन्द्र अवस्थी ने "सूरज किरण की छाँह" कवि, आलोचक एवं कथाकार श्री॰ रामदर्श मिश्र ने "जल टूटता हुआ", प्रसिद्ध समाजवादी लेखक श्री॰मन्मथनाथ गुप्त ने "शहीद और शोहदे", "निर्मलवर्मा जी ने "वे दिन" और भारत भूषण अग्रवाल ने "लौटती लहरों की बाँसुरी" तथा राजकमल चौधरी ने मछली मरी हुई" एवं ग्रामीण जीवन के चतुर चितेरे डॉ॰शिवप्रसाद सिंह ने अलग अलग वैतरणी" लिखकर साठोत्तर उपन्यासकारों में प्रमुख स्थान प्राप्त किया । प्रेमचन्द परम्परा को विकसित करनेवाले और प्रगतिशील कवि तथा उपन्यासकार श्री॰नागार्जुन के साठोत्तर उपन्यास हैं "हीरक जयन्ती", "उग्रतारा", "इमरतिया" आदि आधुनिक हिन्दी कथाकारों में प्रमुख भीष्म साहनी का हृदयस्पर्शी उपन्यास "कड़ियाँ" साठोत्तर कालीन रचना है । साठोत्तर उपन्यासकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर श्री॰ रमेश बक्षी के उपन्यास "किस्से ऊपर किस्सा", "हम तिनके", "एक छिपा हुआ चेहरा", "अठारह सूरज के पौधे", "बैसाखियोंवाली इमारतें" आदि में अनुभव की सच्चाई और अभिव्यक्ति की सफाई दृष्टव्य है । हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार श्री॰मोहन राकेश की मातृ-भाषा पंजाबी है, पर उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम हिन्दी ही है । उनके उपन्यास "अँधेरे बन्द कमरे" और "न आनेवाला कल" साठोत्तरी हैं । साठोत्तर उपन्यासकारों में कमलेश्वर जी का विशिष्ट स्थान है । वे मूलत: कहानीकार हैं । उनके उपन्यास भी लघु उपन्यास की कोटी में आते हैं । प्रकाशन की दृष्टि से उनके प्राय: सभी उपन्यास साठोत्तरी है । "डाक बँगला", "लौटे हुए मुसाफिर", "तीसरा आदमी", "समुद्र में खोया हुआ आदमी आदि उनके उपन्यास है । साठोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में कुछ उपन्यास

लेखिकाओं की देन भी महत्वपूर्ण है । श्रीमती उषाप्रियवंदा ने अपने उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" में निम्न मध्यवर्ग को उपस्थित किया तो "रुकोगी नहीं, राधिका" में उच्च मध्यवर्ग को । संवेदनशील नारी कथाकार लोकप्रिय उपन्यास लेखिका शिवानी का उपन्यास कृष्णकली, नारी-मन की व्यथा को लिपिबद्ध करने में सिद्ध हस्त श्रीमती मन्नू भण्डारी का उपन्यास "एक इंच मुस्कान", "आदिम अमिश्रित यौन" का यथातथ चित्र खींचने का साहस दिखानेवाली श्रीमती कृष्णा सोबती के उपन्यास "मन वृन्दावन", "मित्रो मर जानी आदि हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं की रचना-कुशलता के नमूने हैं ।

उपर्युक्त तीनों कालों को, यानी समस्त प्रेमचन्दोत्तर काल को प्रभावित करनेवाले उपन्यासकार हैं जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, रांगेय राघव आदि ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के नारी-पात्रों का वर्गीकरण

आलोच्यकाल के नारीपात्रों में निरंजना, मंजु, राज, लक्ष्मीबाई, दिव्या, सत्या, तारा, कन्नगी, मृगनयनी, सोमा, कनक, उग्रतारा, चित्रा, चन्दा, नीलिमा, सुषमा, कृष्णकली आदि प्रमुख पात्र हैं और सीरो, लछमा, नूरन, सोनो, सुसन, ऊर्मिला, हीरादेई, सीता, लिली, सुषमा श्रीवास्तव, तमारा, रत्ना चावला, आदि गौण । प्रमुख पात्रों में दिव्या, निरंजना, लक्ष्मीबाई, सत्या, तारा, चन्दा, नीलिमा आदि नायिकायें हैं ।

((

प्रेम, पारिवारिक जीवन आदि के आधार पर वर्गीकरण करनेपर इन में प्रेमिकाएँ, गृहस्थ नारियाँ, विधवाएँ, वेश्यायें, आजन्म अविवाहिताएँ आदि विविध प्रकार के नारी पात्र हैं । वीरांगनाएँ, आत्मनिर्भर नारियाँ, कला-निपुण नारियाँ, निम्न जाति की नारियाँ, विदेशी नारियाँ, दासियाँ, राजनीति में भाग लेनेवाली नारियाँ आदि और भी अनेक प्रकारके नारीपात्र आलोच्यकालीन उपन्यासों में पाये जाते हैं ।

प्रेमिकाएँ

मानव जीवन में प्रेम का बडा महत्व है । इसलिए उपन्यासों में भी प्रेमिकाएँ बहुसंख्यक हैं । इन में किसी को अपने प्रेम में सफलता मिलती है तो किसी को असफलता ।

श्री• वृन्दावन-लाल वर्मा के उपन्यास "कचनार" की नायिका सुन्दरी अभिमानी दासी कचनार सफल प्रेमिका का उदाहरण है । महाराज दिलीपसिंह उस से प्रेम करते हैं; पहले वह अपने अहं के कारण उस प्रेम को स्वीकार नहीं करती, पर जब मानसिंह के षड्यंत्र से दिलीपसिंह को सब मरा समझते हैं, तब उसके चरित्र की यह गांठ खुल जाती है और बाद में आश्रम में सुमन्तपुरी के रूप में दिलीपसिंह का आभास पाकर वह रीझ जाती है । अंत में उसके पवित्र प्रेम की परिणति विवाह में होती है । श्री• उदयशंकर भट्ट के उपन्यास "डॉ• शेफाली" की नायिका अनिंद्य सुन्दरी, सुशीला और निस्वार्थ सेविका डॉ• शेफाली भी सफल प्रेमिका है । सेठ राममोहन से उसका विवाह हुआ था, पर उस के पिता के पकडे जाने पर राममोहन के पिता ने बारात

लौटा लिया था । इसके उपरांत विवाह से ही उस में विरक्ति पैदा हुई थी । डॉक्टर बनकर अपने आकर्षक व्यक्तित्व से उसने सब का मन मोह लिया था । अंत में बैरिस्टर प्राणनाथ से उसके विवाह का निश्चय होने पर राममोहन ने, जो इसी बीच जान गया था कि पहले उसका विवाह शेफाली से हुआ था, कानून की समस्या उठायी । इस विकट परिस्थिति में शेफाली चिन्तित हुई - "यह आग न बुझाए बुझती है, न दबाए दबती है । न जाने किस घड़ी में मेरा विवाह हुआ था, निष्फल व्यर्थ - बकरे के गले से लटकनेवाले थैले की तरह ! क्या मैं उसको तोड नहीं सकती जो व्यर्थ एक दिखावे की तरह हुआ है ? तोड दूं और प्राणनाथ से विवाह कर लूं ? या घुट घुटकर मरूं । पर क्या यह टूट सकता है ? उसके भीतर से आवाज़ आयी "हाँ, हाँ, हाँ, हाँ तोडो, तोड दो, तोड दो" । वह भीतर की आवाज़ बढती जा रही थी, बढती ही जा रही थी । वह एकदम उठ बैठी । बोली "तोड दूंगी, तोड दूंगी । मैं प्राणनाथ से विवाह करूंगी । मुझे कौन रो सकता है । रोक सकता है कानून । कानून ? कानून उसने सिर पकड लिया और बैठ गई । "कानून" कानून नहीं रोक सकता । मैं विवाह करूंगी । यह मेरा भ्रम है । भ्रम, भ्रम ।[1] अंत में रूढियों को कुचलकर अतिशय चतुरता और साहस दिखाकर "डा· शेफाली" ने बैरिस्टर प्राणनाथ से विवाह कर ही लिया । नागार्जुन के उपन्यास "उग्रतारा" की नायिका उग्रतारा भी प्रेम में सफल होती है ।

आलोच्यकाल में असफल प्रेमिकाओं की संख्या अपेक्षया अधिक है । श्री· इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "पर्दे की रानी" की नायिका निरंजना एक पराजित प्रेमिका है । वह आरंभ में शांत, गंभीर, एकांतप्रिय और

1· उदयशंकर भट्ट - "डा· शेफाली", पृ·212

अध्ययनशील युवती थी । वह एक वेश्या माता और खूनी पिता की पुत्री थी । जब जब उसके हृदय में इस बात की याद आती थी, तब तब उसके मन में राक्षसीय भाव जाग उठता । मन मोहन को जलाने और नीचा दिखाने केलिए वह पुत्र इन्द्रमोहन को आकर्षित करती है । हीनता की भावना और प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित हो वह इन्द्रमोहन की पत्नी शीला की हत्या और इन्द्रमोहन की आत्महत्या का कारण बनती है । इन्द्रमोहन ने उसका अहं तोडने केलिए ट्रेन के एकांत में उस के सतीत्व का खण्डन किया था और फलत: वह गर्भिणी हो चुकी थी । अंत में उसे निराश होना ही पड़ा । श्री· गुरुदत्त के उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" में नायिका पूर्णिमा का ख्याल था कि प्रत्येक हिन्दू कन्या को विवाह नहीं करना चाहिए, पर वह मधुसूदन नामक ब्राह्मण युवक से प्रेम करती है । एक बार वह अपने को घर गृहस्थी में रुचि न रखनेवाली कहती है और दूसरी बार मधुसूदन से विवाह करने की इच्छा रखती है । मधुसूदन के पिता की धर्मनिष्ठता के कारण विवाह को असंभव जानकर उसका मन व्यथा से भर जाता है । वह पहले आतंकवादी थी, फिर गांधीवादी होकर कांग्रेस की नेत्री बनती है। उसके अनुसार जेल से भागना कायरता है, अत: जेल से भागकर आये मधुसूदन से विवाह करने को वह तैयार नहीं होती । इस प्रकार उसका प्रेम सफल नहीं होता । श्री· इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "प्रेत और छाया" की नायिका मंजरी को भी अपने प्रेम में सफलता न मिली । पिता और माता की मृत्यु के उपरांत पारसनाथ उसका सहायक बनता है और उस के घर में रहते समय वह विश्वास पूर्वक कहती है कि नरक की जमीन पर ही स्वर्ग की स्थापना हो सकती है[3] । जब पारसनाथ

1· इलाचन्द्र जोशी - पर्दे की रानी, (1941), इलाहबाद, पृ·173

2· गुरुदत्त - स्वाधीनता के पथ पर, नई दिल्ली, पृ·44

3· इलाचन्द्र जोशी - प्रेत और छाया, (1946), इलाहबाद, पृ·160

नन्दिनी के साथ भाग जाता है । तब मंजरी की गोद में छोटा सा बच्चा था । तो भी वह निराली नारी हिम्मत नहीं हारती । प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझकर वह अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करती है और डाक्टरनी बनकर एक अधेड उम्र के प्रोफसर राय से विवाह करती है । बाद में जब दुर्बल चरित्र वाला पारसनाथ उस से क्षमा मांगता है तो वह कर्कश होकर कहती है, "..... तुम उसी सनातन पुरुष समाज के नवीन प्रतिनिधि हो जिसने युगों से नारी को छल से ठगकर, बल से दबाकर, विनय से बहलाकर और करुणा से गलाकर उसे हाड-मांस की बनी निर्जीव पुतली का रूप देने में कोई बात उठा नहीं रखी है । पर याद रखो, विश्वव्यापी क्रांति के इस युग में आततायी और कामाचारी पुरुष जाति की सत्ता अब निश्चित रूप से मूलत: ढहने को है, और युगों से दलित नारी जाति आज तक अपनी छायात्मकता के भीतर भी शक्ति का जो महाबीज सुरक्षित रखे हुए थी, उसके विस्फोट को दबाने की समर्थता अब ब्रह्मा में भी नहीं रह गयी है ।[1]" इस प्रकार परिस्थितियों पर विजय पाने पर भी प्रेम में वह विजय पा नहीं सकी । जोशीजी के ही एक अन्य उपन्यास "निर्वासित की नीलिमा भी असफल प्रेमिका है । स्वतंत्रता-पूर्व उपन्यासों में ही सुधा, दिव्या, शैलबाला, आदि असफल प्रेमिकाएं हैं ।

श्री· उपेन्द्र नाथ अश्क के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास "बडी-बडी आँखें" की नायिका वाणी यद्यपि नाबालिग है, तो भी विधुर संगीतजी के प्रति उसका आकर्षण और निराशाजनक परिणति यहां उल्लेखयोग्य है । देवनगर के देवाजी की यह पन्द्रह सोलह बरस की, छोटे कद की पतली दुबली बीमार बीमार सी लडकी की गहरी, भोली, प्यारी बडी बडी आँखों ने संगीतजी के

1· इलाचन्द्र जोशी - प्रेत और छाया {1946}, इलाहाबाद, पृ·208

मन को विचलित किया । पर तीरथराम, हरमोहन आदि के षड्यंत्र ने उन दोनों के पवित्र प्रेम को आघात पहुँचाया । "...... दुनिया नहीं चाहती कि जिधर से वाणी गुजरती है, उधर से संगीतजी गुज़रें या वाणी जैसी नाचीज़ हस्ती से दो बाज़ियाँ बैडमिन्टन खेलें । ..."

वाणी के पत्र की ये पंक्तियाँ उस की विवशता को व्यक्त करती हैं । त्यागपत्र देकर प्रयाण करते समय संगीत जीने मन ही मन कहा, "तुम नहीं जानती, तुम्हें खो देने का ख्याल कितना तकलीफ-देह है, कितना दम घोंटनेवाला है । लेकिन तुमने जो आँखें मुझे बख्शी हैं, दूसरे के दुःखदर्द को महसूस करने की जो शक्ति प्रदान की है, वह उसी का तगादा था कि मैं यों भाग जाऊँ । लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, तुम्हारी उन बड़ी बडी आँखों की याद, जिन्होंने मेरी आत्मा को आँखें दी हैं, "देववाणी" के आदर्श पर चलने की प्रेरणा दी हैं, जीवन भर मेरा पथ उजेला रखेगी ।[1]" भोली-भाली वाणी का यह विमल किंतु विफल स्नेह सहृदय पाठक के हृदय में समवेदना पैदा करनेवाला है । अश्क जीने इसी युग में "गर्म राख" की सत्या के रूप में एक असफल-प्रेमिका को हमारे सामने रखा है । इसी युग के नारीपात्र तारा, मनोरमा आदि को भी प्रेम में असफलता का अनुभव हुआ था । साठोत्तर काल के प्रमुख उपन्यासकार कमलेश्वर के उपन्यास "डाकबंगला" की नायिका इरा के जीवन में एक के बाद एक होकर चार पुरुष आते हैं - विमल, बतरा, बूढा डाक्टर और मेजर सोलंकी । इन में विमल के प्रति ही उसके मन में सच्चा प्रेम है । मातृ-विहीन इरा नाटक लिखती और खेलती थी । इसी सिलसिले में विमल से उसका परिचय हुआ और सिमला में उसे अपना कुँआर, यौवन समर्पित किया । जीवन की निर्वाह के लिए उसे मि॰बतरा के यहाँ फोन एटेन्डन्ट की नौकरी भी करनी पड़ी । शंकाशील विमल उसे छोड़कर बम्बई चला गया और वहाँ

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - बडी बडी आँखें, पृ॰184

जाली नोटों के सिलसिले में उसे बारह वर्ष की सजा मिली । इरा बतरा को आत्मसमर्पण करती है और उसके साथ जीने लगती है । उसे गर्भ रहने पर बतरा टानिक के बहाने दवाई पिलाकर भ्रूण को गिरा देता है तो बच्चों को पाने की तीव्र इच्छा रखनेवाली इरा टूट जाती है । परिणाम यह हुआ कि वह नौकरी से हटायी गयी । फिर वह दो बच्चों के पिता बूढे डॉ॰ चन्द्रमोहन के साथ रहने लगती है । पर वह बूढे डाक्टर से सन्तुष्ट न हो सकी और नागपुर चली गयी । इसी बीच गोली लगकर डाक्टर की मृत्यु हुई । इसके बाद वह मेजर सोलंकी को स्वीकार करती है और उसकी ज़िन्दगी का स्वप्न-सेमल के लाल फूलों का खिलना-साकार होने लगता है। तब उसे बीमारी की अन्तिम अवस्था में विमल मिलता है और वह उस के साथ चली जाती है और अपने स्वप्नों का सेमल के लाल फूलों का - गला घोंट देती है । पर विमल उसे सदा केलिए छोड जाता है । इस प्रकार उसका प्रेम सार्थक नहीं हुआ । उसकी ज़िन्दगी केवल एक डाकबंगला बन कर रह गयी । शिवानी कृत "कृष्णकली" उपन्यास की नायिका कृष्णकली के माता-पिता कोढी हैं । उसकी माता पार्वती इस नवजात बच्ची को मार डालना चाहती है, पर डॉक्टर पेट्रिक उसे पन्ना को देती है । पन्ना का मातृव्यवसाय है नाचना गाना । पन्ना ने पहले कली के जन्म का रहस्य छिपा रखा । लेकिन एक दिन पन्ना और विद्युत रंजन के वार्तालाप से कृष्णकली वह रहस्य जान गयी। तब से उसके स्वभाव में एक नया परिवर्तन आया । पन्ना को छोड कर वह लारीन आन्टी के पास रहती है, फिर माडलिंग का काम करती है । उन दिनों एक संभ्रान्त पहाडी परिवार से उसका परिचय होता है और प्रवीर नामक युवक से उसके मन में प्रेम उत्पन्न होता है । पर उसे सफलता नहीं मिलती । वह केन्सर से पीडित होती है और पन्ना, प्रवीर आदि की उपस्थिति में नीन्द की गोलियाँ खाकर मृत्यु का वरण करती है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा, "ऋतुचक्र" की चित्रा आदि भी इस काल की असफल प्रेमिकायें हैं ।

गृहस्थ नारियाँ

नारी का मुख्य कार्यक्षेत्र है परिवार । नारी के बिना परिवार अपूर्ण है । अत: गार्हस्थ्य जीवन से उसका अटूट संबंध है । इस जीवन में सभी को संतोष प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं मिलता । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कतिपय ऐसे नारी पात्र हैं जिनको हम सफल गृहिणियाँ मान सकते हैं, पर अधिकांश नारी-पात्र इस भाग्य से वंचित हैं ।

सफल गृहस्थ नारियों के प्रतिनिधि के रूप में हम श्री·उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास "गिरती दीवारें" की नायिका चन्दा को ले सकते हैं । उन्हीं के साठोत्तरकालीन उपन्यास "शहर में घूमता आईना" और "एक नन्ही किन्दील" इस सफल गृहस्था के व्यक्तित्व से आलोकित है । चन्दा के चरित्र का विस्तृत चित्रण आगे किया जायगा । इसलिए यहाँ उल्लेख मात्र किया जाता है । उसी प्रकार श्री·अमृतलाल नागर के उपन्यास "सुहाग के नूपुर" की एक प्रमुख नारीपात्र "कन्नगी" भी सफल गृहस्थ नारी है, जिसका चित्रण आगे किया जाएगा । डॉ· लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास "काले फूल का पौधा" में एक सफल गृहस्था है, वह है उपन्यास की नायिका गीता की माँ ।

/

अपने माँ-बाप के संबंध में गीता अपने पति देवन से कहती है - "मेरे पापा कट्टर आर्यसमाजी हैं, माताजी वैष्णव हैं, दोनों एक दूसरे को खूब जानते हैं लेकिन दोनों व्यक्तित्व में एक आत्मा है[1]।" ब्याह के बाद पापा से "सत्यार्थ प्रकाश" और माँ से "रामचरितमानस" पाने के बारे में कहते समय भी गीता अपने पापा और माताजी को दुहराने लगी, कितना नैसर्गिक समन्वय है श्रद्धा और क्रांति में, हृदय और बुद्धि में। कहीं से वह समझौता भी नहीं है एकांत विश्वास है[2]।" भावों में किसी के प्रति अविश्वास या दुर्भावना आ जाना मनसा-पाप समझनेवाली इस सफल गृहस्था नारी का चरित्र वास्तव में आदर्श है।

असफल प्रेमिकाओं के समान असफल गृहस्थ नारियाँ भी प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनेक हैं। श्री· बेचनशर्मा "उग्र" के उपन्यास "जीजीजी" की नायिका प्रभा ऐसी एक असफल गृहस्थ नारी है। कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि घर में पुत्र-जन्म होने पर पुत्री का स्थान उपेक्षणीय बन जाता है। प्रभा को ऐसा ही अनुभव हुआ। विमाता ने उसकी इच्छा के विपरीत उसका विवाह एक वेश्यागामी, शराबी, विधुर से करा दिया। पति के अत्याचारों को वह बिना किसी विद्रोह भाव के सहन करती रही, क्योंकि "अभागी नारी जाति कहें तो युगों से विद्रोह से विलग कर दी गई है और अब विद्रोहिणी नारी को श्रृंखलित नारियाँ ही आवारी कहने लगती हैं, फिर वह मीराबाई ही क्यों न हों। विद्रोह से मंगल नहीं ……[3]।" विवाह के बरसों पहले ही सहनशक्ति को पत्नी जीवन का मोटो" माननेवाली

1· डाॅ· लक्ष्मीनारायणलाल - काले फूल का पौधा, पृ·79

2· वही, पृ·98

3· पांडेय बेचनशर्मा "उग्र" - जीजीजी, (1943), बनारस, पृ·51

प्रभा की सहनशक्ति की सीमा तब टूट जाती है जब पति दीनानाथ उससे पूर्णतया नंगी होने को कहता है । पति के इस आदेश का पालन न करने के कारण वह परित्यक्ता बनती है और आखिर उसी व्यथा में उसकी मृत्यु होती है । श्री॰ रामेश्वर शुक्ल अंचल के उपन्यास "चढ़ती धूप" की नायिका ममता को अपने विचित्र स्वभाव के कारण पारिवारिक जीवन में असफल होना पड़ता है । ममता और मोहन की घनिष्ठता इतनी बढ़ जाती है कि ममता मोहन को अपना जीवन साथी मान लेती है । पर आदर्श सेवक मोहन की प्रेरणा से उसे एक दूसरे से विवाह करना पड़ता है । अपने मे कम शिक्षित पति का वह व्यंग्य वचनों से अपमान करती है । हीनता की भावना से ग्रस्त हो वह पुरुष होने का अधिकार दिखाता है तो झगड़ा होता है । ममता पहले अपना तन या मन पति को देना नहीं चाहती । फिर मोहन के उपदेश से तन देती है, पर मन नहीं देती । मोहन के आगमन से पति असंतुष्ट हुआ तो वह कहती है, "······· जिस महान आत्मा के पैरों की धूल भी आप नहीं हैं - न हो सकते हैं - उस पर कलंक लगाने चले हैं । उस व्यक्ति पर आप आक्षेप करते हैं मेरे सामने - मुझे सुना सुनाकर - जो चाहता तो मुझे कोठे पर बैठाकर वेश्या का पेशा करा सकता है । जिस के एक इंगित पर मैं पशु को भी अपना तन दे सकती हूं । (कदाचित् हूं ?) जो मेरे जीवन के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक का स्वामी है[1] ।" गोली से मोहन की मृत्यु होने पर वह शोक से उन्मत्त हो विलाप करती है, अपने को विधवा कहकर मस्तक का सिन्दूर पोंछ डालती है, हाथ की चूड़ियाँ तोड़ डालती है । श्री॰ सुरेश सिन्हा के अनुसार ममता की ये चेष्टाएं सीमाओं का अतिक्रमण है, नारी के सहज गुणों का उल्लंघन है[2] ।

1· रामेश्वर शुक्ल "अंचल" - चढ़ती धूप (1945), इलाहाबाद, पृ·282

2· "अंचल" - "उल्का" (1947), पृ·70

"अंचल" जी के एक अन्य उपन्यास "उल्का" की नायिका मंजु भी अनमेल विवाह के फलस्वरूप असफल गृहणी बनती है। उसके मन में चाँद से प्रेम था, पर विवाह हुआ असभ्य किशोर से। "मेरा शरीर स्त्री का शरीर है। मेरा मन लाचारी का मन है। जो मिलता है वह मिलेगा। मुझे तो जन्मावधि सहते जाना है। चाहने न चाहने का कोई मूल्य नहीं है।"[2] प्रारंभ में ऐसी असीम सहिष्णुता दिखानेवाली मंजु का मन भी पति के दुर्व्यवहार से नफरत और विद्रोह से भर गया। वह सोचने लगी, "नारी केवल शरीर नहीं - केवल स्थूल क्षुधा और तृषा की गठरी नहीं। उसकी आत्मा में रहने के लिए भी कुछ चाहिए।"[2] प्रकाश नामक युवक से उसका परिचय होता है। वह पतिगृह छोड़कर मायके चली जाती है और अध्यापिका बनती है। प्रकाश उस की सहायता करता है तो समाज उन पर लाँछन लगाता है। इस पर क्षुब्ध होकर मंजु नागपुर चली जाती है और वहाँ एक होटल में पति से भेंट होती है जिसने दूसरा विवाह किया था। इस प्रकार अन्याय और यातना सहकर भी वह जीना चाहती है, अपनी बच्ची के चरित्र का विकास करने के लिए। उस का कथन है, "फिर आज मेरे जीवन-धारण का एक उद्देश्य है। मुझे अपनी सन्तान को पालना है उसे दुनिया से संघर्ष करना सिखाना है। जन्म से वह सामाजिक कलंक से ढँकी ढकी आयी....... लेकिन मैं जानती हूँ वह क्या है ? कैसे है कहाँ से आयी है।"[3] गृहस्थ जीवन में असफल होने पर भी हार न माननेवाली इस अद्भुत नारी के संबंध में श्री. सुरेशसिन्हा का मत है, "वह उस उल्का भी भाँति है, जो अन्धकार में प्रकाश की रश्मियाँ बिखेरती है, अंधे युग में अपनी जगह बनाने का प्रयत्न करती है और अन्तहीन राहों पर चलकर

---

1. अंचल - "उल्का" (1947), पृ.70
2. वही, पृ.109
3. वही, पृ.223

अपना लक्ष्य प्राप्त करती है । वह नई नारी की स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाती है ।[1] अज्ञेयजी के उपन्यास "शेखर एक जीवनी" का प्रधान नारी पात्र शशि रिश्ते में शेखर की बहन लगती है, पर अपने समवयस्क शेखर से उसके मन में प्रेम है । फिर भी माँ की इच्छा के अनुसार एक दूसरे व्यक्ति से विवाह करने को वह तैयार होती है । अपने इस निर्णय के बारे में वह शेखर को लिखती है, "मैं जानती हूँ, मेरी सम्पूर्ण अनिच्छा है । पर क्या मुझे अनिच्छा का, अनिच्छा के बाद अस्वीकार का, अधिकार है समाज का मैं अंग हूँ, उसके प्रति मेरी जवाब देही है, पर उसकी मैं उपेक्षा कर सकती हूँ क्योंकि वह मेरे प्रति कर्तव्यशील नहीं है और उस के आदर्श भी बदलते रहते हैं और रहेंगे । पर माँ-माँ तो सनातन है, सदा माँ है, उसके प्रति भी तो मेरा कर्तव्य है । माँ विधवा है, फिर उनके अपने संस्कार हैं । मेरी अस्वीकृति समाज के सम्मुख उन की क्या अवस्था करेगी, यह तो अभी नहीं कह सकती, पर स्वयं अपने ही सामने उन्हें तोड देगी । वे कुछ नहीं कहेंगी, मैं जानती हूँ, पर क्या उससे मुझे कुछ दीखेगा नहीं ? उनका मौन उनकी व्यथा को धार देगा जिस पर मैं हर समय कटती रहूँगी मैं अपना युद्ध लड सकती हूँ, पर मुझे क्या अधिकार है मैं उनसे अपना युद्ध लडवाऊँ ? और अगर किसी को मूक होकर जलना ही है, तो वह कोई मैं ही क्यों नहीं होऊँ ? मैं तो विवाह के बाद चली जाऊँगी, माँ या कोई भी मेरा होम नहीं देखेगा - मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं देखेगा उसे । इस दुःख को अपने बन्धुओं के घेरे के बाहर ले जाने का यही एक तरीका है

शेखर, यही मेरा निर्णय है, आशीर्वाद दो कि मैं साभिमान इसे निभा ले जाऊँ ....।[2]" वह लिखती है कि शायद उसका जीवन चल जाय - उस में सुख नहीं तो दुःख भी नहीं है, किसी तरह की कोई गहरी अनुभूति नहीं है, केवल उनीन्दे रहने से हो जानेवाले सिर दर्द की तरह एक हल्का सा बोझ

---

1. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.193

2. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी - दूसरा भाग, पाँचवाँ संस्करण 1961, पृ.78-79

हर समय उसके ऊपर पड़ा रहता है "कभी सोचती हूं क्या जीवन ऐसे ही बीतेगा ? गाज़र मूली की तरह बढ़ना और उखाड लिये जाना बस ? पर फिर ध्यान आता है, कई ऐसे जीते हैं और दर्जनों बरस निकल जाते हैं और यहाँ ऐसे यंत्र तुल्य जीवन के सभी साधन है है, किसी को मुझ में इतनी भी दिलचस्पी नहीं है कि तिरस्कार भी करे यह वह जीवन नहीं है जिस की मैं ने कल्पना की थी, पर शायद सब का उदाहरण देखकर मैं भी ऐसी बन जाऊं कि अपनी अवस्था का तिरस्कार न कर सकूं और शान्त सन्तुष्ट निर्वेद होकर जीना जी डालूं। दु:ख तो मुझे अब भी कोई नहीं है। .....[1]" फिर यही शशि पतिव्रत धर्म का खण्डन कर के पतिगृह छोड शेखर के जीवन निर्माण के बहाने उस के घर चली जाती है और शेखर के पूछने पर कहती है, "स्त्री हमेशा से अपने को मिटाती आई है। ज्ञान सब उस में संचित है, जैसे धरती में चेतना संचित है। पर बीज अंकुरित होता है, तो धरती को फोड़ कर, धरती अपने आप नहीं फूलती-फलती। मेरी भूल हो सकती है, पर मैं इस में अपमान नहीं समझती, कि सम्पूर्णता की ओर पुरुष की प्रगति में स्त्री माध्यम है - और वही एक माध्यम है। धरती धरती ही है, पर वह भी समान स्रष्टा है, क्या हुआ अगर उस केलिये सृजन पुलक और उन्माद नहीं, क्लेश और वेदना है[2]।" शशि अपने प्रेम को पाप नहीं समझती। क्योंकि "....... कोई स्त्री प्यार नहीं जानती जो एक साथ ही बहन, स्त्री और माँ का प्यार नहीं देना जानती और मैं लौटकर इसलिए जी सकूँगी कि माँ की तरह तुम्हें पाल सकूँगी - तुम नहीं जानते कि यह विश्वास मेरे लिए कितना आवश्यक है - अब और भी अधिक! मैं ज़रूर जी लूंगी। जीवन वह कीड़े का होगा, पर नारी अग्नि कीट हो सकती है ? जिसके देह में निरन्तर आग

---

1. अज्ञेय - शेखर एक जीवनी, दूसरा भाग, पाँचवाँ संस्करण, 1961, पृ87
2. वही, प्रथम भाग, 1941, बनारस, पृ218

जलती है ....[1]।" वह अपने प्रेमी के हाथों में ही मृत्यु का आलिंगन करना चाहती है।[2] इस प्रकार अपने पति को ठुकराकर प्रेमी को सर्वस्व माननेवाली शशि का गृहस्थ जीवन असफल हुआ तो इस में अचरज ही क्या ? जैनेन्द्र जी के स्वतंत्रतापूर्व उपन्यास "त्यागपत्र" की नायिका मृणाल भी गृहस्थ जीवन में पराजित नारी पात्र है ।

श्री• इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "सन्यासी" के एक प्रमुख नारी-पात्र जयन्ती का गृहस्थ जीवन असफल निकला । एम•ए• प्रीवियस में पढते समय क्रिसमस की छुट्टियों में नन्द-किशोर ने आगरा में प्रो• कृष्णकुमार मिश्र के घर में मोहिनी किशोरी जयन्ती को दे,ा, प्रथम दर्शन में ही जयन्ती ने नन्द-किशोर का मन मोह लिया । फिर शान्ति देवी नामक अध्यापिका से नन्द-किशोर का निकटतम सम्पर्क हुआ । नन्द-किशोर की ईर्ष्यालु प्रकृति के कारण दोनों में कलह भी हुआ था तो भी नन्द-कोशिोर के भाई के अनुरोध से शान्ति गायब हो गयी तो वह अस्वस्थ हुआ । एक सप्ताह बाद जयन्ती से पुन: समागम हुआ और अचिरात् दोनों का विवाह भी हुआ । जयन्ती और कैलास के पारस्परिक संबंध के बारे में नन्द-किशोर के मन में सन्देह पैदा हुआ जो दिन दिन बढता ही गया और अंत में जयंती की आत्महत्या का कारण हुआ । क्रांतिकारी हरीश को आश्रय देने और फिर उसकी प्रेरणा से राजनीति में काम करने के कारण पति अमरनाथ शंकालु हो गये और परिणामस्वरूप यशपाल के उपन्यास "दादा कामरेड" की गृहस्था नारी यशोदा का जीवन कष्टमय हुआ । वह तो स्वभाव से अच्छी है, अपना परिवार ही उसका संसार है । "उसका अपना लड़का दादी की बगल में सुरक्षित सोया

1• अज्ञेय - शेखर एक जीवन (प्रथम भाग) 1941, बनारस, पृ•223

2• वही, पृ•34।

हुआ है; परन्तु किसी दूसरी माँ का लड़का मौत के विकराल दाँतों से निकल भागने की चेष्टा में उस के आँचल में आ पड़ा है।[1]" ऐसा सोचकर ही उसने हरीश को आश्रय दिया था। इसको अपनी ही बात समझकर उसने पति से इस के बारे में कुछ नहीं कहा। लेकिन पति सन्देह करने लगे तो उस को बड़ा दुःख हुआ, मर जाने की भी इच्छा हुई। अमरनाथ भी पत्नी की करनी को अपना अपमान समझकर सोचने लगे - "स्त्री स्वभाव से ही चंचल होती है। यशोदा तो कभी चंचल दिखाई न दी। परन्तु स्त्री का क्या विश्वास ? स्त्री पतन और अनाचार का मूल है, उस का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। xx xx xx परपुरुष से अपनी स्त्री के शारीरिक संबंध की बात सोचते ही सिर चकराकर उनकी आँखों में खून उतर आया। इसके बाद केवल एक ही बात दिखाई देती ...... मृत्यु यशोदा की अपनी दोनों की।[2] समाज के आचार की ओर संकेत यशोदा अपना मत प्रकट करते हैं कि स्त्रियों का स्थान घर के भीतर है, और उनको एक मर्यादा के भीतर रहना चाहिए, सार्वजनिक कामों में भाग लेनेवाली स्त्रियों की ओर लोग उँगलियाँ उठाते हैं और वे अपनी स्त्री की बाबत ऐसा देखना सुनना पसन्द नहीं करते[3]। इस प्रकार यशोदा की मानवोचित समवेदना ने पति के मन में सन्देह पैदा किया जिससे गृहस्थ जीवन अस्वस्थ हुआ। यशपाल के ही एक अन्य उपन्यास "देशद्रोही" के नायक लेफ्टिनेन्ट भगवानदास खन्ना की पत्नी राज की बहन चन्दा भी असफल गृहिणी है। वह मतभेद होने पर भी वर्षों से अपने जीवन को पति के अनुकूल बनाती आ रही थी। "वह घर के बाग की बेल थी और गृहस्थ के झंझट में उलझकर अपने आपको भूल गई चन्दा भी खन्ना की संगति में अपना व्यक्तित्व अनुभव करती थी। वह अपनी इच्छा से कुछ देकर

---

1. यशपाल - दादा कामरेड, पृ.15
2. यशपाल - दादा कामरेड, पृ.118
3. वही, पृ.125

कुछ पाकर सन्तोष पा रही थी[1]। पत्नी के दैन्यता-प्रदर्शन से सन्तोष पानेवाले राजाराम को यह कैसे सह्य होगा ? उनके सन्देह से दु:खी हो चन्दा ने आत्महत्या का असफल प्रयत्न किया। उसके सतीत्व पर पति सन्देह करने लगे तो उसके आत्मसम्मान को चोट लगी थी। चन्दा ने खन्ना के प्रति अपने स्नेह और आदर को पति से छिपाना उचित न समझा था; पर यह पति के अविश्वास का कारण बना। वह सोचती कि यदि मैं कुछ न जान पाती तो मुझे कोई दु:ख न था। यदि अपने यहाँ काम करनेवाली महरी औरना उन की भाँति अपने मानापमान का विचार न करती तो मेरे जीवन में कोई कमी न थी। मनुष्य जैसे असंतोष अनुभव करता है पशु नहीं करते। क्या पशु का जीवन ही मनुष्य से अच्छा है। न जानती तब तो ठीक ही था परन्तु जान लेने के बाद अब कैसे भूल जाऊँ ? पशु कैसे बन जाऊँ ? मानसिक मृत्यु। पति के साथ जीवन चल रहा था। उसमें असन्तोष भी ज़रूर था। परन्तु वह जीवन का ही अंग जैसा था। उसके प्रति शिकायत न थी। पति के अतिरिक्त "मनुष्य" और "मनुष्यत्व" को पाकर उसे छोडने में अब असह्य असन्तोष की विभीषिका से मन काँप उठता। पति का विश्वास छिन ही गया। उस दु:ख से दु:खी रहकर भी यदि वह मनुष्य समीप बना रह सके तो जीवन बीत ही जाएगा और यदि मनुष्यत्व का अधिकार और समीपी के रूप में मिला मनुष्य भी छिन गया तो [2]।" इसीलिए जिस चन्दा ने अपनी बेबसी में "खन्ना से तुम जाओ। यहाँ मत आना" कहा था, उसी चन्दा ने उन्हें पत्र लिखा, "मेरे अत्यन्त अपने, मेरे भाई, गुरु, मित्र तुम एक दफे तो आओ और नहीं तो तुम्हारे चरणों में सिर रखकर क्षमा तो माँग लूँ[3]। खन्ना के लिए तो चन्दा उसकी बहन, माँ और शिष्या सभी कुछ है, परम मित्र है[4]। आखिर चन्दा सोचने लगी, "अब तक मैं उचित अनुचित से

---

1. यशपाल - देशद्रोही, पृ.217
2. यशपाल - देशद्रोही, पृ.262
3. वही, पृ.272
4. वही, पृ.273

डरती थी । मर्यादा के पालन का विचार था, एक धारणा की रक्षा की जिम्मेवारी थी अब कुछ नहीं । उनका विचार है कि मेरा चरित्र उन्होंने अपनी मिल्कियत और चौकसी से संभालकर रखा है । मेरे किसी अनुचित काम के करने की, मर्यादा की रक्षा न करने की जिम्मेवारी उनकी ही है । मैं अपनी इच्छा से नहीं बल्कि उन के भय से सदाचारी रही, ऐसा है तो वे अपनी शक्ति भर अपनी दौलत संभाल लें । उनका जो बस चलता है, कर लें जैसे मेरा बस चलेगा, मैं कर लूँगी । जब मुझ पर विश्वास था, मेरी जिम्मेवारी थी । मेरा विश्वास ही नहीं तो मेरी जिम्मेवारी क्या ?"[1] खन्ना से उसका कथन है कि बच्चों के बारे में सोचकर ही वह आत्महत्या नहीं करती[2] । खन्ना ने भगवान पर उस का विश्वास शिथिल कर दिया था । पर घायल खन्ना की रक्षा केलिए उसने भगवान से ही प्रार्थना की । यदि उसके हृदय का रक्त जल बन सकता तो वह खन्ना को तर देती[3] । राजाराम को "पर्दाबेहूदा जान पडता था और स्त्री का अकेला आना जाना निर्लज्जता और आवारापन । इसी ढंग से चन्दा ने अपना जीवन बिताया था । बचन और विचार में स्त्री के लिए पुरुष के समान अधिकार का दावा करके भी समाज और संसार में अकेले खड़े होना उसे भय और असम्मान का कारण जान पड़ता था । समाज में अपना व्यक्तित्व अनुभव करने की न कभी उसे इच्छा हुई थी, न साहस था । लेकिन शिवनाथ की धमकी ने उसे सब कुछ करने को विवश किया, खन्ना की रक्षा ही उसका एक मात्र लक्ष्य था । पति का भय और बच्चों की ममता दोनों ही चन्दा को दबा रहे थे । खन्ना को राज के यहाँ पहुँचाने के लिए वह निकली तो छोटी बच्ची शशि को भी अपने साथ ले गयी ।

---

1. यशपाल - देशद्रोही, पृ.275
2. वही
3. वही, पृ.283

लेकिन राज अपने बच्चे के लिए दूसरे बाप नहीं चाहती थी, अतः निराश होकर उसे अपने शरीर की शिथिलता और पीडा की परवाह किये बिना अवश खन्ना को लेकर सवेरे ही लौटना पडा "थकान की पीड़ा से जर्जर और पिछले रात की ठोकरों से घायल उसके पैरों के लिए चलना सम्भव न था, फिर भी वह चल दी । उसे चलना ही था, ठहरने का स्थान न था, उपाय न था[1] ।" लेकिन उसे खोजने आये राजाराम ने उन्हें देख लिया । खन्ना को वहाँ ज़मीन पर छोडकर निश्चल चन्दा को डाँडी में लिटा दिया गया । बेमेल विवाह, पति का सन्देह और अन्य पुरुष से स्नेह ये तीनों इस त्यागमयी रमणी के गृहस्थ जीवन के दयनीय पराजय के कारण बने ।

गीता डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास "काले फूल का पौधा" की नायिका है । वह अपने माता-पिता की इकलौती लाड़ली बेटी है और शीतलराय के पुत्र देवेन्द्र की पत्नी है । पति को परमेश्वर माननेवाली गीता का विचार है, "यह गमला समाज है, इसकी प्यासी मिट्टी औरत है, इस में डाला हुआ पानी पुरुष है । इस की सनसनाहट, इसका पकना कुदरत है और इसके मिटते बनते बुलबुले इस समूची गति के संतान है[2] ।" पति को उस पर गर्व है । उसके अनुसार वह इतनी कोमल टहनी है कि उसे चाहे जिधर भी वह आसानी से मोड सकता है[3] । उसके मित्र-ओमप्रकाश का विवाह एक मातृ-पितृ विहीन स्वच्छन्द युवति चित्रा से हुआ था । उस विवाह का साक्षी और भागी था देवेन । इसलिए देवेन के विवाहोपरांत ओम के इस कथन पर कि मेरा भी हिस्सा है, गीता भयाक्रांत हुई । उसने पति से कहा,

---

1. यशपाल - देशद्रोही, पृ॰298
2. डॉ॰ लक्ष्मीनारायणलाल - काले फूल का पौधा, पृ॰32
3. वही, पृ॰41

"ओम तुम्हारा साथी है, लेकिन मैं उससे डरती हूँ । इसलिए नहीं कि वह पुरुष है, बल्कि इसलिए कि वह तुम से अधिकार प्राप्त है[1] ।" उस का निम्नलिखित निवेदन भी अत्यंत हृदयग्राहक है, "इस बढ़ती हुई दुनिया को पकड़ने केलिए तुम मुझे मत दौड़ाना, नहीं तो हम रास्ते ही में टूट जायेंगे देवन[2] ।" गीता पर पिता को गर्व था कि वह सच्ची आर्यकन्या है,माता को गर्व था कि वह सच्ची वैष्णव कन्या है । इस से प्रभावित होकर अपनी अच्छाइयों और जीवन के आदर्शों के प्रति सर्वथा जागरूक रहने लगी थी । वह एक - आदर्श पत्नी पतिव्रता गृहणी और आदर्श माता बनना चाहती थी । माताजी ने भी उसे यह उपदेश दिया था, "अपने को बाँधकर रखना, ऊपर अपने से बड़े हों, नीचे स्नेह पानेवाले हों, बीच में तुम हो धरती की भाँति अचल, उसी पर पति खड़ा हो, गंभीर आकाश की तरह[3] ।" देवन को भी कहना पड़ा, "लगता है तुम्हारे बिना मैं अस्तित्वहीन हो जाऊँगा[4] ।" गृहस्थी में एक ऐसा जीवन आया, जिसे "डी· हेवेन के फ्लैट कभी स्वप्न नहीं देख सकते थे । गीता की स्त्री, जैसे अब तक कहीं बँधी थी, असहज स्थिति में - अब उसे मानों अपनी समस्त सहज स्थितियाँ मिल गयीं । उसका पत्नीत्व अपना श्रृंगार पा गया[5] ।" उसकी यह शान्त, सुखी गृहस्थी देखकर माँ-बाप की खुशी की सीमा न रही । गर्भिणी होने पर उसकी अवस्था देखिए, "वह अपने को प्रतिक्षण देवन के अनुरूप बनाती चल रही है - यही उसके मन का पर्व था। देवन की बाँह से जब उस का सर छू जाता, तो वह धरती से ऊपर उठ जाती - स्वामिनी से माननी बन जाती और उस से भी ऊपर उठती उठती वह देवन के

1· डॉ· लक्ष्मीनारायण लाल - काले फूल का पौधा, पृ·45

2· वही, पृ·47

3· डॉ· लक्ष्मीनारायणलाल - काले फूल का पौधा, पृ·105

4· वही, पृ·96

5· वही, पृ·107

अंक में बैठकर चलने लगती। फिर उसे लगता, अनुभूति होती, वह देवन के अंक में नहीं है देवन उस के अंक में है जिसका प्रतीक उसके गर्भ में है[1]।" उसके अनुसार वह एक बाँसुरी है जो युगों से देवन के ही ओठों पर बजती आयी है। लेकिन हमेशा यह स्थिति न रही। जब देवन ने झुँझलाकर कहा कि "यहाँ सेक्स से चरित्र नहीं जोड़ा जाता। दोनों निरपेक्ष है उसे समझने की कोशिश करो[2]" तो गीता कुछ भी समझ न सकी। बच्चे को दूध पिलाने के विरोध में देवन कहता है, "मुझसे तर्क न किया करो गीता, मेरे साथ चलना है तो मेरी गति से चलना होगा[3]।" लेकिन गीता को यह सह्य नहीं था। "उसके भीतर एक दर्शन था, संस्कार और भावनायें थीं, वे सब न जाने क्यों गीता माँ को डँस रही थीं[4]।" उसने "अपने शिशु का नाम सागर रख दिया। उस का सागर सूख जाएगा तो उसकी आँखों का सागर उसे भर देगा[5]।" ओम की पत्नी और देवन की प्रेमिका चित्रा से उसे ईर्ष्या नहीं, गीता की सरलता ने चित्रा को भी मोह लिया था। भरे कंठ से गीता का यह प्रश्न कि "तुम सत्य से भागकर शराब के नशे में शरण ले सकते हो, पर मेरी गति कहाँ है[6]?" अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। "अपने देवन को बाँधकर रखो, नहीं तो विधवा होना पड़ेगा[7]।" ओम की इस चुनौती से पीड़ित हो उसने अपने सर को दीवार से टकरा दिया। माथे का खून आँचल तक बह आया। फिर भी उसे रोना न आया, न घाव का दर्द भी मालूम हुआ। वह सोचने लगी, "ये रेखायें कभी नहीं मिलतीं। क्यों? दोनों के बीच में समान अन्तर है,

---

1· डॉ· लक्ष्मीनारायणलाल - काले फूल का पौधा, पृ·125-126

2· वही, पृ·154

3· वही, पृ·154

4· वही, पृ·155

5· वही, पृ·156

6· वही, पृ·210

7· वही, पृ·214

इसलिए नहीं, बल्कि दोनों में समान धर्म है - ऐसा धर्म नहीं, जो पदार्थ में होता है - खींचकर मिला लेनेवाला ऐसा धर्म जो अब वश मिलने नहीं देता।[1]" बिजली के खंभों पर चित्रा और देवन के नाम के साथ गाली देखी तो वह कपडा भिगोकर पोंछती है। लाख प्रयत्न करने पर भी उसका गृहस्थ जीवन सुखी नहीं होता। देवन के व्यवहार से दुःखी हो वह मायके चली जाती है। उसका पुत्र सागर बीमार हो जाता है। सागर की मृत्यु के पहले देवन आता है। पुत्र की मृत्यु के बाद लखनऊ जाना गीता को स्वीकार नहीं। उसका कथन है, "वह सोचेगा कि जब उन दोनों के बीच में न रहा तब वे दोनों लखनऊ गये। तब वह होगा कि जैसे हमारे स्वार्थ ने उसे मौत दी है। मैं यह सब नहीं चाहती, देवन। अपनी शांति के लिए हम सागर की आत्मा का अब क्यों अपमान होने दें?[2]" इस प्रकार सद्गृहस्था बनने की उसकी सारी कामनायें विफल होती हैं। श्री० यशपाल के उपन्यास "मनुष्य के रूप" की मनोरमा भी स्वातंत्र्योत्तरकालीन उपन्यासों की असफल गृहस्था नारियों में एक है। अमीर लाला ज्वाला सहाय की बेटी और बैरिस्टर जगदीश सहाय सरोला की बहन तथा कामरेड भूषण की प्रेमिका एम०ए० तक पढ़ी यह लड़की इक्कीस वर्ष की होने पर भी अविवाहित रहती है, क्योंकि इतनी पढी लिखी और स्वच्छन्द लड़की का विवाह केवल अपने निर्णय से कर देने का अधिकार माता-पिता खो चुके थे। मनोरमा की उदारता के कारण ही सोमा को सरोला परिवार में आश्रय मिला। भूषण के प्रति उसका मनोभाव नीचे लिखे वाक्यों से ही स्पष्ट होता है, "भूषण की कडवी बातें और उसकी रुखाई के बावजूद उसके मुख से मनोरमा के बारे में कुछ ऐसे शब्द निकल जाते थे कि मनोरमा एकांत में उन्हें गुप्त धन की तरह गिनती और याद करती रहती थी - "तुम्हारी बुद्धिमत्ता, तुम्हारा लावण्य, तुम्हारा साहस, तुम्हारा सौजन्य[3]"

---

1. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल - "काले फूल का पौधा, पृ०216
2. वही, पृ०263
3. यशपाल - मनुष्य के रूप", पृ०83

उसका विचार है, "पुरुष तो वही है जिस के सम्मुख नारी झुक सके[1]।" प्रेम के संबंध में उसकी धारणा है, नारी के लिए प्रेम का परिणाम रक्त है। हृदय का रक्त अथवा शरीर का रक्त ! पुरुष केवल ठोकर मारकर चला जाता है। भूषण भी, धनसिंह भी। निर्लिप्त होकर पश्चिम में जा छिपनेवाला सूर्य भी। पृथ्वी अपनी मार्मिक व्यथा से अपना रक्त फैला रही है। यही नारी का भाग्य है और यही उस का गौरव भी है[2]।" भूषण के मन में मनोरमा के प्रति अनुराग होने पर भी बैंक में पचहत्तर रुपये की नौकरी मिलने पर उसकी सारी महत्वाकांक्षायें मिट्टी में मिल गयीं और मनोरमा से मित्रता की आशा भी। सोमा को नौकरानी के स्तर से उठाने में मनोरमा का ही हाथ था। धन सिंह के भाग जाने पर मनोरमा सरोला परिवार के साथ सोमा को भी लाहौर ले गयी। तत्पश्चात् सोमा में आश्चर्यजनक परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे। बैरिस्टर सरोला के साथ उसके संबंध का रूप भी बदल गया। इस पर मनोरमा का विचार है, "सभी स्त्रियाँ आश्रय का मूल्य, प्रेम का मूल्य अपने शरीर से चुकाती हैं। आत्मतुष्ट प्रेम तो वही है जो मूल्य में आश्रय न माँगे। प्रेम के मूल्य में जीवन भर का आश्रय पा लिया या कुछ रुपये। प्रेम करने का अधिकारी वही है जो आश्रय न माँगे, जो अपने पाँव पर खड़ा हो[3]।" पर मनोरमा को महिला कालेज में काम का निमंत्रण मिलने पर बैरिस्टर सरोला ने आपत्ति की, तुम पिताजी के आत्मसम्मान पर चोट करके अपना आत्मसम्मान बनाना चाहती हो[4]?" "उस की सभी समवयस्काओं के विवाह हो चुके थे। अब वे कुछ बुजुर्गी की मुद्रा लेकर मनोरमा से बात करती थीं और मनोरमा का विवाह अब तक न होने के प्रति करुणा दिखाती थीं, जैसे मनोरमा परीक्षा में पास न हो सकी हो[5]।" सरोला की तीसरी सन्तान के नामकरण के

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.84
2. वही, पृ.106
3. वही, पृ.167
4. वही, पृ.159
5. वही, पृ.170

समय परिवार के सभी लोग आये । घर की स्त्रियों के लिये जिस प्रकार की साडियाँ खरीदी गयीं, उसी प्रकार की साडी बैरिस्टर सरोला ने सोमा केलिए भी खरीदी । इस बात पर घर में कुहराम मच गया । मनोरमा भी उस झगडे में घसीटी गयी । बडी बहू उससे कहती है, "बनने को अधेड उम्र तक क्वारी बनती है लेकिन दुनिया के सब चरित्रों में दखल है । शर्म नहीं आती भाई की दूती बन रही है । एक दूसरे के कर्मों पर पर्दा डालते हैं । ......"[1] बाद में जब उसने पारसी जेन्टिलमैन हैदरजी सुतलीवाला से विवाह करने को निश्चय किया तब भी भाभियाँ ताना देने लगीं । "मनोरमा का मुँह खुलते ही बडी और छोटी भाभियाँ बरस पडतीं । घर की बेटी के सम्मान का भी विचार उनकी जिह्वा को संयम में न रख सकता । उस की आयु इतनी अधिक होने का लाँछन, उस के अकेले घूमने का लाँछन, जाने कहाँ कहाँ लम्बे पत्र लिखने का लाँछन ! बड़ी भाभी और छोटी भाभी दोनों सर हिला, हाथ फैलाकर बार बार कहतीं, किसी इज्जतदार घर में इस उम्र की लड़की क्वारी नहीं देखी[2] ।" "मनोरमा ने दो बार जवाब देने की भूल की । परन्तु वाक्युद्ध में ऐसी परास्त हुई कि घण्टों रोती रही । अपने कमरे से बाहर निकलने का साहस उसे न रहा[3] ।" मन्नो के ब्याह के संबंध में माताजी की प्रतीक्षायें भी मिट्टी में मिल गयीं । मनोरमा के बारे में मंझली भाभी का कथन है, "...... यहाँ तीन बच्चे हो गये अब भी मर्द से बात करते कलेजा काँप जाता है । हमारा ब्याह हुआ था तो डोली पर चढ जाने तक मालूम नहीं था कि कहाँ जा रही हैं । आजकल की लडकियों को देखो, तार देकर शादी करती हैं[4] ।" पन्द्रह मिनट में और पन्द्रह रुपये में लखपती की लड़की का

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ॰178
2. वही, पृ॰185
3. वही
4. वही, पृ॰186

विवाह हो गया । इस से बडा अपमान सम्मानित हिन्दू के लिए और क्या हो सकता था[1] ।" इस प्रकार विवाह तो हो गया । पर पहली रात्रि के बाद ही उसे निराशा का अनुभव हुआ । "प्रात: उठने के समय मनोरमा को शरीर में अनिद्रा की थकान, खिन्नता भरी शिथिलता और आत्मग्लानि सी अनुभव हो रही थी । जैसे उस की स्वच्छता पर निष्फल धब्बा लग गया हो[2] ।" वह सोचने लगी, क्वारे जीवन में वह कौन अभाव था जो अब पूरा हो रहा है ? सुतलीवाला ने उस से विवाह का प्रस्ताव क्यों किया ? दूसरी लडकियाँ विवाह के बाद कैसी हँसी भरी, गुदगुदाई सी जान पडती हैं ? जैसे कोई रहस्य उनके ओठों पर आकर फूट जाना चाहता हो । परन्तु वह केवल प्रवंचना की ग्लानि अनुभव कर रही थी । क्वारी होने से वह क्योंकर दयनीय थी, क्यों कैसे [3] ।" "मनोरमा बहुत शिथिल और उदास थी । विवाह करके उसने क्या पाया ? कितनी बडी भूल ? कितना बडा धोखा...?

xx xx xx मैं ने जिस गृहस्थ में कदम रखा है, वह है केवल धोखा !

xx xx xx गृहस्थ जीवन का माधुर्य तो उस के लिए था नहीं, व्यर्थ प्रवंचना में फँस गई[4] ।" फिर भी वह ऐसा सोचकर आश्वस्त होती है, "एक साथ रहते हैं तो यों एक दूसरे से कतराने और बचने से कैसे चलेगा ? सैकडों लोगों की, अधिकांश लोगों की जिन्दगी ऐसे ही रोते-झगडते ही बीतती है । हमारी भी बीत जाएगी[5] ।" भूषण से उसका कथन है, "मेरी शादी की बात पूछ रहे थे न; मैं खाई में गिरने के डर से भागी थी, कुएँ में गिर पड़ी हूँ[6] ।"

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.187
2. वही, पृ.191
3. वही, पृ.192
4. वही, पृ.193
5. वही, पृ.206
6. वही, पृ.209

इस विवाह को अपनी भूल मानकर वह सोचती है "वह तो कहता है मैं दोस्तों से मिलने के लिए उस से शादी का बहाना करके बम्बई आ गई हूँ । xx xx अब यह आदमी भी मुझे अपने प्रयोजन का न समझ घर से निकालकर मुझ पर कुलटा होने का लाँछन लगा देने की व्यवस्था कर रहा है । वाह ? समाज के कुचक्र ! मुझ से चाहे जो भूल हुई हो, यहाँ से निकलना मेरे लिये मुक्ति ही है । लेकिन जाऊँ भी तो कहाँ ?"[1] पुन: भूषण से उसकी मुलाकात होती है और वह सुतलीवाला से संबंध-विच्छेद करती है । इस मुक्ति पर उसकी मानसिक तुष्टि का आभास निम्न लिखित पंक्तियों में मिलता है, "नीता मनोरमा को ऐसे संभाले हुए थी कि नई बहू को गृहप्रवेश करा रही हो । मनोरमा भी नई बहू की तरह सिमटी हुई थी[2] ।" सुतलीवाला से पहाडन (सोमा) का विवाह होनेवाला है - यह बात जानकर भी वह सोमा पर कोई दोष नहीं देखती और कहती है, "उस बेचारी का क्या कसूर ?"[3] भूषण को पाने का समय निकट आते देख वह फूली न समाती है । परन्तु धनसिंह और सोमा को मिलाने के प्रयत्न में भूषण की मृत्यु होती है । तब वह आत्महत्या का उद्यम करती है । "जोशीजी ने उससे तेज चाल से बढ़कर बराम्दे के जंगले पर झुकती मनोरमा की बाँह ज़ोर से थाम ली और पीछे खींच लिया[4] ।" अंत में वह मूर्च्छित हो जाती है । धनी परिवार में लाड से पली सुशीला, सुशिक्षिता मनोरमा का गृहस्थ जीवन इस प्रकार दयनीय रूप से पराजित हुआ । श्री राजेन्द्र यादव के उपन्यास "सारा आकाश" की मुन्नी को भी हम असफल गृहस्था मान सकते हैं । वह उपन्यास के नायक

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.216
2. वही, पृ.288
3. वही, पृ.295
4. वही, पृ.309

समर की बहन है । उस का जीवन दु:खपूर्ण है । उसके दुराचारी पति ने एक बाज़ारू स्त्री को भी घर में बसाया था । दोनों मिलकर मुन्नी को पीटते थे । जब न सहा गया तो वह अकेली अपने घर चली आयी और सब के लिए भारस्वरूप वहाँ रही । समर की पत्नी प्रभा के प्रति उस घर में केवल उसी को समवेदना थी । एक दिन उसका पति उसे साथ ले जाने केलिए आया । वह पश्चात्ताप प्रकट कर रहा था । तो भी मुन्नी उसके साथ जाना नहीं चाहती थी । वह पिताजी के पैरों पड़कर रो रही थी कि मुझे मत भेजो । समर भी उसे भेजना नहीं चाहता था, लेकिन पिता ने किसी की बात न सुनी, मुन्नी को बिदा किया । उपन्यास के अंत में उस अबला की मृत्यु की खबर पाकर पाठक का दिल द्रवित होता है ।

श्री॰ हिमांशु श्रीवास्तव के साठोत्तर उपन्यास "नदी फिर बह चली" की नायिका परबतिया का गृहस्थ जीवन सफल न होता है । वह कहारिन है । उसका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा । छ: वर्ष की अवस्था में ही वह मातृविहीना हुई । पहले मामी, फिर सौतीली माँ सुगिया के अत्याचार सहकर किसी तरह वह बडी हुई तो ट्रक ड्राइवर शराबी जगलाल से उसका विवाह होता है । पति को राह पर लाने के उस के सारे प्रयत्न निष्फल होते हैं । ट्रक के क्लीनर नत्थू के साथ वह वेश्याओं की कोठरियों में भी जाता है । परबतिया दो बच्चों की माँ बन जाती है, पर जगलाल दिनों दिन बिगडता जाता है । आखिर एक दिन एक वेश्या की कोठरी के आगे शराब के नशे में वह अपने एक साथी का खून करके जेल का दण्ड भोगता है । बेचारी परबतिया दर दर की ठोकरें खाकर अंत में अपने ससुराल के लोगों का चौका बरतन कर बच्चों को पालती है । गाँव के स्कूल के लिए अपने पति के हिस्से की ज़मीन भी देती है क्योंकि उससे कहा गया था कि स्कूल के आगे "कलुआ के बाप" {जगलाल} का नाम लगाया जायेगा । समाजवादी नवयुवक दल के लिए वह "मंगटीका" भी दे देती है । युवकदल के नेता नन्हें के मना करने पर वह कहती है कि कलुआ के बापू के नाम पर मैं मन में सेनुर

पहनती हूँ[1]। इन युवकों ने अन्याय के विरुद्ध क्रांति भी तो पुलिस द्वारा अश्रुगैस और लाठी का प्रयोग हुआ। इस में परबतिया का मस्तक फूट गया और आखिर उसकी मृत्यु हुई। "पवित्र तक संसार-सागर में, जीवन के घात-प्रतिघात से गुज़रती हुई उस गाँव की गोरी ने अपनी इहलीला समाप्त की और उस समाज में जिस की चरित्र और वर्ग-एकता की धारा सूख गयी थी, शुचिता और शक्ति की नदी फिर से बहा दी[2]।" गृहस्थ जीवन में विजय न पाने पर भी "कलुआ के बाप" की स्मृति बनाये रखने केलिये सब कुछ अर्पित करनेवाली त्यागमयी परबतिया का चरित्र आदर्शपूर्ण है। श्री॰ नरेश मेहता का उपन्यास "यह पथ बंधु था" भी एक निरीह, सहनशीला, समर्पिता पत्नी के असफल गृहस्थ जीवन की करुणापूर्ण कहानी है। परिस्थितियों से समझौता न कर सकने के कारण और साहित्यिक राजनीतिक जीवन में व्याप्त क्षुद्र दलबन्दी के कारण सरस्वती के पति श्रीधर को कई प्रतिबन्धों का सामना करना पडा, दीर्घकाल के लिये कारागृह वासी होना पड़ा। पच्चीस वर्ष बाद पराजित टूटा हुआ वह घर लौट आया तो उस के परिवार का, जो संयुक्त परिवार था, विघटन हो चुका था और उसकी पत्नी इन सब के बीच पिसती-टूटती यक्ष्मा की अन्तिम अवस्था में थी। दोनों पुत्रियों का विवाह हो चुका था। उनमें एक ससुराल के अत्याचार से पंगु एवं परित्यक्ता होकर माँ के साथ रहती थी। श्रीधर के घर पहुँचने के बाद सरस्वती की मृत्यु होती है और पंगु पुत्री अपने नाना के घर चली जाती है। श्रीधर पुन: अकेला, असहाय पथबन्धु सा हो जाता है। इस उपन्यास में परिवार की चक्की में पिसकर तीव्र वेदना भोगनेवाली आदर्श भारतीय नारी सरस्वती का मार्मिक चित्रण ही प्रमुख है। श्री, भीष्म साहनी का उपन्यास "कडियाँ" असफल दाम्पत्य जीवन की सफल कहानी है। इस उपन्यास की नायिका प्रमीला

1· हिमांशु श्रीवास्तव - नदी फिर बह चली, पृ·399

2· वही, पृ·410

प्राचीन परम्पराओं में आस्था रखनेवाली, अपने घर और बच्चों में खोयी रहने वाली और सुन्दरी होने पर भी अपने सौन्दर्य के प्रदर्शन की इच्छा न रखनेवाली तथा सेक्स के प्रतिआसक्ति न दिखानेवाली एक मामूली गृहणी है । वह अपने पति महेंद्र से भी अधिक ख्याल अपने बेटे पप्पू का रखती है । महेन्द्र तो आधुनिक जीवन की चमक-दमक और दिखावा पसन्द करनेवाला है । वह अपनी पत्नी को "अप-टु-डेट" देखना चाहता है, पर पत्नी अपने पुराने संस्कारों के कारण ऐसा हो नहीं सकती । महेन्द्र अपने दफ्तर की केशियर मिस सुषमा के प्रति आकृष्ट होता है । उसका मित्र नाटा उसे समझाता है, "भले ही बीसियों स्त्रियों से संबंध रखो, पर घरवाली से छिपाए रखो । इसी में सच्ची नैतिकता है[1] ।" लेकिन महेन्द्र अपने को अपराधी मानकर प्रमीला से सब कुछ कह डालता है तो प्रमीला आपे से बाहर होकर पति को भलाबुरा कहती है । परिणाम यह हुआ कि महेन्द्र का "इगो" जाग्रत होता है और वह उसे छोड देता है । पप्पू को बोर्डिंग में रहना पडता है । पति-पत्नी के मनमुटाव के फलस्वरूप बच्चे की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है । "हर जिन्दगी किसी न किसी खूंटे से बंधी रहे तो वह अपना सन्तुलन बनाये रखती है ......[2]" यहाँ खूंटा टूट गया और संतुलन खो गया । महेन्द्र दूसरी स्त्रियों पर भी डोरे डालने लगा और प्रमिला का मानसिक संतुलन नष्ट हो गया । वह पागल होकर दिन भर सडकों पर चक्कर काटने लगी । नाटा उनको पुन: मिलाने में सफल होता है, फलस्वरूप प्रमिला गर्भवती होती है। पागलों के अस्पताल में प्रमिला को भर्ती किया जाता है । डाक्टर का विश्वास है कि सन्तानप्राप्ति के बाद उसकी अवस्था ठीक हो जाएगी । पर महेन्द्र उसे स्वीकार करना नहीं चाहता, वह प्रमिला पर यह सोचकर सन्देह करता है कि पागलपन के आलम में प्रमिला न जाने किस से काला मुँह कर

---

1. भीष्म साहनी - कडियाँ, पृ.33

2. वही, पृ.166

आयी है।[1]" सन्तानोत्पत्ति के बाद वह ठीक हो जाती है, पर महेन्द्र से उसका मन फिर जाता है। अपने पिता के बीमे के रुपयों से वह दवाइयों की एक दूकान खोलना चाहती है। इस प्रकार आत्मविश्वासपूर्वक आत्मनिर्भर होने का परिश्रम करनेवाली प्रमिला का पारिवारिक जीवन एक बार टूट गया था, फिर कभी नहीं जुड़ा। प्रमुख साठोत्तर उपन्यासकार श्री· रमेशबक्षी के उपन्यास "बैसाखियोंवाली इमारतें" के चारों पात्र-अनामी नायक, उसकी पत्नी, हिन्दी साहित्य की प्रोफेसर मिस· जायसवाल तथा एब्स्ट्रेक्ट पेंटिंग की चित्रकार मिस वसुधा - अहं की बैसाखियों पर खड़े हैं। अतः वे समझौता नहीं कर सकते और उनके व्यक्तित्वों की इमारतें ढह जाती हैं। उपन्यास का नायक पत्रकार वैवाहिक जीवन की अपेक्षा किसी वेश्या से संबंध रखना अधिक सुविधा जनक समझनेवाला है[2]। ऐसे पुरुष की पत्नी का गृहस्थ जीवन कैसे सफल होगा ? सुहागरात से ही दोनों एक दूसरे से नफरत करने लगे। पहले तो वह रात-दिन रोती रही, फिर उसने ऊबकर पति का घर छोड़ने का निश्चय किया। यह निश्चय जानकर पति दुःखी नहीं होता, बल्कि उसके मन में यह घृणित वासना जागती है कि प्रेम का नाटक रचकर जाने से पहले एक बार उसका खूब भोग करना चाहिए। लेकिन पत्नी के मन में घृणा और अहं के भाव इतने प्रबल थे कि वह मीठी यादें लेकर चलना नहीं चाहती, घृणा भरी यादें लेकर ही जाना चाहती है[3]। इससे पत्रकार के अहं को धक्का लगता है और

1· भीष्म साहनी - कड़ियाँ, पृ·217

2· "किसी वेश्या से संबंध रखा जाय। महीने पखवारे में गए मेहमान की तरह सलाम मुजरे में डूबे रहे और जाकर आराम की नीन्द सोये।"
रमेश बक्षी - बैसाखियों वाली इमारतें, पृ·103

3· "मैं जाते-जाते एक असन्तुष्ट और जलती हुई रात को इस घर में छोड़ ही जाऊँगी और वैसी ही याद साथ में भी ले जाऊँगी।"
रमेश बक्षी - बैसाखियों वाली इमारतें, पृ·108

वह पत्नी के साथ बलात्कार करने को उद्यत होता है तो पत्नी नाखून और दांत के सहारे उसे हराता है और हमेशा केलिए उसे छोड़कर चली जाती है। इस प्रकार पति-पत्नी के अहं के टकराहट से पारिवारिक जीवन चूर चूर हो जाता है। कमलेश्वर के उपन्यास "लौटे हुए मुसाफिर" में एक असफल गृहस्थ्य नारी है - वह है पतिपरित्यक्ता सलमा वह अपने आदमी को पाँच बरस पहले छोड़कर चली आयी थी और तब से अपने बाप के पास रह रही थी। अस्पताल में एक डाक्टर के यहाँ वह काम कर रही थी। सर्कस के घोड़ों की जीन कसनेवाला सत्तार किसी दूसरे कस्बे का रहने वाला था। जुम्मनसाह उसे चिकवों को बस्ती में लाया। सत्तार ताश के कमाल दिखाता था और जादू जानता था। सलमा और सत्तार परस्पर प्रेम करने लगे तो साई ने, जो बस्ती का अभिभावक माना जाता था, पूछताछ की। सलमा के मुहफट होने के कारण साई की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसे बुलाकर कुछ कहे। सलमा ने साई से कहा, "यह सब मुझ से पूछिए। मेरे बारे में बात पूछनी है तो मैं खुद हूं, जो पूछिए, उसका जवाब मैं दूंगी।"[1] "मैं बताए देती हूं - मैं इसके साथ भुतहे मकान में गई थी।" कहते कहते उसकी आवाज़ कुछ भारी हो गयी थी और गला रुंधने सा लगा था[2]। सलमा के इस स्पष्ट कथन से साई की जो बेइज्जती हुई थी, उससे नसीबन को मन ही मन सन्तोष हुआ। सत्तार से उसका यह कथन उसकी लाचारी का परिचायक है कि "सत्तार, पता नहीं कौन सी मजबूरियाँ हैं जो कुछ भी करने से रोकती हैं। चाहते हुए भी वह नहीं कर सकती जो करना चाहती हूं।"[3] सलमा का पति मकसूद अलीगढ के एक राजनीतिक कार्यकर्ता यासीन के साथ आया तो सलमा-सत्तार मिलन मुश्किल हो गया था तो भी वह सत्तार के साथ भाग जाने को तैयार नहीं होती। मकसूद एक विचित्र मनुष्य था, वह शाम को स्त्रियों की

---

1. कमलेश्वर - लौटे हुए मुसाफिर, पृ.44
2. वही
3. वही, पृ.72

तरह बनाव सिंगार करता था और यासीन के साथ उसका विचित्र संबंध था। सलमा की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उसके पेट में बच्चा है, अतः वह सत्तार के साथ कहीं जाने को राज़ी न होती। पाकिस्तान बनने की संभावना देख सत्तार ने उससे यहीं रुक जाने को कहा। इसके संबंध में वह नसीबन से कहती है, "...... कहता था, मैं बच्चे को अपना कहूँगा, पर तू यहीं रुक जा बताओ न बुआ, ऐसा भी कहीं होता है? वह मेरी मज़बूरियाँ नहीं समझता। कैसे रुकना हो सकता है। यहाँ [1]।" अंत में सत्तार ने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार प्रेम में असमंजस में पड कर, असफल होकर घुट घुट कर जीने वाली सलमा का चरित्र नारीजीवन की विवशता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यास "ऋतुचक्र" के प्रमुख नारीपात्र चित्रा, श्री·मोहन राकेश के उपन्यास "अँधेरे बन्द कमरे" की नायिका नीलिमा, भगवती चरण वर्मा जी के उपन्यास "रेखा" की नायिका रेखा आदि इस काल की अन्य असफल गृहस्थायें हैं।

विधवाएँ

एक ज़माने में विधवाएँ समाज में अभिशप्त समझी जाती थीं। समाज सुधारकों के प्रयत्न से स्थिति तो सुधरी, लेकिन विधवा जीवन की यातनाओं का अंत नहीं हुआ। यशपाल के उपन्यास "देशद्रोही" की राज के विधवा होते ही उसके जीवन में ही एक समूल "परिवर्तन उपस्थित होता है। वृन्दावनलाल वर्मा जी के उपन्यास "झाँसी की रानी" की नायिका लक्ष्मी बाई वैधव्य दुःख सहन करती हुई स्वराज केलिए मर मिटीं। यशपाल के ही उपन्यास "झूठा सच" के एक नारी पात्र उर्मिला लाला बेधवामल नारंग की लड़की है। यह चंचला लड़की विधवा हुई तो उसकी प्रकृति ही बदल गई केवल दो मास का सुहाग, केवल दो दिन के लिए ससुराल जाकर विधवा हो जाना उर्मिला इस दुर्भाग्य केलिए किस प्रकार दोषी थी? उर्मिला का दुर्भाग्य समाज की मूर्खता का, साम्प्रदायिक उत्पात का परिणाम था। इस उत्पात केलिए अबोध उर्मिला नहीं, दूसरे लोग उत्तरदायी थे[2]।" विभाजन के साथ हुई अव्यवस्थाओं के कारण

1· लौटते हुए मुसाफिर - कमलेश्वर, पृ·128

कनक का पता न लगने पर जयदेव पुरी उर्मिला की ओर झुक गया । पुरी ने उर्मिला को सिविल मैरेज की बात समझाई तो उर्मिला ने उसे "प्यार में और भी ज़ोर से बाँधकर कहा - "चलो हटो, प्यार और विश्वास से बड़ी चीज़ क्या है । मैं तुम पर सन्देह करूँ तो मर जाऊँ ।"[1] दोनों के परस्पर संबंध का परिचायक है प्रस्तुत कथन । अचानक एक दिन कनक आयी तो पुरी ने उर्मिला को नर्सों के ट्रेनिंग स्कूल में दाखिल होने के लिए लुधियाना भेजा । बाद में उसमें आये परिवर्तन को देख स्वयं पुरी के मन में ऐसा विचार आया, "......वुमैन दाई नेम इज़ उम्हेरी । {ओह चंचला नारी} जो तेरा विश्वास करे वह मूर्ख   कितना मूर्ख बना रहा ?"[2] नर्स होकर किसी दूसरे से संबंध स्थापित करनेवाली उर्मिला के कारण पुरी ने समस्त स्त्री जाति पर यह आरोप लगाया, "स्त्री का विश्वास ?...... वह स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहती, धोखा उस का एक मात्र बल है ।"[3] श्री॰ वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यास "अमरबेल" में हरको नामक साँवली युवती के दोनों रूप सधवा और विधवा - हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं । "हरकुँवरि जिसे साधारणतया हरको कहते थे, ससुराल की दुःखिनी थी । पति किसी न किसी रोग में लग भगसदा ग्रस्त और बहुत गुस्सैल ज़रा ज़रा सी बात पर हरको की ठोक पीट कर डालता था । सास ससुर मर चुके थे । चाचा-ससुर, चाची-सास और उनके दो लड़के, हरको के देवर घर में इतने व्यक्ति थे । कभी कभी सास और ये देवर भी उसे मार बैठते थे । वैसे खाने पीने से तंग न थी । पर पेट भर भोजन और तन भर कपड़े मिल जाना ही तो सब कुछ नहीं होता । जब हरको को लगा कि ससुराल उसे चबाये डालना चाहती है तो एक-दिन भाग खड़ी हुई

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ॰252
2. वही, पृ॰55
3. वही, पृ॰55

और अपने भाई मंटू के पास आ रही जहाँ उसे उतना खाना कपडा प्राप्त न होने पर भी स्नेह का आश्रय तो मिला ।[1]" लेकिन वह फिर उसी ससुराल की ओर घसीटी गई । गाँववालों से उसका पति जोधा चीखा - "मेरी ब्याहता है, गाँववालों की नहीं है और हरको पर उसने फिर सपाटे लगाये[2]।" हरको की बिदा कर दी गई । उस बिदा का हृदय विदारक "मंटू मुँहफट था और पैसे कपडे से उतना ही तंग । एक धोती पहने हरको रोती बिलखती घर से निकली । वह लौट लौटकर टहलराम के घर की ओर देख रही थी । घाटीवाली द्वार पर खडी थी । देखकर चुपचाप हिलक उठी । उस ने अंचल के छोर से अपनी आँखें पोंछी । मन में कहा, "भगवान लड़की दें तो गरीबी न दें । "फिर उसने एक निश्चय किया - "इस से कभी कडी बात नहीं करूँगी । बुरे बर्ताव के कारण अब के भागकर आई तो इसकी पीठ पर हाथ धरूँगी ।" मण्टू घर भीतर अपनी कडी उँगलियों से आँसू इटा रहा था । कभी एक गीत सुना था । इस की एक कडी कान में झाँई मार गई - "तिरिया जन्म जिन देय विधाता[3]" - ससुराल पहुँचकर उसकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी । सास सिर्फ मण्टू को ही नहीं उसके गाँव के लोगों को भी कोसने लगी और हरको को धमकी देकर काम करवाने की कोशिश करने लगी । थकी माँदी आयी हरको ने अपनी असमर्थता प्रकट की । सास को जेठानी ने उकसाया । फिर जेठानी रको पर टूट पड़ी तो हरको ने भी आत्मरक्षा के लिये उसे नोच डाला । फिर पति और देवन ने मिलकर उसे बे भाव पीटा । केवल सिर को बचाया गया । कमर तक नंगी होकर, बेहोश हो वह गिर पडी । घर की पंचायत ने उसे रोटी न देने का निर्णय किया । अंग अंग में चोटों की कसक होने पर भी रात के तीसरे पहर वह

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ.133-134
2. वही, पृ.180
3. वही, पृ.181

बागुर्दन की ओर चली । "हरको के हाथ, पैर, पीठ और पेट पर लम्बे, नीले निशानों के तिकोनों और चौकोनों मे खिंचे हुए थे । इन में से कई पर सूजन भी थी ।[1]" हरको की यह दुर्दशा देखकर भारतीय नारी की पराधीनता की चिन्ता मे राजदुलारी के मन में सहानुभूति उमड पडी । तदुपरांत हरको बागुर्दन में ही रही और अचिरात विधवा होकर उसने पतिगृह के नाटकीय जीवन से सदा केलिये मुक्ति पायी । "तुम जैसी निडर हो वैसी ही फुर्तीली और अच्छे स्वभाववाली ।[2]" कहकर बटोले ने उसकी स्तुति की तो वह कहती है, "सब की भली बनकर चलना चाहती हूँ, नहीं तो जैसे वहाँ डायन बनायी गई, यहाँ चुडैल कर दी जाऊँगी ।[3]" बटोले के इस कथन पर कि मेरी तुम्हारी खूब पट सकती है, हरको का चुटीला उत्तर है - "तुम सरीखे बेशर्मों से मेरी कभी नहीं पट सकती । औरतों में राजदुलारी और घाटीवाली, मर्दों में मेरा भाई, डाक्टर और टहलबाबू के सिवाय मुझे ऐसा कोई और नहीं दिखता जिस से मेरी पट सके ।[4]" अपनी सद्भावना से वह टहल को प्रभावित करती है । हरको और टहल का पारस्परिक आकर्षण टहल की माँ घाटीवाली को भी पसन्द हुआ और अंत में दोनों का विवाह हुआ । हरको के अनुभवों से यह सिद्ध होता है कि दुष्ट जोधा के साथ के वैवाहिक जीवन से भी बेहतर था उस का विधवा जीवन । नागार्जुनकृत "रतिनाथ की चाची" में रतिनाथ की चाची गौरी विधवा ब्राह्मणी है । "लेखक ने उसको आधार बनाकर समाज में फैली ब्राह्मण अब्राह्मण कुलीन अकुलीन, उच्चवर्ग-निम्नवर्ग पर आधारित सामाजिक विषमताओं, उसको खोखला बनानेवाली विविध समस्याओं, अज्ञान, भ्रम, मिथ्या विश्वासों और ज़हालतों का यथार्थपरक अंकन किया है ।[5]" भैरवप्रसाद गुप्त जी के

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ.203
2. वही, पृ.239
3. वही,
4. वही, पृ.251
5. डॉ यशगुलाटी - बृहद् साहित्यिक निबंध, पृ.227

"गंगामैया"
उपन्यास में गोपीचन्द की भाभी सामंती संस्कारों के कारण अपने वैधव्य का कारण अपना भाग्य माननेवाली है । वह बिलरा से कहती है, "क्या करें बिलरा, भाग्य के आगे किस का बस चलता है ? विधाता ने सेनुर मिटा दिया, करम फोड दिया, तो अब इसी तरह से रो-धो करके तो ज़िन्दगी काटनी है[1] ।" लेकिन गोपीचन्द सामंती मूल्यों से संघर्ष करके अपनी भाभी से विवाह करता है । श्री· यशपाल ने अपने उपन्यास "बारह घंटे" में एक क्रिश्चियन विधवा विनी का चित्र खींचा है जिसके पति रोबी नेपियर की अकाल मृत्यु ग्यारह मास पूर्व नैनीताल में हुई थी[2] । वह पति की समाधि पर पुष्पार्चना करने आई है । सेमेट्री में फैंटम नामक एक सज्जन से उसकी भेंट होती है । पाँच मास पूर्व उनकी पत्नी सैली की मृत्यु हुई थी । वर्षों से क्षय की बीमारी की शिकार हुई थी वह, उस के विरह से आकुल फैंटम नित्य सबेरे सेमेट्री आता था । विनी और फैंटम ने अपनी अपनी कहानी एक दूसरे को कह सुनाई । वर्षा के कारण विनी जल्दी लौट न सकी । बहन जेनी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । विनी और फैंटम एक ही रिक्शा में सेमिट्री से निकले । दोनों आपस की सहानुभूति के कारण बिदा लेना नहीं चाहते थे । "विनी के व्यथा भरे मन में फैंटम के वियोग के प्रति सहानुभूति और करुणा का एक केन्द्र घनीभूत हो रहा था[3] ।" फैंटम ने आभार से दबे स्वर में कहा, "आप कितनी कृपालु और ममतामयी है । मैं आज आपसे कितनी सांत्वना और सहायता पा रहा हूँ । आज अपनी व्यथा पर शीतल आलेप सा अनुभव हो रहा है[4] ।" वे फैंटम के घर पहुँचे । वहाँ भी उनकी बातचीत

1· भैरवप्रसाद गुप्त - गंगा मैया, पृ·5।

2· विनी अपने गहरे शोक को किसी से नहीं बँटाती थी । किसी की ओर न देखकर वह अपने शोक में डूबी रहती थी । किसी के सामने आँसू भरी आँखों से अपनी विह्वलता प्रकट करना उसे आत्मसम्मान के अनुकूल नहीं जँचता था ।
-यशपाल - बारह घंटे, पृ·12

3· वही, पृ·50

4· वही, पृ·55

जारी रही । फैंटम से विनी का कथन है, "इन दस महीनों का एक एक दिन कैसे कटा है, परन्तु उस के साथ इक्कीस साल पता भी नहीं चले । मैं ने रोमी से पृथक अपने अस्तित्व को कभी अनुभव नहीं किया था । ** ** ** समझ लिया ज़िन्दा ही कफन में लेट रही हूँ । ** ** **"[1] एक विधवा की मानसिक पीडा का आभास विनी के इस कथन में मिलता है कि "....... अपना ही लिखा समझ में नहीं आता । सेक्रेटरी असन्तुष्ट रहता है । अपने आप से खिन्न हो जाती हूँ । सोचती हूँ, मर क्यों नहीं जाती ?"[2] इतने में जेनी के पति पामर ने लारेंस नामक पुलिस अफसर से विनी को ढूँढने की विनती की थी । रात हो जाने पर विनी ने एक खत लिखकर कुली के द्वारा जेनी को भेजा कि वह उस दिन घर न पहुँचेगी । खत पाकर जेनी रुष्ट हुई तो लारेंस विनी का पक्ष लेकरक कहता है, " ** ** ** जीवन के उस सहारे और आवश्यकता के अभाव में ही वह जीवन को असंभव समझ रही थी । सावित्री की तरह व्याकुल होकर भाग्य से लड रही थी । विनी सावित्री की तरह फैंटम में सत्यवान या रोमी को पुन: पा रही है[3] ।" लारेंस के अनुसार प्रेम सिर्फ आत्मिक संबंध नहीं है, वह जीवन की पार्थिव आवश्यकता और संबंध भी है[4] ।" लारेंस का प्रस्ताव वास्तव में उपन्यासकार का ही प्रस्ताव है । इस विधवा विधुर संबंध को यशपालजी अस्वाभाविक या अनैतिक नहीं मानते । "विनी और फैंटम अति सहज और सरल होकर सँवारे गए हैं । दो दु:खी व्यक्तियों को एक सामान्य सूत्र में बाँधनेवाले भावों और मनोदशाओं का अति सूक्ष्म और कलापूर्ण अंकन यशपाल ने बडी निपुणता और कौशल के साथ इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है[5] ।" बदलते परिवेश में

---

1. यशपाल - बारह घंटे, पृ.69
2. वही, पृ.72
3. वही, पृ.108
4. वही
5. डा. मधुरेश - आलोचना, क्रमांक - 28, पृ.129

प्रेम की इस बदलती मान्यता के बारे में डॉ· धनराज मान्धाने का मत है, "एक ही प्रकार की वेदना से पीड़ित दो विपरीत लिंगी व्यक्ति जबकिन्हीं कारणों से एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो मनोवैज्ञानिक दृष्टया वह वही करते हैं जो साधारण नर नारी करते हैं[1]।" "गिरती दीवारें" और "शहर में घूमता आइना" में कुन्ती नामक नारीपात्र के तीन चित्र दृष्टिगत होते हैं - "यौवन के सुप्रभात ने उसके अंगों को कुछ ऐसे सुगठित साँचे में ढाल दिया था और उसके ओठों पर ऐसी स्वर्ण-स्मिति खेल रही थी कि चेतन मुग्ध सा खड़ा रह गया[2]।" कुन्ती का पहला चित्र इस प्रकार मनमोहक था तो दूसरा चित्र इस से भी आकर्षक था। देखिए - "सुन्दर तीखा चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, अरुणिमा का जैसा उपहास-सा करते हुए मुस्कुराते ओंठ, लाल साड़ी, यौवनभार को सम्हाल सकने में जैसे असमर्थ शरीर, लाल चूड़ा जिसकी चूड़ियों की सुनाई न देनेवाली झंकार ने उसके मन-प्राण को झंकृत कर दिया था - विवाह के बाद यह था कुन्ती का चित्र[3]। तीसरा चित्र "शहर में घूमता आइना" में दिखाई देता है। यह चित्र भारतीय विधवा की विवशता का प्रतीक है। देखिये, "कुन्ती की माँग से सिन्दूर पोंछ दिया गया था, उसकी चूड़ियाँ तोड डाली गयी थीं और उसकी हँसी और ठहाकों पर ताले लगा दिये गये थे और श्मशान में उस शव के (जो कल तक उसका पति था, उसके नन्हें बच्चे का बाप था) अंतिम दर्शनों को आती हुई तपती धूप में नंगे पाँव, सफेद धोती पहने मूक, मर्माहत सी उसकी वह मूरत वह कितनी दुबली हो गई थी। हिम ऐसे श्वेत उस के मुख पर केवल लम्बी-सी नासिका ही दिखाई देती थीं और आँखें बेकिनार शून्य में भटक रही थीं चेतन के सामने वह मूरत ऐसे आ गई, जैसे उसने अभी अभी उसे देखा हो - उसकी सूनी

1· डॉ· धनराज मांधाने - हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, 187-188

2· उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ·109

3· वही, पृ·190

आँखें, लम्बी - पतली नाक, उसका विवर्ण मुख, उसके पतले पतले होठों का वह जमाव और उसकी दृष्टि की वह हैरान वीरानगी - उसका सब कुछ अपने नन्हें से नन्हें ब्योरे के साथ उसके सामने था ..... ।"[1] अकाल वैधव्य से उत्पन्न यह रूपान्तर कितना दयनीय है । विधवा होने के बाद चेतन से साक्षात्कार होने पर उसने अपने अनुरागहीन भावनाहीन, चेतनाहीन दृष्टि फेर ली थी । इस पर चेतन सोचता है, पति की छत्रछाया में रहनेवाली स्त्री हँस बोल सकती है, और यदि चाहे {पति दुर्बल हो, नारी चलती हुई हो} तो संतान तक पैदा कर सकती है । समाज उसे कुछ न कहेगा, लेकिन विधवा । .....[2]" उपर्युक्त वाक्यों में विधवा के प्रति समाज के दृष्टिकोण पर तीखा व्यंग्य है । प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की विधवा नारियों में उग्रतारा भी एक है। उग्रतारा राज, उर्मिला, हारको, गोपीचन्द्र की भाभी, विनी आदि विधवाओं ने पुनर्विवाह करके वैधव्य जीवन की विवशताओं से मुक्ति पायी तो भगवतीचरण वर्मा जी के उपन्यास "सामर्थ्य और सीमा" की नायिका छब्बीस वर्ष की विधवा रानी मानकुमारी अंत तक विधवा ही रही । कुन्ती का भी पुनर्विवाह नहीं होता है ।

वेश्यायें

पुरुष की वासना की वेदी पर अर्पित होनेवाली वेश्यायें समाज में पतित समझी जाती हैं । इन की दीन दशा पर श्रीमती महादेवी वर्मा का कथन है, "पुरुष की बर्बरता, रक्त लोलुपता पर बलि होनेवाले युद्धवीरों के चाहे स्मारक बनाये जावें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटनेवाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रखे, परन्तु पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटनेवाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - शहर में घूमता आइना, पृ.388
2. उपेन्द्र नाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.197

पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझनेवाली वासनाग्नि में हंसते-हंसते अपने जीवन को तिल-तिल जलानेवाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूंद आंसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा । न समझना ही अधिक स्वाभाविक था, क्योंकि इन्हें सहानुभूति का पात्र समझना, इनकी दयनीय स्थिति तथा इन के कठिन बलिदान का मूल्य आँकना पुरुष को उसकी दुर्बलता का स्मरण करा देता है । चाहे कभी किसी स्वर्णयुग में बुद्ध से अम्बपाली को करुणा की भीख मिल गई हो, चाहे कभी ईसा से किसी पतिता ने अक्षय सहानुभूति माँग ली हो, परन्तु साधारणतः समाज से ऐसी स्त्रियों को असीम घृणा और घोर तिरस्कार ही प्राप्त हुआ ।[1]" प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में भी कुछ वेश्यायें चित्रित हैं । यशपाल के उपन्यास "दिव्या" में दिव्या के मारिश से इस कथन पर कि वेश्या स्वतंत्र नारी है । मारिश ने अपने तर्कों से साबित किया कि वेश्या केवल भोग्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं[2] । कला कुशल वेश्याओं को धन और आदर मिलने पर भी जीवन में संतोष प्राप्त नहीं होता । "दिव्या" उपन्यास की राजनर्तकी मल्लिका को ही लें । दिव्या को अपनी उत्तराधिकारिणी बनाने की उसकी अभिलाषा सफल न हुई । "मद्र में द्विजकन्या

---

1. महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ.98

2. ".... यदि कुलवधू एक पुरुष की भोग्य है तो जनपदकल्याणी वेश्या सम्पूर्ण जनपद और समाज की तृप्ति की साधन है । वह जन को कामना का संकेत देती है और उस के मूल्य में जीवन के भोगों का साधन केवल धन पाती है इसके अतिरिक्त और क्या ? वेश्या जीवन की गति अर्थात् "काम" का उत्तेजक साधन है परन्तु परिणाम में स्वयं उसका काम अर्थहीन और वंचित रहता है । उस की कला दूसरों के जीवन में वासना की पूर्ति के अनुष्ठान के रूप में उपयोगी है परन्तु वह स्वयं क्या पाती है ? वह काम के यज्ञ का साधन मात्र है । वह स्वयं पूर्ति के हविश्य से वंचित है । उस की स्वतंत्रता का भोग जन करता है, वह स्वयं नहीं । वह केवल वंचना पाती है ।"

   - यशपाल - दिव्या, पृ.156

वेश्या के आसन पर बैठकर, जन के लिए भोग्य बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती ।[1] भूधर्मा की इस घोषणा से समाज में वेश्या का स्थान हम आसानी से निर्धारित कर सकते हैं । इसी उपन्यास में रत्नप्रभा का जीवनभी वेश्याजीवन की समस्याओं से उलझा हुआ है । उपन्यास की नायिका दिव्या को तो अपनी जीवन नदी के एक मोड में एक बार वेश्याजीवन को भी अपनाना पडा । अमृतलाल नागर के उपन्यास "सुहाग के नूपुर" की माधवी वेश्या है जो कुलांगना बनने के प्रयत्न में सफल नहीं होती । शिवानी कृत "कृष्णकली" में पन्ना वेश्या पुत्री होने के कारण वेश्या है, पर उसके चरित्र में कुछ विशेषताएँ हैं । उसकी माँ मुनीर नर्तकी वेश्या थी और नेपाल के राणा की रखैल थी । उसके तीन पुत्रियों में एक है पन्ना । तीनों के पिता अलग अलग हैं । पन्ना के पिता लाट साहब के ए.डी.सी. रोबर्टसन है जिनका व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था । अपने पारम्पर्य के प्रतिकूल पन्ना विद्युतरंजन मजूमदार के अतिरिक्त और किसी से निकट सम्पर्क न रखती थी । उन्हीं से उसे प्रौढावस्था में गर्भ रहता है तो वह संकोचवश किसी से कुछ न कहकर अल्मोडा चली जाती है । रोज़ी (डॉ. पैट्रिक) उसकी सहायता करती है । पन्ना की पुत्री ज़िन्दा न रही तो रोज़ी उसकी गोदमें एक बच्ची को रखती है जिस के माँ-बाप कोढी हैं और जिसके जन्म के अवसर पर ही माँ उसे मार डालनेवाली थी । पन्ना ने उस बच्ची-कृष्णकली - को पाला-पोसा और उसके जन्म के रहस्य को गुप्त रखा । कृष्णकली बडी हुई तो पन्ना ने उसे "पीली कोठी" के घृणित वातावरण से दूर रखना चाहा । उसे कान्वेन्द के बोर्डिंग स्कूल में भेजा । अपनी जन्मजात दुर्वासनाओं के कारण कली पन्ना को संतोष न दे सकी । पन्ना के प्रति उसका व्यवहार रूखा था । एक दिन विद्युतरंजन मजूमदार से पन्ना ने कली के जन्म की कथा कही तो कली ने सब बातें छिपकर सुन लीं । वह पन्ना को छोडकर कलकत्ता चली गयी । अंत में पन्ना के सान्निध्य में ही

---

1. यशपाल - दिव्या, पृ.209

कैन्सरग्रस्त कली की मृत्यु हुई । इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्ना ऐसी वेश्या है जो अपनी कुलवृत्ति के प्रति उदासीन रहने पर भी अपनी पालित पुत्री को ठीक राह पर न ला सकी ।

कलानिपुण नारियाँ

हमने जिन वेश्याओं का ज़िक्र किया था, वे कलानिपुण भी थीं । उसी प्रकार संगीत, नृत्य आदि विविध कलाओं की उपासना करनेवाली अनेक नारियाँ प्राचीनकाल से ही हमारे समाज में हैं । हिन्दी उपन्यास-साहित्य में भी ऐसे नारीपात्रों की कमी नहीं, विशेषकर प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में । सिर्फ संगीत, नृत्य आदि में ही नहीं, अभिनय, चित्रकला, पेंटिंग आदि कला की विविध विधाओं में कुशल नारीपात्र इस युग में हैं । नर्तकियों में राजनर्तकियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं । उदाहरण केलिए यशपाल के उपन्यास "दिव्या" में ही मल्लिका, दिव्या, रत्नप्रभा आदि राजनर्तकियों का चरित्रांकन किया गया है । इन में मल्लिका का स्थान सर्वोपरि है ।

सागल की राजनर्तकी कला की अधिष्ठात्री देवी मल्लिका की युवा पुत्री रुचिरा की अकाल मृत्यु हो गयी थी । इस शोक से अधीर होकर देवी बहुत समय तक कला और समाज से विरक्त रहीं । मल्लिका के इस शोक के संबंध में धर्मस्थ देवशर्मा दिव्या से कहते हैं, "सन्तति का शोक मनुष्य को निस्सत्व कर देता है[1] ।" सम्पूर्ण सागर नगरी मल्लिका के शोक से दो वर्ष तक शोकातुर और नीरस रहकर रात्रि में दीपहीन प्रदेश की भाँति निष्प्रभ बनी रही । देवी मल्लिका ने वीणापाणि देवी सरस्वती के प्रति कर्तव्यनिष्ठा से अपना असह्य शोक सहकर मन को वश किया । उन्होंने निश्चय किया, चैत्र पूर्णिमा की संध्या मधुपर्व उत्सव के समय समाज में पुनः प्रवेश करेंगी ।

1. यशपाल - दिव्या, पृ.28

मधुपर्व उत्सव में मल्लिका का स्वागत जिस ढंग से किया गया था, उससे स्पष्ट है कि मद्र में राजनर्तकी का स्थान कितना महत्वपूर्ण था । उसके आगमन पर वेदी के सोपान पर खडे चारण ने तूर्यनाद करके घोषणा की "कला की अधिष्ठात्री, नगरश्री, राजनर्तकी देवी मल्लिका सभास्थल में पधार रही है[1] । उसके रथ के आगे-पीछे दीपदण्डधारी अश्वारोही थे । रथ जब जन प्रवाह में आ पहुँचा तो सब ओर से कला की देवी नगरश्री देवी मल्लिका का जयघोष होने लगा । यत्न से रखे पुष्पों और मालाओं की वर्षा मल्लिका के रथ पर होने लगी । अधिकांश पुष्प और मालायें रथ को स्पर्श कर मार्ग पर गिर जाते । कुछ पुष्प और मालायें रथ के भीतर पहुँच पुष्पों के अंबार पर गिर विफल कर नीचे आ जाते । मल्लिका कृतज्ञतापूर्ण नेत्रों से कर जोडे, स्मित वदन, मस्तक नवा, दृष्टि की पहुँच तक फैले उद्वेलित नरमुंडों के सागर का अभिवादन कर रही थी । मण्डप में प्रवेश कर नर्तकी ने विशिष्ट पुरुषों का आदर ग्रहण किया और गणपति के समीप आसन ग्रहण किया और गणपति के समीप आसन पर बैठ गयी । अन्यत्र भी राजनर्तकी के सम्मान पूर्ण स्थान का उल्लेख यों मिलता है - राज्य सत्ता का चिह्न छत्र और चंवर धारण करने का अधिकार मद्र के कुल गणराज्य में केवल गणपति को था अथवा गणराज्य द्वारा सम्मानित कला की अधिष्ठात्री जनपद कल्याणी नगरश्री राजनर्तकी को[2] ।" मधुपर्व उत्सव में मेघराज मघवा की भूमिका में और राजहंस की भूमिका में वेदी पर नृत्य करके मल्लिका ने सब को मंत्र मुग्ध कर दिया ।

मल्लिका का शिष्य-वात्सल्य भी हृदयहारी है । अपनी शिष्याओं को नृत्य के पाठ पढाने में वह अतीव तत्पर है । मधुपर्व उत्सव के एक पक्ष पूर्व ही वह दिव्या को मराली का आत्मसमर्पण नृत्य की मुद्राओं और वादकों को संगीत की मूर्च्छनाओं का अभ्यास करवा रही थी । संध्या समय समाज के प्रयोजन से प्रसाधन में व्यग्र मल्लिका को

---

1. यशपाल - दिव्या, पृ.11
2. वही, पृ.174

दासी के सिंहद्वार पर धर्मस्थ की प्रपौत्री दिव्या का रथ पहुँचने का समाचार दिया । व्यग्रता में सब छोड़कर मल्लिका नंगे पाँव बछड़े केलिए अधीर गाय की भाँति सिंहद्वार की ओर चल पड़ी । दिव्या को आधे मार्ग में पाकर अंक में ले उसका सिर सूँघ, स्नेह से उसकी चिबुक उठा" मल्लिका ने उपलम्भ दिया - "वत्से, इतने दिन तुम क्या मुझे भूल गयी थी ? रुचिरा मुझे वियोग दे गयी तो क्या तुम भी भूलजाओगी ?" मल्लिका ने अपने सजल नेत्र पोंछ दिव्या का मुख ध्यान से देखकर प्रश्न किया, "हाय, तुम निस्तेज क्यों हो रही हो ? स्वस्थ हो न ? अश्वनी कुमार तुम्हारी रक्षा करे । तुम कुछ चिंतित हो ? मधुपर्व से चौथा पक्ष बीत गया । तुमने अपनी बूढ़ी होती माँ की सुध न ली[1] । मल्लिका एक ही श्वास में सब कुछ कह गयी । इस स्नेहातिरेक से विभोर होकर दिव्या कुछ उत्तर न दे पाई । दिव्या को अंक में लिए अपने कक्ष की ओर लौटती हुई मल्लिका अब भी अपना उपालम्भ कहे जा रही थी - "पुत्री, तुम्हीं मेरी आशा हो, मेरी आत्मा की सन्तति । दैव ने मेरी रुचिरा को छीन लिया । तुम्हें देखकर मैं उसे भूल रही थी और तुम इतनी निष्ठुर हो । वत्से, मेरा न सही, वीणापाणि देवी सरस्वती के कोप का भय करो । पुत्री, कितने जन्म की तपस्या से देवी अलौकिक प्रतिभा का वरदान देती है । उसकी उपेक्षा और निरादर करने से देवी के अभिशाप का पात्र बनना पड़ता है । देवी ने तुम्हें अपना अंश अर्पित किया है[2] ।" उस दिन के नृत्य में दिव्या तन्मय न हो सकी तो मल्लिका का उपदेश है - "पुत्री, अनभ्यास विद्या का शत्रु है[3] ।" छः वर्ष, चार मास और छः दिवस के व्यवधान के पश्चात् सागल आये रुद्रधीर ने देवी मल्लिका को क्लान्त और निरुत्साह देखा । उसने सुना था कि धर्मस्थ की प्रपौत्री के उपरान्त मादुलिका पर ही देवी की विशेष कृपा थी । इस पर मल्लिका का कथन है - "मादुलिका कला की इस

---

1. यशपाल - दिव्या, पृ.37
2. वही, पृ.37
3. वही, पृ.38

पीठ को जीवित कर सकती थी । कालान्तर में कोई अधिक योग्य सरस्वती की वरद पुत्री उसे और उज्वल कर पाती परन्तु आर्य, मादुलिका में वह संयम और निग्रह नहीं जो कला की साधना का आधार है । सम्भवत: उसका दोष भी न हो [1] ।" उसके अनुसार पृथुसेन की संगति में आने के ही कारण मादुलिका की यह स्थिति हुई । उसने मादुलिका को प्रासाद से बहिष्कृत कर दिया । रुद्रधीर से मल्लिका कहती है, "...... आर्य, अपने हाथों यत्न से पोषण कर, उसे कला के कठिन रहस्यों से अवगत कराकर मादुलिका को यों दूर कर देने का मुझे उतना ही दु:ख है जितना अपने गर्भ की कन्या रुचिरा से वियोग का परन्तु आर्य कला का अनादर मल्लिका सह नहीं सकती [2] ।"

मादुलिका से विरक्त होकर देवी का मन और भी व्यग्र हो उठा । उसे अपने वैभव से मोह न था । वह वैभव उसके विश्वास में कला की अधिष्ठात्री का सम्मान मात्र था । वह स्वयं कला की प्रतिरूप थी इसलिए सम्मान की अधिकारी थी । मल्लिका ने धन और द्रव्य का अर्जन न किया था, अर्जन किया था, कला की सफलता के यश और कीर्ति का । द्रव्य उस यश और कीर्ति का छाया-रूप था । देवी ने यौवन में केवल सन्तान अपनी कला की उत्तराधिकारिणी की आशा से धारण की थी । रूपवती कन्या का वरदान पाकर उन्होंने अपना शरीर देवी सरस्वती को अर्पण कर, कला में शैथिल्य की आशंका से गर्भ न धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली थी । निष्ठुरदेव ने उसकी सन्तान छीन ली परन्तु देवी ने अपनी प्रतिज्ञा भी न की । उसने सोचा - सरस्वती का उत्तराधिकार गर्भ से नहीं मुख से होता है । वैसे ही उसका उत्तराधिकार गर्भ की सन्तान में नहीं, आत्मा की सन्तान - गोपा तक्षशिला में, सुलेखा मगध में और रत्नप्रभा मधुरापुरी में उनकी कीर्तिध्वजा

1· यशपाल - दिव्या, पृ·184

2· वही, पृ·185

फहरा रही थी । अपनी शिष्या रत्नप्रभा की शिष्या अंशुमाला की कीर्ति सुनकर उसने उसे भिक्षा में मांगा । भिक्षा में अंशुमाला को पाकर उसे दिव्या जानकर उसे छाती से लगाकर मल्लिका क्रन्दन कर उठी - "दिव्या, दिव्या ! मेरी पुत्री, मेरी आत्मा की सन्तान ![1]" यद्यपि अपनी कलापीठ की उत्तराधिकारिणी को खोजने में वह सफल हुई, तो भी अभिजात वर्ग के प्रतिषेध के कारण उसकी मनोकामना पूरी न हुई । आचार्य भूधर्मा की ललकार सुनकर और अभिजात वर्ग की पंक्तियों में नरमुंडों के ऊपर कुछ खड्ग दिखाई देने पर देवी मल्लिका स्तब्ध अवाक निष्पकलंक खड़ी रही । चारों और बढ़ते तुमुल कोलाहल में वह हतज्ञान हो गयी ।

कला की उस उपासिका ने राजनीति में भी भाग लिया। रुद्रधीर ने धर्म की स्थापना और रक्षा केलिए मल्लिका का सहयोग माँगा तो उसने गंभीर स्वर में कहा - "देवकार्य में आर्य की जो आज्ञा हो[2] ।" उनकी मंत्रणा के परिणामस्वरूप ही पृथुसेन को पदच्युत हो धर्म की शरण लेनी पड़ी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनपद कल्याणी राजनर्तकी देवी मल्लिका का चरित्र-चित्रण आद्यन्त उज्वल हुआ है । इसी उपन्यास की नायिका दिव्या और एक अन्य नारीपात्र रत्नप्रभा कुशल नर्तकियाँ हैं । "सुहाग के नूपुर" की माधवी, नर्तकी है तो "अमरबेल" की अंजना गायिका, नर्तकी और अभिनय कुशल है । सुबह के भूले" की गुलबिया {गिरिजाकुमारी} और "मनुष्य के रूप" की सोमा भी अभिनेत्रियाँ है । "मनुष्य के रूप" में गोमती, मणिमाला आदि अभिनेत्रियों का भी उल्लेख है । राजेन्द्र यादव के उपन्यास "शह और मात" की सुजाता अभिनेत्री होने के साथ साथ लेखिका भी है ।

1· यशपाल - दिव्या, पृ·211

2· वही, पृ·186

श्री॰ लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास "खाली कुर्सी की आत्मा" की दिव्यादेवी गायिका और कवयित्री हैं। श्रीमती दिव्या देवी एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थीं। सुन्दर गीत गाती थीं। स्वरों के उत्तम, मध्यम और तबले के सम में उन्हें बार बार यह अनुभव होता कि जीवन को केवल बंधन में बाँधकर रखना श्रीहीनता और कला को अपमानित करना है। यही कारण था कि विवाहित होते हुए भी दिव्यादेवी ने पति-पत्नि के जीवन का बहिष्कार कर दिया था। पान की बेगम की तरह वह सदैव ट्रम्प कार्ड ही बना रहना चाहती थीं। पुरुषों को तुच्छ समझती थीं क्योंकि साधारणतया उन्होंने देखा था कि पुरुष कंठ में कोमल स्वर जाकर कठोर हो जाते थे। स्वरों के कंपन और उनकी मंथर गति जाकरअवरुद्ध हो जाती थी। यही कारण था कि अपनी संगीत विद्या के लिए अनुकूल गीतों की वह एक प्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री भी मानी जाती थीं। अपनी शृंगार रस से परिपूर्ण नायिका भेदों से सुशोभित कोमल कलित ललित पदावलियों पर वह रयाज़ करती थीं।[1]" डॉ॰ सन्तोषी से संबंध-विच्छेद करके सारथी ज्वाला प्रसाद की प्रेमिका बनी इस रहस्यमयी नारी ने मूर्तिकला में भी अपनी कुशलता दर्शायी थी। "पिछले कई वर्षों" से दिव्या देवी ने मिट्टी की मूर्तियाँ बनानी शुरू कर दी है और और इन मूर्तियों में वेदमंत्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठित करने के बाद उन्हें अपने ड्राइंग रूम में रख देती है।[2]" साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में भी अनेक कलानिपुण नारियाँ हैं। नीलिमा, कृष्णकली, पन्ना आदि नर्तकियाँ हैं तो रमेश बक्षी के उपन्यास "वैसाखियोंवाली इमारतें" की मिस वसुधा पेंटिंग में निपुण है। उक्त उपन्यास में अहं की बैसाखियों पर खड़े चार पात्रों में एक है मिस वसुधा। कालेज कला प्रदर्शिनी के अवसर पर उपन्यास के नायक पत्रकार से उसका परिचय होता है। "वसुधा टु लीड द कमिंग जनरेशन ऑफ

---

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा - खाली कुर्सी की आत्मा, पृ॰179
2. वही, पृ॰182

एब्स्ट्रेक्ट पेंटिंग"[1] जैसे अखबारी शीर्षक के अन्तर्गत पत्रकार ने वसुधा की खूब प्रशंसा की तो वसुधा के कलाकार का अहं पुष्ट होता है और वह पत्रकार के निकट सम्पर्क में आती है, पर वह पत्रकार की इच्छा के अनुसार विवाह पूर्व आत्मसमर्पण को तैयार नहीं होती और पत्रकार से मुंह मोड़लेती है ।

दासियाँ

एक ज़माने में स्त्रियों का एक वर्ग था - दासिवर्ग । इन क्रीतदासियों के दयनीय जीवन के बारे में यशपाल के उपन्यास "दिव्या" और "अमिता" में अनेक बातें कही गयी है । "दासियों को विलास के लिए पालने और साधने का कार्य चतुर गणिकायें विशेष विधि से करती थीं । इन बालिकाओं को रूप-रंग और अवयवों को निखारने वाला भोजन दिया जाता था । इनके शरीर को बचपन से ही सुगंधित द्रव्यों के मर्दन और लेप से कोमल, सुडौल और सुवासित बनाया जाता था । बचपन से ही उन्हें संगीत, नृत्य, लोल-लास्य और आकर्षक व्यवहार की शिक्षा दी जाती थी । ये कन्यायें सोलह वर्ष तक किसी पुरुष का स्पर्श नहीं कर सकती थीं । सोलह वर्ष पूर्ण कर लेने पर उन्हें महाराजा की विलास सेवा केलिए प्रस्तुत किया जाता था[2] । दासियों का क्रय-विक्रय करके धन कमानेवालों का एक वर्ग भी है । "दिव्या" उपन्यास का प्रतुल ऐसा दास व्यवसायी है । इन दासियों की हृदय विदारक दशा का परिचय निम्नलिखित वाक्यों से होता है, "इन दासियों का काम केवल गृहसेवा या स्वामी के लिए वृत्ति कमाना न था । वे प्रति अठारह मास पश्चात् संतान उत्पन्न करती थीं । प्रतुल इन

1· रमेश बक्षी - बैसाखियों वाली इमारत, पृ·76

2· यशपाल - अमिता, पृ·54

दासियों को न बेचकर उनकी संतान बेचता था । अभ्यस्त हो जाने के कारण वे दासियां संतान वियोग का दुःख सहज ही सह जाती[1] ।"

"दिव्या" में दिव्या की धाता और पुत्री छाया दासियों की स्वामि-भक्ति की उज्वल प्रतीक है । "धर्मस्थ के प्रासाद में लोग धाता का अपना नाम भूलकर, वत्सल कन्या की धाता को सभी धाता ही पुकारने लगे । दासी ने भी उस नाम को स्वामी कीकन्या के माता के स्थानापन्न मानकर गर्व से धारण किया । दिव्या की माता ने अपनी सन्तान की धात्री की कन्या को अपनी सन्तान की छाया मानकर छाया ही पुकारा और उस का नाम भी छाया ही हो गया[2] ।" प्रासाद छोड़कर जाते समय दिव्या के साथ धाता भी थीं । दिव्या ने उस से कहा "...... मैं वंचिता हूं, किंकर्तव्यविमूढ हूं । नहीं जानती, कहां स्थान पाऊंगी । पथ पर, वीथियों में, वन के वृक्षों के नीचे अथवा आपगा" के जल में ! अम्मा, जाओ ! तुम ने संतान की भांति अपने स्तन से मेरा पालन किया । माता पुत्री को पति के घर केलिए बिदा देती है, वैसे ही मुझे बिदा दो । मेरे पति ने मेरी वंचना की है । अब प्रपितामह और किसी के यहां मेरेलिए स्थान नहीं । .;.... कह नहीं सकती कहां जाऊंगी[3] ।" लेकिन वात्सल्यमयी धाता ने कहा, "............... मेरी अबोध स्वामिनी, तेरी माता ने तुझे मुझे सौंपा था । मेरे कष्ट में तेरी दासी अम्मा तुझे आंचल की ओट लिये तेरे साथ रहेगी[4] ।" दोनों चली जा रही थीं । धाता के पांव में दासी के चिह्न रूप लोहे का कडा देखकर एक वृद्धा जान गयी कि ये स्वामिनी और दासी हैं । उस वृद्धा ने उन्हें बहकाकर आपत्ति में फंसा दिया । दिव्या कोजिस कक्ष में रखा गया, उस कक्ष में धाता को न रखा गया और कमरे के द्वार पर बाहर से ताला लगाया गया । "कक्ष में दिव्या और बाहर धाता के कंठों में चीत्कार उठा । परन्तु स्वयं ही

---

1. यशपाल, दिव्या, पृ.117
2. वही, पृ.31
3. वही, पृ.100
4. वही, पृ.101

उसकी व्यर्थता अनुभव हो जाने से वह नि:शब्द श्वास में बह गया । उसे कौन सुनता ? दोनों के नेत्रों से विवशता के अश्रु बहते रहे[1] ।" दास की गति की स्वामी के साथ माननेवाली उस स्नेहमयी दासी अनंतर दशा के बारे में उपन्यास में कुछ नहीं कहा गया है, पर उसकी अनन्तर दशा का अनुमान पाठक आसानी से लगा सकते हैं । स्वामिनी के हित के लिए सब कुछ करनेवाली इस वफादार दासी का यह करुणाजनक अन्त कठोर से कठोर हृदय को भी पिघलाने वाला है । उसकी पुत्री छाया भी कठिन दण्ड भोगकर असमय में ही इस दुनिया से चल बसी । दारा के रूप में दिव्या भी कुछ काल के लिए दासी बनकर अमानुषिक यातनाओं की शिकार बनी । "अमिता" में प्रौढा दासी वापी और पुत्री हिता इसी प्रकार की क्रीत दासियाँ हैं । "कलिंग में कुरु की गौरवर्ण दासियों का मूल्य अधिक मिलता था । राजप्रासाद में विलास दासियों का पालन करनेवाली गणिका ने वापी के वर्ण, नख-शिख और उसकी गोद की बेटी के लक्षण देखकर उसे खरीद लिया । हिता और मोद का प्रेमसंबंध जानकर वापी अपनी बेटी हिता को उपदेश देती है, "प्रेम और प्रणय गणिकाओं और वेश्याओं के विनोद होते हैं । कुलकन्याओं को विवाह में जिसे सौंप दिया जाए, उसी से प्रेम करना होता है । दासी को जो खरीद ले, उसी की सेवा करना दासी का धर्म है । दासी की बेटी का काम आज्ञापालन और सेवा है, प्रेम नहीं । तोता मनुष्य की तरह बोलता है परन्तु मनुष्य नहीं बन जाता । दास दासी नागरिक नरनारियों की भाँति इच्छा तो करते हैं परन्तु उनकी इच्छा क्या पूर्ण होती है ? । ×× ×× ××[2] ।" "महारानी और राजकुमारी की कृपापात्र होने पर भी कभी न कभी तो दंडक के हाथ पडना ही होगा । दासी को मान शोभा नहीं देता क्योंकि उसका अभिमान निभ नहीं सकता । सभी लड़कियों की माताओं की तरह वापी को भी विश्वास था कि उस की बेटी की आयु बीस वर्ष की हो जाने पर भी वह

1· यशपाल - दिव्या, विद्यार्थी संस्करण 1987, पृ·110

2· यशपाल - अमिता, पृ·53

भोली थी[1]।" हिता मोद से मिलने गयी तो वापी अत्यधिक विवश हो गयी। "राजकुमारी उसके प्राण लेकर, उस के प्राणों का खिलौना बनाकर भी बहल जाती तो वह प्राण दे देती। चाहती थी उसकी अल्हड बेटी पर आया संकट किसी प्रकार टल जाए, परन्तु अमिता ऊँचे स्वर में हिता को पुकारकर रोने लगी[2]।" बेटी की व्याकुलता से वापी को कभी कभी क्रोध आता था और कभीकभी वह उसकी अवस्था पर चिन्तित होती थी। हिता ने जब महारानी के मन में माँ की स्मृति जगायी तो वापी का मन आशंका और दुश्चिन्ता में डुब कियाँ लेने लगा। हिता को निर्भय और दृढ निश्चय से ग्रीवा उठाये चलते देख माँ का हृदय आशंका से बिंध बिंधकर आँखों में आँसू आ जाते थे[3]।" राजपुरुषों द्वारा मोद को पकडे जाने पर हिता की स्थिति देख उस मातृहृदय की लाचारी देखिए "वापी जानती थी - पीडा हिता के सिर में नहीं, हृदय में थी। उस का रोम-रोम भय से काँप रहा था। दासी को अपनी इच्छा से रोने का क्या अधिकार परन्तु बेटी को कैसे समझाती[4]?" हिता अमिता को शीष दुर्ग की ओर ले गयी थी; यह रहस्य न जानकर दोनों को खोजने पर पता न लगा तो वापी मूर्च्छित होकर गिर पडी। "उसे औषध सुंघाकर सचेत किया गया और यातना का भय दिखाकर उस से रहस्य पूछा गया यातना भी दी गई[5]।" दासी जीवन की यह बेबसी कितनी करुणापूर्ण है। हिता की हालत भी इससे बेहतर नहीं यद्यपि वह साधारण दासियों की तुलना में अपने आप को विशेष समझती थी। महाराज की सेवा में लगी हुई हिता का चित्र देखिए - "महाराज नेत्रों और स्पर्श द्वारा हिता के शरीर से पायी उत्तेजना को चरितार्थ न कर सकते थे। हिता सहमी हुई अपने आपको अर्पण किये, महाराज की इच्छा की प्रतीक्षा में खडी खडी थक जाती थी[6]।" अपने यौवन और सौन्दर्य पर गर्व होने पर भी

---

1. यशपाल - अमिता, पृ.69
2. वही, पृ.70
3. वही, पृ.154
4. वही, पृ.155
5. वही, पृ.184
6. वही, पृ.55

उसका हृदय आशंकाकुल था । अपने अनुभव से[1] पुरुषों के प्रति उसके मन में विरक्ति और भ्रम समा गया था । माता के लाख समझाने पर भी मोद के प्रति उसके अनुराग में कमी नहीं आयी थी । कई दिन उसे देखे बिना रहना उसे असह्य था । सेठ सौमित्र ने उससे काम निकालने के उद्देश्य से उसे रत्नजटित कंकन दिया तो वह पूछती है, "आर्य, दासी को तो स्वर्ण पाने का और धारण करने का अधिकार नहीं है । यह दासी के किस प्रयोजन का है[2] ?" अमिता उसे इतनी चाहती थी कि हिता की बाँह का स्पर्श अमिता के लिए रेशम के कोमल तकिये की अपेक्षा भी अधिक सांत्वनादायक था[3] ।" हिता अमिता के मन में माँ की स्मृति जगाकर उसे शीघ्र दुर्ग की ओर ले गयी । तब "उसे जान पड रहा था, वह स्वयं ही मृत्यु की खाई में कूदकर अतल की ओर गिरी जा रही है[4] ।" इसी उपन्यास की मौसी क्रीतदासी होकर भी अपने चातुर्य के कारण स्वामी का आदर पाती थी । सेठ चारुक की मृत्यु के पश्चात् मौसी ने आभूषण और शृंगार त्याग दिया था । वह विधवा कुलनारियों की भाँति केवल श्वेत वस्त्र पहनने लगी थी[5] ।"

वीरांगनायें

इतिहास साक्षी है कि हर देश में हर काल में वीरांगनायें हुई है । किसी ने युद्धक्षेत्र में वीरता दिखाई तो किसी ने सामाजिक या राजनैतिक अत्याचारों के विरुद्ध जूझने में । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में श्री·वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास " झाँसी की रानी " की नायिका लक्ष्मीबाई वीरता की

1· यशपाल - अमिता, पृ·56

2· वही, पृ·126

3· वही, पृ·134

4· वही, पृ·179

5· वही, पृ·119

प्रतिमूर्ति है । वीरता में उसकी बराबरी करने लायक अन्य नारीपात्र नहीं के बराबर है । जिस समाज में उनका जन्म हुआ था, उसी में होकर उनको काम करना था, परन्तु उस समाज की हथकडियों और बेडियों की उन्होंने पूजा नहीं की । वे अपने युग से आगे निकल गई थीं, किन्तु उन्होंने अपने युग और समाज को साथ ले चलने का, भरसक प्रयत्न किया । झाँसी में विशेषत: विन्ध्यखण्ड में साधारणतया स्त्री की अपेक्षाकृत स्वतंत्रता और नारीत्व की स्वस्थता लक्ष्मीबाई के नाम के साथ बहुत संबद्ध है[1] ।" भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उन्होंने कर्म किया फल तभी न मिला तो भी रानी मरणोपरान्त भी कर्म को जारी रखने की प्रेरणा देशवासियों को मिली और अंतत: लक्ष्य प्राप्ति भी हुई । सुन्दर, मुन्दर, काशी आदि वीरांगनाओं का सहयोग भी रानी को मिला था । लक्ष्मी बाईके वीर चरित्र के चित्रण के बारे में डॉ॰ सुरेश सिन्हा का मत है, "जिस समय इस उपन्यास की रचना हुई थी उस समय तक भारतीय नारियों में काफी आत्मपतन हो चुका था, और वे पश्चिमी रंग में अपने को पूर्णतया रंगती जा रही थीं । भारत अभी भी दासता की शृंखलाओं से मुक्त नहीं हो पाया था । ऐसी अवस्था में नारियों के नैतिक उत्थान की दृष्टि से एक वीर चरित्र की आवश्यकता का अनुभव कर ही लेखक ने लक्ष्मीबाई का चित्रण किया है, जिस में उसे पर्याप्त मात्रा में सफलता प्राप्त हुई[2] ।" अकाल वैधव्य भी उसकी कर्मोत्सुकता में प्रतिबंध नहीं था । वृन्दावनलाल वर्मा जी के ही एक अन्य उपन्यास "मृगनयनी" की नायिका मृगनयनी अथवा निन्नी में भी वीरता कूट कूटकर भरी है । राई ग्राम के प्रकृतिरमणीय खुले वातावरण में पली निन्नी गूजर कुल की दरिद्र कृषक कन्या थी । "शारीरिक बल और परम सौन्दर्य के लिए ब्याह से पहले ही प्रसिद्ध हो गयी थी[3] ।"

1· वृन्दावनलाल वर्मा - झाँसी की रानी, पृ·331

2· डॉ· सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ·212

3· वृन्दावनलाल वर्मा " मृगनयनी, पृ·3

इस प्रकार की वीरांगनाओं के चित्रण में विशेष कुशल श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने उपन्यास "अमरबेल" में एक भिन्न प्रकार की वीरांगना की सृष्टि की है । वह है टहलराम की माँ घाटीवाली । उसका मायका घाटी नाम के गाँव में था । इसलिए वह घाटीवाली कहलाती थी । आयु में उतरी हुई और बात में तेज़ । जब कुछ कहने पर आ जाय तो न संकोच करे और न लिहाज़ ।"[1] कठिन परिश्रम करके उसने अपने पुत्र को बड़ा किया था । बीज देने में उसकी ईमानदारी सराहनीय थी । लेनेवाले उसके साफ व्यवहार से संतुष्ट थे[2]। टहल से उसका यह कथन कि "साँप को मारो, नहीं तो दाँत उसके फिर भी तोड दो[3]!" उसकी वीरता का प्रमाण है । सहकारी आन्दोलन में भाग लेने में भी उसने बडा उत्साह दिखाया[4]। दीपों से लक्ष्मीजी के आवाहन की बात पर टहल के इस कथन पर कि "दीपों की सजावट से क्या होता है, पसीने की बूँदों से ही लक्ष्मी प्रसन्न हो सकती हैं", घाटीवाली कहती है, "पसीने की बूँदों से लक्ष्मीजी के चरण प्रसन्न हो सकते हैं, पर मन प्रसन्न होगा ज्योति के उजियाले से ही[5]।" हरकों की दुरवस्था पर आँसू बहानेवाली घाटीवाली अपने हृदय की उदारता के कारण सब के आदर की पात्री बनती है । कालीसिंह डाकू के द्वारा धरनीधर, टहलराम आदि पर आक्रमण हुआ तो घाटीवाली ने अतिशय साहस दिखाकर विपत्ति का सामना किया । घाटीवाली ने चुपचाप टहल को जगाया और जलधरे से आँगन की छपरी पर, छपरी पर से पौर की पलानी पर जा पहुँची । सावधानी से झुककर उसने जो कुछ देखा, उससे एक क्षण के लिए उसके हाथ पैर ढीले हो गये । टहल उसके पीछे आया । घाटीवाली का साहस इकट्ठा हुआ । समझने में देर नहीं लगी कि कुछ चोर चढ आने का प्रयत्न कर रहे हैं । उसने उनके हथियार नहीं देख पाये ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ·115

2· वही, पृ·115-116

3· वही, पृ·117

4· वही, पृ·118

5· वही, पृ·121

घाटीवाली ने खपड़ों की दनादन मार शुरू कर दी । बिना निशाना के निशाने बैठे । जिनके माथे, नाक, कंधे या पीठ पर पड़े उनके मुँह से चीख और कराह निकली और भद भद गिरने या भागने का शब्द हुआ । टइल ने अपनी माँ का अनुसरण किया और उस से भी अधिक खपडे बरसाये[1] ।" बुद्धि, धैर्य, साहस और वीरता का कैसा अद्‌भुत सामंजस्य है । इस संघर्ष में टइल के घायल होने पर उसके व्यथित हृदय के उद्‌गार कितने हृदयविदारक हैं[2] ।" विधवा हरको और टहल का विवाह करा के उसने अपनी हृदय विशालता का परिचय दिया । श्री॰ रांगेय राघव के उपन्यास "कब तक पुकारूँ" की करनटनियाँ प्यारी और कजरी ने अत्याचारियों की हत्या करके वीरता का ही प्रदर्शन किया ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के नारीपात्रों के विविध रूप

नारी के विविध रूप होते हैं । पुत्री, बहन, पत्नी, बहू, देवरानी, भाभी, माँ, सास, दादी, आदि ऐसे रूप हैं । प्रत्येक नारी समयानुसार ऐसे विविध रूपों में से होकर गुज़रती है । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के ऐसे नारी रूपों का विश्लेषण यहाँ किया जाता है ।

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ·281

2· वही, पृ·283

पुत्री

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी उपन्यास "दिव्या" की नायिका दिव्या धर्मस्थ महापण्डित देवशर्मा की प्रपौत्री है । देवशर्मा के अपार वात्सल्य के बदले इस प्रपौत्री ने परिस्थिति वश ही सही, दारुण दुःख ही दिया, वह उन के जीवन के ही अंत का कारण बनी । "गुनाहों का देवता" में डॉ॰ शुक्ला की मातृविहीना इकलौती बेटी पिता की इच्छा के अनुसार विवाह करके सुपुत्री होने का प्रमाण तो दिया, लेकिन वह स्वयं संतुष्ट न हो सकी । विवाहोपरांत उसकी सूरत देखकर दुःखी हो डाक्टर ने चन्दर से कहा, "...... सुधा का विवाह कितनी अच्छी जगह किया था, मगर सुधा पीली पड गई है । कितना दुःख हुआ देखकर । .....[1]" "दादा कॉमरेड" की शैलबाला ने अपनी उच्छृंखलता और विवाह के बिना गर्भ धारण से पिता को कितना दुःख पहुँचाया । "झूठा सच" की मनोरमा ने भी अपने विवाह के संबंध में माँ की सारी आशाओं को विफल किया । "सुबह के भूले" की गुलबिया का व्यवहार माता झमिया के लिए वेदनाजनक था, लेकिन अंत में गुलबिया में मानसिक परिवर्तन हुआ और उस के मन में मातृस्नेह पुनः उमड पडा । "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना" और "एक नन्ही किन्दील" चन्दा के आदर्श चित्रण से आलोकित हैं, एक आदर्श पुत्री के रूप में भी उसका अंकन किया गया है । "पंचपन खम्भे लाल दीवारें" की नायिका सुषमा ने तो अपने व्यक्तिगत सन्तोष को तिलांजली देकर भी अपने पुत्री रूप को उज्वल किया है । लेकिन "रुकोगी नही, ... राधिका ?" की नायिका राधिका, जो माता की मृत्यु के बाद पिता को ही सब कुछ समझती थी, पिता के दूसरे विवाह के बाद उन्हें एक के बाद एक आघात देने पर तुल जाती है ।

---

1. डॉ॰ धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ॰278

बहन

"डॉ॰ शेफाली" उपन्यास में डॉ॰ शेफाली और शुभ्रा यद्यपि सगी बहनें नहीं हैं तो भी उन दोनों का आपसी स्नेह सगी बहनों का सा है। शुभ्रा एक बंगाली लड़की है। युद्ध में घायल होकर उसके भाई की मृत्यु हुई थी। बंगाल के अकाल से पीडित हो उस के परिवार के बाकी सदस्य भी इस लोक से चल बसे। सिर्फ शुभ्रा जीवित रही। वह पहले लडकियों के व्यापारियों के चंगुल में पड गई। उस नरक से भागकर डॉ॰ शेफाली की शरण में आई। शेफाली उसे अपनी छोटी बहन मानती थी। शुभ्रा कालेज की छात्रा बन गयी। लेकिन उसके मन का दुःख दूर न हुआ था। एक दिन उसके विष खाया। शेफाली के प्रयत्न से वह बच गयी, पर विष के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हुई। "अठारह वर्ष की इस लड़की को शेफाली से इतना स्नेह हो गया है कि वह इसे अपना सर्वस्व समझती है। बहुत दिनों तक शेफाली को वह अपनी स्वामिनी समझती रही, परन्तु शेफाली के व्यवहार ने उसे उसकी बहन बनने को बाध्य कर दिया। शेफाली के ही अनुरोध पर उसने संगीत का अभ्यास प्रारंभ किया। जिस समय रात को शुभ्रा सितार लेकर गाती है, उस समय शेफाली चित्र बनाती है[1]। क्रांति की ओर आकृष्ट वह सहिष्णु लड़की शादी को झंझट मानती है[2]। शेफाली का प्राणनाथ से विवाह निश्चय होने पर राममोहन ने कानून की समस्या उठायी तो शेफाली रातों रात शुभ्रा को साथ लेकर भाग गयी। "वे जा रही थी" अपने चारों कदमों से रूढियों को कुचलती, पुराना छोडती, नया नापती - हर नये मोड पर[3]।"

1· डॉ॰ शेफाली - उदयशंकर भट्ट, पृ·26

2· "आखिर मेरे जीने का उद्देश्य और
मैं ब्याह जैसे झंझट में नहीं पड़ूंगी।
"डॉ.शेफाली" - उदयशंकर भट्ट, पृ·214

3· वही, पृ·228

इस प्रकार उपन्यास के अंत तक वे दोनों आदर्श बहनें ही रहीं। सारा "आकाश" में नायक समर की बहन मुन्नी एक ओर बहन के रूप में समर के हित की कांक्षा रखती है तो दूसरी ओर ननद के रूप में अपनी भाभी का पक्ष लेकर भैया-भाभी के आपसी मन मुटाव को दूर करने का यत्न करती है। इस प्रकार उसका बहन - रूप साधारण है तो ननद का रूप असाधारण। अंधेरे बन्द कमरे की नायिका नीलिमा की बहन शुक्ला का बहन-रूप भी ध्यान देने योग्य है। नीलिमा और शुक्ला यद्यपि बहनें हैं, तो भी दोनों की प्रकृति में भिन्नता है। नीलिमा की बौद्धिकता उसे पुरुष के अनुशासन में रहने नहीं देती तो शुक्ला की स्त्री सहज कोमलता उसे पुरुष के अनुशासन को पसन्द करने की प्रेरणा देती है। इस अनुशासनप्रिय सुन्दर लड़की पर बहनोई हरबंस आकृष्ट है। शुक्ला भी अपने "हरबंस भापाजी" को चाहती है। वह जीवन भार्गव, शिवमोहन, सुरजीत, मधुसूदन आदि को सम्मान की दृष्टि से देखती है क्योंकि उसके भापाजी इन व्यक्तियों की प्रशंसा करते हैं। लेकिन हरबंस उसके इस निष्कपट व्यवहार को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है। हरबंस के विदेश चले जाने पर शुक्ला सुरजीत से विवाह कर लेती है तो हरबंस उन की तरफ से मुँह मोड़ लेता है। लेकिन शुक्ला हमेशा अपने "भापाजी" का ध्यान रखती है। इस के बारे में नीलिमा मधुसूदन से कहती है, "इस के हरबंस भापाजी मुझ पर खीझते रहते थे कि मैं उनकी कमीज़ों के बटन वक्त पर लगाकर नहीं रखती, यह नहीं करती, वह नहीं करती। इसलिए उनके ये सब छोटे-मोटे काम अब इसने अपने ऊपर ले रखे हैं और उनकी गैरहाज़िरी में आकर चुपचाप सब कर जाती है। इस के हरबंस भापाजी को किसी तरह की तकलीफ हो और वे खीझते रहें, यह इसे बर्दाश्त नहीं।"[1] नीलिमा की अनुपस्थिति में घर का सारा काम वही संभालती है।

---

1. अंधेरे बन्द कमरे, पृ॰27।

मधुसूदन से उसका कथन है, "मैं सावित्री दीदी को और हर चीज़ के लिए माफ कर सकती हूँ मगर आज भापाजी के पास न आने केलिए कभी माफ नहीं कर सकती। इसका तो मतलब है कि उनके दिल में ।[1]" नीलिमा की ज़िद के बारे में उसका कहना है, "इस से किसी का नुकसान होगा तो उन्हीं का होगा। भापाजी की देखभाल तो किसी न किसी तरह हो ही जायगी, वह सारी उम्र बैठकर पछताती रहेगी। मैं ने भी सोच लिया है कि न तो अब खुद ही उन्हें बुलाने जाऊँगी, और न ही किसी और को भेजूँगी। उन्हें अकेली रहना है, तो रहें अकेली और अगर किसी और के साथ घर बसाना है, तो ......[2]।" उसका विश्वास है कि नीलिमा भापाजी के साथ रहकर सुखी नहीं रह सकी तो सुख पाना उनके लिए बदा ही नहीं है। वे ज़िन्दगी भर एक मृगतृष्णा के पीछे भटकती रहेंगी और इसी तरह छटपटाती रहेंगी[3]।" यद्यपि हरबंस ने शुक्ला से बोलना बन्द किया था, तो भी उसकी यह मूक सेवा हरबंस को अत्यधिक प्रभावित करती है मधुसूदन से हरबंस का कथन इस का प्रमाण है[4]। उसने यहाँ तक कहा कि "मगर मुझे महसूस होता था कि जो चीज़ मुझे गिरने से बचाये हुए हैं, वह शराब नहीं है, एक ऐसा हाथ है जो छुए बिना मुझे कसकर पकड़े हुए हैं। मुझे मन में एक आभार का अनुभव हो रहा था और उस अनुभव से मुझे कुछ बुरा भी लग रहा था। मैं अनुभव से बचना चाहता था, मगर ......[5]।" वह मधुसूदन से रात को भापाजी के पास रहने की प्रार्थना करती है। हरबंस को लगा कि अब यह घर घर है और यहाँ जो जैसे होना चाहिए, वैसे हो रहा है[6]। शुक्ला के व्यवहार से हरबंस को डर भी लगता है कि अगर मैं अकेला घर में रहा और यह इसी तरह सब कुछ करती रही,

---

1· मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, पृ·514
2· वही, पृ·515
3· वही, पृ·515
4· वही, पृ·519
5· वही, पृ·519-520
6· वही, पृ·521

तो न जाने ..... ।" अपनी दीदी की भलाई चाहनेवाली और अपने बहनोई की निस्वार्थ सेवा करनेवाली बहन के रूप में शुक्ला उपन्यासकार की अनोखी सृष्टि है ।

पत्नी

प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासों में पत्नी के आदर्श और यथार्थ दोनों रूप प्रकट होते हैं । आदर्श रूप में वह अपने सच्चा स्नेह, निस्वार्थ सेवाभाव और अतिशय सहिष्णुता से जीवन में सफलता प्राप्त करती है और समस्त परिवार के लिए कल्याणमयी सिद्ध होती है, यथार्थ रूप में वह पत्नीत्व का दुर्वह भार बहन करती हुई जीवन भर घुटती रहती है या पत्नीत्व के आदर्श को ठुकरा देती है या आत्महत्या करके जीवन की यातनाओं से सदा के लिए मुक्त होती है। "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना" और एक नन्हीं किन्दील" की नायिका चन्दा, उसके पति चेतन की माँ लाजवती, "एक नन्हीं किन्दील" में चन्दा की माँ, "सुहाग के नूपुर" की कन्नगी, "अमर बेल" की राजदुलारी, "नदी फिर बह चली" की परबतिया आदि नारीपात्रों में पत्नी का आदर्श रूप दर्शनीय है । लाजवती में हम भारतीय पत्नी का परम्परागत रूप ही देखते हैं । अपने पति के क्रूर व्यवहार से उसे ज़रा भी असन्तोष नहीं । वह इस जन्म के कष्टों को पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझती है । सुबह खाना खाकर अपने पति को खिला-पिलाकर उन्हें काम पर भेजकर, बाहर से उनके ताला लगा देने पर भी अन्दर से कुण्डी लगाकर, वह चक्की के पास आ बैठती और दूसरे दिन के लिए आटा पीसती । कभी दायें, कभी बायें

---

1. मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, पृ.527

और कभी दोनों हाथों से चक्की के दस्ते को घुमाते हुए वह मीठे, तरल, लगभग आर्द्र स्वर से गाया भी करती थी[1]।" "चक्की के बाद प्राय: वह चर्खा ले बैठती और अपने समस्त एकांत के अभाव को दु:ख को कात-कात कर टोकरी में बन्द कर देती[2]।" उसके जीवन में ऐसे बहुत से दिन आये जब वह खाना पकाकर अपने पति की प्रतीक्षा में भूखी-प्यासी बैठी रही और वे रात रात भर नहीं आये । उपवास, भूख और उनीन्दे से थकी रहने पर पति की आँखों में वासना और मद की झलक देखकर काँप उठनेवाली लाजवती का चित्र कितना करूणार्द्र है । संकट चौथ का व्रत उपारने के लिए मलावी से पानी लेने के अपराध पर पति ने उसे खूब पीटा, उसे ऐसी ऐसी गालियाँ दीं, जो उसने पहली बार ही सुनी थीं । उसने पति के पाँवों पर झुककर क्षमा माँगी और बचन दिया कि वह भविष्य में कभी ऐसा अपराध न करेगी । कभी कभी पति अन्य स्त्रियों को भी घर लाया करते थे और उनके सामने {उनके कहने पर या उन्हें प्रसन्न करने के लिए} वे चेतन की माँ को निर्दयता से पीटते थे । उन्होंने कभी उसे पहनने के लिए भड़कीला कपड़ा न दिया । "कभी भूल से वह छत पर चली गयी तो चरित्रहीनता के बीस ताने उसे दिये, कभी घूँघट ऊँचा किया तो बीस गालियाँ दीं और एक बार उसे गली में देख लिया तो वहाँ से घसीटते हुए अन्दर ले गये । लेकिन इतने पर भी चेतन की माँ ने अपने इस निर्दय पति को अपनी समस्त आस्था, समस्त श्रद्धा, समस्त प्यार, समस्त आदर-सत्कार दिया । स्वप्न में भी उनका बुरा न सोचा । यह अत्युक्ति नहीं, धर्म और कर्म की जंजीरों में जकड़ी ऐसी अनेक स्त्रियाँ इस पुण्यभूमि भारत में मिल जायेंगी । सदैव उनकी समृद्धि और उन्नति के लिए अनुष्ठान कराये,

---

1· उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ·130-131

2· वही, पृ·131

प्रतिवर्ष जालंधर के प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित आत्माराम से वर्षफल बनवाकर जप करवाये, सत्यनारायण की कथायें करायीं, पति की दीर्घायु की कामना से सब व्रत रखे, समय-कुसमय आत्माभिमान को तज उनकी सहायता की, उनके कारण चौदह वर्ष अपने पिता का मुँह न देखा ﴾जिसने एक बार उनकी निन्दा की थी﴿ और अन्य लोग तो दूर रहे, कभी अपने बच्चों से भी अपने पति की बुराई नहीं सुनी ।[1]" मायके से प्राप्त बनारसी साडी जिसे वह स्वयं न पहनती थी, अपनी पुत्रवधुओं के लिएरखी थी, पति के आदेशानुसार लच्छमा को देते समय अपनी धोती उस कलाली से छू न जाय, इस विचार से उसे समेटकर उसने साडी लच्छमा की गोद में फेंक दी तो पति ने उसे इतना पीटा, इतनी बार उसे गर्दन से पकड पकड कर लच्छमा के पैरों पर झुकाया, उसका माथा धरती मे फोडा कि खून बहने लगा और वह बेहोश हो गयी[2] ।" कृष्ण-कन्हैया के अनुगामी बनने के इच्छुक अपने पति के इस प्रकार के पुरुषत्व और वीरता का दण्ड उस बेचारी ने कितना भोगा[3] । अपनी माता की ऐसी मर्मांतक पीडा देखकर विद्रूप से हँसकर चेतन सोचता है कि क्या नारी का यही कद्र भगवान कृष्ण करते थे और उसके सामने राम का चरित्र आ गया[4] ।
"अर्धांगिनी"की विडम्बना का भार लिये, सीता सावित्री के अलौकिक तथा पवित्र आदर्शका भार, अपने भिदे हुए जीर्ण-शीर्ण स्त्रीत्व पर किसी प्रकार संभालकर क्रीतदासी के समान अपने मद्यप, दुराचारी तथा पशु से भी निकृष्ट स्वामी की परिचर्या में लगी हुई और उसके दुर्व्यवहार को सहकर भी देवताओं से जन्म-जन्मांतर में उसी का संग पाने का वरदान माँगनेवाली पत्नी को देखकर कौन आश्चर्याभिभूत न हो उठेगा ?[5]" महादेवीवर्मा जी की प्रस्तुत पंक्तियों में पति

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ॰138
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - शहर में घूमता आईना, पृ॰118
3. वही, पृ॰117
4. वही, पृ॰118=119
5. महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कडियाँ, पृ॰156

शादीराम के क्रूर व्यवहार से आहत होने पर भी पतिपरायणा बनी रहनेवाली लाजवती का चरित्रसाकार हो उठा है ।

"एक नन्हीं किन्दील" में चन्दा की माँ की जो झलक मिलती है, उस से प्रकट है कि वह एक सच्ची आदर्श पत्नी है । उसके पति पागलखाने में है । अत: वह लाहौर आकर पागल खाने गई । पर उसे वहाँ रखने को कोई तैयार न हुआ । वह सेठ वीर भान के यहाँ नौकरी करके जीवन निर्वाह करने लगी और हफ्ते में दो बार बादाम की गिरियाँ और दूध लेकर पागल खाने में जा अपने पति को खिलानें लगी । चेतन से उसका यह कथन उसके स्वाभिमान और निस्वार्थ पति भक्ति का परिचायक है कि "बेटा, मेरा घर वहीं है, जहाँ मेरा पति है । जेठ और उनके बेटे-बेटियों की गुलामी मैं ने बहुत कर ली है । उनकी गुलामी करने और बदले में दो "टुक्कर" और दस ताने - मेहने पाने के बदले दस उँगलियों से कमाती हूँ, अपना पेट पालती हूँ और चन्दा के पिता की सेवा करती हूँ । मुझे और कुछ नहीं चाहिए । भगवान यही चाहता है तो मैं इसी में खुश हूँ । मैं उनकी कोई मदद नहीं कर सकती, पर हफ्ते में दो बार उन्हें देख तो आ सकती हूँऔर कौन जानता है, मेरी सेवा से भगवान खुश हो जाय और उन्हें ठीक कर दे । उन के दिमाग की खुश्की दूर हो जाय ।[1]" रूपरेखा की अच्छी, बी·ए· पास युवती राजदुलारी डॉक्टर सनेही लाल की पत्नी है । देशराज से डॉ· सनेहीलाल का यह कथन कि "यह उनकी मर्जी पर है । पर्दा तो वे करती नहीं, पर जो कुछ करती हैं, अपने मन का[2] ।" राजदुलारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचायक है । पति की क्रूरता की शिकार इरको की दीनदशा देखकर "राजदुलारी की कल्पना भारतीय नारी की

1· उपेन्द्रनाथ अश्क - एक नन्हीं किन्दील", पृ·62

2· वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ·71

दुरवस्था पर दौडी । मैं यदि कोई दुष्ट के साथ ब्याही गई होती तो लाख पढी-लिखी बी.ए. होने पर भी कुछ इसी तरह का व्यवहार मेरे साथ भी होता । तब क्या करती ? भोजन और कपडे के लिए किसी दुष्ट का मुँह ताकना पडता क्योंकि स्त्री की निजी सम्पत्ति होती ही क्या और कितनी है ? आत्मवध कर लेती या कहीं नौकरी कर लेती पर उस दुष्ट से पीछा कैसे छुटाती ? हरको अपने पेट भरनेलायक मजूरी कर सकती है, यहाँ करती ही थी, फिर भी दुष्ट पति के अत्याचार से नहीं बचाई जा सकती । स्त्री के पास अपनी निज की सम्पत्ति का साधन अवश्य होना चाहिए[1]। उसने दुलार के साथ हरको के सिर पर हाथ फेरा तो टहल को अवगत हुआ कि राजदुलारी का व्यक्तित्व सनेही से बडा है[2]। पत्नी के व्यक्तित्व से पति भी प्रभावित है । खाने का आग्रह करते समय उसकी रूपरेखा में मुस्कान और आँसू के भीतर जो सौन्दर्य सनेही ने देखा, उस से वह पुलकित हो गया[3]। सनेही के घायल होने पर राज दुलारी की दशा का चित्रण उपन्यासकार इस प्रकार करते हैं - राजदुलारी आँखें मूँदे हुए, होठों से कुछ बिरबिराती हुई, चुप बैठी थी[4]।" "काले फूल का पौधा" में नायिका गीता की माँ आदर्श पत्नी की श्रेणी में आती है । "शेखर एक जीवनी" की शशि, "सन्यासी" की जयन्ती, "काले फूल का पौधा" की गीता, "झूठा सच" की मनोरमा, "सारा आकाश" की मुन्नी, "रेखा" की रेखा, "ऋतुचक्र" की चित्रा, "अँधेरे बन्द कमरे" की नीलिमा, "लौटे हुए मुसाफिर" की सल्मा आदि अनेकों नारीपात्र प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में हैं, जो आदर्श पत्नी के पद से च्युत हैं । शेखर के प्रति विचित्र मनोभाव रखने के कारण शशि का पत्नी-रूप विकल हुआ तो पति की शक्की मिजाज़ के कारण जयन्ती को आत्महत्या करनी पडी । "दादा कॉमरेड" की यशोदा और "मनुष्य के रूप" की चन्दा भी पति के सन्देह की शिकार बनीं और आदर्श

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ.203
2. वही, पृ.204
3. वही, पृ.206
4. वही, पृ.468

पत्नी रूप प्राप्त करने में असफल निकली । "काले फूल का पौधा" की गीता को उसकी माँ जिसकी गिनती आदर्श पत्नियों की श्रेणी में की गयी है, समय समय पर पत्नीत्व के संबंध में सदुपदेश देती रहती थी । माँ ने उससे कहा था कि पति ईश्वर है । गीता भी सोचने लगी थी, हिन्दू पत्नी का ईश्वर तो उसका पति है, बचपन से आज तक माताजी ने मुझे यही सिखाया है । फिर पत्थर का दूसरा ईश्वर क्यों ? [1] ।" इस प्रकार बचपन से ही जीवन के आदर्शों के प्रति सर्व था जागरूक रहनेवाली, आदर्श पत्नी का सतीत्व का स्वप्नजाल बुननेवाली गीता को पत्नीत्व के प्रति सहज मोह था । उसे पूर्ण विश्वास था कि नारी का गन्तव्य यही है अपने पति के संबंध में बुराई वह सुनना भी नहीं चाहती । ओम से उसका यह कथन कि "ओम मत बोलो, इसमें कोई फायदा नहीं, सोचकर बोलो[2]" इस का प्रमाण है । अपने पति से उसका कथन है, यह मिलन आत्मा का है, वस्तु का नहीं, तभी इसका साक्षी अग्नि था[3] ।" अपने को प्रतिक्षण देवन के अनुरूप बनाने की भरसक कोशिश करनेवाली गीता को देवन का व्यवहार धक्का सा लगा । चित्रा और देवन के संबंध पर उसे ईर्ष्या न थी, पर व्यथा अवश्य थी । चित्रा के अनुसार गीता दूध की धुली निष्पाप पत्नी है । वह कहती है "...... मैं औरत कहाँ हूँ, उस की छाया हूँ । इसे मैं ने तब जाना जब मैं ने गीता को देखा । गीता सत्य, मैं छाया । वह पत्नी, मैं रोमांस । पत्नीत्व में रोमांस न जोड़ो देवन । वह बाँधेगी, मैं तोड़ूँगी, फिर अन्त क्या होगा ? शून्य, अपरूप, घृण्य । ओम मुझे कभी भी त्याग देगा, हम में आधार नहीं है । तुम गीता अलग नहीं हो सकते, क्योंकि गीता जो है, वह भूमि है, भाव है, आदर्श है, पाथेय है[4] ।"

---

1. डॉ॰ लक्ष्मीनारायणलाल - काले फूल का पौधा, पृ॰25
2. वही, पृ॰74
3. वही, पृ॰78
4. वही, पृ॰171-72

गीता की सहिष्णुता की सीमा तब टूटती है जब ओम ने चुनौती दी कि अपने देवन को बाँधकर रखो, नहीं तो विधवा होना पडेगा । उसने दीवार से अपना सर टकरा दिया, माथे का खून आँचल तक बह आने पर भी न रोयी देवन का मानसिक विकल्प, बच्चे को स्तन्य न देने की आज्ञा आदि से दुःखी हो पीली पड़ी गीता ने आखिर समझ लिया कि ये रेखायें कभी नहीं मिलतीं, क्योंकि दोनों के बीच में समान अंतर है । बिजलीके खंभों पर चित्रा और देवन के नाम के साथ गाली देखकर उसे कपडा भिगोकर पोंछनेवाली गीता में परम्परागत पत्नी रूप ही हम देखते हैं, लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों में पड़कर वह रूप निखर न पाया । "गर्म राख" में कवि चातक की पत्नी का पत्नी रूप एकदम निराला होने पर भी सहज है । कवि चातक महिलाओं द्वारा देश की संस्कृति के पुनरुत्थान की बात जगमोहन से कह रहे थे कि नीचे से उनकी पत्नी नाक नकायी । "खाना खा लिया हो तो बर्तन दे जाओ । बहस फिर कर लेना ।"[1] तभी वह हमारा ध्यान आकर्षित करती है । यद्यपि जगमोहन पंजाबी और चातक की पत्नी यू.पी. की रहनेवाली है तो भी वह जगमोहन को अपना सगा देवर समझती है । जगमोहन भी उसे अपनी सगी भाभी से बढकर मानता है । "लम्बा कद; सीधा - सादा, रेखा-विहीन, कद्दूकाकार सा शरीर, चौडा सा मुख, मोटे मोटे ओठ, रूखे बाल और सानुनासिक स्वर भाभी सुन्दर न थीं । चातकजी से उनका कोई मेल न था । पर अपनी समस्त कर्कशता, सानुनासिकता, अपरूपता के होते हुए भी जगमोहन को वे अच्छी लगती थीं और वह उनका बडा आदर करता था ।"[2] भाभी को चातक जी के मित्र फूटी आँख न भाते । पर जगमोहन से उसका व्यवहार हमेशा स्नेहपूर्वक था[3] ।

1· उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ·67

2· वही, पृ·78

3· वही, पृ·78-79

जगमोहन को भी भाभी में वे सब गुण दिखाई देते, जो अपनी भाभी में न थे। कवि समय पर न आते या "बायरन" बने घूमते तो भाभी झींकती। चातकजी ने उसके गहने बेचे थे कि प्रेस चल जाएगा और बच्चों के भविष्य की चिन्ता मिटेगी। पर वह प्रेस चलने के लच्छन न देखती है। "कल कह रहे थे" भाभी ने विक्षुब्ध होकर कहा, "कि दो हज़ार का प्रबंध हो जाय तो बचते हैं, नहीं कुर्की हो जायगी।"[1] भाभी ने कहा था कि प्रेस-व्रेस इनके बस का रोग नहीं। पर चातक ने न माना। उसका भय है कि अब जिस मकान में रहते हैं, वह मकान भी रहेगा या नहीं"। जगमोहन से यह सब कहते कहते उसकी आँखें भर आयीं। "आँसू की एक बूंद को उन्होंने धोती के छोर से पोंछ लिया और बताने लगीं कि उनके बाप का इतना बड़ा घर था। छः हज़ार का गहना दहेज में "उन ने" दिया था। दो हज़ार का गौने पर दिया। हर बच्चे के जन्म पर पाँच सौ से कम नहीं दिया। अब वे रहे नहीं, भाई का रूपया चातकजी ने प्रेस में डुबो दिया। वे तो कहीं की भी न रहीं और चातकजी में लच्छन तो जगमोहन देख ही रहा है।"[2] पति की बुद्धि शून्यता के फलस्वरूप होनेवाले आर्थिक अभाव की संभावना से व्यथित पत्नी का यह चित्र कितना स्वाभाविक है। निम्न लिखित पंक्तियों में भी पत्नी की विवशता दृष्टव्य है, "कवि चातक संस्कृति समाज में कोमलवर्ग की उपस्थिति पर हर्षातिरेक से मरे जा रहे थे, किन्तु दूरो जानती थी कि उनकी पत्नी घर के कुएँ में बन्द सब तरह से विवश पड़ी है।"[3] चातक मिसेज़ कर्मा के चक्कर में आकर उनकी सहायता करते समय कवि पत्नी घर का खर्च चलाने केलिए अपने भाई से रूपये मँगाती रही। "इस प्रेमयुद्ध में वे एक निष्ठ होकर भाग ले सकें इस विचार से उन्होंने पत्नी को (यह समझाकर कि जब तक वे कोई नया काम न खोजें, बच्चों समेत उसका वहाँ रहना कष्टकर होगा, वे नौकरी

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क - गर्म राख, पृ.82

2. वही, पृ.83

3. वही, पृ.174

अथवा काम पाते ही उसे बुलवा लेंगे [1]। उसके भाई के साथ भेज दिया। इस प्रकार पति की भ्रमर-वृत्ति के कारण अनेक यातनाओं की शिकार बनी यह धर्मपत्नी अंत में रणचंडी का रूप धारण करती है। अपने अस्तव्यस्त बाल और सानुनासिक स्वर लिए, चंडी का रूप धरे आकर उसने अपने कर्कश सानुनासिक स्वर में जो कहा, उसका तात्पर्य यह है कि चातकजी यहाँ मौज उडा रहे हैं जब कि उनके बच्चे भूखों मर रहे हैं, उनका पता लगाने के लिये उसे आधे लाहौर का चक्कर लगाना पडा। वह चिल्लायी, "तुम्हें यही रंग रेलियाँ मनानी है तो हमें ज़हर दे दो [2]।" चातकजी हमेशा ही अपनी पत्नी के सामने भीगी बिल्ली रहे हैं, इस बार भी ऐसा ही हुआ। देखिए - "पर ज्यों ही कवि की क्रोध भरी दृष्टि उनकी पत्नी के आग्नेय नेत्रों से चार हुई, उनका सारा क्रोध हवा हो गया [3]।" अपनी सभी विवशताओं के बावजूद यही सामर्थ्य उसके पत्नी-रूप की विशेषता है। "सारा आकाश" की मुन्नी अपने दुराचारी पति के कारण दुःखी थी तो सल्मा अपने पति के विचित्र स्वभाव के कारण। पति के नपुंसकत्व के कारण मनोरमा, कनक, चित्रा आदि का पत्नी रूप उज्वल न हुआ। "अंधेरे बन्द कमरे" की नीलिमा का पत्नी-रूप असफलता का जीता-जागता चित्र है। पति-पत्नी की प्रकृति के अंतर के कारण प्रमीला का पत्नी रूप धुंधला पड गया तो पति-पत्नी के अहं के टकराहट से अनामी नायक की पत्नी का रूप चमक नहीं उठा। यही नहीं, पति पर आक्रमण करके उसने पत्नी का एक विभिन्न रूप दर्शाया।

भाभी

नारी के विविध रूपों में भाभी रूप भी महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कई भाभियाँ है जिनकी निजी चरित्रगत विशेषतायें हैं। ऐसी

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ.374
2. वही, पृ.423
3. वही, पृ.424

भाभियों में एक है "गिरती दीवारें" और "एक नन्ही किन्दील" की चम्पावती । वह चेतन के बडे भाई रामानन्द की पत्नी है। चम्पावती ने अपने घर में माँ और चाची में, माँ और बडी भावज में नित झगडा होते देखा था, और जब दोनों भाई अलग हो गये और माँ भी परलोक सिधार गई तो उसके पदचिह्नों पर चलने को अपना परम कर्तव्य मानकर श्रीमति चम्पावती ने अपनी बडी भावज को सास की अनुपस्थिति खटकने न दी थी । यह सब होते हुए यह कैसे संभव था कि वह अपनी ससुराल में शान्ति का अखण्ड राज्य रहने देती[1] । चम्पावती की झगडालू प्रकृति का परिचय उपर्युक्त वाक्यों से होता है । चेतन की "भाभी वास्तव में विचित्र प्रकार की नारी थी । उस में ज़िद थी, रूखापन था, सनक थी, क्रोध था और वह कुछ एक मूर्खी सी थी । अजीब उसकी आदतें थीं । चेतन उसका देवर था, पर वह उससे घूंघट निकालती थी[2] ।" अपने देवरानी चन्दा के हर व्यवहार में दोष देखनेवाली यह भाभी एक दिन उस से कहती है "ससुर जेठ की कुछ तो शर्म होनी चाहिए बहन आँखों का पानी क्या बिलकुल ही मर गया[3] ।" उसके अनुसार पुरुषों को लोकाचार का ज्ञान नहीं, अत: इन सब बातों का ध्यान स्त्रियों ही को रखना पड़ता है । आगे वह कहती है, "...... तुम्हारे जेठ ने बहुतेरा कहा, पर जब देवर सयाने हुए तो मैं ने उन से पर्दा करना शुरू कर दिया[4] ।" रात में देवर और देवरानी का वार्तालाप छिपकर सुननेवाली चम्पावती की आदत वास्तव में घृणित है । उसके अनुसार चन्दा बेशर्म है क्योंकि वह पति के साथ दिन रात एक ही चारपाई पर लेटी रहती है । इतना ही नहीं, जेठ के साथ भी उसी चारपाई पर बैठी

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.90
2. वही, पृ.249
3. वही, पृ.277
4. वही, पृ.279

"खिहि" "खिहि" करती रहती है।[1] "भाभी के गले में रस का सर्वथा अभाव था। स्वर उनका कौवे का-सा था, किन्तु इस से वे तनिक भी हतोत्साह न होती थीं और गला फाडे सुर बेसुर गाये जातीं।[2]" भाभी में ईर्ष्या भी पर्याप्त मात्रा में थी।[3]" अपनी सुन्दर स्वस्थ भाभी के प्रति चेतन के मन में पहले जो आकर्षण था, वह उस के कर्कश ज़िद्दी स्वभाव और उसकी वज्रमूर्खता के कारण कालांतर में घोर विकर्षण में बदल गया। जब वह भाई के यहाँ रही तो चेतन की माँ का कहना है कि लडकियों का स्थान उनके पति का घर होता है। छ: महीने बाद तक उसका कोई पत्र भी न आया तो माँ उसे एक कठकरेज औरत मानती है और कहती है कि वह पत्नी कैसी, जो पति की तकलीफ में साथ न दे।[4]" भाभी के चले जाने के बाद भी उसकी बदगुमानी, हसद, डाह, हिमाकत, ज़िद और बीमारी की याद चेतन के मन में बनी रही और यह सोचकर उसके मन में उस पर दया आयी कि अपने जबर्दस्त हिमाकत के सबब एक भयानक गलत फहमी का शिकार होकर उसने चन्दा को अपनी बीमारी देने की ही कोशिश नहीं की, मेरा दिमागी तवाजुन ही नहीं बिगाड दिया, खुद भी अपने साथ कम जुल्म नहीं किया। अपना कुन्दन सा जिस्म उसने खाक कर लिया है और दिक जैसे मोहलक मर्ज को गले लगा लिया है।[5]" एक बार चेतन ने देखा कि वह जानबूझकर चन्दा की कटोरी में से सालन खा रही है। "जब वह अपनी थाली से खाना खाते खाते चन्दा की थाली से सालन या दाल लेने लगती तो उसकी आँखों में कुछ ऐसी चमक आ जाती, जो शरारत की द्योतक न थी। उनमें कुछ अजीब सा उल्लास था - चेतन को उन चमकती आँखों और उस सूखे बीमार चेहरे पर प्रकट होनेवाले उल्लास और

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.354
2. वही, पृ.357
3. भाभी ने इस स्वेटर को देखा तो ईर्ष्या की एक टीस उसके हृदय की गहराई में उठी।" - उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.359
4. एक नन्हीं किन्दील, पृ.318
5. वही, पृ.383-384

सन्तोष को देखकर किसी ऐसी प्रेतात्मा का गुमान हुआ था, जो अपने शिकार का रक्त चूसने में सफल हो गयी हो। भाभी उसे चुड़ैल - ऐसी लगी थी, जो उस की भोली पत्नी को ग्रस लेना चाहती थी[1]।" चेतन के भाई ने उससे अपनी पत्नी की बीमारी का कारण बताया। वह यों है, उसने अभी मुझे उलाहना दिया है मैं अपनी छोटी भाभी को पसन्द करता हूं।
इसलिए उसने फाके करके यह बीमारी लगा ली है। और वह इसी तरह फाके करके मेरे सामने प्राण दे देगी[2]।" माँ के दो रुपये माँगने पर जिस चम्पावती ने अपना रौद्र रूप दिखाया था, उस का यह दयनीय रूपांतर देखिये "...... वही उसकी भाभी गाडी के डिब्बे में बैठी कितनी छोटी-सी, कितनी असहाय और निरीह सी लगती थी - किसी ऐसे ठठरी अडियल पशु-सी, जो हठ करके बैठ जाता है, खाना पीना छोड देता है और चुपचाप मर जाता है ....[3]"
निम्न लिखित पंक्तियों में भी इसी रूपांतर का चित्र है, "... लम्बी सी नाक और काले काले गड्ढों में धँसी हुई वे उदास, निराश, घायल आँखें -- वह चेहरा उस प्रतिशोध भरे चेहरे से कितना भिन्न था, जिस की झलक चन्दा के साथ खाना खाते हुए चेतन ने देखी थी। चेतन को लगा - वे आँखें और उनकी वह सूनी, मर्माहत घायल दृष्टि हमेशा के लिए उस के मन पर अंकित हो गयी है। .... बेदिमाग अडियल पशु में और उस की भाभी में कोई अंतर नहीं[4]।" पति तो उस से ऐसे विरक्त हो गये थे कि पं. गिरिधारीलाल से बराबर पत्र आने पर भी जवाब न देते थे। चम्पावती के जाने के तीन महीने बाद जो पत्र आया, उस में लिखा था कि चम्पा बस चन्द ही दिन की

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - एक नन्हीं किन्दील, पृ.393
2. वही, पृ.401-402
3. वही, पृ.406
4. वही, पृ.407

मेहमान है और उसके प्राण अपने पति के दर्शनों केलिए ही अटके हुए हैं[1]। इसका भी जवाब उन्होंने न दिया । यहाँ तक कि पत्नी की मृत्यु के छः महीने बाद स्वप्न में उसे देखकर भी वे बेतरह डर गये थे और फिर सो नहीं सके थे । ऐसी विचित्र स्वभाववाली थी चेतन की भाभी । "सारा आकाश" में मुन्नी की भाभी प्रभा में मानवीयता का समावेश है तो प्रभा की भाभी का व्यवहार नितांत अमानवीय है । प्रभा के विवाह के दूसरे दिन अपनी निर्दोष देवरानी को वह उपदेश देती है कि समर से माफी माँग लो । जिस दिन बहू को ही चौके पर खाना बनाना था, उस दिन प्रभा पर दोष लगाने के लिए भाभी ने खाने में नमक अधिक डाल दिया जिस से समर खा न सका । जिस पर भी उसने ताना मारा कि रिस्टवाच पहनकर खाना बनाने लगी है । प्रभा के मायके जाने के बाद यह भाभी प्रायः समर के कान भरती रही कि बहू घमंडिन है, उसे दबाकर रखना चाहिए । अपनी पढ़ी-लिखी निरपराध देवरानी से इस प्रकार कटु व्यवहार करनेवाली यह भाभी वास्तव में ईर्ष्या द्वेष की पुतली है । श्री· भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास "गंगामैया" में गोपीचन्द की भाभी सामंती संस्कारों में पली हुई है । वह अपने वैधव्य को विधि का विलास मानती है । विलरा से उसका कथन उस के इस विश्वास का प्रमाण है[2]। उस के मन में आदर्श और यथार्थ का संघर्ष होता है । गोपीचन्द अपनी भाभी के साथ विवाह करता है तो आदर्श पर यथार्थ का विजय होता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि गोपीचन्द की भाग्यवादिनी भाभी ने विद्रोहिणी का रूप धारण कर लिया है ।

1· उपेन्द्रनाथ अश्क - एक नन्हीं किन्दील, पृ·409

2· भैरवप्रसाद गुप्त - गंगा मैया, पृ·51

माँ

स्त्री के सभी रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है उसका मातृरूप । माता के स्नेह की, माता की महिमा की सीमा निर्धारित करना सरल नहीं । आदिकाल से अब तक की अनेक कृतियों में मातृ वन्दना की गई है । हिन्दी उपन्यास साहित्य इससे अछूता नहीं । प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में तो कई महिमामयी माताओं के गरिमामय चित्र अंकित किये गये हैं । उनमें कतिपय चित्र यहाँ प्रस्तुत किये जायेंगे ।

"गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आइना", और "एक नन्ही किन्दील" में चेतन की माँ लाजवंती के मातृरूप का चित्रण हुआ है । अपने पत्नीरूप के समान ही उसका मातृ-रूप भी उज्वल है । उसका पुत्रवात्सल्य सराहनीय है । वह अपने बडे "बेटे कीबेकारी और अकर्मण्यता तथा उसकी बहू के कर्कश, झगडालू स्वभाव से अत्यंत दुःखी थी । जब अपने सुपुत्र को काम में लगा देखने के लिए पिता के समस्त प्रयत्न शराबखाने तक जाकर ही समाप्त हो गये तो माँ ने कहीं से ऋण लेकर उसे एक लाँडरी खोल दी ।[1]" उसके पुत्रवात्सल्य का और भी उदाहरण देखिए ".... माँ ने इस प्रकार जैसे वह कोई दूध पीता बच्चा हो, ताश और शतरंज के उस चैम्पियन का सिर अपनी गोद में लेकर घाव धोया और पट्टी बाँध दी । तब उलाहने के स्वर में थकी रूआँसी आवाज़ में उसने पूछा, "कहाँ से यह चोट खा आया तू ?[2]" चेतन के विवाह केलिए उसने जो उत्साह प्रकट किया, उसके भी मूल में उसका अपार पुत्रस्नेह ही निहित है । पति और पुत्र में मल्लयुद्ध होने पर भयभीत हो आगे बढनेवाली लाजवंती को पण्डित शादीराम ने ऐसा कहते हुए कि "तेरी ही कोख से ऐसे हरामज़ादे पैदा हुए हैं" गालियाँ दीं और एक लात भी जमा दी ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.73
2. वही, पृ.88

दुर्बल, क्षीणकाया, हड्डियों का ढाँचा-सा शरीर, वह सीधी मेज़ के कोने में जा लगी।[1] अपने पुत्रों को वह समय समय पर सदुपदेश देती थी। एक उदाहरण नीचे उद्धृत है, "बेटा, वे तुम्हारे पिता हैं। उनके संबंध में कोई बुरी बात सोचना भी पाप है। उनका धर्म उनके साथ, हमारा हमारे साथ। तू आज यह कसम खा कि तू जीवजन्तुओं की हत्या न करेगा और कभी मांस न खायेगा।"[2] "एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय"[3] आदि कहावतों के द्वारा भी वह अपने पुत्रों को समझाती थी। सहिष्णुता, समवेदना, सच्चरित्रता, सन्तान प्रेम, पतिभक्ति आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न लाजवती वास्तव में मातृत्व की प्रतिमूर्ति है।

यशपाल के उपन्यास "पार्टी कामरेड" में नायिका गीता की माता के मातृहृदय की झांकी मिलती है। अखबार का यह समाचार जानकर कि कम्यूनिस्ट सखी गीता के लिए गुण्डों के दलों में मारपीट, माँ का गला रुंध गया और आँखों में आँसू बह गये। खड़े रहना कठिन था, इसलिए वे सामने से हट गयीं। "गिरिजा की माँ और बानू से गीता की माँ ने अखबार की बात सुनी तो उसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी। आँखों के पलक झपकाना भूल गयी। मस्तिष्क में एक ज्वाला सी उठी। वह जल गए काठ की तरह अचेतन हो गई थी। पर इतने बड़े दुर्भाग्य को वह सहसा समझ भी न पायी। जब समझ पायी तो यही इच्छा हुई कि उस बड़े मकान की तीनों मंजिलों के फर्श फट जाये और उस में वह सदा के लिए समा जाये, कोई उस का मुख न देख सके। जिस लड़की के आचरण पर गर्व से सीना फुलाकर वह दुनिया भर को चुनौती देती फिरती थी, उसी के लिए यह कलंक ? यदि उसकी लड़की कलंकिनी होती, वह अपने हाथ से स्वयं उसके और अपने कलेजे में छुरी भोंक, उसके अपराध का प्रायश्चित्त कर देती। और फिर क्रोध का आवेग कहता - ऐसा मिथ्या कलंक लगानेवाले का सीना फाड़ उसका खून पी जाए। वह प्रतिकार करने जाए तो कहाँ और

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.203
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - शहर में घूमता आइना, पृ.229
3. वही, पृ.556

प्रतिकार करे तो किस से ? जो बात अखबार में छप गई, उसे तो दुनिया मानेगी । xx xx xx अपने ही शरीर के अंश और हृदय के टुकडे को उसने कितने ही श्राप दिए और फिर निस्सहाय और बेबस हो रसोई में बैठी रोती रही । कौन था उसका ?"[1] xx xx xx जिसे ओट देनेवाला मर्द नहीं, उसका दुनिया में कौन है ।"[2] गोरे गोलियाँ चलाने लगे तो माता की अवस्था और अधिक दयनीय हुई । "गीता की माँ का कलेजा धक-धक कर रहा था । भय के मारे पेट की आँतें ऐंठ ऐंठ कर रह जातीं । xx xx xx xx दोपहर में बाज़ार से धडाके की आवाज़ें आई तो वह कभी छज्जे पर दौडती, कभी ऊपर । क्रोध और उद्विग्नता से मन चाहता, सिर दीवार पर मारकर फोड ले । वह मर जाए तो फिर ये कलमुंहे जो चाहें करें ।"[3] अपनी प्यारी पुत्री पर कोई कलंक लगाने का प्रयत्न करे तो प्रत्येक माता इसी प्रकार बेबस होगी । पुत्री के अमंगल की संभावना से मातृ हृदय की यह उद्विग्नता स्वाभाविक है ।

यशपाल जी ने अपने उपन्यास "अमिता" में परमभागवती कलिंग की राजेश्वरी सुनन्दा के मातृरूप को हमारे सामने रखा है । "महारानी ने संसार को दुःखमय पाकर शांति की कामना से संसार का त्याग कर संसार में रहनेवाले तथागत बुद्ध का मार्ग स्वीकार कर लिया था । वे निष्काम और निस्संग होकर अपना समय शांति और निर्वाण प्राप्त करने की चिंता में बिता रही थीं ।"[4] तो भी अपनी पुत्री ममता की शुभचिंता हमेशा उनके मन में थी । अमिता के इस कथन से कि " अम्मा कहती हैं, किसी से छीनो मत,

---

1. यशपाल - पार्टी कामरेड, पृ.67
2. वही, पृ.68
3. वही, पृ.88
4. यशपाल - अमिता, पृ.16

किसी को उड़ाओ मत, किसी को मारो मत । ....[1] साबित होता है कि राजमाता अपनी पुत्री के चरित्र निर्माण केलिए कितनी प्रयत्नशील थी । "तीसरे पहर कंचुकी के साथ गई अमिता के सूर्यास्त तक न लौटने से महारानी के मन में भी चिन्ता थी परन्तु तथागत की संध्या पूजा का समय हो जाने के कारण उन्होंने चिंताहारी "करणीय मैत्री" का पाठकर मन को निश्चिंत कर लिया था[2] ।" इससे स्पष्ट है कि उनका मन विरक्त होने पर भी अपनी पुत्री की चिन्ता से विमुक्त न हो पाया था । "महारानी को राज्य पर आक्रमण की आशंका से अधिक चिंता थी, स्वयं कर्मफल के बंधन से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर लेने की[3] ।" अत: महामात्त्य को विवश होकर उन्हें शीष दुर्ग में बन्दी रखना पड़ा । अमिता का राज्याभिषेक भी हुआ । जाने के पहले महारानी ने धारा से कहा, "हिता से कहना युवराज्ञी को एक बार-

नहीं इस समय नहीं । कल रात्रि में, जिस समय हम आंगन में शिविका पर बैठें, बेटी को लाकर हमारा आशीर्वाद ले लें[4] ।" प्रस्तुत कथन इस बात का प्रमाण है कि राज्य की चिंता से रहित होने पर भी वे अपनी पुत्री के प्रति चिंतित थीं । हिता से मातंगी का यह कथन भी इसी बात की पुष्टि करता है, "राजमाता तप कर रही हैं परन्तु बेटी केलिए माँ कैसे चिंतित नहीं होगी । राजमाता ने एक लाख मंत्र-जप से सुरक्षित एक पुष्प दिया है । इस पुष्प को कवच में रखकर संकट से रक्षा केलिए महारानी के शरीर पर बाँधना होगा । ऐसी राजमाता की इच्छा है[5] ।" उनकी पुत्री वत्सलता की पराकाष्ठा निम्नलिखित वाक्यों में दर्शनीय है, "राजमाता ने बेटी को अपनी गोद में ही लिटा लिया । उनका रोम रोम बेटी के स्नेह की

---

1. यशपाल - अमिता, पृ.17
2. वही, पृ.31
3. वही, पृ.86
4. वही, पृ.92
5. वही, पृ.171

तृप्ति ग्रहण कर रहा था । वे समाधि की अवस्था से पृथ्वी पर उतर आयी थीं परन्तु समाधि की अवस्था से भी अधिक तन्मय थीं । वे दो घड़ी तक अपने आशीश के हाथ बेटी के शरीर पर रखे मौन बैठी रहीं ।"[1] महारानी के मातृहृदय की मृदुलता का यह स्पर्श पाकर हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उनके मातृत्व के भाव ने वैराग्य, अंध विश्वास आदि अन्य समस्त भावों को जीत लिया है ।

"देशद्रोही" में चन्दा घायल खन्ना को राज के यहाँ ले जाती है तो राज अपने पुत्र के विचार से खन्ना की रक्षा का भार अपने ऊपर नहीं लेती । वह चन्दा से कहती है, "अपने पाप के लिए मैं जान देदूं । पर प्रसाद के लिए कलंक कैसे लगा लूं ? एक के जीते जी दूसरा बाप कैसे लाद दूं ? उस बेचारे का क्या कसूर ? अपने पाप के लिए उस की ज़िन्दगी कैसे बरबाद कर दूं ? ······"[2] इन शब्दों में उस के मातृत्व की झलक है । "दिव्या" की धाता और "अमिता" की वापी में दासी जीवन की विवशता के साथ साथ मातृहृदय की दुर्बलता भी पायी जाती है । "सुबह के भूले" में झमिया का मातृरूप अतीव उज्वल बन पड़ा है जिस के प्रभाव से रास्ता भूलकर भटकी हुई गुलविया अंत में सही रास्ते पर आ जाती है और झमिया के मातृत्व की जीत होती है । "मातृमन्दिर" उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । "काले फूल का पौधा" में गीता की माँ अपनी पुत्री के चरित्र निर्माण की ओर अत्यंत जागरूक है । गीता पीली पड गयी तो चिन्तित माँ के बारे में गीता का विचार है "पर माँ है कि रोती ही रहती है - अकारण, अलक्ष । जैसे दुनिया की माँ का यही काम है ।

1· यशपाल - अमिता, पृ·197

2· वही, देशद्रोही, पृ·296

काम ही नहीं, मानों एक सत्य को पकड़ना है - बेटी हो तो झट से दुल्हन बनो, झुक जाओ - दुल्हन हो तो फौरन माँ बनो, देर लगी तो बस शंका चिन्ता। तब और झुको, और ! फिर माँ बन जाओ और माँ बनकर सदा रोओ[1]।" इन पंक्तियों में चिरन्तन मातृत्व ही प्रतिबिंबित हुआ है। पग पग पर इस आदर्श माता का अनुसरण करनेवाली गीता भी अपने मातृत्व की रक्षा के लिए अपने पत्नीत्व को तिलांजली देने को तैयार होती है। उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि गीता के मातृरूप ने अन्य समस्त रूपों को निष्प्रभ बना दिया है। "अमरबेल" में अपने पुत्र टहल के घायल होने पर "मेरा रक्त कहीं से भी निकालकर भर दो मेरे लाल के शरीर में। बचा लो डाक्टर बेटा मेरे लाल को[2]।" कहनेवाली घाटीवाली ममतामयी माता की प्रतिमूर्ति है। इसी ममता के कारण टहल के मन का भाव भाँपकर उसने विधवा इरको से उसका विवाह करा दिया। इस प्रकार मातृत्व की महिमा से मंडित अनेक नारी पात्र प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में हैं। लेकिन "गुनाहों का देवता" में विनती की माँ का चरित्र इसका अपवाद है। वह उपन्यास की नायिका सुधा की विधवा बुआ है। अपनी पुत्री बिनती के बारे में उसका कथन है, "..... ऐसी कुलछनी है कि पैदा हो दिन बाप को खाय गयी[3]।" पितृविहीना बिनती केलिए यह प्रताड़ना असह्य थी। इस बेचारी के प्रति चन्दर के मन में सहानुभूति थी। वह मन में सुधा और विनती की तुलना यों करता है, "..... एक बचपन से ही कितने असीम दुलार, वैभव और स्नेह में पली है और दूसरी प्रताड़ना और कितने अपमान में पली और वह भी अपनी ही सगी माँ से जो दुनिया भर के प्रति स्नेहमयी है, अपनी लड़की को छोड़कर[4]।" माँ की बातें

---

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - काले फूल का पौधा, पृ.176
2. वृन्दावनलाल वर्मा,- अमरबेल, पृ.283
3. धर्मवीर भारती - गुनाहों के देवता, पृ.96
4. वही, पृ.104

बर्दाश्त न कर सकने के कारण बिनती ब्याह के लिए उत्सुकता दिखाती है । चन्दर से उसका कथन है, "···· वह नरक है, मेरे लिए माँ की गोद नरक है और मैं किसी तरह निकल भागना चाहती हूँ । कुछ चैन तो मिलेगा[1] ।" लड़के को अयोग्य जानकर डॉक्टर साहब ने मड़वे से बिनती को उठवा दिया । इस लिए बुआ अपनी पुत्री पर और डाक्टर पर दोषारोपण ही नहीं करती, उन्हें शाप भी देती है । उसके विचित्र हृदयहीन तर्क उसे मातृत्व के महोन्नत पद के लिए अयोग्य सिद्ध करते हैं[2] । माँ के मुँह से ये शब्द सुनकर कि "पैदा होते काहे नहीं मर गयी कुलबोरनी कुलच्छनी अभागिन।" बिनती चीखकर बोली, "बहुत सुन लिया मैं ने । अब बर्दाश्त नहीं होता । तुम्हारे कोसने से अब तक न मरी, न मरूँगी । और अब मैं सुनूँगी नहीं, मैं साफ कह देती हूँ । तुम्हें मेरी सकल अच्छी नहीं लगती तो जाओ तीरथयात्रा में अपना परलोक सुधारो । भगवान का भजन करो । समझी कि नहीं[3] ?" डॉक्टर के बिगड़ने पर विनती की माँ झूम झूमकर रोने लगी और वृन्दावन जाकर डूब मरने की धमकी देने लगी[4] । इसके बाद एक बार वृन्दावन से आते समय गाड़ी में चन्दर को देखकर बिनती की माँ अपने शापवचन दुहराने लगी । "अब हम का करें को है । हम सब मोहमाया त्याग दिया । लेकिन हमारे त्याग में कुच्छो समरथ है तो सुकुल को बदला मिलि है[5] ।" यह सब सुनकर चन्दर सोचने लगा "विचित्र थीं बुआजी, बेचारी कभी समझ ही न पायीं कि बिनती को उठा कर डाक्टर साहब ने उपकार किया या अपकार और मज़ा तो यह है कि एक ही वाक्य के पूर्वार्द्ध में मायामोह से विरक्ति की घोषणा और उत्तरार्द्ध में दुर्वासा का शाप हिन्दुस्तान के सिवा ऐसे नमूने कहीं भी मिलना मुश्किल है[6] ।" ठीक है,

---

1· धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ·136
2· वही, पृ·274
3· वही, पृ·275
4· वही, पृ·276
5· वही, पृ·370
6· वही, पृ·370-371

ऐसा विचित्र मातृरूप भी अन्यत्र मिलना मुश्किल है ।

विमाता

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में कुछ विमाताएं पायी जाती है जिनमें कुछ ने अपने रूखे व्यवहार से विमाताएं ही रह जाती है तो कुछ सगी माँ का सा व्यवहार करके आदर की पात्री बनती हैं । "झूठा सच" में मिसेज़ अगरवाला प्रथम प्रकार की विमाताओं की कोटि में आती है । सभी सुखसुविधायें प्राप्त होने पर भी अप्रसन्न यह नारी अपने सौतेले पुत्र नरोत्तम के प्रति हमेशा क्षोभ प्रकट करती है। तारा से उसका कथन है, "हम इन दोनों को अपने बच्चों से हज़ार गुना बढ़कर ख्याल करें, यह तो हमें सौतेली ही मानेंगे । .....[1]" अपनी ईर्ष्यालु प्रकृति के कारण वह तारा को सन्देह की दृष्टि से देखती है । शिवानी के सामने उसका कथन है, "बाप-बेटा दोनों निछावर हो रहे हैं[2] ।"

"कृष्णकली" उपन्यास की पन्ना, "रूकोगी नहीं .... राधिका ?" की विद्या आदि दूसरे प्रकार की विमातायें हैं । अपने नवजात शिशु की मृत्यु से दुःखी पन्ना कृष्णकली को सगी पुत्री मानकर पालन पोषण करती है । कली के जीवन का घृणित इतिहास गोपनीय रखती है । वह उसे "पीली कोठी" के वातावरण से दूर रखना चाहती है । उसके उज्वल भविष्य की चिन्ता से उसे कॉन्वेंट के बोर्डिंग स्कूल में भेजती है । लेकिन एक दिन

---

1. यशपाल - झूठा सच, "देश का भविष्य", पृ.187
2. वही, पृ.199

पन्ना और विद्युतरंजन मजूमदार का वार्तालाप सुनकर कली अपने जन्म का रहस्य समझ लेती है और परिणामस्वरूप वह पन्ना को छोड़कर चली जाती है और अंत में कैन्सर ग्रस्त हो पन्ना की उपस्थिति में ही इहलीला समाप्त करती है । इस प्रकार विमाता का सा व्यवहार न करने पर भी पन्ना को निराश होना पडा । विद्या की स्थिति इस से भी शोचनीय है । वह एक सुशिक्षित प्रौढ अध्यापिका है । उपन्यास की नायिका मातृविहीन होने के कारण पिताजी को ही सब कुछ समझती है और उनके अध्ययन-अनुशीलन में सहायता देती है । लेकिन जब विद्या उनकी दूसरी पत्नी बनी, तब से राधिका के स्वभाव में परिवर्तन दृष्टिगत होता है । विद्या की आदत अच्छी है और उसके व्यवहार में संतुलन है । तो भी राधिका हमेशा उससे खिंची हुई रहती है । विद्या को मानसिक पीडा देने में उसे प्रसन्नता होती है । रात में बाप के साथ स्टडी में काम करते समय उसे इस बात का सन्तोष है कि विद्या अपने कमरे में अकेली है ।[1] विद्यानीन्द की गोलियाँ खाकर आत्महत्या करती है तो राधिका को पश्चात्ताप होता है कि उसने विद्या को ठीक से जानने की चेष्टा नहीं की । इस प्रकार विद्या के सद् व्यवहार का भी दुष्परिणाम हुआ ।

सास

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी के सास रूप का भी चित्रण हुआ है । ऐसा भी देखा जाता है कि माता के रूप में महिमामयी बननेवाली नारियाँ भी सास के रूप में उतनी महिमा नहीं दिखाती । चेतन की माँ लाजवती ऐसी नारी है । चेतन के विवाह के बाद बहू को फूल फूल पर बैठनेवाले, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द उडनेवाले पक्षी (चेतन) को बाँध रखने का उपदेश देनेवाली लाजवती ही ने "दो महीने बाद फतवा दे दिया कि यह नई बहू बडी बहू से भी गई गुज़री है । वह ज़बान की कड़वी हो, लड़ती-झगड़ती हो, पर काम तो करती थी । यह तो बस गुम-सुम पत्थर ! अजगर की तरह खाना और

---

1. उषा प्रियंवदा - रूकोगी नहीं राधिका ?, पृ. 35

सोना जानती है । काम के नाम पर सिफर है[1] ।" बहू की रीतियाँ सास को सह्य नहीं थीं । चेतन और चन्दा रात में देर से लौटे तो लाजवती रूठ गयी । चेतन के कहने पर चन्दा ने किसी तरह के अपराध के बिना भी सास के चरणों पर झुकी । पर माँ न मानी और सुबह चली गई । नये ज़माने के यह लच्छन देख सकने की शक्ति न रखने के कारण उसने वहाँ रहना उचित नहीं समझा[2] ।" "झूठा सच" में नायिका तारा की माँ भागवंती का सास-रूप भी इस से मिलता जुलता है । "भागवंती को अपनी लड़की पर बहू का प्रभाव अच्छा नहीं लगता था पर उषा ने कनक को अपना आदर्श मान लिया था । रूखे रूखे बालों की ढीली ढीली दो चोटियाँ कर लेती, दुपट्टा सिर पर टिकता ही न था । हर बात में भाभी की नकल । दूध-लस्सी छोड़कर चाय पीना । लड़के जो करें, लडकियों का चाय पीना पुरी की माँ को अच्छा न लगता था[3] ।" उसको बहू के प्रति पुरी की इतनी चिन्ता अखर रही थी[4] ।" "नये ज़माने के पापों के परिणाम की आशंका में भगवान को स्मरण करने लगी । उषा को कनक से चिपटते देखती तो डाँट देती - तुझे कोई काम नहीं है, घर का भी कोई काम सीखेगी या सदा माही-मुंडा {लड़का सी लड़की} बनी रहेगी ?[5] " कनक सास का आदर करती थी; पर कनक के प्रभाव से उषा बहुत सिर चढ़ने लगी थी । माँ उषा को कनक के प्रभाव से दूर रखना चाहती थी[6] । इस प्रकार भागवंती में हम परम्परागत सास के रूप को ही देखते हैं ।

सास का दूसरा रूप बहुत ही महान है । उसके अनुसार वह ममतामयी माता के समकक्ष ही स्थान प्राप्त करती है, कभी कभी उससे भी बढकर ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.237
2. वही, पृ.270
3. यशपाल - झूठा सच, "देश का भविष्य, पृ.350
4. वही, पृ.351
5. वही, पृ.352
6. वही, पृ.356

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास "अधिकार का प्रश्न" में कलावती का सास रूप ऐसा है । काशीबाबू के इस कथन पर कि बहू से तुमने कभी कुछ ऐसा कह दिया हो जो उसे बुरा लगा हो, कलावती विश्वासपूर्वक कहती है, "मेरी बहू ऐसी नहीं । वह तो इतनी सीधी-सादी, भोली-भाली, सुकुमार और दुलारी है जिसकी तुलना नहीं । उसका वश चलता तो वह इस घर की देहली के बाहर पैर न रखती । ....[1]।" बहू मंजु भी अपने सास-ससुर को आदर की दृष्टि से देखती है । काशीबाबू की मृत्यु के बाद वह आँसू पोंछकर पूर्णिमा से कहती है कि मुझे दुःख तो इसी बात का है कि भगवान ने मुझे उनकी सेवा करने का अवसर न दिया[2] । उपेन्द्र से उसका कथन है, "तुम्हारी सनक में पड़कर ही मुझे सास ससुर के प्यार से विमुख होना पड़ा । ....[3]" सास-बहू का यह संबंध आधुनिक होने के साथ साथ आदर्श भी है । यह आदर्श बहू जब सास बनी तो अपनी बहू तरुलता के प्रति उसका भाव उदार था । जब उसने सुना कि बेबी के दिवंगत हो जाने के अनंतर बहू बीमार रहने लगी है तो वह स्वयं फ़ैज़ाबाद जाकर तरुलता को अपने साथ ले आई[4] ।

दादी

आलोच्यकाल में नारी का दादी रूप भी पाया जाता है । ऐसी नारियों के प्रतिनिधि के रूप में हम "गिरती दीवारें" के नायक चेतन की परदादी गंगादेई को ले सकते हैं । "परदादी गंगादेई अत्यंत पुराने और संकुचित विचारों की सहस्रों देवी देवताओं, पीरों-फकीरों में विश्वास रखनेवाली और पुरोहिताई को प्रत्येक ब्राह्मण का धर्म समझनेवाली, उद्दण्ड और कर्कशा

---

1. भगवतीप्रसाद वाजपेयी - अधिकार का प्रश्न, पृ.115
2. वही, पृ.128
3. वही, पृ.140
4. वही, पृ.155

ब्राह्मणी थी । उस के समय का अधिक भाग अपनी पुरोहिताई और धर्म को बनाये रखने में लग जाता था, जो बचता था उस में कुछ लडाई - झगडे और शेष पीरों फकीरों की भेंट हो जाता ।

कोई त्योहार हो, परदादी गंगादेई के लिए उस में योग देना अनिवार्य था । ठंड्डी, बाजडे, बाबा सोढ्ल, दीवाली, विजयदशमी, ईद, मुहर्रम, बैसाखी, गुरुपर्व, होला-मुहल्ला, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख किसी भी जाति का कोई त्योहार हो - वह उस में अवश्य योग देती[1] ।" अपने पोते शादीराम को होस्टल में न पाने पर वह उसके "मित्रों को गालियाँ देती, घर घर छान डालती और उसे बिगाडनेवालों के पुरखों की सात सात पीढियों को घोर नरक में भेजने तक की सिफारिश भी अपने समस्त देवी देवताओं से करती । परदादी जब भी अपने इस पोते को पकड पाती, उसे कुछ कहने के बदले उसके मित्रों और मित्रों के घरवालों ही को गालियाँ देती[2] ।" पोते की पत्नी के प्रति भी उसका व्यवहार अत्यंत कडुआ था । संकट चौथ का व्रत उपारने केलिए मलावी से पानी लेने के अपराध केलिए शादीराम ने अपनी पत्नी को दण्ड दिया ही; परदादी गंगादेई ने भी "बहू को दिन भर डाँटने डपटने के बाद मलावी और उसके घरवालों की सात पुश्तों का नाम लेकर अत्यन्त "मीठे वचनों" की वर्षा की थी और सहमी हुई बहू ने देखा था कि उस की ददिया सास जब नहाने लगती है तो मलावी और उसके मृत पति का नाम लेकर दुराशीशें देती है - चेतन की परदादी का विश्वास था कि नहाते समय की दुराशीश ऐन निशाने पर बैठती है[3] ।" चेतना की माँ को इस प्रकार की यातनायें वह बराबर देती रही । इच्छा न होने पर भी वह अपनी ददिया सास के समस्त पूजापाठ, व्रतनियम, पीर-फकीर, रस्म-रिवाज़

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.114-115
2. वही, पृ.118
3. वही, पृ.131 - 137

मानती रही, उनकी डाँट-फटकार सुनती रही, मानसिक और शारीरिक यातनायें सहती रही और यह सिलसिला तब तक जारी रहा जब तक इस क्रूर ददिया सास की मृत्यु ने चेतन की माँ को इन सब यातनाओं से मुक्त कर दिया[1]।" इस प्रकार हम अंधविश्वास की पुतली गंगादेई में परदादी के रूप के साथ साथ ददिया सास का रूप भी पाते हैं ।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री चाहे प्रेमिका हो या गृहस्था, चाहे विधवा हो या वेश्या दुःख भोगने के लिए ही पैदा हुई है । अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से समझौता कर जीवन में सफलता पानेवाली नारियों की संख्या बहुत कम है ।

नारी के विविध वर्गों में गृहस्थ नारीयों को ही प्रधानता है क्योंकि पारिवारिकजीवन उन पर आधारित है और पारिवारिक जीवन ही सामाजिक जीवन की आधार शिला है । इसी प्रकार नारी के विविध रूपों में मातृरूप की समानता करनेवाला और कोई रूप नहीं । प्रायः सभी माताएँ स्नेह, वात्सल्य, उदारता आदि की प्रतिमूर्तियाँ हैं । यत्र-तत्र कुमाता की झलक मिलती है, तो भी उसकी संख्या नगण्य है ।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.137

चौथा अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के प्रमुख नारी - पात्र

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के प्रमुख नारी-पात्र

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कुछ प्रमुख नारी-पात्रों का विस्तृत विवेचन इस अध्याय में है । स्वतंत्रता पूर्व काल का प्रतिनिधित्व करने के केलिए गीता, दिव्या, सुधा, मृणाल और शैलबाला का तथा स्वातंत्र्योत्तर काल का प्रतिनिधित्व करनेवाली सोमा, अमिता, तारा, गुलबिया, और प्रभा का एवं साठोत्तर काल की नीलिमा, चन्दा, मानकुमारी, नमीबन और चित्रा का विशद चरित्र-चित्रण यहाँ प्रस्तुत है ।

गीता

यशपाल के उपन्यास "पार्टी-कामरेड" की नायिका है गीता । वह रिसर्च स्कालर है । हड़ताल के कारण भूखे मज़दूरों की सहायता के लिए चन्दा एकत्रित किया जा रहा था । मन-पसन्द जम्पर खरीदने केलिए माँ से

लड़-झगड़कर पाये पाँच रुपये उसने उनको दिये। यहाँ उसके सहानुभूति पूर्ण हृदय की झलक मिलती है।

राजनीति के प्रति उसकी रुचि थी। वह अपनी आयु से अधिक गंभीर थी। उस में संकोच के स्थान पर आत्मविश्वास था। उन्नीस बीस वर्ष की अवस्था में गीता का व्यवहार बिल्कुल बदल गया। पहले वह कांग्रेस की स्वयं सेविका थी, फिर कम्यूनिस्ट बन गयी और सिनेमा तथा कांग्रेस के जल्सों के सामने पार्टी का अखबार बेचने लगी।

बम्बई के सेठ मूला भात जी का पुत्र पदमलाल भावरिया ने "जनयुग" बेचनेवाली गीता को देख लिया। अपने पिता की मृत्यु के बाद मित्रों के साथ सम्पत्ति का दुर्व्यय करनेवाला भावरिया ने गीता से एक अखबार खरीदकर दस रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाया। बाकी देने के लिए गीता बटुआ खोल टटोलने लगी तो भावरिया ने कहा, "आपकी नज़र है।" लेकिन गीता ने उस के लिए पार्टी की रसीद उसे थमा दी। भावरिया के दोस्तों के सम्मुख यह घटना घटी थी और भावरिया अपने मित्रों का परिहास पात्र बन गया। तब से गीता को किसी भी तरह अपने जाल में फँसाना भावरिया का लक्ष्य बन गया। कॉमरेड मज़हर ने गीता को चेतावनी दी कि भावरिया लखपति गुंडा है, उस से बचकर रहना। शहर भर में चुनाव का आवेश फैल गया तो कुछ लोगों ने चौपाटी के समीप सैंड हर्स्ट रोड पर कम्यूनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय दफ्तर पर कई बार ईंट पत्थरों से हमला किया। आग लगाये जाने से भी कष्ट-नष्ट हुए। गीता के मन में कांग्रेसियों के प्रति प्रतिहिंसा का भाव जगा। प्रान्तीय सेक्रेटरी ने प्रेस को जल्दी से जल्दी ठीक करने के लिए फंड के लिए अपील की। गर्लस कॉमरेडों ने अपने गहने उतार दिये। गीता ने गले से लाकेट उतारकर दे दिया। उसने दो सौ रुपया इकट्ठा करने के प्रण के साथ भविष्य में सम्पूर्ण समय पार्टी के काम में देने का

वादा किया । भावरिया से भेंट होने पर उसने गीता को एक आभूषण खरीद देना चाहा । पर गीता ने कहा कि वह ज्यूलरी पहनती नहीं । बदले में उसने पार्टी के लिए दो सौ-रुपये स्वीकार किये ।

गीता का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक और प्रभावशाली था । स्त्रियों के सम्बन्ध में अच्छी तरह जानकारी रखनेवाले भावरिया को यह लड़की कुछ नये ढंग की जान पड़ी । "उसने अब तक चालाक स्त्रियाँ देखी थीं । लुभाने के लिए पहले संकोच और भय दिखानेवाली जिनकी संगति एक सौदा थी और वे उस का अधिक से अधिक मूल्य चाहती थीं । उसे गीता कुछ दूसरे ढंग की जान पड़ी । बाँह उठाकर सड़क पर अखबार बेचनेवाली, परन्तु ओछा काम करने की दीनता उस में न थी । स्त्री का वैसा संकोच और कातरता जो पुरुष को उसके पुरुषत्व की याद दिलाती है, वह भी नहीं थी । चेहरे पर ऐसा सौन्दर्य भी नहीं कि तस्वीर उतार ले परन्तु देखने को मन ज़रूर चाहता था ।"[1]

एक बार दोस्तों के सामने अपने विजय की घोषणा करने के उद्देश्य से भावरिया उसे माटुंगा क्लब में ले गया । लेकिन स्थिति पहचानकर गीता ने उसे लौटने के लिए विवश किया । इस घटना के पश्चात् गीता को दुःख हुआ और भावरिया को पश्चात्ताप । फिर एक बार भावरिया ने आवारों से उसकी रक्षा की । पर इस घटना का समाचार एक दूसरा रंग देकर अखबारों में यों छापा गया कि कम्युनिस्ट सखी गीता के लिए गुण्डों के दलों में मारपीट । यह समाचार पाकर गीता की माँ की स्थिति अत्यन्त दयनीय हुई।[2] जिस लड़की के आचरण पर उसे गर्व था, उस लड़की पर इस प्रकार मिथ्या कलंक लगानेवालों के प्रति उसे क्रोध हुआ । पर एक असहाय अबला क्या कर सकती है?[3] यही नहीं, इन सब केलिए गीता को पार्टी के सामने जवाब देना पड़ा और उसे तीन मास के लिए पार्टी की मेम्बरी से सस्पेंड कर दिया गया । बहन के बारे में झूठा समाचार फैला देखकर गीता का भाई शामू रुष्ट था ।

---

1. यशपाल - पार्टी कामरेड, पृ.32

पर वास्तविक स्थिति जानकर सोलह वर्ष का वह लड़का भी क्रांतिकारियों से सहानुभूति रखने लगा ।

स्त्री होने के नाते स्त्री के संबंध में उसका निजी विचार है[1]। वह इतनी निर्भीक थी कि कई बार पार्टी के इक्के-दुक्के साथियों के साथ नौ-दस बजे रात में परेल और मदनपुरा से लौट चुकी थी[2]। दिखावे के लिये वह कुछ नहीं करती थी । उसे रोते देख भावरिया सोचता है कि यह रोना और औरतों के समान किसी को दिखाने के लिए नहीं है[3]। गीता के प्रभाव से चरित्रहीन भावरिया का मन भी परिवर्तित होता है । इसी समय जहाज़ी सिपाही सरकार के विरुद्ध संगठित हो गये । सरकार ने उनका राशन-पानी बन्द कर दिया । भावरिया ने अपने साथियों से मिलकर उन्हें खाद्य पदार्थ देने का प्रबंध किया । एक लारी पर खड़े भाषण देनेवाली गीता को उसने देख लिया । वह हड़ताल का आह्वान कर रही थी । भावरिया को हड़ताल न करने की प्रेरणा देने के लिए भावाजी (कांग्रेसी) आदि आये थे । पर भावरिया ने हड़ताल करने का ही निश्चय किया । एक जुलूस निकला । गोरे लारियों में आकर गोलियों की बौछार कर गयी । कई नाश - नष्ट हुए । लारी फिर आई और गोली बरसाकर गई । भावरिया इस के विरुद्ध कुछ करने को तैयार हो गया । फलतः वह बुरी तरह जख्मी हो गया । उसे अस्पताल में प्रवेश किया गया । अंतिम समय उसने गीता को देखने का आग्रह प्रकट किया । पर गीता के पहुँचने के पहले ही वह इस लोक से चल बसा । गीता आँसू बहाती हुई अर्थियों के साथ चलने लगी । मज़हर का मत है, "यह गीता का ही प्रभाव था कि भावरिया जैसा

---

1. "कोई स्त्री विवश हो वेश्या बनती है, कोई पतिव्रता ।
   xx xx xx क्या है, स्त्री भी ! उसका मूल्य पुरुष को सन्तोष देने में ही है ।" - यशपाल - पार्टी कामरेड, पृ.25
2. वही, पृ.37
3. वही, पृ.51

बदनाम व्यक्ति भी राष्ट्रीय संघर्ष के मोर्चे पर आगे आया, वरना ।"[1]

इस प्रकार एक बदमाश को भी शहीद बना देने की क्षमता रखने वाली गीता का चरित्र सचमुच आराध्य है । स्वतंत्र होने पर भी वह उच्छृंखल नहीं । अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण इस क्रांतिकारिणी नायिका ने यशपाल के अन्य उपन्यासों की नायिकाओं की तुलना में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है ।

दिव्या

यशपाल जी के उपन्यासों के स्त्री-पात्रों में विविधता है । नृत्य संगीत कला विशारद नर्तकियां तथा अभिजात कुमारियां, दासियां, कुलवधुएं वेश्यायें, कुट्टिनियां, फिल्म-तारिकायें आदि उनमें दिखाई देती है । दिव्या में भी राजनर्तकियां, दासियां आदि विविध प्रकार के स्त्री-पात्र दृष्टव्य है ।

प्राचीनकाल में नर्तकियों, विशेषकर राजनर्तकियों का जीवन वैभवशाली था । बाहर से देखने पर उनका जीवन सुखपूर्ण था, पर उनके अन्दर, असंतोष की ज्वाला धधक रही थी । उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तियों का प्रेम प्राप्त था, पर विवाह-संबंध में अनेक बाधायें उपस्थित होती थीं । साधारण दाम्पत्य जीवन की कामना करने वाली ऐसी राजनर्तकियों की प्रतीक है, दिव्या उपन्यास की नायिका दिव्या ।

---

१. यशपाल - पार्टी कॉमरेड, पृ.९३

दिव्या सागल नगरी के वयोवृद्ध धर्मस्थ देवशर्मा की प्रपौत्री और जनपद कल्याणी राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या है । जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की संध्या में, सूर्य का प्रकाश रहते भी नवचन्द्र की रेखा का उदय मलान नहीं होता, प्रकाश का वह अंकुर क्षीण होकर भी दिव्य चन्द्रिका का आश्वासन लिए रहता है, उसी प्रकार धर्मस्थ के पुत्र-पौत्र से समृद्ध और सम्पन्न कुल में कन्या का जन्म उल्लास का कारण हुआ । उस कन्या के उज्वल भविष्य के विश्वास से उसे दिव्या पुकारा गया । दिव्या चन्द्र की कलाओं की भांति दिन दिन दे दीप्यमान होती गयी । दुर्भाग्य से दिव्या के पितामह और पिता-माता तीनों ही किसी दैवी प्रकोप से व्याधि द्वारा अकाल में काल कवलित हो गये । उन तीनों के भाग का भी स्नेह पाकर दिव्या प्रपितामह के समीप अत्यन्त वत्सल हो गयी ।[1] "धर्मस्थ के प्रासाद के ज्ञानमय वातावरण में पलकर "दिव्या ज्ञान कला और संस्कृति से उसी प्रकार भिजी हुई थी जैसे कमल जल से भीगा न रहने पर भी उस में जल समाया रहता है । दिव्या की विशेष रुचि संगीत और नृत्य में थी, परन्तु वृद्ध प्रपितामह के निरन्तर सामीप्य से वह ज्ञान के प्रसंग से भी अबोध न थी । उस ने ज्ञान को शब्दों की अपेक्षा भावना में ही पाया था[2] ।

नृत्यकला में दिव्या की निपुणता का प्रत्यक्ष प्रमाण है, मधुपर्व समारोह में "मराली" का आत्मसमर्पण" नृत्य कर कला की प्रतियोगिता में सरस्वती पुत्री का सम्मान प्राप्त करना । वृद्ध जन और कुलस्त्रियां कला में उसकी अद्वितीय क्षमता के लिए साधुवाद देकर आशीर्वाद देते थे । अभिजात युवक और कुलस्त्रियां उसकी स्तुति करती थीं । अनैतिक और अनाचार के समर्थन का

1· यशपाल – दिव्या, पृ·21

2· वही, पृ·22·

अपवाद पाये मारिश ने इस संबंध में एक विचित्र ही बात कह दी थी - "भद्रे, तुम्हारी कला तुम्हारी आकर्षण शक्ति का निखार मात्र है जो नारी में सृष्टि की आदि शक्ति है।[1]" रत्नप्रभा के आदेश से दारा ने नृत्य आरंभ किया तो वयोवृद्ध वादक रोहित तुरन्त उसकी क्षमता भाँप गया। आत्म-विस्मृत हो अपने प्राणों में लय कर वह इतनी सूक्ष्मता और वेग से नाची कि वृद्ध रोहित की उँगलियाँ पिछडने लगीं। उसके मस्तक से स्वेद की धारायें बह निकली। दर्शक चित्रित मूर्तियों की भाँति अवाक रह गये। नृत्य समाप्त करने पर रत्नप्रभा ने अपने कंठ की मणिमाला उतार दारा को पहनाकर उसका आलिंगन कर के बोली - "सखी, सागल मगध और तक्षशिला के अतिरिक्त कला की ऐसी पूर्णता कहीं संभव नहीं। सखी, यह गुण गुरु की विशेष कृपा और देवी सरस्वती के वरदान बिना सम्भव नहीं। सखी, तुम में मेरी गुरु-देवी मल्लिका का अंश है।[2]" रत्नप्रभा का विचार था कि दारा को अपनाकर उसने कीचड में से कांच पाया परन्तु दारा तो मणि निकली। रत्नप्रभा ने उसका नाम रख दिया "अंशुमाला"। उसके मोहक लास्य और चमत्कारपूर्ण कला पर निछावर होकर रसिक समाज विभोर हो उठा। उसकी कीर्ति दिगन्तों में फैल गयी। जिस समारोह में अंशुमाला कला का प्रदर्शन करती, मार्गों की रक्षा और व्यवस्था के लिए राजपुरुषों की उपस्थिति आवश्यक हो जाती। अंशुमाला की लोकप्रियता के कारण रत्नप्रभा के यहाँ पहले से दूना धन आने लगा। रत्नप्रभा और मुक्तावली के संगीत नृत्य पर जहाँ पुष्पमालाओं और रजत मुद्राओं की भेंट आती थी, अब स्वर्णमुद्रायें, रत्न और मणिमालायें बरसने लगीं। नाम था रत्नप्रभा का, वास्तविकता थी अंशुमाला उसकी कीर्ति सुनकर देवी मल्लिका भी सोचती है कि अंशुमाला जैसी शिष्या प्राप्त करने के सौभाग्य के कारण ही रत्नप्रभा की कीर्ति चार वर्ष से विशेष उज्वल हो उठी है। ऐसी शिष्या पानेवाले गुरु से अधिक भाग्यशाली कौन होगा? ऐसी शिष्या जो गुरु से प्राप्त ज्ञान के स्फुलिंग को ज्योतिर्मयी ज्वाला का रूप दे सके। परिणाम यह हुआ कि

---

1. यशपाल - दिव्या, पृ.28
2. वही, विद्यार्थी संस्करण, पृ.137

मल्लिका ने
रत्नप्रभा से अंशुमाला को भिक्षा में माँग लिया और उसे अपनी उत्तराधिकारिणी बनाने का आयोजन किया ।

मराली की भूमिका में बकिक के जाल में फँसनेवाली दिव्या यथार्थ जीवन में पृत्युसेन के प्रणयजाल में फँस जाती है और वहीं से उसके दुर्भाग्य का श्रीगणेश होता है । पृथुसेन के प्रति अपने परिवार के निरादर भाव से उस का हृदय जल उठता है । छाया से उसका कथन है "तात और सम्पूर्ण प्रासाद जान ले, आर्य पृथुसेन के अतिरिक्त मैं किसी से विवाह न करूँगी । आर्य पृथुसेन ने ही मेरे प्राप्ति के लिए तात के सम्मुख प्रार्थना नहीं की, मैं स्वयं यही चाहती हूँ । ।[1]" केन्द्रस के आक्रमण का प्रतिरोध करने केलिए जाने के पूर्व पृथुसेन को उसने आत्मसमर्पण किया । दिव्या क्षण पर्यंक पर, क्षण पीठिका पर बैठती क्षण कक्ष में और क्षण बाहर उद्यान में ठहरती । उसे कहीं चैन न था । पल-पल वह तृषा अनुभव कर छाया से जल माँगती और जल-पात्र समीप रख घूँट भरना भूल जाती ।[2]" दिव्या की यहप्रेमदशा किसी रीतिकालीन नायिका की याद दिलानेवाली है । युद्ध में विजयी होकर लौट आनेवाले पृथुसेन से मिलने के लिए गर्भिणी दिव्या आतुर होती है । उसके प्राण प्रतिक्षण पृथुसेन को पुकारते रहते - आर्य, अपनी दिव्या और उसके शरीर में सौंपे अपने अंश की सुध लेने के लिए शीघ्र आओ ....[3] ।" पर घायल पृथुसेन की सेवा-शुश्रूषा में तत्पर सीरो के कुतंत्र से या विधि की विडम्बना से पृथुसेन से उसका मिलन एक बार भी न हो पाया । उसकी मधुर आशा घोर निराशा में परिणत हो गयी । वह सोचती है, यदि पृथ्वी फटकर उसे अपने गर्भ में आश्रय दे देती । वह त्राण पाने के लिए उत्पन्न ही नहीं हुई, इसीलिए तो उसे जन्म देनेवाली माँ भी उसे पृथ्वी पर छोड अन्तर्धान हो गयी ।

---

1. यशपाल - दिव्या, विद्यार्थी संस्करण, पृ. 74
2. वही, पृ.77
3. वही, पृ.78

सीरो और पृथुसेन के संसार भर में जिसे उसने अपना समझा, वही प्रवंचना कर रहा है ।"[1] वाग्दान के उत्सव का निमन्त्रण प्रासाद में आया तो वह स्तब्ध रह गयी । कुछ देर बाद निराशा के क्षीण स्वर में छाया से कहती है, "·····मैं सीरो के साथ सख्यभाव से सपत्नीत्व स्वीकार करूँगी । सभी कुलीन आर्यों के परिवार में अनेक पत्नियाँ है । क्या सीरो भी मेरे साथ आर्य की पत्नी नहीं बन सकती ? एक वृक्ष की छाया में अनेक प्राणी विश्राम पाते हैं, गजराज की अनेक पत्नियाँ होती हैं, उसी प्रकार आर्य की भुजा के आश्रय में हम दोनों ही रहेंगी[2] ।" फिर वह पूछती है, "आर्य के प्रासाद में बीसियों दासियाँ सेवाकार्यों केलिए हैं, क्या मेरे लिए कहाँ स्थान नहीं है ?[3] लेकिन यह भाग्य भी उसे न मिला । अंत में अपमानित हो उसे घर छोडना पडा । अपने प्रेमी को पाने का उसने शक्ति भर प्रयत्न किया, पर असफलता ही हाथ लगी । दिव्या का यह असफल प्रेमिका रूप अत्यन्त हृदयग्राहक है ।

नारी का माता रूप अत्यन्त महत्वपूर्ण है । दिव्या का यह रूप भी अत्यधिक हृदयग्राहक है । गर्भवती होने के साथ साथ उसमें मातृत्व का भाव भी जाग्रत होता है । अपने गर्भस्थ शिशु की रक्षा केलिए ही वह नगर छोड़ती है । धाता से उसका कथन है, "अम्मा, विवाह बिना गर्भ धारण कर मैं तात के प्रासाद में किस प्रकार रह सकती हूँ ? जिसका गर्भ है, उसी के यहाँ स्थान नहीं तो कहाँ स्थान होगा ? जहाँ, मेरा गर्भ है, वहीं मैं हूँ । कहीं भी स्थान न पाने पर दासी कर्म कर, अपने आपको बिक्री कर उदर के प्राणों की रक्षा करूँगी । देव की जो इच्छा हो[4] ।" दास-व्यवसायी प्रतुल के हाथों में पड़ने पर भी उसकी चिन्ता यही है - कहाँ आ गयी ? आगे क्या होगा ? प्रपितामह के प्रासाद में सब कुछ था परन्तु वहाँ पर अपराधिनी और कलंकिनी बन गयी । यदि वह अपराधिनी और कलंकिनी न बने तो

1· यशपाल - दिव्या - विद्यार्थी संस्करण, पृ·92
2· वही, पृ·93
3· वही, पृ· 93
4· वही, पृ·102

वह भृत्या दासी सभी कुछ बनने और सहने केलिए प्रस्तुत है ।
वह माता बन रही है, माता बन सके । उसे मालूम है कि मद्र की सीमा के परे दासत्व और उत्पीडन का पाश उसकी प्रतीक्षा कर रहा है । वह मौन रह कर अपनी अनुमति से उस पाश में बँध रही है । एक चीत्कार से, एक शब्द से वह उस यंत्रणा से रक्षा पा सकती है परन्तु वह जायगी कहाँ ? प्रतुल भी समझ लेता है कि इसकी संतान इस से छीन लेने पर इसे जीवित रखना कठिन होगा । अतः उस ने दास-व्यापारी भूधर को उसे बेच दिया। पुरोहित चक्रधर ने उसे खरीद लिया तो भी वह आश्वस्त थी; क्योंकि वह अपनी सन्तान का पोषण कर सकेगी । लेकिन वहाँ अपनी सन्तान को क्षुधित देख उसका हृदय रो उठा । वह द्विजपत्नी की दृष्टि की ओट होकर अपनी सन्तान को स्तन्यपान कराने का अवसर खोजती रहती । वह अपने स्तन के दूध की चोरी करने लगी । छाती में दूध होने पर भी स्वामी की सन्तान के मुख में स्तन देने से दूध उतर ही न पाता । चतुर द्विजपत्नी ने गाय से दूध लेने का आयोजन उसके संबंध में भी करने लगी । तो अपने पुत्र के प्रति ममता की अनुभूति से दारा के स्तनों से दूध और नेत्रों से जल बह चलता उससे स्वामी की सन्तान तृप्त होती । जब वृद्धा दासी लोमा से वह जान लेती है कि स्वामी और स्वामिनी ने शाकुल को कहीं दे डालने का निश्चय किया है, तब उस के सम्मुख मिट्टी के पात्र में रखा रूखा अन्न वैसे ही रह गया । अपनी सन्तान को छीन लिये जाने की आशंका से दारा ज्येष्ठ के मध्याह्न में अपने शाकुल को हृदय से लगाये तवे की भाँति तपे, पत्थर मढे पथ पर पुरोहित-गृह से निकल पडी । शाकुल की कोमलत्वचा को सूर्य के उत्तप्त बाणों से बचाने के लिए दारा ने शिशु को अपने छिन्न, जीर्ण, मलिन उत्तरीय में लपेट लिया । संघ में शरण न पा सकने पर उसने निश्चय किया कि अपनी सन्तान की रक्षा केलिए वह वेश्या बनेगी । उसे न पहचानकर मारिश भर्त्सना के स्वर में कहता है, माता का सम्मानित पद पाकर तू वेश्या बनकर समाज की शत्रु बनना चाहती है ।

धन के लोभ से अपना शरीर और अपनी मातृत्व की शक्ति बेचना चाहती है ? मारिश के निर्देशानुसार बाहुओं में निरन्तर चीत्कार करते शिशु और अपने शिथिल शरीर का बोझ उठाये कम्पित चरणों से कंगाल समूह में से श्रेष्ठी पद्मनाभ के अन्नक्षेत्र के द्वार की ओर बढनेवाली दारा पीछे से चक्रधर की ललकार सुनकर और लोगों को अपना पीछा करते देखकर जल में कूद पड़ती है। रत्नप्रभा से बचाये जाने पर अपनी संतान को निर्जीव जान कर वह मूर्च्छित होकर बजरे के काष्ठ पर लुढ़क जाती है। सन्तान के प्रति स्नेह की यहाँ पराकाष्ठा है, इस काण्ड से उपस्थित जनसमूह भी सिहर उठा था।

दास-व्यवसायी प्रतुल के हाथ में पड़कर द्विजकन्या दिव्या दासी दारा बन जाती है। तभी से उसके दासी-रूप का मार्मिक चित्रण मिलता है। दासी दारा अभी प्रसव वेदना से मुक्त न हो पायी थी कि दैव ने उसको दास व्यापारी भूधर के द्वारा पर भेज दिया। उस सद्यः प्रसूता दासी को पुरोहित चक्रधर ने सन्तान सहित पचास स्वर्ण-मुद्रा देकर खरीद लिया क्योंकि उसकी पत्नी एक बालक प्रसव करते ही विषम-ज्वर से पीड़ित हो गई, वैद्य ने रोगी माता का स्तन नवजात शिशु को देने का निषेध किया था। पुरोहित पुत्र को स्तन देने में उसे संतोष ही था, पर स्वामिनी की आज्ञा का पालन करने पर अपने पुत्र को क्षुधार्त देखना उसे सह्य नहीं था। अपनी सन्तान के प्रति दासी के मानसिक विश्वासघात के लिये स्वामिनी उसकी घोर प्रताड़णा करती। गोदोहन से पूर्व बछिया को गाय के स्तनों पर छोड दिया जाना, अपने स्तनों पर अपनी सन्तान के मुख का स्पर्श पाकर जब गाय स्तनों में दूध ढील देती, बछिया को गले की रस्सी से खींचकर गाय के खूँटे पर बाँध दिया जाना और उसका दूध द्विजपत्नी या दासी का पात्र में ले लेना, यही क्रिया दारा और शाकुल के साथ भी होती रही। तिस पर भी द्विजपत्नी की प्रताड़णा है - "तू कितनी दुष्ट और कुटिल है। अपने पाप का फल इस जन्म में दासी होकर भोग रही है और उस जन्म में स्वामी के प्रति विश्वासघात का दण्ड जाने

कितने जन्मपर्यन्त भोगेगी । पशु होकर भी यह गाय तुझसे अधिक धर्मशील है[1]।" इसका कोई उत्तर न देकर वह स्वयं ही अपनी तुलना गाय से करती । दासी होकर अपने शरीर को अपना समझना उस के विश्वास में पाप था परन्तु वह विवश थी । माता का कर्तव्य और दासी का कर्तव्य दोनों का संघर्ष स्थल हुआ उसका मन । अंत में माता की ही जीत हुई । विहार में शरण न मिलने पर मारिश के निर्देशानुसार श्रेष्ठी पदमनाभ के अन्नक्षेत्र की ओर बढनेवाली उस भागोडी दासी को पकडने केलिए चक्रधर की ललकार से लोग इकट्ठा हुए तो वह घबराकर शाकुल को हृदय से चिपकाएँ, पुन: पुरोहित के हाथ पडने की अपेक्षा मृत्यु ही श्रेय जान ऊँचे तट से जल में कूद पड़ी । "..... आर्ये, दासत्व असह्य है[2]।" रत्नप्रभा से दारा का प्रस्तुत कथन एक क्रीतदासी की तीव्र मनोव्यथा का परिचायक है ।

रत्नप्रभा से बचाये जाने के बाद दासी दारा का वेश्या अंशुमाला के रूप में पुनर्जन्म होता है । चेरी-धर्म ग्रहण करने केलिए स्थविर के पास जाने पर जब उसे मालूम हुआ कि अभिभावक की अनुमति के बिना संघ उसे शरण नहीं दे सकता तो वह स्थविर से कहती है, भगवान तथागत ने तो वेश्या अम्बापाली को भी संघ में शरण दी थी तब स्थविर का कथन है, "वेश्या स्वतंत्र नारी है, देवी[3]।" तभी से वह वाक्य उसके मन में जम गया और स्वतंत्र नारी वेश्या बनना ही फिर उसका लक्ष्य बना । अंशुमाला के रूप में लक्ष्य-साक्षात्कार भी हुआ, परन्तु द्रव्य और विलास के प्रवाह में संगीत और नृत्य के भंवर में वह हंसशावक की भांति अविक्षिप्त निर्लिप्त तैरने लगी । उसके दु:ख के दुर्भेद्य कवच के भीतर उस विलास और विनोद के भंवर के जल की एक भी बूंद न गई ।

---

1. यशपाल - दिव्या- विद्यार्थी संस्करण, पृ.122

2. वही, पृ.131

3. वही, पृ.128

रसिक समाज अंशुमाला की मोहक लास्य और चमत्कारपूर्ण कला पर निछावर होकर विभोर हो उठा । अमूल्य उपहारों की भेंट आने लगी; पर अंशुमाला यह कुछ न देखती । उसकी अन्तर्गत दृष्टि के सम्मुख शाकुल के क्षुधार्त भोले नेत्र उज्ज्वल हो उठते । शाकुल के वियोग से उसकी पीडा की पुकार श्रोताओं के हृदय में प्रवेश कर, करुणरस के गीतों के श्लेष को अनुभूति स्थूल सत्य का उग्ररूप देती । रत्नप्रभा के प्रासाद में अंशुमाला के प्रकट होने से मथुरा का रसिक समाज उसी प्रकार विभोर हो उठा जैसे निरन्तर घटाटोप मेघों और वर्षा से क्लान्त जनसमाज अंशुमाला के उदय से आश्वासन पाता है परन्तु अंशु उस स्तुति से पुलकित न हुई । उसकी विरक्ति और अंतर्वृत्ति में अंतर न आया । समाज में अपवाद, फैलने लगा - अंशुमाला वेश्या नहीं, केवल नृत्य की काष्ठ पुत्तलिका है । वह प्रस्तर के देवता के सम्मुख नृत्य का अनुष्ठान करने योग्य नृत्य का यंत्र-मात्र है । उसका लास्य, स्मित और कटाक्ष केवल कला का अनुष्ठान मात्र है, मनुष्य के संतोष की वस्तु नहीं । उसके अपने जीवन में कुछ नहीं, वह किसी केलिए कुछ नहीं । कामना के रूप में जीवन की ऊष्मा से वह हीन है । वह रत्नप्रभा की काष्ठ पुत्तलिका मात्र है[1] ।" रत्नप्रभा ने उसमें अपने व्यवसाय के प्रति आदर और निष्ठा का कर्तव्य-बोध जगाया तो अंशुमाला ने कर जोडकर सजल नेत्रों से अपराधी के समान कातर-कम्पित स्वर में उत्तर दिया - "स्वामिनी, यह तन तुमने क्रय किया है । मन स्वयं मेरे वश नहीं । तुम्हारी करुणा के अधीन मैं उसे भी तुम्हें अर्पण कर देना चाहती हूं । मैं आभारी हूं आज्ञा का पालन करूंगी[2] ।" मारिश से रत्नप्रभा अंशु के बारे में इस प्रकार कहती है, ..."उस वीतराग नर्तकी से निराश न होना । मन में समाये विषाद के कारण लास्यविलास उस के लिए केवल भृत्ति कार्य है[3] ।"

---

1. यशपाल - दिव्या, विद्यार्थी संस्करण, पृ.142
2. वही, पृ.143
3. वही, पृ.145

ऐसे अनेक उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि दिव्या का वेश्या-रूप निखरा नहीं है। आत्मनिर्भर रहने की आशा से अंशु मारिश की प्रेम-प्रार्थना अस्वीकार करती है। रुद्रधीर की प्रेम-प्रार्थना भी वह यह कहकर अस्वीकार करती है, "आर्य सागल के शैविल्यवंश की कुमारी दिव्या मतिभ्रम से अथवा भाग्य से जीवन की सरिता के अजाने प्रवाह में प्रवेश कर गयी। जब वह उस प्रवाह में से निकली तो यह वेश्या नर्तकी अंशुमाला है। वह अपने कौमार्य की पवित्रता भी खो चुकी। एक द्विजस्वामी के लिए अर्पित न होकर वह समाज और जन की सम्पत्ति बन गयी।[1]" स्वतंत्रता भी उस से छिन गयी। "मद्र में द्विजकन्या वेश्या के आसन पर बैठकर जन के लिए भोग्य बनकर वर्णाश्रम को अपमानित नहीं कर सकती।[2]" आचार्य भूशर्मा के आवेश-भरे इन शब्दों में आत्मनिर्भर बनने के उसके सारे प्रयत्न विफल हुए।

"कठोर धीर रुद्र धीर, कोमल, पृथुसेन, अभद्र मारिश और माताल वृक, नारी के लिए सब समान हैं। जो भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है, उस के लिये अन्यत्र शरण कहाँ ...[3] बातों से दिव्या का प्रस्तुत कथन एक अशरण नारी का उद्गार है। बचपन में मातृविहीना, दिव्या युवत्व के आरंभ में ही प्राणप्यारे से त्यक्ता हुई, वह गर्भवती नारी आश्रय की खोज में भटकी; दिव्या दासी दारा हुई, वेश्या अंशुमाला हुई और अंत में अभिषेक च्युत राजनर्तकी हुई। सब कहीं दुर्भाग्य उसका पीछा करता रहा। लेकिन आखिर उसे आश्रय मिला। संसार के धूलि-धूसरित मार्ग के पथिक मारिश ने उस के नारीत्व की कामना में अपना पुरुषत्व अर्पण करना चाहा, आश्रय का आदान-प्रदान करना चाहा, सन्तति की परम्परा के रूप में मानव की अमरता देना चाहा तो उस प्रताड़िता नारी के लिए सच्चा आश्रय दाता मिल गया।

---

1. यशपाल - दिव्या - विद्यार्थी संस्करण, पृ. 17।
2. वही, पृ. 214
3. वही, पृ. 103

उसने दोनों बाह फैलाकर आर्द्र स्वर में कहा - "आश्रय दो आर्य[1]।"

दिव्या के जीवन आकाश में दुर्भाग्य के काले मेघ उसी समय से मँडराने लगे थे, जिस समय उसने पृथुसेन को आत्मसमर्पण किया था। विवाह पूर्व आत्मसमर्पण के परिणामस्वरूप जो गर्भ हुआ, वही दिव्या की सारी पीडाओं का मूल है।" आर्य मोक्षा के सन्तान-प्रसव की बात जानकर दिव्या दीर्घनिश्वास लेकर सोचती है - आर्य मोक्षा का गर्भ परिवार के लिए उल्लास का कारण है और मेरा गर्भ कलंक का क्योंकि मेरे गर्भ का पिता नहीं। दिव्या का यह दीन-रूप समस्त नारी-जाति को चेतावनी देता है। दिव्या द्वारा उपन्यासकार, नारी की विवशता के प्रति हमारे अन्तकरण को उद्‌बुद्ध करते हैं और नारी समस्या की सामाजिक पृष्ठभूमि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।

दिव्या के चरित्र की उदात्तता और पवित्रता के कारण ही वह पाठक की सहानुभूति पाती है। रत्नप्रभा के प्रासाद में वासनामय मोहक वातावरण में उसने जिस स्थिरता का परिचय दिया है, वह अनुपमेय है, जीवन के साधारण स्तर से ऊँचा है। लेखक की प्रगतिवादी और मार्क्सवादी विचारधारा के अनुरूप ही दिव्या अंत में पृथुसेन और रुद्रधीर की प्रार्थना का तिरस्कार करके धूलि धूसरित मार्ग के प्रार्थक मारिश के आश्रय में आती है।

सुधा

सुधा श्री· धर्मवीर भारती के प्रथम उपन्यास "गुनाहों का देवता" की नायिका है। वह डॉ· शुक्ला की इकलौती बेटी है। डॉक्टर का शिष्य चन्द्रकपूर उन्हीं के यहाँ रहकर रिसर्च कर रहा है।

1· यशपाल - दिव्या, विद्यार्थी संस्करण, पृ·220

"दुबली-पतली, नाटी-सी साधारण-सी लड़की, बहुत सुन्दर नहीं, केवल सुन्दर, लेकिन बातचीत में बहुत दुलारी - यह है सुधा का चित्र । "यह नन्हीं दुबली - पतली चन्द्रकिरण सी सुधा जब तीन बरस की थी, तभी उसकी माँ इस लोक से चल बसी थी और दस साल तक वह अपनी बुआ के पास एक गाँव में रही थी । जब वह तेरह की हो गयी और सातवाँ पास हो गयी तो गाँव की औरतों ने उसकी शादी न होने के कारण हाथ नचाना और मुँह मटकाना शुरू किया । तब डॉक्टर ने उसे इलाहबाद बुलाकर आठवें में भर्ती करा दिया । उस समय वह बहुत शर्मीली और भोली थी । आठवें पढने के बावजूद वह खाना खाते वक्त रोती थी, मचलती थी तो अपनी कापी फाड डालती थी और जब तक डॉक्टर साहब उसे गोदी में बिठाकर नहीं मनाते थे, वह स्कूल नहीं जाती थी । तब वह आधी जंगली थी । तरकारी में घी कम होने पर वह महाराजिन का चौका जूठा कर देती थी और रात में फूल न तोड कर लाने पर अक्सर उसने माली को दाँत भी काट खाया था । लेकिन वह चन्दर से बेहद डरती थी । कभी कभी डॉक्टर साहब को गुस्सा आता था । पिता और पुत्री का समझौता करानेवाला चन्दर था । चन्दर के आँख के इशारे पर वह सुबह की नसीम की तरह शान्त हो जाती थी । दोनों का एक दूसरे के प्रति अधिकार और आकर्षण इतना स्वाभाविक था जैसे शरत् की पवित्रता और सुबह की रोशनी । पहले चन्दर को देखकर छिप जानेवाली सुधा फिर बहुत ढीठ हो गयी । वह दूसरों के सामने शान्त, विनम्र और मिष्ट भाषिणी हो गई थी, पर चन्दर को देखकर जैसे उसका बचपन फिर लौट आता था और जब तक वह चन्दर को खिझाकर, छेड़कर लड नहीं लेती थी, उसे चैन नहीं पडता था । वह अपने घर की पुरखिन थी, थोडी-बहुत इंजिनीयरिंग कर लेती थी और उस में मातृत्व का अंश भी इतना था कि

१· धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ·१९-२०

हर नौकर और नौकरानी उससे अपना सुख दुःख कह देते थे। पढ़ाई के साथ घर का सारा कामकाज करते हुए उस का स्वास्थ्य भी कुछ बिगड गया था और अपनी उम्र के हिसाब से कुछ अधिक शान्त, संयत, गंभीर और बुजुर्ग थी, मगर अपने पापा और चन्दर, इन दो के सामने हमेशा उसका बचपन इठलाने लगता था। दोनों के सामने उसका हृदय उन्मुक्त था और स्नेह बाधाहीन।[1] पापाजी उसका जितना ख्याल करती थी, उतना ख्याल वह चन्दर का करती थी[2]। चन्दर से पूछे बिना वह कहीं भी न जाती थी।

गेसू सुधा की अंतरंग सखी थी। वे दोनों एकांत में दुनिया भर की बातें करती रहतीं। "गेसू शायर होते हुए भी इस दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पनालोक की थी[3]। सुधा बहुत कम बोलती थी, लेकिन उसकी हँसी ने उसे खुशमिजाज़ साबित कर रखा था और वह सभी की प्यारी थी[4]।" सुधा खुद नहीं जानती कि उसका मन चन्द्र कपूर की ओर झुका है या नहीं[5]। सुधा और गेसू के वार्तालाप से यह बात प्रकट होती है। "लेकिन कपूरसाहब एक तेज़ तीखे काँटे हैं जो दिन रात सुधा के मन में चुभते रहते हैं, यह तो दुनिया को नहीं मालूम[6]।" सुधा की दृष्टि में चन्दर की दोस्त पम्मी बेहद सरल, भोली और अच्छी है। वह सोचती है कि इतनी पढी-लिखी लडकी के लिए भी चन्दर रोशनी का देवदूत है। चन्दर पर सुधा को भी गर्व है। अपनी बुआ की बेटी बिनती को भी वह बेहद प्यार करती है। चन्दर को मालूम था कि उसके व्यक्तित्व की पवित्रता सुधा की ही दी हुई है। उसी ने तो उसे सिखाया है कि पुरुष और नारी में कितने ऊँचे संबंध रह सकते हैं[7]।

---

1. डॉ. धर्मवीर भारती _गुनाहों का देवता, पृ.20-21
2. वही, पृ.21
3. वही, पृ.44
4. वही, पृ.45
5. वही, पृ.70
6. वही, पृ.83
7. वही, पृ.118

चन्दर सुधा से कहता है, "...... मेरी ज़िन्दगी में एक ही विश्वास की चट्टान है । वह हो तुम । [1]।" और सुधा चन्दर से कहती है, "........ मुझे अपने चन्दर पर पूरा विश्वास है । मरते दम तक विश्वास रहेगा । ..... [2]।" दोनों के परस्पर विश्वास का इससे बडा प्रमाण क्या हो सकता है ?

कैलास नामक युवक से सुधा के विवाह की चर्चा शुरू हुई तो सुधा विरोध करने लगी । पहले ही एक बार उसने गेसू से कहा था कि वह विवाह करना नहीं चाहती क्योंकि उसे अपने पापा का ध्यान रखना चाहिए[3] । वही पापा उसका विवाह कराना चाहते हैं तो वह क्या करे ? वह अपने प्यारे पिता का दिल दुःखाना नहीं चाहती । यहाँ उसका पितृप्रेम दर्शनीय है । एक ओर पिता के प्रति प्रेम उसे विवाह केलिए बाध्य करता है तो दूसरी ओर चन्दर का आदेश । पहले उस ने चन्दर के पैरों पकड़कर कहा था, चन्दर, सचमुच मुझे अपने आश्रय से निकालकर ही मानोगे ! चन्दर ! मज़ाक की बात दूसरी है, ज़िन्दगी में तो दुश्मनी मत निकाला करो[4]।" आखिर वह चन्दर का कहना मानती है और कहती है, "...... मैं खुश रहूँगी, सबल रहूँगी और सशक्त रहूँगी और जो रास्ता तुम दिखाओगे उधर ही चलूँगी । ....."[5]। लेकिन घर के उल्लासपूर्ण वातावरण में सुधा की स्थिति रेशम के कीडे के समान थी । वह "बदल गई थी । गोरा चम्पई चेहरा पीला पड़ गया था, और लगता था जैसे वह बीमार हो । खाना उसे ज़हर लगने लगा था, अपने कमरे को छोड़कर कहीं जाती न थी[6]।" ऐसा लगता था जैसे सुधा का

---

1. डॉ॰धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ॰125
2. वही, पृ॰126
3. वही, पृ॰49
4. वही, पृ॰150-151
5. वही, पृ॰172 - 173
6. वही, पृ॰188

सब कुछ लुट चुका है । शादी की वेदी पर बैठी हुई सुधा को देखिए, "चन्दर ने जाने क्या कहा और सुधा ने आँखों ही आँखों में उसे जाने क्या जवाब दे दिया । उस के बाद सुधा नीचे रखे हुए पूजा के नारियल पर लगे हुए सिन्दूर को देखती रही और फिर एक बार चन्दर की ओर देखा । विचित्र-सी थी वह निगाह, जिस में कातरता नहीं थी, करुणा नहीं थी, आँसू नहीं थे, कमज़ोरी नहीं थी, था एक गंभीरतम विश्वास, एक उपमाहीन स्नेह, एक सम्पूर्णतम समर्पण । लगा जैसे वह कह रही सचमुच तुम कह रहे हो, फिर सोच लो चन्दर इतने दृढ हो इतने कठोर हो मुझ से मुँह से क्यों कहलवाना चाहते हो क्या सारा सुख लूटकर थोडी सी आत्म-वंचना भी मेरे पास नहीं छोडोगे ? अच्छा लो मेरे देवता । और उसने हारकर सिसकियों से सने स्वरों में अपने को कैलास को समर्पित कर दिया । प्रतिज्ञायें दोहरा दीं और उस के बाद साडी का एक छोर खींचकर छिपाकर नथ की डोरी ठीक करने के बहाने उसने आँसू पोंछ लिए[1] ।"

"माँग और माथे में सिन्दूर, कलाई में कंगन, हाथ में अंगूठियाँ, कडे, चूडे, गले में गहने, बडी सी नथुनी डोरे के सहारे कान में बँधी हुई, आँखें - जिन में भादों की घटाओं की गरज खामोश हो रही बरसात सी सो गयी थी[2] ।" यह है विवाह के बाद सुधा का चित्र । चन्दर से उसका यह कथन कितना मार्मिक है - "मुझे किसी का डर नहीं, तुम जो कुछ दण्ड दे चुके हो, उससे बड़ा दण्ड तो अब भगवान भी नहीं दे सकेंगे[3] ।" "शायद मौत के बाद का घर भी इतना नीरव और इतना भयानक न लगता होगा जितना यह शादी के बाद का घर[4]" बिनती के लिए भी अपनी दीदी का वियोग असह्य था । सुधा दूर हुई तो चन्दर ने भी देखा कि अपनी ज़िन्दगी केलिए सुधा साँसों से भी अधिक आवश्यक थी ।

---

1. धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ.200

2. वही, पृ.202

3. वही, पृ.202

विवाह के छ: महीने बाद सुधा ने चन्दर को जो पत्र लिखा, उससे ज्ञात होता है कि सुख-सुविधाओं के बीच में भी वह असन्तुष्ट और परेशान है । उसने अपने हृदय की बात स्पष्ट लिखने का साहस दिखाया, "मेरी आत्मा सिर्फ तुम्हारे लिए बनी थी, उस के रेशे में वह तत्व है जो तुम्हारी ही पूजा केलिए थे । तुम ने मुझे दूर फेंक दिया, लेकिन इस दूरी के अंधेरे में भी जन्म-जन्मांतर तक मैं भटकती हुई सिर्फ तुम्हीं को ढूँढूँगी, इतना याद रखना[1] ।"

सुधा के अनुसार कैलास बहुत अच्छे हैं, उनका व्यवहार भी बहुत बहुत अच्छा है । चन्दर से वह कहती है, "चन्दर, मैं किसी की पत्नी हूँ । यह जन्म उनका है । यह माँग का सिन्दूर उनका है । इस शरीर का शृंगार उनका है । .....[2] ।" कैलास भी मानता है कि सुधा का चरित्र सोने का है और ऐसे चरित्र निर्माण केलिए वह चन्दर को बधाई देता है[3] । कैलास के अनुसार, माताजी भी अपनी बहू पर मरती है और माताजी के पूजा कार्यों में सहायता देती देती बहू भी उनसे अधिक पक्की पुजारिन बन गयी है । आगे वह कहता है, "उन जैसी लड़की केलिए तुम कोई कवि या कलाकार या भावुक लड़का ढूँढते तो ठीक था । मेरे जैसे व्यावहारिक और नीरस राजनीतिक इनके उपयुक्त नहीं है । घर भर इनसे बेहद खुश है । जब से यह गयी है, माँ और शंकर भैया दोनों ने मुझे नालायक करार दे दिया है । इन्हीं से पूछकर सब करते हैं, लेकिन मैं ने जो सोच रखा था वह मुझे नहीं मिल पाया[4] ।" कैलास का मत है कि सुधा को धर्म और साहित्य से जितनी रुचि है, उतनी राजनीति से नहीं, अत: वह कैलास के व्यक्तित्व को ग्रहण नहीं कर पाती । "....... वैसे मेरी शारीरिक प्यास को उन्होंने

---

1. धर्मवीर भारती, गुनाहों का देवता, पृ.263
2. वही, पृ.319
3. वही, पृ.333
4. वही, पृ.334

चाहे समर्पण किया, वह भी एक बेमनी से, उससे तन की प्यास भले बुझ जाती हो कपूर, लेकिन मन तो प्यासा ही रहता है .....।[1]" सुधा को सुखी रखने का भरसक प्रयत्न करने पर भी वह अक्सर दुःखी हो जाती है। कैलास को इस बात का दुःख है कि यद्यपि सुधा उसकी जायज़ नाजायज़ हर इच्छा के सामने झुकती है, तो भी सुधा के दिल में उस के लिए कोई जगह नहीं है वह जो एक पत्नी के मन में होती है। ......[2]।" इन बातों से स्पष्ट है कि सुधा अपने पति को तन देती है, पर मन नहीं देती।

धर्म के बहाने उपवास करके सुख पानेवाली सुधा इस बात पर अपना खेद प्रकट करती है कि वह इस जन्म में चन्दर को पाकर उसके चरणों पर अपने को चढा न पाई। इसे वह अपना दुर्भाग्य समझती है और अपने व्यक्तित्व को गर्हित और छिछला समझती है।[3] हिन्दू नारी के संबंध में उसका मत है, "....... हिन्दू नारी इतनी असहाय होती है, उसे पति से, पुत्र से, सभी से इतना लांछन, अपमान और तिरस्कार मिलता है कि पूजापाठ न हो तो पशु बन जाये। पूजापाठ ही ने हिन्दू नारी का चरित्र अभी तक इतना ऊँचा रखा है।[4]" अविश्वास, संशय आदि पापों से विमुक्त होकर शान्ति पाने के लिये धर्मग्रंथों का पारायण सहायक है - ऐसा उसका विश्वास है[5]।

अंत में चन्दर को अपने देवत्व के खोखलापन का पता चलता है और वह गुनाहों का शिकार होता है। सुधा को भी अपने पर ग्लानि होती है। वह स्वीकार करती है, "..... शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की

---

1. धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ.334
2. वही, पृ.335
3. वही, पृ.342
4. वही, पृ.343
5. वही, पृ.343-344

प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का सन्तुलन आत्मा से है। जो आत्मा और शरीर को अलग कर देता है वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूर चूर हो जाता है। चन्दर, मैं तुम्हारी आत्मा थी। तुम मेरे शरीर थे। पता नहीं, कैसे हम लोग अलग हो गये। तुम्हारे बिना मैं केवल सूक्ष्म आत्मा रह गयी। शरीर की प्यास, शरीर की रंगीनियाँ मेरे लिए अपरिचित हो गयीं। पति को शरीर देकर भी मैं सन्तोष न दे पायी और मेरे बिना तुम केवल शरीर रह गये। शरीर में डूब गये पाप का जितना हिस्सा तुम्हारा उतना ही मेरा पाप की वैतरणी के इस किनारे जब तक तुम तड़पोगे, तभी तक मैं भी तड़पूँगी ..... दोनों में से किसी को भी चैन नहीं और कभी चैन नहीं मिलेगा .....।[1]" चन्दर को भी कहना पड़ा, "...... तुम्हें खोकर, तुम्हारे प्यार को खोकर मैं देख चुका हूँ कि मैं आदमी नहीं रह पाता। जानवर बन जाता हूँ। ....।[2]" दोनों की घोर निराशा ही दोनों के उपर्युक्त कथनों में प्रतिबिम्बित होती है। सुधा तो इतनी पीली पड़ जाती है कि देखकर पिता को अगाध दुःख होता है। वह गर्भवती होती है और गर्भपात के कारण अकाल में ही परलोक सिधर जाती है।

आदर्शवादी रोमाँटिक युवक चन्दर की अनन्य आराधिका बनकर असीम दुलार, वैभव और स्नेह में पली भोली भाली सुधा पवित्र प्रेम की मरीचिका के पीछे दौड़कर, थककर कल्पनालोक से यथार्थलोक में तब वापस आई जब अवसर हाथ से खो चुका था। आदर्श और यथार्थ के बीच समझौता न कर

---

1. धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ.346
2. वही, पृ.346

पाने के कारण प्रेमिका और पत्नी दोनों रूपों में उसे व्यथा ही मिली । कवि धर्मवीर भारती के उपन्यास की यह नायिका भावुकता में एक काव्य नायिका से भी बढ़कर है ।

मृणाल

श्री॰ जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास "त्यागपत्र" की सुन्दरी नायिका मृणाल के माता-पिता जीवित नहीं रहे, अतः भाई के साथ वह रहती थी । उसकी सहेली थी शीला । शीला को वह बहुत प्यार करती थी । एक बार शीला ने मास्टर साहब की कुर्सी में पिन चुभो दिया तो मृणाल वह अपराध अपने सिर पर ले लेती है । अपने भतीजे प्रमोद को भी वह अत्यधिक प्यार करती थी । वह प्यार देना जानती थी; लेकिन बचपन से ही वह प्यार से वंचित थी । बचपन में ही माता-पिता की मृत्यु होने के कारण उनका प्यार उसे न मिला । भाई से उसे कुछ कुछ प्रेम मिला था । पर भाभी का व्यवहार स्नेहहीन था । अपनी सहेली शीला के भाई से कुछ काल तक प्रेमसंबंध रहा । वह भी स्थायी नहीं था ।

बेमेल विवाह के कारण गृहस्थ-जीवन में भी उसे सन्तोष नहीं मिला । पति के विचार उसके विचारों से भिन्न थे । उसे पति के द्वारा कई यंत्रणायें दी जाने लगी, तो भी वह सब चुपचाप सहन कर लेती है । उसमें विद्रोह का भाव जागृत नहीं होता । वह पतिधर्म को निबाहती रहती है । फिर भी पतिगृह से वह निष्कासित हुई । इस के संबंध में मृणाल का मत है, "पति को मैं ने नहीं छोडा । उन्होंने ही मुझे छोडा है । मैं स्त्री धर्म को पतिव्रत धर्म मानती हूं । उस का स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती ।

क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उसपर डाले रहे ? वह मुझे नहीं देखना चाहते, यह जानकर मैं ने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया । उन्होंने कहा "मैं तेरा पति नहीं हूँ, तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती ? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है।[1] पतिव्रत धर्म की एक नयी व्याख्या ही यहाँ दी गई है ।

पतिपरित्यक्ता होने पर भी वह आत्महत्या नहीं करती । कोयलेवाले को आत्मसमर्पण कर के उसके साथ रहती है । कोयलेवाला अपना सब कुछ भूलकर, अपना परिवार छोड़कर मृणाल के साथ रहता है । उसके प्रति मृणाल के मन में अपार सहानुभूति थी । पर जब वह गर्भवती हुई तो कोयलेवाला भाग जाता है । अत: उसे आगे भी अनेक यंत्रणायें सहनी पड़ीं ।

फिर वह एक डॉक्टर के यहाँ मास्टरनी होती है । उसी घर में प्रमोद के विवाह की बातचीत चल रही थी । प्रमोद से उसकी मुलाकात होती है और वह अपनी बीती उसे सुनाती है । उसके मना करने पर भी प्रमोद उस घर के लोगों से सारी बातें कहता है । फलस्वरूप प्रमोद का विवाह-भी ही नहीं होता, मृणाल की नौकरी भी छूट जाती है । उसकी बच्ची की मृत्यु होती है । दर-दर की ठोकरें खाने के बाद अंत में उस का देहांत होता है ।

घोर यातनायें सहने पर भी वह समाज के विरुद्ध न बोलती । उसका अभिप्राय है - "समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या किसके भीतर बिगड़ेंगे ? इसलिए मैं इतना ही कह सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ[2] । "

---

1. जैनेन्द्रकुमार - त्यागपत्र, पृ.68-69

2. वही, पृ.80

मृणाल के चरित्र-निर्माण के बारे में श्री॰ सुरेश सिन्हा की राय है - "जैनेन्द्र स्वभावत: गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान में सम्पूर्ण आकृति को पहले महत्ता दी गयी है, रेखाओं को बाद में। क्योंकि उनके मतानुसार अलग अलग रेखाओं का न तो कोई अस्तित्व ही है, न कोई महत्व ही है। हम स्वभावत: किसी वस्तु को एक समष्टि या इकाई के रूप में देखते हैं। हम उसे खण्डित रूप में नहीं देखते। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान में उत्तेजना और प्रतिक्रिया के शब्दों में व्यवहार की व्याख्या पसन्द नहीं की जाती। जैनेन्द्र ने यही ग्रहण किया है और तदनुकूल मृणाल का चरित्र निर्मित होता है[1]।"

जैनेन्द्रकुमार गाँधीवादी थे। इसलिए उन्होंने अहिंसात्मक रूप से समस्याओं का समाधान करना चाहा। अत: मृणाल को उन्होंने अपार सहिष्णु बनाया है। श्री॰ सुरेश सिन्हा के अनुसार "मृणाल की संवेदनशीलता, उसकी भावुकता, चरित्र की गंभीरता सभी कुछ जैसे पैने अस्त्र की भाँति पाठकों के हृदय को चीरते चलते हैं, और सभी जैसे यह समस्या प्रस्तुत करते चलते हैं कि नारी क्या इसलिए प्रताड़ित है, निर्दयता का शिकार है, कि आर्थिक रूप से वह परतंत्र है, पुरुष के आश्रित है[2]?"

मृणाल के चरित्र की विशेषता यह है कि वह समाज के विरुद्ध कुछ करने का विचार न रखती पर परम्परा की लीक पर ही चलती भी नहीं। उसकी हर बात में उसकी निजी विचारधारा है। पलायनवाद की प्रवृत्ति उस में नहीं है। मरते दम तक व्यथा उसकी सहगामिनी थी। तो भी उसने मन का संतुलन न खोया था।

---

1. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ॰182
2. वही, पृ॰184

शैलबाला

सशस्त्र क्रांति के समर्थक उपन्यासकार यशपाल जी ने अपने उपन्यास "दादा कॉमरेड" में एक क्रांतिकारिणी नायिका का चित्रण किया है। वह है लाला ध्यानचन्द की पुत्री शैलबाला। वह एम.ए. में पढती है। क्रांतिकारी हरीश का प्रभाव उस पर पड़ता है।

इस चंचल नारी में प्रेम करने की रुचि थी, लेकिन उसके प्रेम में स्थिरता दिखाई नहीं देती। वह इतनी निष्कलंक है कि अपनी प्रेम कहानी कहने में उसे ज़रा भी संकोच नहीं। बारह तेरह वर्ष की आयु में ही पड़ोस के एक लड़के से उसने एक पत्र पाया। इस से वह नाराज न हुई। इसका मत है "....... यदि मैं किसी की दृष्टि में भली जंचती हूं, कोई मुझे चाहता है तो उसे क्रोध क्यों दिखाऊं? [1]" इस प्रकार प्रेम का आरंभ हुआ। पर शैल का दूसरे लड़कों से हंसना-बोलना उसे पसन्द नहीं था। अतः वह प्रेम समाप्त हो गया। कालेज में पढते समय महेन्द्र से प्रेम होता है, परन्तु उसका विवाह हो गया। इस प्रेम के परिणाम की समस्या को दवाइयाँ खाकर उसने सुलझाया। फिर खन्ना की ओर वह झुक गयी। लेकिन जब खन्ना को मालूम हो गया कि शैल ने केवल मन नहीं, तन भी महेन्द्र को दिया था तो वह उससे विमुख हो गया। फिर रोबर्ट से प्रेम हुआ। हरीश से परिचय हुआ तो उसे भी प्रेम करने लगी। इस प्रकार एक के बाद एक होकर कई पुरुषों से प्रेम करने में उसे संकोच का अनुभव नहीं होता था। बी.एम. के बारे में हरीश से उसका कथन है, "...... पुरुष तो चाहते हैं, स्त्री को निगल जायें [2]।"

---

1. यशपाल - दादा कॉमरेड, पृ.37
2. वही, पृ.31

प्रथम दर्शन में ही यशोदा को शैल के प्रति कौतूहल और आकर्षण दोनों अनुभव हुए क्योंकि वह बिलकुल नये ढंग की थी । यशोदा को भी वह घर की चहार दीवारी के बाहर आने की प्रेरणा देती है, "वाह, आप घरमें ही कैद रहेंगी ? फुर्सत मिलेगी कहाँ से ? चूल्हे-चौके और बच्चों के सिवा अपनी भी तो ज़िन्दगी होनी चाहिए[1] ।" यशोदा के पति के मन में शैल के प्रति अच्छा भाव नहीं था, उनका विचार है, "शैलबाला तो जिधर आठ दस जवान लड़के रहते थे, उसी ओर रहती थी[2] ।" यशोदा का ऐसी लड़की से सम्पर्क उसे पसन्द नहीं था । हड़ताल के दिनों में यशोदा के घर में प्रवेश करने की अनुमति शैल को नहीं मिली । नौकर के द्वारा इस प्रवेश-निषेध की बात जानकर शैल को दुःख हुआ । "उसे कभी स्वप्न में भी आशा न थी कि वह सब ओर से इस प्रकार दुत्कार की जायगी[3] ।"

विवाह को गुलामी मानने पर भी हरीश के इस कथन पर कि "..... विवाह का दमनकारी बन्धन दूर कर देने पर स्त्री पुरुष अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहेंगे[4] ।" शैल सहमत नहीं होती । उसका कहना है कि एक सीमा तो होनी ही चाहिए । राबर्ट के सम्मुख हरीश के प्रति वात्सल्य का भाव प्रकट करने की स्वतंत्रता के कारण कृतज्ञ हो वह सोचती है, "..... क्या यह उचित होगा, समझदारी होगी विवाह के बाद भी[5] ।"

हरीश के प्रति अपने भाव को वह यों व्यक्त करती है, "...... तुम्हें पहचानने के बाद ऐसा जान पड़ा, मानों बहुत दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा में थी । जैसे पूर्वजन्म का बिछड़ा कोई साथी आ मिला । समझ नहीं सकी, भाई, मित्र, सन्तान या पति तुम से कौन संबंध था ? xx xx xx क्या मनुष्य हृदय का

1· यशपाल - दादा कामरेड, पृ·24
2· वही, पृ·115
3· वही, पृ·154
4· वही, पृ·101
5· वही, पृ·105

स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना ज़रूरी है ? [1]।"
जब हरीश ने स्त्री के आकर्षण को पूर्ण रूप से अनुभव करने की इच्छा प्रकट की तो, उस इच्छा की पूर्ति के लिए वस्त्र उतारते समय शैल सोचती है, "मृत्यु के मुख में फँसा हुआ यह लड़का जो बात कहता है, उस की उपेक्षा कैसे की जाय ?"[2]
नैनसी हरीश को चाहती थी; लेकिन हरीश ने उपेक्षा का भाव दर्शाया तो नैनसी को शैल से ईर्ष्या होती है। उसका हृदय शैल के प्रति घृणा से भर जाता है। वह सोचती है, "इसका सम्पूर्ण सार्वजनिक कार्य केवल उच्छृंखलता का बहाना है। हरीश पर डोरे डालने के लिए हमारी कोठी को अड्डा बना लिया है।
हमें इस झंझट से मतलब ? ×× ×× ×× वह समझ नहीं सकी कि वह क्या चाहती है ? वह स्वयं अपने सम्मुख एक पहेली बन गई[3]।
अपने प्रेमियों के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने में भी शैल को हिचक नहीं थी। हरीश के सामने भी उसने आत्मसमर्पण किया। फलस्वरूप विवाह के बिना ही वह गर्भवती हुई।

शैल के कारण उसके पिता अत्यधिक दु:खी होते हैं। वे कहते हैं, "........ मैं ने कभी तुम्हारे विचारों पर बन्धन नहीं लगाया। तुम्हारे मानसिक विकास पर कोई रोक लगाना मैं ने उचित नहीं समझा; परंतु बेटा, इस मामले में तुम भूल कर रही हो। .....[4]।" कुछ लोग शैल को "उत्साही और त्यागी कार्यकर्ता बताते थे; कुछ कहते थे कि वह नये नये लड़कों से मिलने की शौकीन है। अब उसने निन्दा और स्तुति की चिन्ता छोड दी थी। अब तक वह अपने पिता की राय की कद्र करती थी, उनसे डरती थी परन्तु

---

1. यशपाल - दादा कॉमरेड, पृ. 109
2. वही, पृ. 112
3. वही, पृ. 142-143
4. वही, पृ. 147

अब उसने उनकी परवाह भी छोड दी थी । उस के पिता भी चुप थे । वे उसे स्वतंत्रता देते थे परन्तु लड़की की निजी आवश्यकता के अलावा रुपया बिलकुल न देते थे[1] । बाद में शैल ने भी पिता से कौडी पाई तक न लेने का निश्चय किया । कपडा-मिलों में हड़ताल के अवसर पर रुपयों की ज़रूरत हुई तो दादा ने डकैती के रुपये उसे दे दिये । तब उसे अपने पिता का उपदेश याद आया । बचपन में अपनी गोद में बैठाकर दाँतों तले उँगली दबाकर वे उसे समझाते थे - "बेटा, झूठ और चोरी महापाप है । इस से मनुष्य को सदा दुःख होता है[2] ।" शैल पिता के दुःख और कष्ट का कारण समझती थी । पिता के प्रति उसके हृदय में अगाध श्रद्धा और प्रेम था । एक ओर हरीश के प्रति उस का प्रेम और उस की वफादारी खींचती दूसरी ओर पिता के प्रति कर्तव्य था । पिता के लिए लड़की का डाकुओं से सहानुभूति कर उन से मिलने के लिए अदालत जाना असह्य था[3] ।" अपने पिता के वात्सल्य की स्मृति से एक दीर्घ निश्वास लेकर वह सोचती है कि पीछे की ओर देखने से काम न चलेगा, आगे की ओर भी देखना होगा । हड़ताल की जीत तो हो गयी, पर हरीश और उसके साथी अख्तर और कृपाराम को फाँसी की सज़ा दी गई । यशोदा, शैल, अख्तर की बीबी आदि अदालत में थीं । अदालत से लौटने पर शैल को ज्वर चढा । उसके गर्भिनी होने की बात जानकर पिता ने उस से और किसी जगह जाने को कहा । उनकी मार्मिक उक्ति है, "...... मैं चाहता था कि तुम संसार की परिस्थितियों का सामना करने योग्य बनो । इस के अतिरिक्त मुझे तुम पर विश्वास था, अनन्त विश्वास, शायद अंधविश्वास था । विचारों के भेद की मैं ने कभी परवाह न की । ....[4] ।" इतना होने पर भी शैल अपने को

---

1. यशपाल - दादा कॉमरेड, पृ.163
2. वही, पृ.166
3. वही, पृ.170
4. वही, पृ.181

कलंकिनी न समझती । पिता से उसका कथन है, "...... आपका सब से बड़ा वरदान मुझे स्वतंत्रता के रूप में मिला है । जो कुछ भी मैं ने किया, उस में केवल विचारों का ही भेद है । मैं अपने किसी भी काम के लिए अपनी बुद्धि के सामने लज्जित नहीं हूं । मुझे पछतावा भी नहीं है । यदि मैं अपने आपको कलंकिनी समझती तो अपना जीवित मुख संसार को कभी न दिखाती ।"[1] वह अपने पिताजी से आर्शीवाद चाहती है । अपने को आर्शीवाद के योग्य समझती है; क्योंकि स्त्री होने के नाते अपने प्राकृतिक अधिकार से कुछ अधिक उसने नहीं लिया है ।

जिस शैल ने पहले एक बार कहा था, "..... स्त्री की सब से बडी मुसीबत तो यह है कि उसे संतान पैदा करनी है । इसलिए पुरुष जमीन के टुकडे की तरह उस पर मिल्कियत जमाने के लिए व्याकुल रहता है ।"[2] वही शैल अपने अनैतिक संबंध के फलस्वरूप गर्भ में आये संतान को लज्जाजनक न मानकर उसका वहन करती हुई ऐसा कहकर दादा के साथ निकलती है कि "दादा जोत कभी नहीं बुझती । हम चलेंगी, जोत को जारी रखेंगी । मुझे ले चलो ।"[3]

कुछ लोग शैल के आचरण में उच्छृंखलता ही देखते हैं । डॉ॰ सुरेश सिन्हा तो शैल के स्वच्छन्द आचरण को हास्यास्पद ही मानते हैं[4] । उनका मत है, "शैला का पूर्ण जीवन इस प्रकार अतृप्त आकांक्षाओं, दमित शमित भावनाओं का बलबलाता सैलाव, और वासना एवं हवस की कहानी है ।

शैला की परिकल्पना में लेखक को पश्चिम में बढते हुए आदर्श और वहां के प्रेम एवं सेक्स के समन्वय से बडी प्रेरणा प्राप्त हुई है, पर शैल के माध्यम से उसने समाज की अस्वस्थ मान्यताओं को बल दिया तथा नारियों के

---

1. यशपाल - दादा कॉमरेड, पृ॰181
2. यशपाल - दादा कॉमरेड, पृ॰32
3. वही, पृ॰184
4. डॉ॰ सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ 151

समक्ष एक आदर्श उपस्थित करने के बजाय उन्हें गलत दिशा में ले जाने का प्रयत्न किया है[1]।"

शैल को उच्छृंखल मानकर यशपाल पर अश्लीलता का आरोप करनेवालों केलिए यशपाल जी की ही निम्नलिखित पंक्तियाँ पर्याप्त समाधान है, "आवरण के कुछ प्रेमियों को शैल के व्यवहार में नग्नता दिखाई देगी। इस प्रकार का चरित्र पेश करना वे आदर्श की दृष्टि से घृणित समझेंगे। हो सकता है, शैल उनकी सहानुभूति न पा सके। परन्तु यह शैल है कौन ? "दादा कॉमरेड की शैल स्वयं कुछ न होकर घृणा से नाक-भौं सिकोड़ने वालों की अतृप्त परन्तु जागरूक, सक्रिय प्रवृत्ति ही है। समाज में मनुष्य की यह प्रवृत्ति अपना काम किये जा रही है। इस देश और संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या इस बात का अकाट्य प्रमाण है। उस प्रवृत्ति को घृणित समझकर उसे तृप्त करने की चेष्टा करके भी, उस की निन्दा करते जाना ही क्या आज की परम्परागत आचार और नैतिकता नहीं है[2] ?"

समाज से खीझ प्रकट करके, समाज की परवाह न करके समाज में ही जीने का साहस दिखानेवाली और अपनी इच्छा को ही सब कुछ माननेवाली शैलबाला का चरित्र असामान्य है, इस में सन्देह नहीं।

---

1. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ. 152
2. यशपाल - दादा कामरेड, दो शब्द - पृ. 7

सोमा

"सोमा" यशपाल के उपन्यास "मनुष्य के रूप" की नायिका है। किहर मियाँ के पुत्र से उसका विवाह हुआ था। छः महीने बाद वह भर्ती होकर लाम पर चला गया। नवें महीने चिट्टी आयी कि वह गोली लगकर मर गया। एक बच्ची हुई थी, वह भी मर गयी। घर के काम का बोझ ढोने पर भी बडी छोटी जिठानियाँ उसे हमेशा तंग करती थीं। उसे पहनने के लिए पर्याप्त कपडे भी नहीं मिलते थे।

इस प्रकार यातनापूर्ण जीवन बिताते समय सोमा की भेंट धनसिंह से हुई जो पठानकोट से कुल्लू-मणाली तक के सडक पर प्राय: डेढ बरस से मोटर चला रहा था। अपनी व्यथा को धनसिंह के सामने सोमा यों प्रकट करती है, "दु:खों का क्या है, जो दुनिया में बोझ होते हैं उनका ऐसा ही हाल होता है। और क्या, मौत भी तो दुनिया में अच्छे-भलों को ही चुनती है[1]।" बस्ती के लोगों के बारे में उसकी शिकायत है, "....... अपने घर की औरत को राह-बाट में किसी से बात करते देख लें तो उसका मुँह काट लें और दूसरों की औरतों से खेलना चाहते हैं। [2]।" धनसिंह लडकपन से ही स्त्रियों को धूर्त बिल्लियों की तरह समझता था। उसने सुन रखा था कि "ज़र, जोरू, ज़मीन ज़ोर की, नहीं और की।" "अतीत की स्मृति से धनपत की बहू के प्रति, होशियारपुर में उस्ताद मज़हर की दोस्त रण्डी गुलाबों के प्रति जितनी ही तीव्र घृणा उस के मन में उठ रही थी उसकी प्रतिक्रिया में वह सोमा के सीधे और भोलेपन को अपने जीवन का

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.17

2. वही, पृ.19

सर्वस्व समझ रहा था[1]।" केहर सोमा को मुसलमानों के हाथ बिकने की सोच रहा था। स्नेह और दया के कारण धनसिंह ने सोमा से अपने साथ चलने का अनुरोध किया। "धनसिंह की बात उस के लिए बहुत बड़ा सहारा बन गयी थी। यह बात उसके दुःख में सहायक होने की इच्छा थी[2]।" एक दिन वह चुपचाप धनसिंह के पीछे चली गयी, पर पुलिस की पकड़ में आकर सोमा को पुलिस के दुर्व्यवहार का शिकार बनना पडा और धनसिंह को जेल में रहना पड़ा।

सोमा की सुरक्षा के लिए आर्य समाजियों ने प्रयत्न किया। कांगडे के आर्यसमाजी, सज्जन लाला गोपीचन्द सर्राफ के घर की स्त्रियों ने सोमा का घर में रहना कठिन कर दिया। वे ऐसी पतित स्त्री को पानी का घड़ा था कोई दूसरी चीज़ न छूने देती थीं। xx xx xx उनके घर की बूढ़ी स्त्रियों को शेष हिन्दू स्त्रियों के जाति धर्म की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत स्वर्ग और पुण्य से ही अधिक प्रयोजन था। उन्होंने सोमा को अपने यहाँ न रहने दिया[3]।" "चौधरी साहब, लाला गोपीचन्द और दूसरे हिन्दू समाजसेवक सोमा के मुसल्मानों या ईसाइयों के हाथ जा पड़ने की आशंका से चिन्तित थे। लेकिन कोई हिन्दू सद्गृहस्थ भागी हुई औरत को अपने घर में जगह देने केलिए तैयार न था[4]।" आखिर कामरेड भूषण ने उसे धर्मशाला में लाला ज्वाला सहाय की कोठी पर पहुँचा दिया। वहाँ मनोरमा की माँ ने यह कहकर विरोध किया कि "..... किसी बदनाम और निर्लज्ज औरत को घर में कैसे रख सकते हैं ? क्या हमें दुनिया में नहीं रहना ? .....[5]।" लेकिन मनोरमा ने प्रतिवाद किया, "......... यह लड़की क्या अनर्थ कर रही है ?

1· यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ·33-34
2· वही, पृ·36
3· वही, पृ·71
4· वही, पृ·71
5· वही, पृ·81

बस यही न कि वह गरीब है ?[1]" जो हो, सोमा को वहाँ जगह मिली ।

मनोरमा का सोमा के प्रति अच्छा व्यवहार था । धनसिंह के छूटने पर उसे ड्राइवर नियुक्त किया गया । "लोगों ने तेरे साथ बुरा किया, तेरा क्या कसूर है ?[2]" धनसिंह के इन शब्दों से प्रकट है कि उसके मन में सोमा के प्रति असन्तोष नहीं है । दोनों नौकरों की कोठरियों में से एक में रहने लगे । "सोमा चिकनी, कोमल और लजीली होती जा रही थी । पास-पडोस के मर्द गुज़रते समय उस की ओर घूरते तो उसे आशंका अनुभव होती । उसने कोठरी के दरवाज़े पर एक चिक लगवा ली थी । धूप में बैठना होता तो सड़क की ओर खाट खड़ी करके राह चलनेवालों से आड कर लेती थी । वहाँ भले घर की स्त्रियों की यही राह थी[3] ।" धनसिंह की अनुपस्थिति में बदमाश सोमा को तंग करते थे । इसलिए ऐसे समय वह कोठी में रहने लगी ।

कोठी में उसे काम अधिक था । मनोरमा और उस के भाई बैरिस्टर जगदीश सहाय सरोला की विशेष कृपा उस पर थी । "बैरिस्टर साहब का गुस्सा संभालने का काम भी सावित्री भाभी सोमा से लेने लगी थीं जैसे सोमा को अपने घर की कोई चिन्ता ही न थी[4] ।" "उस का लजाना सकुचाना और आँखें नीचे झुकाये सौम्य रूप उन्हें पसन्द था । उसके हाथों से हुए अल्हड़पन को भी वे मुस्कुराकर सह जाते थे[5] ।" सोमा के भोलेपन और संकोच की अदा पर रीझकर वे कहा करते थे "लवली[6]" ।

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.81
2. वही, पृ.92
3. वही, पृ.96
4. वही, पृ.97
5. वही, पृ.98
6. वही, पृ.101

"बैरिस्टर साहब को संतुष्ट कर लेना इस घर में विशेष मुग्धता का प्रमाण समझा जाता था । सोमा इस सफलता में गर्व भी अनुभव करती थी[1] ।" एक दिन धनसिंह रात में ही लौट आया । सोमा को कोठी से बुला न सका । उस दिन दो बदमाश उसकी कोठरी का दरवाज़ा खटखटाने लगे । धनसिंह से न रहा गया । वह डंडा उठा कर दोनों पर टूट पडा । एक की हत्या हुई और दूसरे की हालत चिंताजनक थी । धनसिंह भाग गया । पूछताछ करने केलिए पुलिस के आने पर सोमा भयभीत हुई । "पुलिस के हाथ पडने से तो वह प्राण दे देना अच्छा समझती थी[2] ।" लेकिन उसकी प्र तीक्षा के विपरीत "उस के आने पर बैरिस्टर एक महिला के प्रति सम्मान केलिए कुर्सी से उठकर खडा हो गया । दारोगा को उस के साथ उठना पड़ा । बयान देने के लिए सोमा को कुर्सी पर बैठाया गया[3] ।" दारोगा ने परेशानी पैदा करनेवाली कोई बात नहीं की बल्कि सोमा के दु:ख से दु:खी होकर, उसके पति मिस्टर धनसिंह को ढूँढने और पूरी सहायता करने का आश्वासन दिया[4] ।"

सोमा ने पुलिस के दोनों रूप देखे । "बैजनाथ के थाने में जहाँ वह पलंग पर लेटे हुए दारोगा के सामने खडी काँप रही थी और कौतूहल के लिए उसके सिर का आँचल खींचकर उसके चेहरे पर लालटेन का प्रकाश डाला जा सकता था, जहाँ उस के रोने और इन्कार का कुछ अर्थ न था । उस थाने की कोठरियों में बिताई पाँच रातों की याद उस के जीवन की सब से भयंकर स्मृति थी । सोमा उसे एक दुस्वप्न मानकर भुला देने की चेष्टा करती रहती थी ।

1· यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ·101

2· वही, पृ·103

3· वही, पृ·104

4· वही, पृ·104

पुलिस का दूसरा रूप, सोमा कुर्सी पर बैठी थी, दारोगा साहब सामने खड़े थे। ऐसे बात करते थे कि उस के नौकर हों, और माफी माँग रहे हों। यह केवल मनोरमा और बैरिस्टर सरोला की कृपा थी, वर्ना वह स्वयं क्या थी। उसकी स्थिति तो ऐसी ही थी जैसे मिठाई खाने के बाद दोने को मरोड़कर फेंक दिया जाए।[1]"

"उस दया का अधिकार पाने के लिए और अपना दुःख भुलाए रहने केलिए वह प्रतिक्षण किसी न किसी काम में लगी रहती थी।"[2] उसकी अपनी कोई इच्छा या राय न थी।

मनोरमा और बैरिस्टर के परिवार के साथ लाहौर में रहने लगे तो सोमा में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा। "सोमा सरोला परिवार की व्यवस्था में अपनी स्थिति के अनुसार नौकर की जगह रहना चाहती थी। उस के विचार में वही उसका स्थान था। साहब और मनोरमा उसे बाँह से खींचकर मेहमान बनाकर घर के आदमी के तल पर ले आना चाहते थे। इस संघर्ष में सोमा को अपने तीव्र दुःख का बोझ हल्का जान पड़ता था।[3]" कभी कभी साहब के स्वर में एक गहराई सी अनुभव होती तो उसको पसीना आ जाता, हाथ-पाँव शिथिल और अवश से होने लगते। वह जानती थी कि साहब को वह अच्छी लगती थी। अच्छी लगने में कितना भय था और अभिमान भी। धर्मशाला में उस की कोठरी के आसपास से आनेजानेवालों को, रात में उसकी कोठरी के दरवाज़े पर आकर शरारत करनेवालों को भी वह अच्छी लगती होगी। अच्छी-लगने का परिणाम भी उसने भोगा था। अतः साहब को अच्छी लगने के

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.106
2. वही, पृ.107
3. वही, पृ.152

विचार से जो मधुर बेचैनी अनुभव होती, वह भय और आशंका में बदल जाती थी । फिर सोचती-साहब तो भले आदमी हैं, कितने दयालु हैं[1] । धीरे धीरे सरोला से उसके संबंध का रूप भी बदल गया । पहले वह काम करती थी, अब कराने लगी । अपने सौन्दर्य पर वह गर्व करने लगी । यही नहीं, मनोरमा के साथ सिनेमा या बाज़ार जाती तो उसकी नौकर नहीं, बहन या भाभी की स्थिति से व्यवहार करती थी । नौकर भी उसे साहब की रखैल मानकर बेबस होकर उस की डाँट-फटकार सहते थे । ड्राइवर बरकत का व्यवहार उसे भला न लगता था, पर यह सोचकर उसकी उपेक्षा करती थी कि अपमान को समझना अपमान को स्वीकार करना था[2] । सोमा का यह परिवर्तन देखकर भूषण को भी मानना पडा कि अब यह दूसरी दुनिया में है । नर्स का काम सीखने की बात कही जाने पर मनोरमा से सोमा का कहना है, "....... औरत ने मज़दूरी करके पेट भरा तो क्या ज़िन्दगी है औरत तो घर सँभालती ही भली लगती है[3]।"

सोमा के जीवन का यह सुवर्णकाल अधिक दिन तक न रहा । सरोला की तीसरी सन्तान के नामकरण के समय परिवार के सभी लोग आये । सरोला ने घर की स्त्रियों के लिए जैसी साडियाँ खरीदी थीं, वैसी ही साडी सोमा के लिए भी खरीदी तो मिसेज़ कृष्णसहाय को अखरा । इस बात को लेकर घर की भद्र महिलायें अस्त-व्यस्त अवस्था में हाथ उठा उठाकर, चिल्ला-चिल्लाकर बोलने लगीं तो सरोला सोचने लगे, "मुकाबला करने चली है सोमा से ? कहाँ गोबर का ढेर, कहाँ हाथी-दाँत का खिलौना ? बडी सती बनती है, अरे तुम्हें पूछता ही कौन है ? वाह रे श्रेणी

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.156
2. वही, पृ.163
3. वही, पृ.168

अहंकार[1]।" अंत में सोमा को कोठी से बहिष्कृत हो जाना पडा ।

"गाँव की सोमा मर चुकी थी अब दूसरी सोमा थी, भले घर की गृहस्थ, धोखा खाई हुई, परिवार से निकाल दी गई विधवा[2]।" इस संकट में उसने बरकत से रक्षा की भिक्षा माँगी और वह उसके साथ बम्बई गयी । "एक बात बार बार मन में उठ रही थी कि वह व्यर्थ ही जीवित रहने का यत्न कर रही है । उसे मझेरा में ही मर जाना चाहिए था, धर्मशाला में मर जाती, नहीं तो लाहौर में मर जाती[3]।उसे मालूम हुआ कि बरकत उसे रंडी बनाकर बेचने केलिए लाया है । सोमा सोचती है, "एक मर्द की आड़ तो ज़रूरी थी । मर्द की आड बिना औरत कैसे रहे[4]?" रंडी बनने की अपेक्षा घरवाली बनना अधिक अच्छा समझकर वह मुस्कुराते हुए निर्विरोध मर जाने केलिए - अर्थात् बरकत की स्त्री बनने के लिए - तैयार हो गयी । बरकत से उसे घृणा थी, परन्तु वही अब उसका एक मात्र अवलम्ब था । "सोमा की इच्छा हो रही थी, मर जाय । और सोचती, मरना था तो पहले मरती, धनसिंह के चले जाने के दिन ही[5]।"

सोमा का रूप पुन: बदला । नया रूप फिल्म-एक्ट्रेस का था । बनवारी की सहायता से वह फिल्म एक्ट्रेस बनी । बनवारी का भी कहना था "...... दुनिया में एक आदमी की आड होना अच्छा रहता है[6]।" सोमा ने अपना नाम पहाडन रख लिया । बरकत से उस के व्यवहार का रूप भी बदला । निम्न लिखित पंक्तियों से उसके इस रूप-परिवर्तन का पता

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.178
2. वही, पृ.221
3. वही, पृ.237-238
4. वही, पृ.239
5. वही, पृ.239
6. वही, पृ.243

चलता है, "पहाडन बरकत के सामने तनकर खडी हो गयी, माथे पर त्योरियाँ थीं। बरकत को घुरकर धमकाया - "खबरदार, बकवास किया तो! अभी पुलिस में भिजवा दूँगी। रहना है तो सीधी तरह रहो, बाहर के कमरे में?" बरकत को पहाडन में फिर लाहौरवाली सोमा, दस गुने उग्र रूप में दिखाई दी। वह सहम गया।[1]" फिल्म-जगत में भी उसे गोमती, मणिमाला आदि ईर्ष्यालु अभिनेत्रियों के विरोध का सामना करना पड़ा। "जलता घोंसला" नामक फिल्म में अभिनय का आरंभ करने के बाद मासूम चोर" और "मन का सौदा" में पहाडन ने नायिका की भूमिका में काम किया था। "...... क्या मैं सारी उम्र यों ही बे आसरे, ठगी जाने के भय से काँपती रहूँ?[2]" बरकत के बारे में सोमा के इन शब्दों से स्पष्ट है कि वह जीवन में एक पुरुष का आश्रय चाहती है। वह सोचती है, "दुनिया मेरे गले में बाँहें डालकर खेलना चाहती है परन्तु बाँह थामकर सहारा देने के लिए कोई तैयार नहीं।[3]" अब उसे बनवारी के व्यवहार में भी कमीनापन और असभ्यता जान पडने लगी।[4] फिर सुतलीवाला से उसके विवाह की बातें शुरू हुई।

यह जानकर कि सोमा ही पहाडन है, मनोरमा आश्चर्य-चकित हो सोचने लगी, "इतना परिवर्तन संभव है, आदमी क्या है और उसके कितने रूप हो सकते हैं? एक दिन धर्मशाला में भूषण सोमा को कुत्तों के भय से काँपती हुई बकरी की सी अवस्था में उस के यहाँ लाया था। वह धनसिंह के लिए जान दे देना चाहती थी। पुलिस के भय से उसका गर्भपात, उस का बाज़ार जाने से डरना! भैया की उस पर ज्यादती। बडी भाभी का अन्याय, आज यह दुनिया को अँगूठा दिखा रही है ...... क्या वह सुतलीवाले के साथ

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.254
2. वही, पृ.257
3. वही, पृ.260
4. वही, पृ.281

सुखी हो सकेगी ? क्या इतनी चालाक हो गयी है ?"[1] सोमा के इस रूपांतर को लक्ष्य करके भूषण भी कहता है, "आदमी क्या है, उसके कितने रूप हो सकते हैं, कोई नहीं कह सकता ।"[2] इस केलिए मनोरमा सोमा को दोषी नहीं बताती क्योंकि वह अपने अतीत की बातों के कारण समाज से डरी हुई होगी और अपने नये जीवन की रक्षा प्राणपण से करना चाहती होगी ।

पहाड़न का विवाह सुतलीवाला से होनेवाला था कि मनोरमा के हठ से भूषण धनसिंह के साथ पहाड़पन के बँगले में आता है । जब सोमा का एक विचित्र रूप ही दृष्टिगत होता है । वह धनसिंह या भूषण को पहचानने का भाव प्रदर्शित नहीं करती । वह निस्संकोच कहती है, "आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हैं ? मैं सोमा नहीं हूं ! मैं नहीं हूं सोमा !" उस की आँखें लाल हो गयी थीं । गालों पर दो बूंद आँसू बह गये थे ।[3] प्रस्तुत कथन के लिए हम सोमा पर कृतघ्नता का आरोप कर सकते हैं । पर वास्तव में उसके शब्द एक अशरण अबला के आशंकाकुल हृदय के उद्गार के सिवा और कुछ नहीं । इसी समय जो मारपीट हुई, उस में बरकत का बार धनसिंह पर न पड़कर भूषण के कंधे पर पड़ा और उसकी मृत्यु हुई तथा सुतलीवाले के द्वारा धनसिंह को जेल भिजवाया गया । इन समस्त घटनाओं की कोई प्रति क्रिया सोमा में दिखाई नहीं देती । उसका यह रूप अस्वाभाविक होने पर भी क्षम्य है । क्योंकि अतीत की दु:खद स्मृतियां अब भी उस के मन में समायी हुई हैं, वह उस अतीत की ओर लौटना नहीं चाहती।

---

1. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ.291
2. वही, पृ.295
3. वही, पृ.307

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "मनुष्य के रूप" सोमा की ही कथा है; उसके ही विभिन्न रूप इसमें दर्शाये गये हैं । पहाडी गाँव की विधवा सोमा का रूप, आश्रय की खोज में भटकती हुई अबला का रूप, धनसिंह की पत्नी का रूप, बैरिस्टर सरोला की प्रेमिका का रूप, बरकत की आश्रिता का रूप, फिल्म एक्ट्रेस पहाडन का रूप आदि विविध रूपों में से होकर गुज़रती हुई वह अंत में सुतलीवाला की प्रतिश्रुत वधू का रूप धारण करती है । इन समस्त रूपोंमें वह हमारी सहानुभूति की पात्री है, कभी उस के प्रति घृणा नहीं होती क्योंकि परिस्थितियाँ ही उसे ऐसे रूपपरिवर्तन के लिए बाध्य करती हैं । कोई भी सहृदय पाठक सोमा में दोष नहीं देख सकता । सोमा के संबंध में भूषण ने एक बार मनोरमा से कहा था, "उस स्त्री का जीवन भी एक समस्या है ।"[1] भूषण के स्वर में स्वर मिलाकर हम भी कह सकते हैं, "उस स्त्री का जीवन भी एक समस्या है ।"

अमिता

यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास "अमिता" के नामकरण से ही स्पष्ट है कि उपन्यास की नायिका अमिता है । इस नाबालिग नायिका की निजी विशेषतायें हैं ।

कलिंग की राजेश्वरी की पुत्री अमिता का चंचल बालरूप ही उपन्यास के आरंभ में हम देखते हैं । अलिन्द में क्रीडा करती हुई, उछलती-कूदती अपने प्रिय बभ्रु के साथ आती हुई यह राजकुमारी अनायास ही हमारा ध्यान आकर्षित

1· यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ·203

करती है । स्वर्ण और रत्न के आभूषणों से अलंकृत गोरे रंग की इस बालिका के फूले हुए शरीर में उदर और कटि का भेद नहीं था । इस युवराज्ञी की आयु केवल छः वर्ष की थी ।

यद्यपि राजमाता ने वैराग्य ग्रहण कर लिया था, तो भी अपनी इस लाडली बेटी की चिन्ता हमेशा उनके मन में थी । समय समय पर अपनी पुत्री के चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त सदुपदेश वे देती रहती थीं । पुत्री भी माता के मुँह से सुनी उक्तियों को दुहराया करती थी, "..... अम्मा कहती हैं, किसी से छीनो मत, किसी को डराओ मत, किसी को मारो मत । ...."[1] केवल दुहराती ही नहीं थी, अवसर आने पर ऐसी सूक्तियों को प्रयोग में भी वह लाती थी । इस प्रकार अमिता को एक आदर्श बालिका बनाने का श्रेय वास्तव में राजमाता को ही है । कंचुकी उद्दाल, प्रौढा दासी वापी और वापी की पुत्री हिता की देखरेख में अमिता के दिन बीतते थे ।

अमिता के बालहृदय की झलक उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान है । हाथी पर उसकी सवारी निकलते समय लोग उस पर पुष्पों की वर्षा करते हैं, पर उसको वही कमल लेना है जो हाथी से गिर गया था । अन्य बालकों को भी हाथी पर ही बिठाने की ज़िद्द, घायल सैनिकों को राजकीय शिबिका पर ही बिठाने की ज़िद्द आदि उसकी बालसहज सरलता की द्योतक हैं । अमिता के राज्याभिषेक के समय भी इसी प्रकार की लीलायें होती हैं । बहुत देर तक राजसिंहासन पर बैठने से भी उसे अधिक प्रिय है हिता की उँगली पकड़कर आँगन में उछल-कूद करना या बभ्रु के पीछे उद्यान में दौडना । राज्याभिषेक को वह एक प्रकार का खेल समझती है । जिस तरह वह दूसरी बालिकाओं के साथ

---

1. यशपाल - अमिता, पृ.17

अपनी पुतली का ब्याह रचाकर खेलती है, उसी प्रकार महामात्य, महासेनापति, राजगुरु आदि उसका राज्याभिषेक करके अपना मनोविनोद करते हैं, ऐसा सोचकर उसने हठ किया कि हम राजेश्वरी नहीं बनना चाहती । हिता को राजेश्वरी बनाओ ।

ममता का हृदय स्नेहपूर्ण है । उसे माता से स्नेह है, हिता से स्नेह है, यहाँ तक कि कुत्ता बभ्रु भी उसके निष्कलंक स्नेह का पात्र है । प्रति दो पग बढकर तीसरे पग पर उछलती आनेवाली यह बालिका बभ्रु को स्नेह के आवेश में अपनी ओर लपकते देखकर अपनी छोटी, गोल, माँसल बाँह उस की ओर बढाकर पुचकार कर कहती है "आ बभ्रु !" दासी हिता तो उसकी सन्तत सहचारिणी है । "हिता की बाँह का स्पर्श अमिता के लिए कोमल तकिये की अपेक्षा भी अधिक साँत्वना दायक था ।"[1] महारानी को शीर्ष दुर्ग में बन्दी बनाया तो हिता ने ही अमिता के मन में माँ की स्मृति जगायी । आखिर वह अमिता को शीर्ष दुर्ग की ओर ले गयी ।

युद्ध में कलिंग के अनेक योद्धा खेत रहे । अशोक राज्यप्रासाद में पहुँचे । राजमाता और अमिता को गुह्य मार्ग से बचाने के प्रयत्न अमिता के हठ के कारण निष्फल हुए । अमिता प्राय: किसी पर अत्याचार होते देखती तो माँ का उपदेश दुहराती हुई, कुत्ते की साँकल से अत्याचारी को बाँधने का प्रयत्न करती थी । अशोक को भी अत्याचारी समझकर उन्हें कुत्ते की साँकल से बाँधने के लिए वह उद्यत होती है तो अशोक कुत्ते की साँकल स्वयं अपने गले में पहन लेते हैं । इस भोली भाली निष्कलंक बालिका से प्रभावित होकर अशोक उस से कहते हैं, "..... अब अशोक हिंसा और युद्ध से विजय की कामना नहीं करेगा । वह कलिंग की विजयी महारानी की भाँति निश्छल प्रेम से संसार के

---

1. यशपाल - अमिता, पृ. 134

हृदयों को विजय करेगा ।[1] "

यहाँ द्वेष पर स्नेह की जीत हुई है, हिंसा पर अहिंसा की जीत हुई है । अमिता के हृदय का स्नेहभाव इसलिए महान है कि वह स्नेह, धर्म, जाति या वर्गकी सीमा से परे समस्त जीवजन्तुओं तक व्याप्त है । अधिकार की लालच से अत्याचार करनेवालों पर इस निरीह बालिका के माध्यम से उपन्यासकार ने परिहास किया है । युद्ध और शान्ति को लेकर चिरकाल से चर्चा हो रही है । अशोक पर अमिता के विजय के द्वारा उपन्यासकार ने इस समस्या का अच्छा हल बताया है । आशा है, विश्वप्रेम का यह आदर्श विश्व-शान्ति के प्रयत्नों में सहायक बने ।

तारा

तारा यशपाल के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास "झूठा सच की नायिका है । वह मास्टर रामलु भाया की पुत्री है । उसका घर लाहौर के भोलापाधि की गली में था । तारा ने 1943 में मैट्रिक फर्स्ट डिविज़न में पास किया था । अब इंटर की परीक्षा दे रही थी । उसका भाई जयदेव पुरी 1943 में एम•ए• के दूसरे वर्ष में पढ रहा था । तब युद्धविरोधी आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हो गया था ।

तारा की सहानुभूति कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण की ओर हो रही थी, यह पुरी को अच्छा न लगता था । विवाह के बारे में तारा की कल्पना थी, विवाह कभी करेगी तो खूब विद्वान, प्रतिभावान व्यक्ति से ही ।

1• यशपाल - अमिता, पृ•214

अपनी अपेक्षा हीन आदमी से क्या विवाह ? वह तर्क करने लगी - स्त्री अपनी शोभा अपने से बढकर पुरुष को पाने में ही समझ लेती है, स्त्री स्वयं अपने योग्य पुरुष से हीन क्यों रहना चाहती है ? स्त्री जिसे अपने से बढकर समझ नहीं सकती, उसे अपने योग्य कैसे समझे, उस के प्रति श्रद्धा और प्यार क्या ।[1]" सोमराज साहनी से उसकी सगाई हुई थी, पर वह फेडरेशन के साथी असद की ओर आकृष्ट थी । पुरी ने इसे केवल "फ्लर्टेशन कहकर विरोध किया तो तारा सोचती है कि परिवार की सब इज्जत मेरे ही बलिदान में है[2]। अपनी अनिच्छा के बावजूद सोमराज से ही विवाह करने की स्वीकृति उसे देनी पड़ी । "तारा स्वीकृति में आँखें मूंदे सोचने लगी :- पुरानी सब बातें समाप्त । यह ही मेरा भविष्य और संसार है । संभालूंगी ही, जितनी और जैसी संभावनायें होंगी यत्न से क्या नहीं हो सकेगा[3]।" उसने यत्न किया भी । प्रथम रात्रि में तारा के कान सोमराज के शब्दों के लिए आतुर थे "जैसे सीप स्वाति नक्षत्र की बूंद पा लेने के लिए अपने पुट खोल देती है[4]। लेकिन सोमराज ने गालियों से उसका अभिषेक किया, उसे मारा भी । सह न सकी तो इतना ही बोली, "खबरदार, हाथ उठाया तो । "लेकिन सोमराज की पाशविकता के सम्मुख वह हार गयी । "तारा कमरे के कोने में फर्श पर पडी घुटने समेटे सिर को बाँहों में दाबे सिसकियाँ ले रही थी । उसका अंग अंग मरोडा जाने और चोट खाने से दुःख रहा था । उस से भी अधिक पीड़ा थी मन में । वह सोच रही थी, किस तरह मर जाए[5]" तभी मुसलमानों का आक्रमण हुआ । उस के ससुराल में आग लग जाती है । तारा बाहर निकली तो गली में एक गुण्डे ने उसे पकड लिया । नब्बू नामक उस गुण्डे ने तारा के सारे आभूषण ले लिए । तारा के आत्मसमर्पण न करने पर नब्बू ने उस के बाँह को पीठ के पीछे कंधे की ओर इतने ज़ोर से मरोडा कि वह तडपकर और चीखकर

---

1. यशपाल - झूठा सच - वतन और देश, पृ.61
2. वही, पृ.254
3. वही, पृ.359
4. वही, पृ.401
5. वही, पृ.401

बेहोश हो गयी । फिर हाफिज़ जी के घर में उसे त्राण मिला । उन्होंने इस्लाम स्वीकार करने को कहा तो वह सोचने लगी, "सोमराज और नब्बू ने शरीर को कुचला, भ्रष्ट किया और यंत्रणा दी । यह लोग तो दिमाग को कुचल कर समाप्त कर देना चाहते हैं[1] ।" वह धर्म परिवर्तन करने को तैयार न हुई । वहाँ से कैंप में पहुँचाने के बहाने एक मकान में पहुँचा दिया गया जहाँ और भी कई औरतें थीं । वहाँ तारा की अवस्था और भी दयनीय थी । "मुक्ति की इच्छा करके वह कड़ाही में से उछलकर भट्टी की आग में आ गिरी थी[2] ।"

फिर बंती, सतवंत आदि अन्य स्त्रियों के साथ वह शरणार्थियों के कैंप में पहुँचायी गयी । असद से मुलाकात होने पर भी वह उसके साथ नहीं गयी । उसका विचार था "······· लेकिन जाऊँ तो कहाँ ? परिवार के लिए तो मर चुकी, जीवित हूँ तो ससुराल से भागी हुई ।
असद की शरण ले लूँ ? पहले क्या उससे स्वयं शरण नहीं माँगी थी ? वह तो प्रेम था । प्रेम ? शीलो - रतन नानसैंस !
पुरुष पशुओं से दूर[3] !" अमृतसर की ओर जाते समय वह सोचती है कि मुझे सदा पिसते-कुचले जाते रहना होगा । मैं सदा भाग्य की धारा में बहता जाता कूड़ा-करकट ही बनी रहूँगी[4] ।

देश के विभाजन के पश्चात् तारा महसूस करती है कि मेरा अपना कोई नहीं है । उसे बंती का ही सहारा है । बंती का परिवार ढूँढने केलिए वह अथक परिश्रम करती है । पर घरवालों ने बंती को स्वीकार न किया ।

---

1. यशपाल - झूठा सच - वतन और देश, पृ.440
2. वही, पृ.510
3. वही, पृ.531
4. वही, पृ.532

वह दहलीज़ पर सिर पटक पटक कर मर जाती है । कैंप में लौट आने पर उसे निहालदेई, मुक्देत आदि अन्य स्त्रियों की व्यंग्योक्तियाँ सुननी पड़ी । शिक्षित होने के कारण वह कैंप में लिस्ट बनवाने का काम करती थी । "स्त्रियों को अपना नाम धाम मर्दों को बताते संकोच हो रहा था । सब जानती थीं, तारा ही यह काम कर सकती है । वह शहर की लड़की अंग्रेज़ी, फारसी, शास्त्री तीनों इल्म जानती है।[1]" देशसेवा की आड में छल-कपट करनेवालों को भी वह देखती है । रिलीफ कमेटी के वाइस प्रेज़िडेन्ट और कांग्रेसी प्रसाद जी के व्यवहार से वह समझ लेती है कि आदर्श और यथार्थ में कितना अंतर है । प्रसादजी के साथ जाने पर तारा का विचार है, "पर यहाँ पशु से नहीं, मनुष्य से मुकाबला था । फिर भी ऐसी जगह आना गलती थी । क्या करूँ नौकरी की आशा में ।[2]" मिसेज़ अगरवाला के साथ ए.ए. कोठी में गवर्नेस के रूप में रहते समय खूब काम करने पर भी वह सन्देह का शिकार बनती है । वह सोचती है "....... मेरे लिए कहीं शरण नहीं, औरत जो हूँ ? बंती ठीक कहती थी औरत होना ही अपराध है ।[3]" ए.ए. कोठी में रहते समय अगरवाला का पुत्र नरोत्तम से उसकी घनिष्ठता हुई थी । वहाँ उसने जो आश्वासन अनुभव किया था, वह धीरे धीरे उड गया । मालकिन की ईर्ष्या और पुरुषों के भाव वह ताड लेती थी । मिसेज़ अगरवाला की हालत देखकर वह सोचने लगी, "हाय रे स्त्री का जन्म, तेरी यही हकीकत है । इतनी बडी सेठानी मालकिन, बच्चों की माँ, कोठियाँ, कारें, लाखों का ज़ेवर, नौकर चाकर, सामाजिक स्थिति और आदर पर पति जब चाहे, पीट डाले । उसे अपनी सुहागरात याद आ गयी । स्त्री का जीवन मर्दों के ज़ुल्मों का शिकार होने के सिवा और क्या है ?[4]"

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ. 113
2. वही, पृ. 167
3. वही, पृ. 199
4. वही, पृ. 319

रावत की सहायता से तारा को नौकरी मिली । कुछ दिन बाद कॉमरेड मास्टर निरंजन चड्ढा की प्रेमिका नर्स मिस लीला मर्सी के साथ मोरल दरियागंज की नयी बस्ती में दूसरी मंजिल पर छोटे फ्लैट में रहने लगी ।

उपन्यास में आदि से अंत तक तारा के आकर्षक व्यक्तित्व की छाप अंकित हुई है । उसके विवाह के प्रसंग में गोविन्दराम का कहना है "....... खरा सोना मिल गया है उन लोगों को । लड़की तो लक्ष्मी है ।।"[1] ए.ए. कोठी में नरोत्तम पर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है । वह उसे चाहने भी लगता है; परन्तु तारा उसे अपना भाई मानती है । उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नौकरानी शिवनी भी कहती है, "..... तुम जैसी ठहरे हुए सुभाव की लुगाई नहीं देखी । तभी लोग आपको मानते हैं ......।"[2] "परन्तु क्या सरकार का विरोध बम, बन्दूक, तलवार या दंगे से किया जाने की अपेक्षा शान्तिपूर्वक अनशन से किया जाना स्वयं सरकार के लिए भी अच्छा नहीं है ? कम से कम यह हिंसा और उत्पात का मार्ग नहीं होगा । इसमें तर्क केलिए, विचार के लिए अवसर रहेगा ।"[3] रावत से तारा का प्रस्तुत कथन अहिंसा के प्रति उसकी आस्था का परिचायक है । अपनी योग्यता और शील के कारण वह देवी की तरह पूज्या बनती है । इसलिए नामकरण संस्कार के समय दादी और पिता-माता अपनी बच्ची का नाम "तारा" रख देते हैं । कनक तारा को बहुत मानती है । गिल से तारा के बारे में वह कहती है, "हाय, बहुत ही स्वीट और ब्रिल्लिएंट है । सदा फर्स्ट डिवीज़न पाती थी ।"[4] पुरी से उसका कथन है, "बहन तो

---

1. यशपाल - झूठा सच - वतन और देश, पृ.362
2. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, 319
3. वही, पृ.224
4. वही, पृ.408

तुम्हारी है; पर मैं कहूँगी उसका दिल तुम से बहुत बड़ा है[1]।" "उसे दृढ विश्वास हो गया था कि तारा बहुत निस्वार्थ थी, उस में शील था, उसके साथ घोर अन्याय हुआ था। उसने बहुत गरिमा से सब कुछ सह लिया था[2]।" कनक और कंची से रतन के इस कथन में भी तारा के निर्मल चरित्र की झाँकी मिलती है, वल्कि नीचे नीचे चाहे जो कुछ कर ले पर तारा को कोई दस लाख का लालच देकर भी तिनका नहीं हिला सकता। ....[3]।"

ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व के कारण उसे कभी कभी दूसरों के ईर्ष्या-द्वेष का शिकार भी बनना पड़ता है। डॉ. प्राणनाथ के यहाँ ट्यूशन लेने जाते समय उसे ऐसा अनुभव हुआ था। "इस घर की स्त्रियाँ पहले तारा से अच्छी भली बोलती चालती थीं, परन्तु उन्होंने तारा को डॉक्टर के अकेले भाग में जाते देखा और उसके वहाँ चाय पीने की बात सुनी तो तारा से बोलना छोड दिया। अब वे उसकी ओर कटाक्ष कर आपस में मुस्कुराने लगती थीं। यह देखकर तारा का मन बहुत कुंठित होता था[4]।" तब डॉ. प्राणनाथ ने बता दिया, सम्पत्ति के आधार पर संभ्रांत बनी ऐसी श्रेणी की औरत विवाह और सेक्स के अतिरिक्त और कुछ समझ भी नहीं सकती; उन्हें तुम्हारी किसी अन्य योग्यता से ईर्ष्या नहीं है; तुम्हारे नारीत्व के आकर्षण से ईर्ष्या है[5]। ए.ए. कोठी में मिसेज़ अगरवाला को भी उस से ईर्ष्या होती है; अत: शीलो के सामने वह कहती है, "बाप-बेटा दोनों निछावर हो रहे हैं[6]।" ".......कितने ही लोगों ने मेरे पास आकर कहा है। भानुदत्त पुराना

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ.530-531
2. वही, पृ.536
3. वही, पृ.520
4. वही, वतन और देश, पृ.82
5. वही, पृ.85-86
6. वही, झूठा सच - देश का भविष्य, पृ.199

काग्रेसी है, वह बेईमान बन गया ! तुम उस गरीब के पीछे पड़ी हो । इतनी तनख्वाह से पेट नहीं भरता, मशीनें भी अपने घर ले जाना चाहती हो ..... ?"[1] तारा से कुमारी सेवाभाई के प्रस्तुत कथन में तारा के प्रति उसका द्वेष प्रकट होता है । शरणार्थियों के कैंप समाप्त करने की बात पर "हवेलीराम तारा को खुशामदी कहकर उस के विरुद्ध नारे लगाने के लिए तैयार हो गया[2] ।" "यह लड़की हम लोगों के सिर पर न जाने क्या मुसीबत डालेगी ....[3] ।" पुरी के प्रस्तुत कथन में तारा के प्रति उसकी खीझ ही प्रकट होती है । अन्यत्र भी पुरी ने कनक से तारा की निन्दा की है, "...... उस साँपिन के फरेब में पड़ी हो । उसने किसे बरबाद नहीं किया ? वह तो अजीब मिसएँथरोप (मानुषद्रोही) है । परिवारों की बरबादी देखना उसकी हाबी (बहलाव) है ।[4] ।" तारा रिश्वत न लेती थी; इसलिए लोग उससे विशेष सहायता पा नहीं सकते थे । अत: उसकी गणना भले अफसरों में नहीं होती थी । "लोगों को तो इसी में सुविधा थी कि उन्हें अवसर मिले, अफसर भी दक्षिणा के तौर पर पाँच सौ हज़ार ले ले । दोनों का भला हो ।" इन शब्दों में छिपा हुआ व्यंग्य हम आसानी से समझ सकते हैं । पास पडोस के भले लोग तारा को नौकरों को भड़कानेवाली कहकर उससे रूठ गये[5] ।"

तारा का हृदय इतना स्नेह भरा विशाल और उदार है कि आवश्यकता पडने पर दूसरों की सहायता करने के लिए वह तैयार रहती है । उसके पिताजी के बड़े भाई रामज्वाया की पुत्री शीलो की सगाई मोहनलाल से हुई थी; पर बाबू गोविन्दराम के पुत्र रतन से उसका प्रेम संबंध है ।

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ.337
2. वही, पृ.346
3. वही, पृ.510
4. वही, पृ.573
5. वही, पृ.643

तारा को पहले दोनों के प्रति घृणा होती है, पर बाद में जब उसे मालूम हुआ कि शीलो किसी भी प्रकार मोहनलाल के साथ रह नहीं सकती तो उसकी सहायता करती है । शीलो, जो पत्नी होने पर भी प्रेमिका थी, समाज के झूठे बन्धन से मुक्त हो संतोष पाती है । बन्ती को अपने परिवारवालों से मिलाने के लिए उसने कठिन परिश्रम किया । पर परिवारवालों से तिरस्कृत होने पर वह आत्महत्या करती है तो तारा को बेहद दुःख होता है । बिद्दो की दादी को भी वह मदद देती है । चरित्रहीना, चंचला सीता को वह आश्रय देती है । गर्भपात कराने केलिए उसने तारा की सहायता माँगी थी । तारा उस के जीवन की दिशा ही मोड देती है । पचकुइयाँ रोड पर पूरणदेई तारा की बुआ और सीता उसकी बहन के रूप में उस के साथ रहने लगी है । फिर सीता का विवाह भी करा देती है । अपने पैरों पर खडे होने पर भी मानसिक संतोष न पानेवाली डॉ॰ श्यामा और प्रभा सक्सेना के प्रति तारा के हृदय में समवेदना है ।

पाँच वर्ष बाद तारा पुरी (अंडर सेक्रेटरी फार स्माल स्केल इंडस्ट्रीस, विमन्स सेक्शन) का डॉ॰ प्राणनाथ (प्लानिंग कमीशन के औद्योगिक विभाग के आर्थिक परामर्शदाता) से मिलन हुआ तो तारा के जीवनमें एक नया मोड़ आया । डॉ॰ प्राणनाथ को उसने अपनी बीती सुनाई । इस बीच सोमराज प्रकट हुआ तो तारा के मन में गहरी, दबी हुई भयंकर टीस फिर जाग उठी । उसे लगा, "...... मेरा जीवन तो वृक्ष से टूटकर हवा में उड़ते जाते पत्ते की तरह है, उस के भविष्य का क्या ठिकाना ? जीवन को स्वयं ही समाप्त कर देना पड़ेगा ?"[1] बलात्कार के परिणामस्वरूप

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ॰624

तारा को जो गुप्तरोग हुआ था, उसके कारण तारा विवाह करना नहीं चाहती थी; लेकिन प्राणनाथ ने सारी बातें जानकर उससे विवाह करने का निश्चय और तदनंतर उसका इलाज कराने का प्रस्ताव किया। "विवाह के तीन चार दिन बाद ही वे दोनों स्विटज़रलैंड चले गए थे। तारा रोम रोम से अनुभव कर रही थी कि उस ने पृथ्वी पर स्वर्ग पालिया था। वह अपनी प्रसन्नता और संतोष में कोई भी न्यूनता नहीं रहने देना चाहती थी[1]।" पर दुर्भाग्य ने उसका पीछा न छोडा। सोमराज ने अपने को तारा के पति होने का दावा किया तो उसे लगा कि वह अतल - अंधेरे कुएं में गिरती जा रही है। नैयर के इस प्रश्न पर कि "...... पुरी, सोमराज और प्रभुदयाल के बयान साक्षी में हैं कि आप सोमराज की पत्नी हैं, क्या यह सच है?" तो तारा का उत्तर है, "यह केवल झूठा सच है[2]।" आखिर डॉ॰प्राणनाथ और तारा "एक्ज़ोनरेट" {दोषमुक्त} हो जाते हैं[3]।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि तारा की जीवन नदी लाहौर के भोलापांधे की गली से शुरू हो कर, आर्थिक कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करती हुई अंत में अपने लक्ष्य स्थान पर पहुंचती है। अपने विवाह के संबंध में पहले उसने जो कल्पना की थी, वह भी प्राणनाथ जैसे विद्वान, योग्य पति को पाने के कारण साकार होती है।

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ॰694
2. वही, पृ॰701
3. वही, पृ॰709

गुलबिया (गिरिजाकुमारी)

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यास "सुबह के भूले" की नायिका है गुलबिया । वह विधवा झमिया की बेटी है । बम्बई नगर के उत्तरी छोर पर एक गन्दी बस्ती थी । उस बस्ती की सीमा पर बहनेवाली घोर दुर्गंध युक्त गन्दी नाली के उस पार टीन के शेडों या शेडनुमा छोटे छोटे मकानों की छोटी सी कतार थी । एक शेडनुमा मकान में बैजनाथ भैंसें पालता था । सीतापुर जिले के रहनेवाला महावीर एक दिन अपने गरीब किसान बाप से झगडा कर बम्बई आया । वह बैजनाथ का सहायक बना । दूध के व्यवसाय में उस की निरन्तर तरक्की होती गई । बैजनाथ विधवा झमिया के प्रति आकृष्ट हुआ । दोनों का विवाह भी हुआ । तब गुलबिया तीन साल की नन्हीं बच्ची थी । बैजनाथ की मृत्यु के बाद महावीर दोनों का कारोबार संभालने लगा । झमिया और बच्ची गुलबिया की जिम्मेदारी भी उसी पर थी । तीन साल की बच्ची पाँच साल की हुई तो काफी समझदार बनी । महावीर को वह चाचा कहकर पुकारती थी । छुटपन से ही वह महावीर की मुँह लगी लड़की थी । झमिया के आग्रह से महावीर ने मालती से विवाह किया । विवाह के बाद भी महावीर गुलबिया को अपनी सगी लड़की से भी अधिक मानता था, उस की प्रत्येक माँग को पूरा करता था और उस के बालहठ को दुलराता रहता था । मालती को यह बात अखरती थी । वह हमेशा गुलबिया से झिड़ककर बोलती थी । भोली-भाली गुलबिया केलिये मालती का यह व्यवहार आश्चर्य जनक था क्योंकि पहले उसे ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ था । घर में कभी कभी झगडा भी होता था । यह सब देख-सुनकर उसका चपल बालहृदय किसी अज्ञात भार से बोझिल होता था ।

गुलबिया को "इस्कूल" जाना पसन्द था । इसलिए महावीर ने उसे पढ़ाने भेजा । गुलाबिया कीबुद्धि अत्यधिक तेज़ थी । पाँच ही दिन के भीतर वह वर्णमाला पढ चुकी । साथी किशन ने उसे खेलने के लिए ललचाया; तो भी पढाई में ही वह डूबी रही । स्कूल की प्रधान अध्यापिका ने तीन ही महीने बाद उसे एक दर्जा ऊपर रख दिया । वह किशन को भी पढ़ाने लगी । फिर किशन के बाप जग्गू को समझा बुझाकर किशन को भी स्कूल भेजने की प्रेरणा दी । फलत: वह भी स्कूल जाने लगा ।

कालेज में भर्ती होने पर गुलबिया की आदत में कुछ कुछ परिवर्तन आने लगा । उसे गुलबिया नाम अखरा, उसने "गिरिजाकुमारी" नाम अपनाया । उस के रंग-ढंग और बात-व्यवहार मे झमिया को लगा वह उस से दूर होती चली जा रही है । अपनी सहेली शान्ता के निमंत्रण पर वह उसके घर गयी। मोहनदास गिडवानी से उसका परिचय हुआ । फैशनबुल समाज के लुभावने वातावरण से लौटने पर उसे अपने घर का सारा वातावरण पहली बार अत्यंत विजातीय, नीरस और निर्जीव लगने लगा । उसके परिचय की सीमा विकसित हुई । किशन के प्रति उसके मन में पहली बार विरक्ति पैदा हुई । इसी बीच हेमकुमार नामक अभिनेता से उस का परिचय हुआ । होस्टल में रहकर एम॰ए॰ की पढाई का प्रस्ताव गिरिजाकुमारी ने रखा तो झमिया ने विरोध किया[1]। पर उसकी इच्छा शक्ति के आगे निरीह अम्माँ और भोले चाचा पराजित हुए । लडकियों के होस्टल में कमरा लेकर रहने लगी तो वह पिंजर मुक्त पंछी बनी । लेकिन यह उल्लास अधिक दिन न रहा । हेमकुमार से यह सूचना पाकर कि फैशनबुल समाज के लोग उसे एक दूधवाले की लड़की जानकर उससे कतराने लगे हैं, उसे ग्लानि होती है ।

---

1. इलाचन्द्रजोशी - सुबह के भूले, पृ॰110

हेमकुमार की सलाह से वह फिल्म जगत् में प्रवेश करती है । तभी से उस के जीवन में एक नया मोड आता है । वह नायिका बनकर धन और ख्याति प्राप्त करती है । अभिनेत्री, निर्देशिका और निर्मात्री बनकर वह प्रसिद्धि पाती है । अपने बालसखा किशन की पढाई में भी वह दिलचस्पी रखती है । किशन पहले कम्पोज़िटर था, फिर गिरिजा के फिल्म में नायक बना । गिरिजा को अब अपने माता, चाचा चाची, सखा सभी से हार्दिक प्रेम है । इससे झमिया को अपार सन्तोष मिलता है । झमिया की मृत्यु के एक साल बाद एक नये मकान का निर्माण पूरा हुआ । अपनी मृत माता की स्मृति को बनाये रखने केलिये उस मकान का नाम रखा गया - "मातृमन्दिर" । माताके श्राद्ध दिवस को ही गुलबिया ने किशन से अपने विवाह के लिये मंगलकारी अवसर पाया । उसी दिन झमिया के चित्र का उद्घाटन हुआ । महावीर, गिरिजा, किशन, मालती सब उस स्नेहमयी के चित्र के सामने नतमस्तक हुए ।

प्रस्तुत उपन्यास में गुलबिया के तीन रूप दृष्टिगत होते हैं, एक रूप में वह भोलीभाली गुलबिया है तो दूसरे रूप में फैशनबुल समाज के प्रभाव में आकर अपने प्रियजनों को ही नहीं स्वयं को ही भूली हुई गिरिजा-कुमारी है । उसका तीसरा रूप बड़ा ही भव्य है । इस रूप में वह श्रद्धा, प्रेम और विनम्रता की प्रतिमूर्ति है । ऐसा लगता है कि इसी तेजोमय रूप को अधिक चमकाने केलिए ही उपन्यासकार ने बीच का धुंधला रूप दिखाया है । यहीं उस में आदर्श भारतीय नारी की झलक मिलती है ।

प्रभा

श्री राजेन्द्र यादव के उपन्यास "सारा आकाश" की नायिका है प्रभा । वह मेट्रिक पास है । सम्पन्न न होने पर भी सभ्य परिवार की इकलौती बेटी है । बडे लाड-प्यार से पली है ।

साधारण लडकियों की तरह उसने भी भविष्य के संबन्ध में कई सुन्दर सपने देखे थे । वह और उसकी सहेली रमा क्लास की नटखट लड़कियाँ थी । रमा को उसने जो पत्र लिखा, वह उसके सपनों का और उन सपनों के खण्डहर का तथातथ चित्र है । ऐसे स्वप्न लोक में विचरण करनेवाली प्रभा का यथार्थ जीवन नरक तुल्य बन पडा था । पति उससे बोला तक नहीं । एक कृ ीत दासी के समान उसे घर का सारा कामकाज करना पडा । पहनने के लिए अच्छे कपडे भी नहीं मिले । उसके सारे स्वप्न तितर-बितर हो गए । कभी कभी वह शादी न करके पढ लिखकर लोक-सेवा करने की कल्पना भी करती थी । पर विधि वाम थी । शादी के बाद संयुक्त परिवार में रहकर उसे कितने उत्पीडन सहने पडे । सब कुछ सहकर वह पाषाण प्रतिमा बन पड़ी थी ।

एक आदर्श भारतीय नारी के सभी गुण प्रभा में विद्यमान हैं । समर उससे कटु व्यवहार करता है तो भी वह मायके जाकर समर की निन्दा नहीं करती । भाभी के षड्यन्त्र से उसे अनेक प्रकार के कष्ट सहने पडते हैं, तो भी वह भाभी के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रखती । उसकी असीम सहिष्णुता के सामने स्वयं समर को हर बार पराजित होना पडता है । भयंकर शैत्य में फटी धोती पहनकर वह मशीन के समान कामकाज में लगी रहती है । रोज़ घर के और लोग उसकी शिकायत करते हैं, पर वह किसी की शिकायत नहीं करती । वह चुपचाप सब कुछ सह लेती है । गाली भी सह लेती है, मार भी सह लेती है । पर अपने चरित्र पर लांछन वह सह नहीं सकती थी । सास के

मुँह से अपने चरित्र पर लांछन सुनकर वह छत के कोने में बैठकर फूट फूटकर रोती है। समर उससे सहानुभूति प्रकट करता है तो उसके सारे संयम की बाँध टूट जाती है और समर से बुरी तरह लिपटकर कहती है कि इतनी बडी हो गयी, अभी तक चरित्र पर किसी ने एक शब्द नहीं कहा। उस दिन जो सुना .....। जिस दिन तुम भी मेरे चरित्र पर सन्देह करोगे, उस दिन जहर खा लूँगी। प्रभा के चरित्र की यह पवित्रता प्रत्येक नारी के लिए गर्व की बात है।

'प्रभा बहुत ही समझदार और व्यवहार कुशल है। विपत्तियाँ देखकर वह विचलित नहीं होती। उसे मालूम है कि मुसीबतें हमेशा नहीं रहतीं। वे समय के साथ बदल जाती हैं। इसलिए वह समर से कहती है कि मुसीबतें हमेशा ही तो नहीं रहतीं। तुम पढ-लिख लो। कुछ तो आसानी हो ही जाएगी। तुम्हारे साथ साथ रहूँगी तो कुएँ - खाई कहीं भी डर नहीं लगेगा। अकेले पड जाने पर ही जी घबरा उठता है। समर जब काम में लग जाता है तो वह सबेरे चार बजे उठकर उसकेलिए भोजन तैयार कर देती है। समर की नौकरी छूट जाने की नौबत आने पर भी वह धैर्य से काम लेती है। अपने आभूषण देकर उसकी आर्थिक कठिनाई को कम करने की कोशिश करती है। उदास, हताश समर के लिए वह एक प्रेरक शक्ति बनती है।

उपन्यास में आद्यन्त प्रभा का चरित्र अत्यन्त उज्वल बन पडा है। उस पतिपरायणा नारी की क्षमा, समझदारी, व्यवहार कुशलता और कर्तव्य निष्ठा देखकर हम दंग रह जाते हैं। वह अपने उज्वल चरित्र और व्यक्तित्व से प्रत्येक पाठक को प्रभावित करती है।

नीलिमा

मोहन राकेश के उपन्यास "अँधेरे बन्द कमरे" की नायिका नीलिमा आधुनिक युग की नारी का प्रतिनिधित्व करती है । यह सुशिक्षित और कला निपुण नायिका हरबंस की पत्नी है ।

हरबंस और नीलिमा एक दूसरे को अच्छी तरह समझकर प्रेम के वश में होकर विवाह के बंधन में बंधे हुए थे । पहले नीलिमा की आधुनिकता हरबंस को पसन्द थी, यही नहीं अपनी पत्नी को "मोडेर्न" बनाने में उसने कोई कसर उठा न रखा । अपने सिगरेट पीने के संबंध में नीलिमा मधुसूदन से कहती है, " मैं घर में कभी - कभार एकाध सिगरेट पी लेती हूँ । हरबंस ने मेरी आदतें बहुत बिगाड रखी है[1] ।" पेंटिंग में रुचि न होने पर भी हरबंस का हठ पूरा करने के लिए नीलिमा पेंट करना शुरू करती है । वह मैसूर जाकर भरतनाट्यम की ट्रेनिंग लेना चाहती है, पर हरबंस इज़ाज़त नहीं देता । उस की कथक की प्रेक्टिस भी हरबंस ने छुडा दी । मधुसूदन से उसके इस कथन से इसका कारण स्पष्ट होता है कि "क्योंकि वह अब मेरे नाचने के हक में नहीं है । सप्रू हाउस में जो मेरा शो हुआ न, उसके बाद से ही उसने अपना विचार बदल लिया है, हालांकि पहले उसी के उत्साह से मैं ने सीखना शुरू किया था । तभी से उसे यह धुन लगी है कि मैं नाचने का ख्याल छोड दूं और पेंट किया करूं[2] ।"

1· मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, पृ·74

2· वही, पृ·76

हरबंस के पत्रों से पता चलता है कि हरबंस क्यों विदेश गया और उसका परिणाम क्या हुआ । दोनों साथ साथ रहकर सुखी नहीं रह सकते, अलग रहकर ही दोनों ठीक से अपना अपना विकास कर सकते हैं इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर वह विदेश गया । अंत में उसे महसूस होता है कि दोनों के पास एक दूसरे के साथ चिपके रहने के सिवा कोई चारा नहीं है । इस केलिए दोनों को अपने अपने को काफी बदलना होगा । हरबंस के मन में नीलिमा के प्रति अनुराग की अधिकता न्यूनता का आभास उसके सम्बोधनों से ही मिलता है । नीलिमा, नीलम, सवि, माई डियर सवि आदि सम्बोधन इसके प्रमाण हैं । प्रेम की अधिकता के कारण नीलिमा को हरबंस "सवि" कहकर पुकारता है ।

पारस्परिक प्रेम होने पर भी दोनों के दाम्पत्यजीवन में दरार पड़ने के मनोवैज्ञानिक कारण हैं । नीलिमा में महत्वाकांक्षा के साथ साथ अहं का भाव है तो हरबंस में ईर्ष्या के साथ साथ हीनता की भावना भी है । उमादत्त के नृत्य-ट्रूप के साथ नीलिमा को भेजने में उत्साह दिखानेवाला हरबंस फिर असहयोग प्रकट करता है । पेरिस से लौटने पर नीलिमा स्पष्ट कहती है "क्योंकि मैं तुम से अलग रहना चाहती थी । तुम जानते हो कि हम दोनों के बीच कहीं कोई चीज़ है जो हम दोनों को खटकती रहती है । हम दोनों चेष्टा करके भी उसे अपने बीच से निकाल नहीं पाते[1] ।" दूसरी बार वह अपना विचार प्रकट करती है कि शुक्ला जैसी लड़की के साथ ही हरबंस सुखी रह सकता है क्योंकि उसके अन्दर वह स्त्री नहीं जिसे हरबंस प्यार कर सकता है । अपने बारे में भी वह कहती है, "..... मेरे अन्दर अपना भी ऐसा कुछ है जिस से मुझे प्यार है और जिसे मैं छोड नहीं सकती । तुमने स्वयं ही मेरे अन्दर की उस चीज़ को

---

1. मोहन राकेश - अंधेरे बन्द कमरे, पृ.245

उकसाया और बढावा दिया है । अब जब वह चीज़ पूरी तरह से मेरे मन पर छा गई है, तो तुम चाहते हो कि मैं उस से अपने को मुक्त कर लूँ । परन्तु मैं नहीं कर सकती । तुम्हीं ने मुझे इस रास्ते से परिचित कराया था । मैं अब अपने मन से उस रास्ते पर इतना चल आई हूँ कि लौट नहीं सकती - तुम्हारे कहने से और तुम्हारे हित के लिए भी नहीं । इसीलिए मैं ने सोचा था कि मैं तुम से दूर रह सकूँ तो शायद इसी में हम दोनों की भलाई है[1] ।" लेकिन बाद में उसे अनुभव हुआ कि हरबंस के बिना वह रह नहीं सकती । वह अपने पति से केवल सुरक्षा ही नहीं चाहती, उसका घर और उसका प्यार चाहती है । लेकिन पति ने उसके मन में जो महत्वाकांक्षा जगाई, उसकी पूर्ति केलिए अधिक काल तक वह प्रतीक्षा नहीं कर सकती । उसकी प्रार्थना है, "····· तुमने मुझे जिस रास्ते पर डाला है, अब मुझे उस रास्ते पर आगे ले चलो । मैं तुम से हठ के साथ यही माँगती हूँ । मैं तुम से दूर होकर नहीं रह सकती । तुम भी मुझे अपने से दूर होने का रास्ता न दिखाओ[2] ।" यही नीलिमा एक अन्यस्थल पर मधुसूदन से कहती है कि वह अकेली रहकर ज़िन्दगी काट लेगी, हरबंस के ऊपर बोझ बनकररहना नहीं चाहती ।

नीलिमा स्वतंत्रता पसन्द करनेवाली है, पर उसमें उच्छृंखलता नहीं है । ऊबानू के साथ उसका जो संबंध था, उस से यह प्रकट होता है । ऊबानू के साथ होटल के एक कमरे में ठहरने पर भी वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती । अपने चरित्र की पवित्रता पर उसे गर्व है । ऐसी सच्चरित्रा नारी भी पति के सन्देह का शिकार बनती है । पति के शक से उसे रोष होता है और वह अलग हो जाने की सोचती है । मधुसूदन के इस सुझाव पर कि यदि कोई गलतफहमी हो तो उसे आपस में मिलकर बात करके दूर करना चाहिए,

---

1· मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, पृ·248

2· वही, पृ·255

वह चिल्लाकर कहती है, "आज एक गलतफहमी दूर करूँगी, तो कल उसे दूसरी गलतफहमी हो जाएगी । मैं कहाँ तक रोज़ रोज़ उस के सामने मुजरिम की तरह सफाई देती रहूँ ? मुझ से यह सब नहीं होगा । अगर वह मुझ से कुछ भी कहेगा, तो मैं आज ही उस का घर छोड़कर चली जाऊँगी[1] ।"

नीलिमा और उसकी बहन शुक्ला की प्रकृति में काफी अन्तर है। नीलिमा को पुरुष का अनुशासन प्रिय नहीं है तो शुक्ला को प्रिय है । हरबंस को लेकर दोनों में वाद-विवाद होता है । शुक्ला अपने हरबंस भापाजी को बहुत मानती है, इसलिए वह नीलिमा से कहती है कि आप उनके साथ ज्यादती कर रही हैं । नीलिमा को यह अच्छा न लगता । उसका कथन है, "तुम्हारे लिए घरेलू किस्म की ज़िन्दगी ही सब कुछ है, मेरे लिए नहीं है । मेरी अपनी और भी ज़रूरतें हैं[2] ।" शुक्ला इस मामले में अपनी बहन को माफी नहीं देना चाहती, उसका विश्वास है कि भविष्य में नीलिमा अपनी करनी केलिए पछताएगी ।

कला के प्रति नीलिमा का इतना प्रेम है कि पोलिटिकल सेक्रेटरी के अनुरोध से बैलेरीना को भारतीय नृत्यों के संबंध में बताने केलिए वह आधी रात तक बैठकर नोट्स तैयार करती है । दिल्ली कलानिकेत ने नीलिमा को स्पांसर करने का भार अपने ऊपर ले लिया तो हरबंस शो केलिए बड़ी मुश्किल से राजी होता है । उसका मत है कि नृत्य के क्षेत्र में नाम पैदा करने के लिए प्रदर्शन "फर्स्ट रेट" का होना चाहिए और उस के लिए दो - एक साल और ठहरना पड़ेगा । इस पर नीलिमा ने चिल्लाकर कहा कि यही सोचते सोचते मैं आज चौंतीस की हो गई हूँ । अपने पति से ऐसे कटु वचन कहने में भी उसे संकोच नहीं होता कि "तुम इस हीनभावना के शिकार हो कि लोग

---

1. मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, पृ.313
2. वही, पृ.316

मुझे तुम से ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषय में होती है । तुम्हें यह बात खा जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा नीलिमा के पति के रूप में करते हैं । तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ, तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोगे । यही चीज़ है जो तुम्हारे गले से नहीं उतरती और इसी लिए तुम चाहते हो कि किसी तरह यह आयोजन सफल न हो जिससे तुम बाद में मेरा मज़ाक उडा सको और अपने पर गुमान कर सको ।" उसकी यह आशंका सच निकलती है । आयोजन असफल होता है और नीलिमा हरबंस को ही इस पराजय का जिम्मेदार मानकर घर छोड जाती है । उसने घोषित कियाकि मैं सदा केलिए घर छोड रही हूं । पर वह पुन: वापस आती है ।

पति से उसका व्यवहार उस के चंचल हृदय का परिचायक है, वह कभी रीझती है तो कभी खीझती है, बात बात में घर छोड जाती है, पुन: लौट आती है । प्रत्येक बार संबंध विच्छेद की संभावना दीखती है, पर अंत तक संबंध विच्छेद नहीं होता । इस से स्पष्ट है कि दोनों के बीच में कलह का कोई स्थायी कारण नहीं । कुछ अधिक बौद्धिक होने के कारण वह पति ही गति नहीं समझती और पति को देवता नहीं मानती । दोनों का मन मुटाव क्षणिक है । यह पत्नी रूप आदर्श नहीं है, पर स्वाभाविक है, क्योंकि नवयुग में ऐसे अनेक पति-पत्नी दिखाई देते हैं । अपने पुत्र अरुण के प्रति ममता होने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मातृरूप उज्वल नहीं बन पडा है । वह सचमुच अँधेरे बन्द कमरे में है ।

---

1. मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, पृ.419

चन्दा

श्री॰ उपेन्द्रनाथ अश्क के "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना" और "एक नन्हीं किन्दील" इन तीनों उपन्यासों की नायिका चन्दा में एक आदर्श भारतीय नारी के सभी गुण विद्यमान हैं। सरल, सीधी, समझदार, सुशील, हँसमुख लड़की चन्दा का विवाह चेतन से होता है। अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चन्दा वह उसकी मोटी - मुटल्ली पत्नी-अपनी उस साधारण दिखाई देनेवाली सूरत-शकल के अन्दर एक अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है[1]।" "चन्दा सरल थी, भोली-भाली थी, उदार थी, सहृदय थी, विनम्र और संकोचशील थी। पर वह सुन्दर और शिक्षित न थी, इसी बात का खेद चेतन को सदैव रहा करता था[2]।" इसलिए उसने चन्दा को पढने की प्रेरणा दी।

चेतन की माँ ने उसे पहले ही बताया था कि चेतन फूल फूल पर बैठनेवाला, आकाश के विस्तार में स्वच्छन्द उडनेवाला पक्षी है, ज़रा सतर्क रहेगी तो वह भाग न पाएगा। चन्दा के ताऊ की मझली लड़की नीला के प्रति चेतन के मन में आकर्षण है। यह जानकर भी वह विचलित नहीं होती। निम्नलिखित पंक्तियाँ पति के प्रति उस के असीम विश्वास का परिचय देनेवाली है, "मुझे इस बात का डर नहीं। वह मेरी छोटी बहन है। ताऊ की लड़की हुई तो क्या, मैं ने उसे बहन की तरह समझा है। उस की इज्जत आपके हाथ में है। वह चंचल है, बालिका है, छोटी-मोटी गलती कर सकती है, पर आप तो नहीं कर सकते।"

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ॰225
2. वही, पृ॰282

और एक असीम, अपार उदार विश्वास से अपने पति को देखते हुए उसने उस के मस्तक पर हाथ फेरा ।

चेतन ने अपनी दृष्टि अपनी पत्नी की आँखों में जमा दी । इस सरल हृदया पत्नी से कभी वह विश्वासघात कर सकता है । एक असीम दया और निर्मल प्रेम से उस के मन प्राण प्लावित हो उठे । कितना बडा दिल पाया है इस नारी ने ! फिर कितनी भोली । नहीं जानती कि मानसिक संबंध के अतिरिक्त शारीरिक संबंध भी कोई चीज़ है । ।[1]" नीला की शादी के बाद उदास चेतन सुबह से शाम तक मुहल्ले में चक्कर काटकर विविध चिंताओं से आक्रांत हो चन्दा के पास आता है तो "करुणा की टीस उस के हृदय की गहराई में उतर गयी शायद वह उसकी प्रतीक्षा करती सो गयी है। वह बोलती नहीं, लड्ती झगड्ती नहीं, ताना तिश्ना नहीं देती, सरला और स्नेहशीला है, तो क्या वह केवल मिट्टी का लोंदा है ? उसके यहाँ भावना नाम की चीज़ नहीं है क्या ? वह केवल अपनी ही भावना, अपने ही स्वार्थ, अपने ही पक्ष की बात सोचता है । उस के पास जो है, उसे ठुकराकर, जो नहीं है, जो नहीं मिल सकता, उस के पीछे परेशान है । ग्लानिमिश्रित करुणा का एक ज्वार सा उस के हृदय में उमड आया[2] ।" "चन्दा ने उसे कोई ताना नहीं दिया, न खीझी, न चिढी, न गुस्से में आई । अपार ममता से उस की कनपटी को धीरे धीरे थपकती रही, "आप बेकार यह सोचते हैं कि आप ही के कारण नीला की शादी वहाँ हुई । आप तायाजी से न कहते तो भी शायद वहीं ब्याही जाती । .....[3] ।" चेतन को कहना पडा कि तुम

1· उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ·307

2· वही, "शहर में घूमता आईना," पृ·471

3· वही, पृ·473-474

मुझसे बहुत समझदार हो । "चन्दा ने कुछ उत्तर नहीं दिया । बच्चे की तरह उसने अपने पति को सीने से दबा लिया । चेतन को लगा गर्मी और तपिश से जला - झुलसा, थका-हारा वह उसी विशाल झील के किनारे आ गया है - उसके ठहरे निथरे निर्मल जल के किनारे ही उसकी नियति है, वह क्यों उससे दूर भागता है, उसे कहीं त्राण नहीं मिलेगा, कहीं शांति नहीं मिलेगी[1] ।" पति के प्रति इस अटूट विश्वास का और भी दृष्टान्त है । कमला के यहाँ जमुना के प्रति चेतन के आकर्षण को जानकर ही चन्दा ने कमला के यहाँ जाने की बात कही तो "चेतन ने एक तेज़ निगाह चन्दा के मुख पर डाली । लेकिन व्यंग्य का उस भोले चेहरे पर आभास तक न था । उस के बदले एक बड़ी मीठी, त्यागमयी मुस्कान वहाँ खेल रही थी । चेतन ने क्षणिक आवेश में अपनी पत्नी को बाँह में भर लिया[2] ।"

इतनी सरल होने पर भी वह अपनी सास को प्रसन्न न कर सकी । उनके अनुसार वह गुम-सुम पत्थर है । "अजगर की तरह खाना और सोना जानती है । काम के नाम पर सिफर है[3] ।" एक दिन चेतन और चन्दा रात में देर से लौटे तो माँ इतनी नाराज़ हो गयी कि वहाँ से जाने को तैयार हो गयी । चेतन के आदेशानुसार चन्दा किसी तरह के अपराध के बिना अपनी सास के कदमों पर झुकी भी, लेकिन माँ नहीं मानी । चेतन के बडे भाई से चन्दा का व्यवहार आदरपूर्वक था, तो भी भाभी ने उस पर सन्देह किया और उसे बेशर्म कहकर उसकी भर्त्सना की । नीला की शादी के बाद भी चेतन के मन-मस्तिष्क पर वह छायी हुई थी, और चन्दा की सुस्ती और फूहड़ता के कारण वह अत्यंत विक्षुब्ध रहता था, तो भी जब वह भाई को कुर्सी खरीदने के लिए गहने देने को तैयार हो जाती हैतो अपनी पत्नी की सरलता और अपने प्रति

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क - शहर में घूमता आईना, पृ.474
2. उपेन्द्रनाथ अश्क - एक नन्हीं किन्दील, पृ.497
3. उपेन्द्रनाथ अश्क - गिरती दीवारें, पृ.237

उसके अगाध विश्वास को देखकर चेतन अभिभूत रह गया था। भोली-भाली चन्दा किसी के लिए मन में हसद नहीं पालती। लेकिन उसकी भाभी एक भयानक गलतफहमी का शिकार होकर अपनी बीमारी उसे देने केलिए जानबूझकर उसकी कटोरी में से सालन खाती है। तब चेतन को लगा कि भाभी वह चुड़ैल है जो उसकी पत्नी को ग्रास लेना चाहती है। इस पर भी चेतन जब चन्दा को कृपालदेवी विद्यालय में दाखिल कराना चाहता है तो वह धीरे से कहती है, "कुछ दिन और रुक जाते तो अच्छा था। मैं विद्यालय चली जाया करूँगी तो बहन जी अकेली रह जाएँगी और उन्हें कौन देखेगा, कौन उन्हें दवा पिलायेगा, कौन खाना खिलाएगा ?" अपनी पत्नी के उस भोले निर्विकार विश्वासी चेहरे को देखते हुए चेतन के मन में आया था कि वह उसे माँ की सारी शंकायें बता दे। यही नहीं, भाभी के व्यवहार के प्रति उसके अपने मन में जो शंकायें पिछले चन्द दिनों से उठ रही थीं, वे सब उस के सामने रख दे। लेकिन सोचने पर चेतन को लगा कि उसे अपनी पत्नी का विश्वास नहीं तोडना चाहिए, उस के मन में विद्वेष नहीं भरना चाहिए।[1]"

अपनी पत्नी के प्रति अगाध विश्वास और स्नेह होने पर भी चेतन कभी कभी खीझता था। जब उसे मालूम हुआ कि उसके ससुर पागल खाने में हैं और सास सेठ वीरभान के यहाँ नौकरी करती है तो उसका झूठा अभिमान जाग उठा। क्रोध और विक्षोभ के ऐसे क्षणों में वह अपनी पत्नी के तमाम गुण भूल जाता था जो उसे बहुमूल्य लगते थे। वह सोचता था, "पत्नी के रूप में मोटी-गुटल्ली, गँवार उसके गले में बाँध दी जिसे दो वर्ष में वह ठीक से कपडे पहनना और सफाई से रहना ही सिखा पाया।[2]" उसने अपार करुणा और स्नेह से पिता की ओर से उसे आश्वस्त किया था तो चन्दा का स्नेह स्निग्ध नया रूप ही दिखाई दिया था। "कभी वह उसे ठहरे निथरे पानी की बेकिनार झील ऐसी लगी थी, जिस में वह डूबकर अपने उत्तप्त

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - एक नन्हीं किन्दील, पृ.395
2. वही, पृ.511

मन को शान्त कर लेता था। लेकिन उस रात चन्दा उसे उत्तरी ध्रुव के उस बर्फानी घर ऐसी लगी, जो चर्बी की पत्ती से रोशन और गर्म हो और बाहर की ठण्ड में अजानी उष्णता देता हो। जो धीरे धीरे पिघलता हुआ उसे अपने में समो लेना चाहता हो ....। यही चेतन पागलखाने से लौट आने के बाद उससे बहुत दूर हो गया था। ऐसा लगता था कि सभी दोष चन्दा का हो। उसने पत्नी से सांत्वना का एक शब्द भी न कहा था। चन्दा ने भी उस सिलसिले में ज़बान न खोली थी। वह अपने पति की तकलीफ समझती थी।[1]

चन्दा की सच्चरित्रता, सहनशक्ति, निष्कलंकता और निस्वार्थ स्नेह ने ही चंचलचित्त चेतन को बाँध रखा था। चेतन तो अपनी पत्नी की शीतल छाया में ही शान्ति पाता था। ऐसी आदर्श पत्नी और आदर्श नारी का रूप इस संसार में दुर्लभ है।

मानकुमारी

"सामर्थ्य और सीमा" भगवती चरण वर्माजी का उपन्यास है। इसमें नायिका मानकुमारी का भव्य चरित्र अंकित हुआ है। मानकुमारी यशनगर की रानी है और मिटती सामन्त व्यवस्था की निशानी है।

छब्बीस वर्ष की रानी मानकुमारी में आधा नेपालीरक्त था। राजा शमशेर बहादुर सिंह से रानी मानकुमारी ने प्रेम किया था और विवाहान्तर वे राजा के साथ उनकी छाया की तरह फ्रांस, इंग्लैंड, स्विटज़रलैंड, इटली, स्पेन सभी जगह घूमी थीं। एक दिन जब मानकुमारी बर्न के एक नर्सिंग

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - एक नन्हीं किन्दील, पृ.539-540

होम में इलाज करा रही थीं, राजा साहब शराब में धुत्त अपनी मोटर सहित आल्पस पहाड के एक खड्ड में गिरकर मर गए । पति की मृत्यु के बाद उन्हें जीवन में एक भयानक अभाव का अनुभव हुआ था । तो भी उन्होंने धीरता के साथ विपत्ति का सामना किया । नकद रुपया तो राजा शमशेर बहादुरसिंह करीब करीब समाप्त कर चुके थे, कुल दो ढाई लाख रुपया बचा था, लेकिन ज़ेबर और हीरे-जवाहरात उनके पास सुरक्षित थे । राजा साहब की मृत्यु के एक महीने के अन्दर ही वे अपने देश वापस लौट आईं ।

यशनगर लौटकर उन्होंने अपने मृत पति के चाचा मेजर नाहरसिंह को बुलवाया । परिवार में केवल उन्हीं की शाखा बची थी । यशनगर लौटने पर रानी के हाथ केवल यशनगरवाला महल लगा और सुमनपुर के चार छोटे छोटे बँगले लगे, जिन में एक में मेजर नाहरसिंह रहते थे । अपनी सम्पत्ति को वापसपाने के लिए रानी ने अथक परिश्रम किया, नाहरसिंह हर जगह अपनी बहू के साथ गये । उन के सम्पर्क में आनेवाले सभी व्यक्ति सद्भावना और सदाचार का अभिनय करते हैं, पर वास्तव में कोई किसी का सहायक नहीं बनता । "उन्होंने अनुभव किया कि काम बनाने के लिए जिस चीज़ की आवश्यकता है वह उनके स्वभाव और प्रकृति में नहीं है[1] ।" तो भी उन्होंने प्रयत्न किया ।

स्वातंत्र्यानंतर भारत में कई योजनायें बनायी गयीं । उनमें एक है सुमनपुर योजना । इस योजना के लिए इंजिनीयर देवलकर, आर्टिस्ट मंसूर, उद्योगपति मकोला, मंत्री जोखनलाल आदि विशिष्ट व्यक्ति आये । उन्होंने रानी साहबा का आतिथ्य ग्रहण किया । विधवा रानी की सहायता का वचन भी दिया गया ।

---

1. भगवतीचरण वर्मा - सामर्थ्य और सीमा, पृ.65-66

रानी मानकुमारी में अनेक विशिष्ट गुण हैं जिनमें प्रमुख हैं उनका अनुपम सौन्दर्य । "रानी मानकुमारी को अद्वितीय सौन्दर्य मिला था, आर्य और मंगोल रक्त का सम्मिश्रण । रानी मानकुमारी का वर्ण चम्पा की भाँति पीला तथा सुनहला था । स्वस्थ और सुडौल शरीर गठा हुआ । युवावस्था के रक्त के गुलाबीपन ने उनके वर्ण को और भी निखार दिया था । काले, घने और घुँघराले बाल, मत्था थोडा-सा नीचा, जिस पर से यद्यपि सौभाग्य की बिन्दी मिट चुकी थी, पर पाश्चात्य दृष्टिकोण से सौभाग्य की बिन्दी अनिवार्यत: लगी रहती थी । कुछ तिर्छी-सी गहरे काले रंग की आँखें जो यद्यपि बडी नहीं थीं, पर छोटी भी नहीं कही जा सकती थीं । गालों की हड्डियाँ कुछ थोडी सी उभरी हुई । पतली, सुडौल और नुकीली नाक, पतले पतले होंठ जिनसे मानों रक्त टपका पड़ता हो । रानी मानकुमारी के सौन्दर्य को विदेशों में मुक्तकंठ से स्वीकार किया गया था । पर मानों रानी मानकुमारी को अपने सौन्दर्य का बोध ही न हो[1] ।" मेजरनाहरसिंह कहते हैं कि रानी का यह अपूर्व सौन्दर्य उनके लिए अभिशाप है । "........ दूसरों को तोड़कर रख देनेवाले इस सौन्दर्य के भीतर कितना सुकुमार, कोमल और विवश व्यक्तित्व है । सौन्दर्य की राजसिकता के अन्दर आत्मा की सात्विकता । रानी बहू, मुझे तुम्हारे ऊपर बडा दु:ख होता है[2] ।" खुले हुए बाल, शरीर पर कोई भी आभूषण नहीं, रेशम की सफेद साडी, दाहिने हाथ में पिस्तौल, मुख पर असीम करुणा और भक्ति की छाप - आरती उतारकर आनेवाली रानी का यह रूप देखकर एलबर्ट मिशम मंसूर कहते हैं, "रानी साहिबा ! काश आपकी इस सुन्दरता को मैं पेंट कर पाता । मेडोना से अधिक सौन्दर्य का मैं सृजन कर देता । आजवाली आपकी सुन्दरता, जिन्दगी में फिर कभी देखने को न मिलेगी[3] ।"

1· भगवतीचरण वर्मा - सामर्थ्य और सीमा, पृ·62

2· वही, पृ·72

3· वही, पृ·131

मेजर नाहरसिंह अपनी बहू की अजीब सुन्दरता अनंत काल तक निरखते रहने का आग्रह प्रकट करते हैं तो रानी पूछती है कि मेरी इस सुन्दरता का उद्देश्य क्या है, इसकी सार्थकता क्या है । कवि शिवानन्द शर्मा तो रानी की दैवी सुन्दरता, राजसी वैभव, असीम ममता और करुणा को लिपिबद्ध करना चाहते हैं । एडिटर ज्ञानेश्वर राव ने विभिन्न देश देखे थे, सुन्दरता के विभिन्न पहलू देखे थे, पर ऐसा अजीब, मोहक व्यक्तित्व कहीं न देखा था । मकोला तो रानी के अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्हें अपने आलिंगन पाश में कस लेना चाहते हैं और बडी से बडी कीमत दे कर भी उन्हें प्राप्त करना चाहते हैं ।[1]

सौन्दर्य के अलावा धीरता, वीरता, निष्कलंकता, स्वाभिमान आदि कई गुणों से सम्पन्न मानकुमारी घुडसवारी और कार-ड्राइविंग में भी कुशल हैं । वे शिक्षित हैं और देशविदेश का भ्रमण करने के कारण उनकी बुद्धि भी जाग्रत हुई है । मेजर नाहरसिंह का पुत्र रघुराज कम्युनिस्ट हो गया था, इस पर नाहरसिंह रुष्ट हैं । मानकुमारी उन्हें समझा देती हैं कि परिस्थितियाँ परिवर्तित हुई है, अधिकारी बेईमान, बदनीयत, मनुष्यत्वहीन और चरित्रहीन बन गये हैं, अत: रघुराज का कम्युनिस्ट होना स्वाभाविक ही है । तब रानी से नाहरसिंह का कथन है, "रानी बहू, तुम स्त्री नहीं, देवी हो, कितनी दया, कितनी ममता, कितनी करुणा बटोर लायी हो तुम अपने में ! लेकिन इस सब के साथ भयानक दुर्भाग्य । भगवान से यही विनय है कि मैं अपनी लक्ष्मी, अन्नपूर्णा कल्याणी बहू के चरणों पर प्राण दे दूँ ।"[1] ज़मीन्दारी उन्मूलन के कारण रानी को बडी हानि हुई थी । इस पर दु:खी होने पर भी वे अपना स्वाभिमान छोडने को तैयार नहीं थे । जोखमलाल से वे उत्तेजित होकर कहती हैं कि मुझे किसी की सम्वेदना नहीं चाहिए, मुझे अपनी सम्पत्ति का मुआवज़ा चाहिए, मुझे जीवित रहने का अधिकार चाहिए ।[2] नाहरसिंह के रोकने पर भी

1· भगवतीचरण वर्मा - सामर्थ्य और सीमा, पृ·74-75

2· वही, पृ·84

वह ज़िद्द करके रोहिणी का कोप शान्त करने केलिए उसकी आरती उतारने जाती हैं । उन्हें अपने भविष्यद्रष्टा कक्काजी पर विश्वास है । उनकी भविष्यवाणी थी कि रोहिणी बदला लेगी । रानी की मौलिकता और प्रतिभा से प्रभावित होकर रावसाहब कहते हैं कि आपको सार्वजनिक जीवन में आना चाहिए। रानी के संबंध में मकोला से जोखनलाल का कथन है, "..... जितना कुछ मैं ने इस औरत के संबंध में जाना है, न जाने क्या, उस से मुझे इस औरत से कभी कभी डर लगने लगता है, बडा अहंकार है उसमें[1] ।" पहले मकोला के बुलाने पर वे नहीं जातीं, मकोला उन्हें पाँच लाख के शेयर्स देकर अपने "हिन्दी कापर्स" कम्पनी में मैनेजिंग डायरेक्टर बनाना चाहता है तो पहले वे क्रुद्ध हो इनकार करती हैं, फिर विवश हो स्वीकार करती हैं । देवलंकर की विवाह प्रार्थना पर वे कहती हैं कि मुझे सोचने विचारने का समय दीजिए । कठिनाइयों के बीचमें भी वे जीना चाहती हैं ।

यशनगर में रानी का सत्ताईसवाँ जन्मोत्सव मनाया जा रहा था । अनेक अतिथि आमंत्रित थे । तभी अचानक बाढ के आने पर शर्मा आदि से यशनगर की बस्ती की ओर संकेत करके वे कहती हैं, "मेरी प्रजा को देख रहे हैं आप, इसे छोड़कर कैसे जा सकती हूँ ? मेरी आप लोगों से विनय है, आप लोग चले जाइये[2] ।" यहाँ उनकी प्रजावत्सलता दर्शनीय है । वे एक बार नाहरसिंह से बचाने की प्रार्थना करती हैं तो दूसरी बार कहती हैं, मैं जीना नहीं चाहती । आखिर वे चीख उठीं, "बचाइये कक्काजी !" लेकिन रानी और मेजर दोनों बच नहीं सके ।

यह निर्विवाद है कि रानी मानकुमारी के मोहक व्यक्तित्व से प्रस्तुत उपन्यास "सामर्थ्य और सीमा" आद्यन्त देदीप्यमान है ।

1· भगवतीचरण वर्मा - सामर्थ्यऔर सीमा, पृ·231

2· वही, पृ·313

<u>नसीबन</u>

साम्प्रदायिकता अंधविश्वास और परंपरागत रूढिवादिता के विरोधी तथा एकता,प्रगति एवं समानता के सिद्धान्तों के हामी कमलेश्वरजी के उपन्यास "लौटे हुए मुसाफिर" में उनकी उपयुक्त सभी मान्यताओं के जीते-जागते चित्र उपस्थित हैं । प्रस्तुत उपन्यास में नसीबन नामक नारी-चरित्र के द्वारा लेखक ने मानवीय मूल्यों के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रदर्शित की है ।

नसीबन को हम इस उपन्यास की नायिका कह सकते हैं । उपन्यास में आद्यन्त उसके महान व्यक्तित्व की झलक नज़र आती है । विभाजन के पहले और बाद भी उसकी झोंपडी चिकवों की बस्ती में ही है ।

नसीबन साम्प्रदायिकता से कोसों दूर है । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ साथ साम्प्रदायिक वैमनस्य की जो आग बस्ती भर में लग गई थीं, उससे वह सदा अलग ही रही । बस्ती की बातों की भनक उसके कानों में भी पडती थी, पर वह जैसी निर्लिप्त थी । बच्चन नामक हिन्दू के बच्चों को पालने में उसे ज़रा भी संकोच नहीं आता । बस्ती में हिन्दू-मुसलमान तनाव बढ जाने पर इस बात की भी चर्चा दोनों ओर होने लगी । यासीन ने कहा कि बच्चन उसे हिन्दू बना रहा है । साई ने नसीबन से कहा कि तुम्हारी वजह से पूरी बस्ती पर आफत टूट पडेगी । इस पर नसीबन का कथन है, "साई, असल बात यह है कि ये बच्चे तुम्हारी आँखों में कसक रहे हैं । मेरे लिए धरम-करम का सवाल नहीं है साई, सीधी-सी बात है, मुझसे इन बच्चों को बिलखता नहीं देखा गया, सो ले आई । कल को इनका बाप आ जाएगा तो चले जायेंगे[1] ।" नसीबन में इस मानवीय समवेदना के साथ साथ

---

1. कमलेश्वर - लौटे हुए मुसाफिर, पृ.110

निर्भीकता भी दर्शनीय है । संघी लोग उससे बच्चे माँगने आते हैं तो वह निड़र होकर रतन से कहती है, "आप पुलिस को खबर कर दें ।" आगे वह कहती है, "खूब आये आप लोग बच्चे हवाले कर दो । वाह भाई वाह ! जो मरना हो मरो जाकर पुलिस नहीं, लपटेन को बुला लाओ । हाँ नहीं तो, ऊपर से तुर्रा लेकर आए हैं - मुसलमान बनाया जा रहा है । अरे हम काहे को बनायेंगे किसी को मुसलमान हमारे क्या बाल-बच्चे नहीं है हो नहीं तो - ।"[1]

सहृदयता और उदारता की प्रतिमूर्ति नसीबन सत्तार और सलमा के संबंध का समर्थन करती है । साई से उसका सवाल है, "सारी दुनिया की जिम्मेदारी क्यों ओढ ली है तुमने साई? जिसके जो मन आता है, करने दो तुम टाँग क्यों अडाते हो?"[2] सत्तार पर उसे पूरा विश्वास है । उसे वह असली लोहे की गुप्ती सौंपती है । बच्चन के बच्चों को, लौटा देने का काम भी सत्तार को ही सौंपती हुई वह कहती है, "सत्तार, तू अपनी जिम्मेदारी पर इन बच्चों को सौंप आ, नहीं तो मुझे कभी चैन नहीं आएगा ।"[3] साई की कोठरी से बहिष्कृत सत्तार को अभयदान देकर वह अपनी हृदय विशालता का परिचय देती है । बचपन के बच्चे की देखभाल करनेवाली नसीबन में निस्वार्थ सेवाभाव ही दृष्टव्य है । रात भर नसीबन वहीं रमुआ के बिस्तर के पास बैठी रही, बच्चन ने कहा कि वह कुछ देर सो ले, पर वह नहीं हटी, "मरद नहीं समझ सकते बाल-बच्चों का सुख-दु:ख ।"[4] आखिर बच्चों को

---

1. कमलेश्वर - लौटे हुए मुसाफिर, पृ.116
2. वही, पृ.45
3. वही, पृ.121
4. वही, पृ.79

बिदा करते समय वह अपने कुछ रुपये भी बच्चन को देने के लिए सत्तार के हाथ में देती है । सत्तार के मना करने पर वह कहती है, "हैं तो अपने, पर विपदा में घिरा है बेचारा इधर चोरी-छुपे रहते हुए काम धाम भी नहीं कर पाया होगा । ऊपर से बच्चे जा रहे हैं, कुछ ज़रूरत भी तो पड़ेगी उसे कह देना, अपने समझकर ही खर्च कर ले । कोई बात मन में न लाये ।"[1] उसकी आँखों में असीम ममता थी उन बच्चों केलिए और शायद अपने लिए गहरा सन्नाटा ...... ।"[2] पराए बच्चों के प्रति भी यह स्नेह भाव नसीबन जैसी उदार हृदया नारी में ही दृष्टव्य है ।

ऐसी सच्चरित्रा नारी को भी अपराधिनी घोषित करनेवालों की कमी नहीं । पर नसीबन किसी की परवाह नहीं करती । साई से उसका निम्नलिखित कथन इस बात का प्रमाण है, "साई, कहनेवाला कहा करें पर मेरा अल्लाह जानता है । दिल में हाथ रखकर ईमान से कहना साई - अब पचास के आसपास आकर क्या यही सब बाकी रह गया है मेरे लिए इस उमर में हूं और लोगों को शरम नहीं आती ऐसी बातें करते हुए और तुम खुद सुनते हो, और शिकायत-शिकवे लेकर आते हो, खुद जवाब नहीं दिया जाता तुम से ?"[3] मानिक और स्कामिन से उसके संबन्ध में मन गढंत बातें कहकर उसका अपमान करनेवाले बच्चन को भी कभी कभी पश्चात्ताप होता है । "जब भी वह सोचता तो मन में कहीं चोट लगती थी कि नसीबन ने उसके साथ क्या किया और वह क्या सोच गया ।"[4] "अरे वह कौन औरत है जिसने बच्चन का माल दबा रखा है ?"[5] स्कमिन का यह प्रश्न सुनकर सत्तार को

1· कमलेश्वर - लौटे हुए मुसाफिर, पृ·121

2· वही, पृ·123

3· वही, पृ·99

4· वही, पृ·106

5· वही, पृ·108

बच्चन की कृतघ्नता का पता लगता है । सत्तार से यह बात जानकर भी नसीबन का मन ज़रा भी चंचल नहीं होता । अपने बारे में भली-बुरी बातें सुनकर भी विचलित न होनेवाला वह हृदय पाकिस्तान बनने पर देश छोड़नेवालों के बारे में सोचकर विचलित होता है । "आखिर घर-बार छोड़कर गए हैं कई कई पुश्तों के नार यहीं गड़े हैं ऐ खुदा ।"[1] इफ्तिकार से उसका प्रस्तुत कथन इसका प्रमाण है ।

नसीबन बस्ती छोड़कर नहीं जाती । उसे बस्ती के उजड़ जाने का दुःख तो है ही, लेकिन उसे सबसे बड़ा दुःख है उन मानवीय रिश्तों के बिखर जाने का, जिनके चलते यहाँ जीवन जीने लायक नहीं रह गया है । वह प्रायः मसजिद की सीढ़ियों पर अथवा साईं के पास बैठकर वहाँ के पेड़-पौधों, गलियों, टूटे हुए घरों ही नहीं, सुबह शाम की फिज़ाँ तक को उन पुराने सन्दर्भों से जोड़कर देखती रहती है । एक वह समय था जब बस्ती में इन्सान थे, उनकी खुशियाँ थीं, उनके भय थे और उनके जीवन संघर्षों में सदा सरगर्मी बनी रहती थी । नसीबन की इस मानवीय संवेदना के कारण ही बस्ती से गए हुए लोगों के बच्चे बड़े होकर पाताल कुओं में मज़दूरी करने के लिए लौट आए तो वह खुशी के मारे रो पड़ती है और उन्हें खिलाने-सुलाने का प्रबंध करती है।

नसीबन को इस प्रकार उदारता, निर्भीकता, और सहृदयता की प्रतिमूर्ति बनाकर उपन्यासकार ने आदर्शवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है । यह ममतामयी नारी समस्त नारी जाति के लिए आदर्श है ।

---

1. कमलेश्वर - लौटे हुए मुसाफिर, पृ.128

चित्रा

श्री· इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "ऋतुचक्र" के नारीपात्रों में चित्रा का प्रमुख स्थान है । पहले वह रिसर्च स्कॉलर थी । तब वह नकुलेश नामक युवक की प्रेमिका थी ।

उपन्यास में पहले पहल हम मिसेज़ चित्रा कटारा को एक पहाड़ी प्रदेश के होटल में देखते हैं । मिलनकुमार {दादा} विश्वविद्यालय के अध्यापक का काम छोड़कर वहीं रहते हैं । उनकी पूर्व विद्यार्थिनी प्रतिमा, जो अब एक कॉलेज में प्रिंसिपल हैं, और कवि नकुलेश उसी होटल में रहते हैं ।

उपन्यास के पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप से और आखिर चित्रा के पत्र से हमें चित्रा के अतीत जीवन का ज्ञान होता है । प्रारंभ में नकुलेश के प्रति उसके मनोभाव का पता दादा से चित्रा के निम्नलिखित कथन से लगता है, "..... देखकर, सुनकर मैं मुग्ध हो गयी और बरबस उसके व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व को डुबा देने केलिए उत्सुक - बल्कि तत्पर हो गयी[1] ।" पर अपनी शक्की मिज़ाज़ के कारण नकुलेश को चित्रा का दूसरे लड़कों से बातचीत करना अच्छा न लगता था । इस के बारे में चित्रा का कथन है, "..... मैं सोचने लगी कि व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता और दायित्व हीनता का पाठ पढ़ानेवाला यह अस्तित्ववादी मेरी तनिक भी स्वतंत्रता सहन नहीं कर पाता, यह तो कुछ विचित्र-सी बात है । .....[2] ।" उसे चिढ़ाने केलिए ही वह दूसरे लड़कों से हेल-मेल बढ़ाने लगी । नकुलेश बुरी तरह बौखला उठता । चित्रा भी उससे उकताने लगी और उससे मिलने में रुचि न दिखाने लगी ।

1· इलाचन्द्र जोशी - ऋतुचक्र, पृ·66-67

2· वही, पृ·68-69

चित्रा यह हठ किये बैठी थी कि विवाह न करेगी । इस हठ से माँ दु:खी हो बीमार पड गई । ऐसा लगा कि वे आत्महत्या करेंगी । तब चित्रा विवाह के लिए राजी हुई । एक व्यवसायी के इकलौते बेटे से उसका विवाह भी हुआ । लेकिन सुहागरात से ही एक अप्रत्याशित अनुभव उसे हुआ, फिर भी वह सब कुछ सहन करती गयी । ससुराल का नया वातावरण भी उसके लिए दम घोंटनेवाला सिद्ध हुआ । मध्यम श्रेणी के जिन व्यवसायियों से ससुरालवालों का हेलमेल था, सारी कालोनी उन्हीं लोगों से भरी थी । उनकी स्त्रियाँ या तो अनपढ थीं या अर्द्ध शिक्षित । उनकी सामाजिकता अत्यंत पुराने ढंग की थी । पुरुष या तो नीरस व्यावसायिक बातों में रस लेते थे या छिछले स्तर के भोंडे हास-परिहास में । सारे वातावरण में एक अजीब और सब कुछ सोखने वाली घुटन थी । पहले अपने पति के प्रति उसे दया थी, फिर वह इस निष्कर्ष पर पहुँच गयी कि दया नाम की कोई चीज़ बौद्धिक प्राणी में होनी ही नहीं चाहिए । पति से उसने साफ कह दिया कि मैं इस वातावरण में जी नहीं सकती, अत: यहाँ से चली जाऊँगी । उस समय चित्रा के सामने दो ही रास्ते थे - या तो आत्महत्या या उस निर्जीव समाज के बंधन से पूर्ण मुक्ति । उसने दूसरा मार्ग अपनाया ।

पहाडी प्रदेश के इस होटल में नकुलेश से मिलने पर उसे पहले क्रोध आता है । नकुलेश के संबंध में दादा से चित्रा का यह कथन इसका प्रमाण है, "..... पर मैं ने इसके जो रूप देखे हैं और देख रही हूँ उन से मैं तिलमिला उठी हूँ । यह मेरे जीवन का कोढ बनकर चिमटे रहना चाहता है । जब हम दोनों बहुत निकट थे तब भी इस ने अपनी कल्पनातीत ईर्ष्या से मेरा जीना दूभर कर दिया था, और जब मैं इस से कतराकर दूर भागना चाहती हूँ, तब यह खुले आम मुझे बेइज्ज़त करना चाहता है ।"[1] चित्रा का कहना है कि अब उसके लिए जीवन निरर्थक है और अनचाहे अस्तित्व का जो निरर्थक भार

---

1. इलाचन्द्र जोशी - ऋतुचक्र, पृ.66

पल पल ढोना पड़ रहा है, वह एक विकट "टार्चर" भयंकर सांसत है । चित्रा में बौद्धिक प्रतिभा के साथ साथ मानवीय संवेदना भी थी । उसके ऐसे विशिष्ट गुणों के कारण नकुलेश उस पर मुग्ध हो गया था । पूरे एक वर्ष तक चित्रा के प्रति उस का विश्वास स्थिर रहा, फिर डगमगाने लगा । नकुलेश को लगा कि वह नित्य नये नये लड़कों से नये नये संबंध स्थापित कर रही है । इसके संबंध में शिकायत करने पर चित्रा ने स्पष्ट कह दिया कि नकुलेश वहम और तुच्छ ईर्ष्या का शिकार हो गया है ।

चित्रा और नकुलेश के आपसी संबंध में दरार पड जाने पर भी नकुलेश उसे उच्छृंखल नहीं मानता, उसके व्यक्तित्व का आकर्षण भी उस के लिए कम नहीं हुआ । प्रतिमा से उसका कथन है, "इतनी बात मेरे आगे स्पष्ट हो गयी थी कि वह चाहे मुझ से कैसी ही घृणा क्यों न करने लगी हो; मेरी प्रेतात्मा के प्रेम ने फाँसी का एक ऐसा फन्दा उसके गले में डाल रखा है, जिस से वह चाहने पर भी मृत्युपर्यंत मुक्त नहीं हो सकती ।"[1] वैवाहिक बंधन को तोडने का साहस दिखाकर उसने वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रति अटूट विश्वास और लगन का परिचय दिया, वह भी नकुलेश की दृष्टि में प्रशंसनीय है । चित्रा और नकुलेश को पुन: मिलाने का जो प्रयत्न प्रतिमा और दादा करते हैं, वह कुछ कुछ सफल होता दिखाई देता है । लेकिन इसी बीच होटल में गिडवानी और माणिकलाल के साथ चित्रा के व्यवहार से नकुलेश की ईर्ष्यावृत्ति पुन: जाग्रत होती है और अचिरात् वह होटल से जाता है ।

---

1. इलाचन्द्र जोशी, ऋतुचक्र, पृ.130

प्रतिमा के लिए तो चित्रा अत्यंत प्यारी है । मेला देखने जाने पर उसका पुचकारना इस बात का प्रमाण है[1] । चित्रा के संबंध में प्रतिमा का कथन है, "....... कैसी विचित्र और अनमेल प्रवृत्तियाँ इस आधुनिका में पायी जाती हैं । कुछ ही दिनों के परिचय से उसके स्वभाव के कितने विचित्र और परस्पर विरोधी रूप मेरे सामने आ चुके हैं । ....[2] ।" चित्रा के व्यक्तित्व का प्रभाव दादा पर पहले ही पडा था । एक बार उसकी सजधज देखकर उन्होंने उसे "रानी आफ सिंगापोर" कहा था । उन्हें मालूम हुआ था कि चित्रा एक साधारण बौद्धिक नारी होने के साथ ही सहज सूझबूझ भी रखती है और उसकी अन्तर्दृष्टि भी पैनी है ।

चित्रा इतनी स्वाभिमानिनी है कि पति और पिता से कोई सहायता स्वीकार नहीं करती । इस से उसे आर्थिक कठिनाई होती है । लेकिन वह इसके बारे में किसी से कुछ नहीं कहती । इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि मायके और ससुराल दोनों ओर से सम्पन्न होने पर भी, पहाड-प्रवास का इरादा करके आयी हुई, फैशनेबुल समाज की कोई नारी आते ही आर्थिक कठिनाइयों के चक्कर में फँस सकती है। प्रतिमा के पूछने पर भी वह कहती है कि मुझे रुपयों की तनिक भी आवश्यकता नहीं है । दादा का मत है, नये युग की सारी विचित्रताओं के बीच भी चित्रा की समस्यायें अपना एक विशिष्ट ही निरालापन लिए हुए है[3] ।" चित्रा के अत्यंत भावपूर्ण, स्नेहसिक्त, करुण तथापि आत्माभिमानी रूप का परिचय पाकर दादा समझ लेते हैं कि उस विचित्र और प्रकट में भटकी हुई नारी का सच्चा रूप अत्यधिक

1· इलाचन्द्र जोशी - ऋतुचक्र, पृ·157
2· वही, पृ·175
3· वही, पृ·239

गरिमामय है । दादा को गिडवानी और माणिकलाल के बीच में बैठी हुई चित्रा राहु-केतु से घिरे चन्द्रमा की तरह, या दो बधिकों के बीच बँधे बलि-पशु की तरह लग रही थी । "मुझे जीवन में पहली बार एक चरित्र मिला है प्रतिमा, "दादा कहते चले गये, "ऐसा जो अपने सही मानों में चरित्र हो - अपने हर रूप में । सच मानो, प्रतिमा, इस अद्भुत नारी ने मेरी चेतना को तल से सतह तक झकझोर दिया है ।"[1] चित्रा के चरित्र की विशेषता का प्रमाण है दादा का प्रस्तुत कथन ।

माणिकलाल लिली नामक युवती को अपने प्रेमजाल में फँसाता है, चित्रा को भी वह चाहता है । उसे गिडवानी से ईर्ष्या होती है और एक दिन वह उसकी हत्या करता है । यह हत्या और उसके बाद के जाँचकांड के सारे चक्कर के बावजूद भी चित्रा की सहजता और अल्हडपन देखकर दादा को अद्भुत होता है और साथ ही साथ एक अप्रत्याशित आनन्द । लेकिन उसकी आत्महत्या की खबर पाकर वे दंग रह जाते हैं । प्रतिमा के दु:ख की सीमा न रही । माणिकलाल को भी पश्चात्ताप होता है । मरने के पहले दादा के नाम पर चित्रा ने जो खत लिख रखा था, उससे उसके गतकाल अनुभवों का स्पष्ट चित्र उपलब्ध होता है । नपुंसक पति ने उससे गिडगिडाकर प्रार्थना की थी कि वह उस की उस स्थिति की चर्चा किसी से न करे । पूरे एक वर्ष तक उसने पति के साथ "असिधाराव्रत" निबाहा था । माणिकलाल के हाथ अपनी दूरबीन, केमरा और ट्रांज़िस्टर बेचकर उसने अपना कर्ज चुकाया था । वह हर प्रकार के सेक्स संबंध से अछूती रही थी ।

---

1. इलाचन्द्र जोशी - ऋतुचक्र, पृ.313

उपर्युक्त विवेचन से हमें मालूम होता है कि चित्रा का चरित्र सब प्रकार से निर्मल था, तो भी वह सफल प्रेमिका भी नहीं बन पायी और सफल पत्नी भी । वास्तव में अपने समस्त विशिष्ट गुणों के बावजूद चित्रा का जीवन असफलता की करुण कहानी मात्र रह गया है ।

ऊपर जिन नारीपात्रों का विश्लेषण किया गया है, सब के सब उपन्यास - नायिकाओं की कोटि में आती हैं । गीता और शैलबाला क्रांतिकारिणियाँ हैं, परदोनों का दृष्टिकोण विभिन्न है। दोनों पर चरित्र हीनता का आरोप लगाया गया है, पर गीता का चरित्र सचमुच परम पवित्र है जबकि शैलबाला चारित्रिक निर्मलता के प्रति उदासीन है । दिव्या तो दिव्या ही है, अपने स्वाभिमान की रक्षा केलिए, अपने मातृत्व की रक्षा केलिए भटककर, अनेक यातनाएँ सहकर सब ओर से निराश होकर अंत में धूलि-धूसरित मार्ग के पथिक नास्तिक मारिश को अपना आश्रयदाता मानती है । जीवन के दुस्तर लम्बे मार्ग में उसे कभी दासी होकर जीना पडा, कभी वेश्या होकर उन सभी रूपों में वह पाठक के स्नेह और आदर की पात्री रही । आदर्श प्रेम की पवित्रता की बलिवेदी पर आत्मार्पण करके भोली सुधा और मनुष्य के विविध रूपों का प्रतिरूप बनकर बेचारी सोमा हमारी दया ही पा लेती हैं । परिस्थितियों के घात-प्रतिघातों के बीच में भी आत्महत्या न करनेवाली मृणाल का साहस सराहनीय है । आज की लड़की है कल की नारी । अत: नाबालिग होने पर भी अमिता की शील महिमा ध्यान देने योग्य है । तारा का प्रौढ गंभीर चरित्र तो अत्यंत गरिमामय है । उस पर प्रत्येक भारतीय नारी गर्व कर सकती है। अपने क्षणिक मानसिक विकल्प से मुक्त होकर गुलबिया हमें चेतावनी देती है कि फैशनबुल समाज के बहकावे में आकर अपने आपको और अपने प्यारे सगे-संबंधियों को भूलना अच्छा नहीं । प्रभा के सामने दो समस्यायें है, एक संयुक्तपरिवार, दूसरी बेकारी, आर्थिक अभाव आदि से पीड़ित पति की

असाधारण मानसिक स्थिति । इन दोनों के बीच घुट घुट कर जीनेवाली प्रभा भारतीय नारी की विवशता की प्रतिमूर्ति है । दूसरे विश्वमहायुद्ध, भारतस्वातंत्र्य आदि के बाद नारी समाज की जो जागृति हुई उस के फलस्वरूप स्वतंत्र नारियों का एक ऐसा वर्ग ही दृष्टव्य हुआ, जिसके लिये पुरुष का अनुशासन असह्य है । ऐसी नारियों के प्रतिनिधि के रूप में हम नीलिमा को ले सकते हैं । पति की ईर्ष्या उसके इस मानसिक विकल्प को उत्तरोत्तर बढाती है । इतना होने पर भी उसका हृदय नितांत प्रेमशून्य या कठोर नहीं, अतः वह संबंध-विच्छेद नहीं करती । अपनी असीम ममता और सहिष्णुता से गृहस्थ जीवन के संतुलन को बनाये रखनेवाली चन्दा, स्वयं अपवाद का शिकार बनने पर भी उसकी परवाह न करके निस्वार्थ सेवा में रत नसीवन और राजकीय वैभव-विलास को नष्ट होते देखकर भी अपनी व्यक्तिगत गरिमा से विचलित न होने वाली मानकुमारी साठोत्तर युग के उपन्यासों में दीपशिखाओं की भांति जाज्वल्य-मान रहती हैं । चित्रा का अनुभव तो बिल्कुल विचित्र है । वह स्वयं निर्दोष है, पवित्र है, पर उस के सम्पर्क में आये अन्य व्यक्तियों के स्वभाव की विकलता के कारण उसे अपने जीवन का अंत करना पड़ता है ।

&&&&&&&&&&&&&&&

पाँचवाँ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के कुछ विशिष्ट नारी-पात्र

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के कुछ विशिष्ट - नारी-पात्र

इस अध्याय में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कुछ ऐसे नारी-पात्रों का संक्षिप्त विश्लेषण है जिनकी चरित्रगत विशेषताएँ ध्यान देने योग्य है । पिछले अध्याय में इनका विवेचन नहीं हुआ है । स्वतंत्रतापूर्व काल की राज, छाया, रत्नप्रभा और नीलिमा [निर्वासित] तथा स्वातंत्र्योत्तर काल की सत्या, कन्नगी, माधवी, अंजना, कजरी, प्यारी, कनक और ताजमनी एवं साठोत्तरकाल की सुषमा, उग्रतारा, रेखा, योके और शीरीं इस विश्लेषण के अंतर्गत आती हैं ।

राज

लेफ्टिनेंट डॉ॰ भगवानदास खन्ना की पत्नी राज यशपाल के उपन्यास "देशद्रोही" का एक प्रमुख नारीपात्र है । खन्ना की बदली किर्की छावनी से उत्तर पश्चिम सीमांत की छावनी में हुई तो वे पत्नी राज को देहली छोड़कर गये । तुत्ती में शक्तिशाली ब्रिटिश सेना के कैंप से डाक्टर को वज़ीरी बाँध ले गये । उनका इरादा था कि चार हज़ार रुपये पाने पर वे डाक्टर को छोड़ेंगे अन्यथा गज़नी में बेच देंगे । खन्ना ने देहली में पत्र भेजा । पर कोई उत्तर न आया । सैनिक दफ़्तर से डाक्टर की मृत्यु का समाचार पाकर राज ने अफीम खा ली । पर डाक्टर के मित्र बद्रीबाबू के प्रयत्न से वह बच गयी ।

विधवा बनने पर उसकी स्थिति दयनीय हो गयी । "घर में बहू के आने पर, लक्ष्मी के चरण पड़ने के कारण वह लाला ईश्वरदास की दृष्टि में सुलक्षणा लक्ष्मी और लाडली बन गयी थी । सास के आसन की अधिकारी बुआ और जेठानी उसे कुछ न कह सकती थीं, किन्तु कुलक्षणा विधवा बन आने पर वही बहू बोझ बन गयी ।"[1] राज को लगा कि अब वह किसी की भी अपनी नहीं ।

राज की बहन चन्दा का उसके प्रति उदार दृष्टिकोण था । बद्रीबाबू के अनशन के समय राज देहली चली गयी तो राजाराम को वह बुरा लगा;

---

1. यशपाल - देशद्रोही, पृ॰39

लेकिन चन्दा कहती है, "..... पढी-लिखी है, खुद समझती है । बीसियों स्त्रियाँ कांग्रेस में काम करती हैं तो क्या बुरा करती हैं ? बेचारी लड़की है, इसी से सब मुसीबत है । मर्द होती तो कोई रोक लेता ?" धीरे धीरे वह सार्वजनिक क्षेत्र में उतरी । सब्जी मंडी की नीची गली में शिवनाथ से मिलने जानेवाली राज का चित्रण उपन्यास में इस प्रकार हुआ है, "उस गिलाज़त और गन्दगी भरे वातावरण में बगुले के परों सी श्वेत साडी पहने, राजबीबी ऐसे जान पड रही थी जैसे कूडे-करकट के ढेर पर बरसात में दूधिया श्वेत खुम्ब (धरती का फूल) निकल आई हो[2] ।" इस प्रकार बाहर निकल कर कार्य करना घरवालों को पसन्द नहीं था । "बुआ और भौजाई उसे सुनाकर कहने लगीं - भले घर की बहू-बेटियों के यह काम नहीं कि सिपाहियों की तरह कमर बाँध कर बाज़ारों में फिरें ! इस घर की बहुओं ने कभी अकेले गली में कदम न रखा था । यह अच्छी सुलच्छनी आई हैकि दुनिया में खानदान का नाम रोशन कर दिया[3] ।" परिणाम यह हुआ कि "एक छोटी झोंपडी उसके लिए भी सेवाश्रम में बन गयी । वह घर छोड़कर वहीं जा बसी । उस की ससुराल ने समझ लिया, वह मर गई[4] ।"

विदेश में भटकने पर भी खन्ना राज को भूल न सका था । वह कभी कभी नर्गिस और राज की तुलना करता । "राज निर्जीव फूल की भाँति एक ही मुद्रा में आत्मसमर्पण कर अपनेपन को खोकर समाप्त न हो जाती थी । उसका मचलना, मान करना, चेहरे और नेत्रों में आने जानेवाली भाव-भंगी और मुस्कुराहट प्रेम और प्रणय केलि के युद्ध में सदा प्रयत्न का अवसर बनाये रखता[5] ।"

1· यशपाल - देशद्रोही, पृ·76

2· वही, पृ·81

3· वही, पृ·89

4· वही, पृ·93

5· वही, पृ·97

बद्रीबाबू के निकट सम्पर्क में आकर राज की श्रद्धा प्रेम में बदल गयी । एक दिन समाचार छपा - राजनैतिक विवाह देहली के प्रसिद्ध नेता बद्रीबाबू का श्रीमती राजदुलारी से सिविल विवाह[1] ।"

खन्ना को बचाने केलिए चन्दा राज के यहाँ उन्हें ले गई तो राज का कथन है, "अपने पाप के लिए मैं जान दे दूँ पर प्रसाद के लिए कलंक कैसे लगा लूँ ? एक के जीतेजी दूसरा बाप कैसे लाद दूँ ? उस बेचारे का क्या कसूर अपने पाप केलिए उस की ज़िन्दगी कैसे बरबाद कर दूँ[2] ? यह जानकर खन्ना का विचार है, "वह तो मेरे प्रेम में प्राण न्योछावर कर रही थी । आज क्या हो गया ? हाय रे स्त्री ! तेरा प्रेम भी मजबूरी का है, गुलामी का है[3] ।" राज के प्रति ऐसा सोचना अन्याय है क्योंकि वह विवश है, उसकी परिस्थिति ऐसी है । वह निर्दोष है ।

राज के चरित्र के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक पत्नी के रूप में और एक माता के रूप में अपने कर्तव्य को निबाहने केलिए वह हमेशा प्रस्तुत है । पुनर्विवाह करके उसने अपने वैधव्य दुःख से मुक्ति पायी और साथ ही साथ जीवन के प्रति अपने नये दृष्टिकोण का परिचय दिया । दो बार उसे पत्नीत्व ग्रहण करना पडा, दोनों बार उस ने उस रूप से न्याय किया । अंत में उसका मातृरूप सर्वाधिक उज्वल बन पड़ा है ।

छाया

यशपाल के उपन्यास "दिव्या" में छाया को हम दासी-वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ले सकते हैं । धर्मस्थ के प्रासाद में वत्सल कन्या की धाता को सभी धाता ही पुकारते थे । दिव्या की माता ने धात्री की कन्या को

---

1. यशपाल - देशद्रोही, पृ.143
2. वही, पृ.296
3. वही, पृ.297

अपनी संतान की छाया मानकर छाया ही पुकारा और उसका नाम भी छाया ही हो गया ।

दासी होने के कारण उसे अपने व्यवहार में हमेशा सतर्क रहना चाहिए था । उसके लिए लज्जा, संकोच आदि नारी सहज भाव निषिद्ध थे क्योंकि ये कुलांगनाओं के लक्षण थे । छाया से आर्य मोक्षा का यह कथन इसका प्रमाण है, "तू छली और कुलटा है । दासी होकर कुल ललनाओं की भाँति लाज का नाट्य करती है। तू आर्य को मोहित करना चाहती है[1] ।"

छाया वास्तव में दिव्या की छाया ही थी । इस समवयस्का आत्मीया दासी से वह उसी प्रकार निस्संकोच थी जैसे कोई अपने नित्य व्यवहार के वस्त्रों से होता है। छाया का प्रेमी, धर्मस्थ के प्रासाद का दासनायक बाहुल दासता से स्वातंत्र्य-लाभ करने के लिए स्वेच्छा से सैनिक सेवा केलिए चला गया था । दिव्या की विरक्ति और शैथिल्य में छाया अपने छिपे दु:ख का आभास पाती । दोनों के दु:ख की अनुभूति में अंतर इतना ही था जितना उनकी दु:ख सहने और दु:ख प्रकट करने की क्षमता में था[2] ।" दिव्या के दु:ख से वह इतनी दु:खी थी कि "दिव्या के नेत्र सूखे थे, परन्तु छाया के नेत्र निरंतर आँसू बहाने और पोंछे जाने के कारण सूजकर लाल हो गये[3] । "अत्यन्त शीत के कारण शरीर को घुटनों और कोहनियों में समेटे वह स्वामिनी के पर्यंक के नीचे उसके स्नेह रज्जु से बंधे कुत्ते की भाँति पडी रही[4] ।"

1· यशपाल -दिव्या, पृ·34

2· वही, पृ·72

3· वही, पृ·91

4· वही, पृ·92

दिव्या और धाता के अप्रत्यक्ष होने पर विष्णु शर्मा ने आज्ञा दी कि "दासी धाता की पुत्री छाया को विशेष पीड़ित कर रहस्य जाना जाय। छाया ने आँसुओं से भीगा मुख पृथ्वी पर रखकर त्रस्त, कम्पित स्वर में गिडगिडाते हुए अज्ञान प्रकट कर करुणा की भिक्षा माँगी।[1]" लेकिन कोई फल न हुआ। उसकी स्वामि भक्ति के लिए उसे मृत्यु ही मिली। यह समाचार पाकर धर्मस्थ विष्णुशर्मा के मुँह से निकले ये शब्द कितने हृदय विदारक हैं, "छाया को, उस की माता के स्वामि स्नेह का ...... परिणाम ! पुत्र मुझे खोकर तुम्हारे इस अन्याय का प्रायश्चित हो[2]।"

प्रेम, स्वामि भक्ति आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न छाया के माध्यम से यशपाल जी ने दासी जीवन की करुण कथा हमारे सामने रखी है। इस निरीह दासी का अंत वास्तव में चौंकानेवाला है, मानव की अमानवीयता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

रत्नप्रभा

यशपाल के उपन्यास "दिव्या" के विशिष्ट नारी पात्रों में एक है रत्नप्रभा। शूरसेन प्रदेश की जनपद कल्याणी राजनर्तकी देवी रत्नप्रभा सागल की राजनर्तकी देवी मल्लिका की शिष्या है। उसका कोमल हृदय करुणा से आर्द्र है, जो सहृदय पाठक को अनायास ही अभिभूत करता है। बजरे में जल-विहार करने आयी रत्नप्रभा के आदेशानुसार सेवकों ने डूबती हुई दारा को जल से निकालकर बजरे पर लिटा दिया। करुणा से द्रवित देवी रत्नप्रभा ने मूर्च्छित स्त्री के बाहुपाश से शिशु को अपनी

1· यशपाल - दिव्या, पृ·110

2· वही, पृ·112

बाँहों में ले लिया । शिशु निष्प्राण हो चुका था । मृतशिशु को एक ओर रखकर व्यथा का निश्वास लेकर रत्नप्रभा के दासी का जल और शैवाल से भरा सिर, अपनी बहु मूल्य शाटक कौशेय की चिंता न कर गोद में ले लिया । देवी रत्नप्रभा और उसके सेवकों के यत्न से दारा सचेत हुई । अपने शावक को खोजनेवाली दारा के सिर पर स्नेह का हाथ रखकर रत्नप्रभा ने सान्त्वना दी । भागोडी दासी को अपनी सम्पत्ति कहनेवाले पुरोहित चक्रधर से बचाने की प्रार्थना दारा करती है तो उसका हृदय सहतापार्द्र हो जाता है और वह रविशर्मा से प्रार्थना करती है कि इस पीड़ित दासी का मूल्य वह ब्राह्मण को देकर इस दासी को पा सके । पुन: वह हाथ जोड करुणा विगलित स्वर में कहती है । धर्मरक्षक देव, दासी दारा के अपराध के दण्ड स्वरूप यह नर्तकी स्वर्ण दण्ड के रूप में जो आज्ञा हो, पूर्ण करने केलिए प्रस्तुत है । अंत में उसकी प्रार्थना सफल होती है ।

रत्नप्रभा का विचार था कि दारा को अपनाकर उसने कीचड में से काँच पाया परन्तु दारा तो मणि निकली । रत्नप्रभा दारा के प्रति दयालु थी । उसका गुण और रहस्य जानकर वह उस पर आदर से अनुरक्त हो गयी । उसने उसे अंशमाला नाम दिया । अंशमाला के कारण रत्नप्रभा के यहाँ पहले से दूना धन आने लगा । बिना चिंता और प्रयत्न के बढ़ते चले आनेवाले द्रव्य केलिए रत्नप्रभा को कुछ आकर्षण न रहा । अपने आकर्षण की शक्ति खो बैठने से एक नीरसता और निरुत्साह सा उसे सब ओर अनुभव होने लगा । रत्नप्रभा स्वयं पूजा की प्रतिमा न रहकर नई आयी प्रतिमा की संरक्षिका स्वामिनी और अधिष्ठात्री बन गई । वह सोचने लगती अठारह वर्ष पूर्व, जब वह अपनी शिक्षा मल्लिका के प्रासाद में पूर्ण कर मथुरापुरी लौटी थी जनसमाज उस की ओर झुम पडा था । उस समय कौमुदी ने उससे कितनी ईर्ष्या की थी ।

परन्तु कौमुदी की ईर्ष्या किस बात के लिए थी ? उसने ऐसा क्या पाया था, जो उसका ही होकर रह गया ? यही है वेश्या के जीवन का विद्रूप । यही है उसकी सफलता, समृद्धि और आत्मनिर्भरता? वेश्या देती है अपना अस्तित्व और पाती है द्रव्य परन्तु पराश्रिता कुलवधू अपने समर्पण के मूल्य में दूसरे पुरुष को पाती है, किसी दूसरे पर भी अधिकार पाती है । वेश्या का जीवन मोटी बत्ती और राल मिले तेल से पूर्ण दीपक की अनुकूल वायु में अति प्रज्वलित लौ की भांति या उल्कापात की भांति क्षणिक तीव्र प्रकाश करके शीघ्र ही समाप्त हो जाता है । कुलवधू का जीवन मध्यम प्रकाश से चिरकाल तक टिमटिमाते दीपक की भांति है । ममता भरी शरण के हाथ प्रतिकूल परिस्थितियों के झंझावात में उसकी रक्षा करते हैं । यह अपने निर्वाण से पूर्व अपने अस्तित्व से दूसरे दीप जलाकर अपना प्रकाश उनमें देख पाती है । स्वयं उसके निर्वाण हो जाने पर भी उसका प्रकाश बना रहता है । ऐसी परम्परा ही मनुष्य की अमरता है[1] । वेश्या और कुलवधू का उपर्युक्त तुलनात्मक विचार एक कुलवधू बनने की दमित अभिलाषा का ही द्योतक है ।

रत्नप्रभा ने पहले अनिच्छा से मारिश को साक्षात्कार का अवसर दिया था । परन्तु मारिश के व्यवहार में कुछ ऐसा था, कि रत्नप्रभा उसकी उपेक्षा न कर सकी । मारिश के प्रलाप पर वह गंभीरता से मनन करने लगी । रत्नप्रभा के हृदय में संतोष न था परन्तु विश्वास और आशा थी । अपने व्यवसाय से संचित द्रव्य का यथेष्ट भाग वह यज्ञबलि में अर्पण करती थी । उसे विश्वास था, पूर्व जन्म के कर्मफल से उसने इस जन्म में केवल ख्याति और धन पाया । परन्तु जीवन की पूर्णता से वह वंचित रही । इस जन्म के पुण्य से वह इस पूर्णता को परलोक और पुनर्जन्म में पाएगी । मारिश की संगति से रत्नप्रभा परलोक और अमरता की कामना से विरत होकर जीवन की सार्थकता की बात सोचने लगी । यथेष्ट द्रव्य पाकर भी

---

1. यशपाल - दिव्या - विद्यार्थी संस्करण, पृ. 139

स्वयं समाज केलिए भोग्य बने रहने में उसे जीवन की सार्थकता न जान पड़ती। कुलवधू के जीवन की कल्पना उसे अत्यन्त आकर्षक जान पड़ती। परन्तु वह अवसर जैसे हाथ से निकल गया था।

परिचय के आरंभ से ही रत्नप्रभा ने अंशुमाला के प्रति करुणा और ममता अनुभव की थी। उसे अपनी गुरु मल्लिका की शिष्या जानकर और अपने प्रति उसकी अनुरक्ति और निर्भरता देखकर वह अंशुमाला के प्रति अत्यन्त वत्सल हो उठी। अंशुमाला के स्वामिनी पुकारने पर भी वह उसे बहन और सखी ही संबोधन करती। चालीसवें वर्ष में पहुँची हुई रत्नप्रभा को अंशुमाला में अपने पद और स्थान की स्पर्धा करनेवाली प्रतिद्वन्दी नहीं अपितु अपनी परम्परा की रक्षा करनेवाली उत्तराधिकारिणी दिखाई दी। वह गर्व, सन्तोष और स्नेह से उसे अंशुमाला न पुकार अंशुप्रभा पुकारने लगी। समाज में अंशुमाला के बारे में अपवाद फैलने पर रत्नप्रभा उसे अपने व्यवसाय के प्रति आदर और निष्ठा के कर्तव्य का बोध कराती है।

मारिश को सम्बोधन करते समय रत्नप्रभा के ओठों पर और नेत्रों में प्रकट मुस्कान के पीछे हृदय में वेदना के एक शूल-सा खटकता रहता। जीवन के सम्पूर्ण प्रयत्न से उसने जनपद कल्याणी की अपनी प्रतिष्ठा और वैभव का मन्दिर खड़ा किया था परन्तु इस मन्दिर में अर्चना के देवता का स्थान शून्य ही रह गया। इस अभाव के कारण उस वैभव और सफलता की कुछ सार्थकता न हो पायी। क्या मारिश "पुरुष देवता" के रूप में उस अभाव को पूर्ण नहीं कर सकता? लेकिन मारिश से पुरुष के देवत्व की भिक्षा माँग उसे क्या देगी? अपना ऊसर वार्द्धक्य? उच्छृंखल युवक पर वह केवल अपना वात्सल्य ही निछावर कर सकती थी।

गुरु मल्लिका के प्रति रत्नप्रभा के मन में अतीव भक्ति है । उसने अपने यहाँ पधारे गुरु देवी की आरती स्वर्ण के आधार पर रखे एक सौ घृतदीपों से उतारी और रत्नों से भरा थाल भेंट किया । गुरु देवी के माँगने पर वह अपनी प्रिय शिष्या अंशुमाला को भी उनके चरणों पर अर्पित करती है । रत्नप्रभा के लिए अंशुमाला का वियोग सर्वस्व त्याग ही था परन्तु जैसे कन्या की माता पुत्री को पति के लिए बिदा करते समय मर्मांतक वियोग को उत्सव का रूप देती है उसी प्रकार रत्नप्रभा ने अपनी सखी भगिनी, पुत्री अंशुमाला को उसके उज्वल भविष्य के विश्वास से देवी मल्लिका के करों में समर्पण करने का आयोजन किया । नेत्रों से जल बहाती वह उसे नगर द्वार तक बिदा देने गयी । विराट समाज पथ के दोनों ओर एकत्र था । रत्नप्रभा मल्लिका के वेगवान रथों से उड़ती धूलि के मेघों में अस्पष्ट होती जाती मल्लिका के रथ की मकरध्वजा को नेत्रों पर हाथ रखे देखती रही, मानों मार्ग पर दूर होकर प्रतिक्षण क्षीण होते जाते उस बिन्दु में ही उसके प्राण समाये थे । दृष्टि के असमर्थ हो जाने से, उस बिन्दु के अदृश्य हो जाने पर वह शिष्या मुक्तावली के कंधे का सहारा लिए निर्जीव और जड के समान रह गयी । यहाँ उसका शिष्य वात्सल्य दर्शनीय है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि दया, ममता, भक्ति, महानता, सहृदयता, वत्सलता आदि विशिष्ट गुणों से ओतप्रोत है रत्नप्रभा का चरित्र ।

नीलिमा

श्री· इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "निर्वासित" की नायिका है नीलिमा । "नीलिमा की परिकल्पना का स्त्रोत वह निम्न मध्यवर्गीय क्रांति थी जो सन् बयालीस के अगस्त आन्दोलन और द्वितीय महायुद्धकाल में हुई थी । इस क्रांति का चमत्कार नारी की मूल आत्मा का कायापलट है । अगस्त आन्दोलन, युद्धजनित प्रभाव, बंगाल का अकाल आदि कारणों से एक ऐसी रासायनिक प्रतिक्रिया मध्यवर्गीय भारतीय नारी की अंतरात्मा में हुई कि

उस के भीतर युगों से दबी हुई प्रचंड प्रतिहिंसात्मिका शक्ति पूरे विस्फुर्जन के साथ जाग उठी। वह माता, वधू, कन्या कुछ भी न रहकर सहसा रणचंडी भैरवी का खप्पर और त्रिशूल हाथ मे लिए खडी हो गई । विश्व स्तब्ध विस्मय के साथ उसकी ओर ताकता रह गया, पारिवारिक जीवन की स्नेहश्रृंखला से छिन्न नवयुवकों को एक नयी रहस्यात्मक प्राय: आध्यात्मिक और रोमांचक प्रेरणा मिली, किसी भी शान्तिवादी दार्शनिक में न तो इतना बल रह गया कि उस नववर्ग की प्रशंसा करे, न इतना साहस ही कि उस की निन्दा करे[1]।
नीलिमा के चरित्र की पृष्ठ भूमि यही है ।

नीलिमा पढी लिखी है और कांग्रेस की स्वयं सेविका है । युवक कवि महीप की कविताओं से वह प्रभावित होती है और उसके प्रति उसके मन में प्रेम होता है । नीलिमा की कल्पना के अनुसार जो गुण अपने प्रेमी केलिए आवश्यक हैं, वे सब महीप में विद्यमान है । लेकिन वह नाटा है। उसका बाह्य रूप आकर्षक नहीं । इस के विपरीत ठाकुरसाहब सुन्दर हैं, अमीर हैं । नीलिमा की माँ ठाकुर साहब से उसका विवाह कराना चाहती है । लेकिन नीलिमा को पत्नी बनाना महीप का उद्देश्य है । नीलिमा असमंजस में पडती है । जिससे प्रेम है, वह सुन्दर नहीं, जिससे नफरत है, वह सुन्दर है ।

इस चंचल और वचन विदग्धा नायिका का व्यक्तित्व सब को मोहनेवाला है । व्यंग्य कसने में भी वह कुशल है । ठाकुरसाहब और महीप दोनों को वह भ्रम में डालती है । स्वयं भी वह नहीं जानती कि क्या करना चाहिए । आखिर वह महीप के साथ भाग जाने का निश्चय करती है । लेकिन पुलिस की पकड में आती है । स्टेशन पर पुलिस के पूछने पर वह महीप को अपना पति कहती है। घर लौट आने के बाद उसे पश्चात्ताप होता है ।

---

1. इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित, पृ.2

अपनी माँ के प्रति नीलिमा के मन में अत्यधिक स्नेह है । निम्न लिखित पंक्तियों से उसका मातृस्नेह प्रकट होता है, "मैं कैसी ही "प्रोग्रसीव" क्यों न होऊँ, पर मैं अपने भीतर इतना साहस नहीं पाती कि माँ की एकांत इच्छा के विरुद्ध विद्रोह करूँ । माँ के प्रति ममता स्वाभाविक है, पर मेरी माँ केवल माँ ही नहीं है, लेकिन हम लोगों के पिता के स्थान में भी वही है । सांसारिक तथा सामाजिक विषयों में उनकी दक्षता और अनुभवशीलता के फलस्वरूप हम लोगों ने कभी पिताजी के अभाव का अनुभव नहीं किया । ऐसी हालत में यह कैसे सम्भव है कि ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर उनका विरोध करूँ ।"[1] माँ के प्रति इस मोह के कारण महीप को प्यार करने पर भी ठाकुर साहब को वह ठुकरा नहीं सकती । एक बार वह माँ से बिगड़कर चली भी जाती है, पर पुलिस उसे वापस लाती है ।

ठाकुर साहब से उसका विवाह होता है। लेकिन अपमानित हो वापस आती है । महीप फिर से उस से प्रेमप्रार्थना करता है, पर नीलिमा उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं करती ।

इस प्रकार प्रेमिका और पत्नी दोनों रूपों में वह पराजित होती है । नीलिमा में एक दोष यह है कि उसका चित्त दृढ नहीं । मन की इस चंचलता के कारण वह निश्चय नहीं कर सकती कि क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए । अतः अंत में असफलता ही हाथ लगी ।

---

1. इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित, पृ. 124

सत्या

श्री॰ उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास "गर्मराख" की नायिका है सत्या। उसके बारे में आमुख में उपन्यासकार कहते हैं, "गर्म राख" की नायिका वह मौन, गंभीर, रूखी, रसीली, रहस्यमयी युवती - उसका "गिरती दीवारें" में कहीं निशान नहीं, सत्या की कुंठा और उस कुंठा से जनित निराशा के आवेग में कर्मक्षेत्र को छोड, आत्महत्या सरीखे पलायन की दर्द भरी कहानी है। लेखक पर उस के साथ अन्याय करने का दोष लगाया गया है। लेखक उस के दर्द से दु:खी न होता तो इतने पृष्ठ काले न करता[1]।"

कुमारी सत्या सलूजा "सत्या विद्यालय की प्रिन्सिपल है। "मालती" में उसकी एक कहानी छपी थी। उसके साथ उसका जो फोटो था, वह देखकर हिन्दी के "बायरन" कवि चातक अपने स्वभाव के अनुसार तत्काल उसे अपनी प्रेयसी मान लेता है। उनके श्रम से जो संस्कृति समाज शुरू हुआ, उसका मंत्री था जगमोहन। सत्या महिलामंत्री बनायी गई। प्रथम भेंट में ही जगमोहन को मालूम हुआ कि सत्याजी बहुत गंभीर हैं। जगमोहन की दृष्टि में सत्याजी का रूप यों था, "मंझला कद, छरहरा शरीर, खादी की मोटी, छपी साडी को बडे यत्न से अपने शरीर के गिर्द लपेटे हुए वे मौन रूप से चली जा रही थीं। यद्यपि उन्होंने स्वयं जगमोहन से बात चलायी थी, पर उनकी आकृति पर जो कर्कशता उसने पहले दिन देखी थी, उसमें तनिक भी कमी न आयी थी। आँखें थीं कि जैसे म्यान से निकली दो तलवारें। रंग उनका गोरा था और नक्श तीखे थे, पर कुछ ऐसी रुखाई, कडाई, मृदुलता का कुछ ऐसा अभाव उसे वहाँ दिखाई दिया कि लगभग आध मील चलने पर भी

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ॰18

उसने स्वयं बात न चलायी न ही वे बोली ।[1]"

"पर यह लड़की योग्य और गंभीर है, चंचल और उच्छृंखल नहीं, जैसा कि आजकल लाहौर में अधिकांश पढ़ी लिखी लड़कियाँ होती हैं[2] ।" सत्या के संबंध में जगमोहन से देवचन्द कालेज के प्रिन्सिपल पंडित दाताराम का प्रस्तुत कथन सत्या के निर्मल चरित्र का परिचायक है । उसके स्नेहपूर्ण व्यवहार से जगमोहन की भाभी प्रभावित होती है । अमृतसर में अपना मन न लगने के कारण वह अपने पिता के चचेरे भाई के पास गोपाल नगर आयी थी और वहीं पढ़-लिखकर उसने एक विद्यालय भी खोल दिया था । वह गोपालनगर के सब से अच्छे विद्यालय की संचालिका शान्ताजी की शिष्या थी । सत्या का विद्यालय खोलना शान्ता को पसन्द नहीं था । जगमोहन ने सत्या को नौकरी दिलाने का आश्वासन दिया तो वह मृदुल, करुण और स्निग्ध स्वर में बोली, "आपकी बड़ी कृपा होगी ।" तब जगमोहन को वह बहुत सुन्दर लगी ।

सत्या को लेकर शुक्लाजी ने जगमोहन के प्रति व्यंग्य प्रकट किया कि "हमारा भी हिस्सा रहे मित्र[3] ।" लेकिन वास्तव यह था कि सत्या जगमोहन को चाहती थी, पर जगमोहन दुरो को चाहता था और दुरो हरीश को चाहती थी । सत्या के पतले छरहरे शरीर और गोरी मुखाकृति के बावजूद उसका रूखापन, उसकी निडरता, स्त्री सुलभ लाज की लाली का अभाव आदि बातें उसे पुरुषों सा बना देती थीं । "इसी खसमां खानी की कसर रह गयी थी[4] ।" इतना पढ़ी-लिखी सत्या के मुँह से पंजाब के गली मुहल्लों के स्त्रियों की यह आम गाली सुनकर जगमोहन के मन में आश्चर्य के साथ सत्या के प्रति

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ.93-94
2. वही, पृ.107
3. वही, पृ.232
4. वही, पृ.253

अनादर का भाव भी जाग्रत हो गया था । तो भी आँधी में डेवढी में अपने पहलू से लगे लगे सत्या पर उस के मन में क्षणिक आकर्षण पैदा हुआ था ।

राजनीति में सत्या की रुचि का प्रमाण है जगमोहन से उसका यह कथन कि "समाजवाद, साम्यवाद सब बाद की बातें हैं, इस समय तो स्वराज्यवाद की आवश्यकता है । पहले देश विदेशियों के चंगुल से स्वतंत्र हो जाय, फिरवह भी देखा जाएगा[1] ।" सत्या का गाना - न सुर, न लय, न ताल[2] " प्रस्तुत वाक्य से स्पष्ट है कि सत्या में कला-कुशलता का अभाव है ।

सत्या का प्रेम-भाव भाँपकर पंडित रघुनाथ जगमोहन से कहते है, "मैं सत्या के पिता का मित्र हूँ और उसे अच्छी तरह जानता हूँ । वह आप से प्रेम करती है। वह धीरा नायिका है। वह कभी जबान से कुछ न कहेगी । पर .....[3] ।" जगमोहन को आगे पढने के लिए वह आर्थिक सहायता करती है । बरसात की अँधेरी साँझ में एम.ए. में दाखिल करने के लिए रुपये लिए आये सत्या से जगमोहन का अति निकट संबंध भी होता है। यद्यपि जगमोहन ऐसे संबंध को गुनाह नहीं समझता था तो भी उसका मन भारी हो गया क्योंकि उस क्रिया में उस की अपनी कामना का अभाव था । उसके बाद जगमोहन ने दुःखी होकर सत्या से कहा कि हमें समाज के नियमों का पालन करना चाहिए, उसकी गलती हो तो सत्या को रोकना चाहिए था । फिर उसने सत्या से वहाँ न आने की प्रार्थना की तो सत्या ने कहा "...... आप चिन्ता न करें, मैं न आऊँगी[4] ।" जगमोहन सत्या से यह भी कहता है कि "..... हिन्दुस्तान में पुरुष के दस खून माफ हैं । भुगतना तो आपको पडेगा । ......[5]"

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ.256
2. वही, पृ.264
3. वही, पृ.268
4. वही, पृ.353-354
5. वही, पृ.354

लेकिन उसके बाद भी सत्या जगमोहन की सहायता करती रही । "सत्याजी ने अपने दो महीने का वेतन विद्यालय को दान दे दिया था कि वह प्रमुख लेखकों और कवियों के भाषण करा सके और उन्होंने बडी सफाई से उस रुपये का अधिकांश जगमोहन ही को दिलवा दिया था । जगमोहन के मन में उनके प्रति जो हिम-ऐसी, ठंडे लोहे सरीखी कठोरता आ गई थी, वह आखिर पिघलती हुई सी दीख रही थी।[1]" उसके भाई-भाभी सत्या से प्रसन्न थे, भाभी तो उसे अपनी देवरानी बनाना चाहती थी, बच्चे भी उस से घुल-मिल गये थे । सत्या को मालूम हो गया था कि जगमोहन उसके पास होकर भी दूर है । इस पर भी पुन: दोनों का निकट संबंध होता है और सत्या अपने अतीत की कहानी जगमोहन को सुनाती है तथा उसकी पढाई में सहायता देने का प्रोग्राम बनाती है । वह नौकरी अपने शौक के लिए करती है, अत: अपना वेतन जगमोहन को दे सकती है । वह भी आगे पढने की, पढ-पढकर एक कालेज में प्रिन्सिपल होने की और जगमोहन को साहित्य सृजन के लिए स्वतंत्र छोड देने की कल्पना करती है । वह सोचती है कि यदि जगमोहन अभी शादी करना नहीं चाहते तो न करे, पहले सगाई की घोषणा हो ताकि जमाने का मुँह बन्द हो । उस ने पिता जी से ऐसा कहने का निश्चय किया कि आफ्रिका के उस खुले आँखोंवाले साहूकार मेजर से वह विवाह न करेगी, जगमोहन से ही विवाह करेगी[2]। लेकिन जगमोहन का पत्र पाकर उसकी आशा घोर निराशा में बदल गयी । पत्र में लिखा था कि उसे सत्या से प्रेम नहीं, फिर भी वह पीछा करेगी तो वह लाहौर से भाग जाएगा। पत्र पढकर उसकी दशा कितनी हृदय विदारक हो गयी । देखिए "अचानक एक गोला सा उसके गले में अटक गया और उसके जी में आयी कि ज़ोर से रो उठे, किन्तु उन्हें रुलाई नहीं आयी । अन्दर ही अन्दर वह घुट गयी । उन्होंने एक गहरी, लम्बी साँस भरकर करवट बदली-नीचे लटकी हुई टाँगें एक दूसरी के ऊपर चली गयीं और उनका हाथ चारपाई की दूसरी पट्टी के नीचे निर्जीव-सा

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ.442
2. वही, पृ.462,463

जा गिरा[1]।" चढ़ी हुई रावी में कूद मरने का उद्यम तक वह करती है, फिर निर्णय करती है कि यदि भाग्य में आफरीका ही जाना लिखा है तो जाएगी। "वह उदासी, जो सत्याजी की कर्कश आकृति को विचित्र प्रकार से दयनीय बनाए हुए थी, वह अवसाद, जो उनके स्वर को कुछ अजीब-सी नुकीली आर्द्रता दे रहा था, जगमोहन के सयत्न कठोर बनाए हुए हृदय को छेदे जा रहा था। वह छिदा कि खतम हुआ[2]।"

मेजर से विवाह करना सत्या केलिए आत्महत्या के समान था। तो भी उसने विवाह की स्वीकृति दी। उसके विवाह के संबंध में दुरों का कथन है, "सत्या बहन तो शोर मचाने के पक्ष में नहीं, बड़े सीधे-सादे तौर पर आर्यसमाजी ढंग से हो गयी। उन लोगों ने गहना-कपड़ा खूब दिया। सत्या बहन ने खादी के कपड़े तजकर रेशमी साड़ियाँ पहन लीं। क्यों उन्होंने वहाँ शादी करना स्वीकार कर लिया, यह मेरी समझ में नहीं आता[3]।" दुरो भले ही न समझे, पर पाठक ज़रूर समझ सकता है। जगमोहन जैसे चंचल चित्त वाले पुरुष को, जो प्रेम के योग्य नहीं, आत्मसमर्पण करने का परिणाम था वह अनभिलषणीय विवाह। आफरीका जाने के समय सत्या ने जगमोहन के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की थी। जगमोहन स्टेशन गया भी, पर संकोचवश मिलता नहीं। तो भी उसके नेत्र सजल थे। "सत्याजी खिड़की में बैठी अपनी आँखें पोंछ रही थीं और कातर दृष्टि से गेट की ओर देख रही थीं[4]।"

सत्या में मानव सहज दुर्बलताएं हैं, यद्यपि वह मेजर से विवाह करके जगमोहन से दूर हो गयी, तो भी वह उसके हृदय के मर्मस्थल को आघात देकर ही गयी। सचमुच सत्या की निराशा और व्यथा के साथ साथ उसका साहस भी सराहनीय है।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - गर्म राख, पृ.468
2. वही, पृ.520
3. वही, पृ.541
4. वही, पृ.552

कन्नगी, माधवी

श्री० अमृतलाल नागर का ऐतिहासिक उपन्यास "सुहाग के नूपुर" तमिल महाकाव्य शिलप्पतिकारम्" की कथावस्तु पर आधारित होने पर भी स्वतंत्र रचना है । इस उपन्यास के प्रमुख नारी-पात्र हैं कन्नगी और माधवी । कन्नगी कुलांगना है तो माधवी वारांगना ।

कावेरिपट्टम के दो प्रमुख व्यापारी हैं मासात्तुवान और मानाइहन । इनमें मासात्तुवान के पुत्र कोवलन का विवाह मानाइहन की पुत्री कन्नगी से होता है । उपन्यास में कुलवधू के रूप में कन्नगी का चित्रण हुआ है। इस पतिव्रता नारी का चरित्र आद्यन्त आदर्शपूर्ण है । लाख अपराध करने पर भी कोवलन के प्रति उसके आदर भाव में न्यूनता नहीं आती । उसमें मानवीय गुणों का समावेश है । वह एक आदर्श पत्नी, आदर्श गृहिणी और आदर्श नारी है ।

लेकिन कोवलन का मन अन्यत्र भी भटकता है । नगर में नगर सुन्दरी के चयन की प्रथा थी । सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और नर्तकी का सम्मान होता था उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी माधवी से कोवलन का संबंध होता है । नगरवधू माधवी कुलवधू बनना चाहती है । उसका प्रयत्न करती हैं इसलिए उस के मन में निरंतर अन्तर्द्वन्द्व चलता है । लेकिन उसे सफलता नहीं मिलती । अंत में वह सारी सम्पत्ति लेकर कोवलन को मारपीटकर एक राजपुरुष के साथ चली जाती है । और कोवलन भिखारी बनकर दर दर की ठोकरें खाता है ।

इस प्रकार इस उपन्यासमें नारी के दो रूप मिलते हैं । दोनों रूपों में वह पुरुष के अत्याचार का शिकार बनती है । कोवलन सती के रूप में कन्नगी को और वेश्या के रूप में माधवी को अपनाकर दोनों को दु:ख देता है

और अंत में स्वयं दु:खी होता है । वेश्या के प्रति उपन्यास में यह दृष्टिकोण प्रकट किया गया है कि वेश्या केवल धन से प्रेम करती है क्योंकि उसका जीवन अरक्षित है[1] ।" पेरियनायकी माधवी को समझाती है, "मन को पानी के समान बनाओ बेटा, आँच पर चढे तो गरम हो जाए और उतरने पर फिर ठंडा । मन को आँच से उतारने की कला भी सीखो[2] ।" माधवी के व्यवहार से खीझकर वह कहती है, "भाग्य फूट गए मेरे तो, जाने कौन सी साइत से मैं ने इस लड़की को मोल लिया था । अब पाले-पोसे की ममता पड गयी है, तो चढ़ती आयु ये दिन देखने पड रहे हैं । क्या होगा भगवान् ....[3] ।" माधवी से कोवलन का कथन है, "पिता विलासी, माँ रूपजीवा । दोनों ने सन्तान की इच्छा से जिस बेटी को जन्म नहीं दिया उस की माँ सुहाग के नूपुर पहनने के योग्य नहीं और न उसका पिता ही कहलाने के योग्य[4] ।" अंत में माधवी पुरुष की क्रूरता का पर्दाफाश यों करती है, "पुरुषजाति के स्वार्थ और दम्भ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है । उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्द्धांग नारी जाति पीड़ित है । पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी रख सका और न वेश्या बनाकर ही । इसी कारण वह स्वयं ही झकोले खाता है और खाता रहेगा । नारी के रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि ! उसके आँसुओं में अग्निप्रलय भी समाई है और जलप्रलय भी[5] ।"

इस उपन्यास में कन्नगी आदर्श गृहस्थ नारी है तो माधवी वेश्या ही नहीं, खलनारी भी है । वारांगना माधवी का कुलांगना बनने की लालसा रखना इस बात का प्रमाण है कि एक मामूली गृहिणी एक रूपवती वेश्या से कहीं अधिक श्रेष्ठ और आदरणीय है । लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी वह कुलवधू बन नहीं पाती और एक दूसरी नारी की व्यथा का कारण बनती है ।

1· अमृतलाल नागर - सुहाग के नूपुर, पृ·48
2· वही, पृ·55
3· वही, पृ·76
4· वही, पृ·159
5· वही, पृ·267

इस प्रकार कन्नगी और माधवी के माध्यम से उपन्यासकार ने कुलवधू और नगर वधू की तुलना करके सिद्ध किया है कि कुलवधू का स्थान सर्वश्रेष्ठ है ।

अंजना

वृन्दावनलाल वर्मा जी ने अपने उपन्यास "अमरबेल" में अंजना नामक एक निराली नारी का चित्र खींचा है जिस में स्त्री सहज गुणों का अभाव है। सुहाना बागुर्दन का ज़मीन्दार देशराज नाहरगढ के राजा बाघराज के साथ मिलकर अंजना के द्वारा अफीम मँगवाकर व्यापार करता है । हरी पेटियों में सेव के नीचे अफीम रखकर लानेवाली यह चालाक नारी लालची भी है ।

सब से ऊँचे दर्जे के एक जनाने डिब्बे से निकली सुन्दर युवती अंजना के रूप का वर्णन उपन्यास में यों किया गया है, "युवती गोरी, अनारी, परम रूपवती है । बाल बेपरवाही के साथ बिखरे हुए भी अपने एक अलग ढंग से कलाप में जैसे । होंठ लिपस्टिक से पुते न होने पर भी भरी हुई लाली में । साडी बहुमूल्य रेशमी, वेशभूषा चटकदार रंगों की सजी हुई । छोटे छपकोंदार लाल ज़िमीनवाली चोली पर बुंदकियोंवाली हरी चमचम साडी ।[1]" स्टेशन के बाबू लोगों के कमरे में एक के पूछने पर अंजना ने जो मनगढन्त कहानी कह डाली, उससे उसकी चालाकी प्रकट होती है ।

अपनी तिरछी, मदीली चितवन और गडनेवाली मुस्कान से वह दूसरों को मुग्ध करती है । देशराज और बाघराज दोनों से वह प्रेम का अभिनय करती है । अंजना ने बाघराज की आँखों में अपनी नुकीली चितवन और सजीली मुस्कान बिठलायी, शायद देशराज की निगाह बचाकर ।[2]" संगीत समारोह में

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ·17-18

2· वही, पृ·42

दो घंटे उसने भिन्न भिन्न प्रकार के गान और नृत्य प्रस्तुत किये । "अंत में सब को विनय पूर्वक नमस्कार करके अंजना बाघराज को अपनी आँख का अंतिम लक्ष्य बनाती हुई, मंच पर से चली गई[1] ।" बाघराज ने सोचा कि अंजना बहुत रूपवती है पर कैसे संकटवाले काम को इसने अपना रखा है ।

अंजना में नारी सहज कोमलता के स्थान पर कठोरता है । टहल और धरनीधर के बारे में देशराज की शिकायत पर वह कहती है, "टुच्चे हैं, टुच्चे । राजा साहब नाहरगढ जो नुस्खा बदला गये हैं, उसी को बर्तना पडेगा[2] ।" धरनीधर के घर डाका डालने का षडयंत्र रचकर देशराज से उसका कथन है, "खतरों में हम लोग पले और खतरे ही हमारा तुम्हारा पुष्टिकारक भोजन है[3] ।" यह सुनते ही उमडकर देशराज कहता है, "बाहरी अमरबेल ! शब्दों के सच्चे अर्थ में मेरी अमरलता[4] ।" डाका डालने के बाद का यह चित्र देखिए "अंजना प्रसन्न थी । होठों पर बारीक मुस्कान । आँखों में मादकता नहीं, एक भयानकता थी । यदि उस समय एक विशेष कोण से उसका फोटो लिया जाता, तो बहुत कुरूप दिखती[5] ।"

अंजना के बारे में दूसरों के मत विविध प्रकार के हैं । विक्रम के अनुसार वह "...... बडी भली हैं । बहुत मीठी ज़बान है[6] ।" "काली सिंह केवल इतना समझा - यह किसी वेश्या की पुत्री है जो किसी तरह पढ - लिख जाने पर भी वेश्या ही है, पर है काम की । बाघराज को लगा कि इस

1· वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ·107

2· वही, पृ·126

3· वही, पृ·148

4· वही, पृ·148

5· वही, पृ·153

6· वही, पृ·15

समय भी कोई अभिनय ही कर रही है, बहुत करके मुझे उल्लू बनाने के लि ।"[1] अंजना के संबंध में कालीसिंह के इस कथन पर कि "बडी ह औरत है", बाघराज का कहना है कि "वाहियात नहीं, भयंकर है ।" कालीसिंह चेतावनी देता है, "चील है । इस के पंजों और नाखूनों से ब रहना[2]।" राजदुलारी तो उसके बारे में व्यंग्य से कहती है, "और वह परियों की जैसी वेश भूषावाली क्या करेगी ? कुदाली फावडे की ध्वनि क्या कोई गत गायगी बजायगी ?"[3]

गायिका और नर्तकी अंजना अपनी अभिनय कुशलता पर गर्व है । बाघराज, कालीसिंह और देशराज से वह कहती है कि "इस संगीत सहायता से ही इतना काम बना ले जाती हूँ[4] ।" आगे वह कहती है, ऐसे अभिनय करने पड़ते हैं कि क्या बतलाऊँ । कभी तितली, कभी मोर, कोयल बनना पड़ता है । इन्द्रानी, कभी मेनका, कभी इस अप्सरा, कभी उस अप्सरा की भूमिका में उतरना पड़ता है । मैं खुद अपने पर जब कभी चकरा जाती हूँ । ...."[5]। घसियारी बनकर घास दो सेर माल छिपा लाने की बात सुनकर बाघराज उसकी प्रशंसा करता है हीरों जवाहिरों को घासपात से कैसे ढँका जा सकता है । आप तो कम करती है । बाघराज के गडे हुए हीरा-जवाहिरात हडपने की कल्पना अं करती है, बाघराज को सन्देह होता है कि मुझे उल्लू बनाने के लिए यह अभिनय कर रही है । तब देशराज की चिंता है कि किसी भी प्रकार रा साहब का माल हाथ आ जाये तो कोई रोजगार उजागर होकर चलायेंगे उसको और अंजना को संकटों में प्राण झोंकने की आवश्यकता न पड़ेगी ।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ.170-171
2. वही, पृ.171
3. वही, पृ.317
4. वही, पृ.169
5. वही, पृ.170-171

आखिर जब अंजना ने कहा कि "सारी की सारी चीज़ हाथ से निकल गई। बड़ा नुकसान हुआ।"[1] तो इतना पुण्य त्याग करने पर भी हाथ कुछ न लगने से देशराज चिंतित हो गया। अंजना का अभिनय फिर भी जारी है। "आपने अपने जजसाहब को, समारोह के जज को कुछ नहीं दिया। मैं और कुछ नहीं चाहती। केवल यहाँ स्थान चाहती हूँ।" और उसने बाघराज की छाती पर अपनी एक गदेली पसार दी।[2] फिर वह गर्व से देशराज से कहती है कि मैं ने बाघराज को अपने अभिनय से सीधा किया।[3] अंत में देशराज को सन्देह होता है कि "मेरे साथ जो कुछ हो रहा है, वह भी क्या केवल अभिनय नहीं था। और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "एक अंजना है, एक राजदुलारी। आकाश पाताल का अंतर!!"[4] सारा उपन्यास पढकर हम भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

इस खलनारी को प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने सुन्दरता, वीरता, साहस, कलाकुशलता आदि महद्गुणों के दुरुपयोग की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। अंजना का यह खतरनाक और पैशाचिक रूप समस्त नारी समाज के लिए अपमानजनक है, इस में सन्देह नहीं।

पयारी, कजरी

डॉ॰ रांगेय राघव के "कब तक पुकारूँ" नामक उपन्यास में नटों की एक उपजाति करनटों की समस्याओं का चित्रण है। इस उपन्यास के नारीपात्रों में प्रमुख है प्यारी और कजरी। दोनों करनटनियाँ हैं।

---

1. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ॰369
2. वृन्दावनलाल वर्मा - अमरबेल, पृ॰429
3. वही, पृ॰431
4. वही, पृ॰472

करनटों में नैतिकता को स्थान नहीं । इस जाति के मर्द औ
को वेश्या बनाकर धन कमाते हैं । औरतें डोमनियों की तरह नाचती है
करनटों में सेक्स के आधार पर कोई बुराई नहीं मानी जाती । करनटि
घूंघट खींचकर भी नाचती है, मुंह खोलकर भी । बाकी नट करनटों को
श्रेणी के समझते हैं । इस प्रकार की अनेक बातें इस उपन्यास में स्पष्ट की

पुराने ज़माने में करनटों की हर लड़की जवान होने पर पहले
ठाकुरों के साथ रात बितानी पड़ती थी, फिर करनटों की हो जाती १
ऐसे अनैतिक वातावरण में पली हैं प्यारी और कजरी ।

मातृ-पितृ विहीन सुखराम इंसीला के घर में रहता था ।
की बेटी थी प्यारी । प्यारी को बचपन से ही सुखराम से प्यार था
वह उसी के साथ रहने की हठ करती थी । बड़े होने पर दोनों पति-प
हुए । अपनी जातिगत विशेषता के कारण प्यारी को पतिव्रता बनी रह
आवश्यकता नहीं थी । पहले कजरों के साथ उस का सम्पर्क था । सुखरा
उस का कथन है, "देख ! मैं भंगिन चमारिन नहीं जो मर्द की गुलाम बन
रहूं । मैं तो खेलूंगी । पर मेरा मन तेरा है । जिस दिन मन तुझसे ह
मैं तुझे छोड़कर चली जाऊंगी ।" फिर वह रुस्तम खां की रखैल बनती है
अपने रोग के कारण वह सुखराम से अलग रहना चाहती थी । यही नह
उसे रुस्तमखां से बदला लेना था ।

कजरी भी करनटनी है और वह भी पतिव्रता नहीं । उ
पहला पति कुर्री है । उसे छोड़कर वह सुखराम के साथ रहने लगती है ।

---

1. रांगेय राघव - कब तक पुकारूं, पृ.51

सुखराम से उसके हार्दिक प्रेम की झलक उसके निम्न लिखित कथन में है, "वह अगर हाथ भर तेरा कहना मानती है तो मुझे देखियो, डेढ हाथ तेरा कहन पर चलूँगी । तू कहे तो तलवार पर गर्दन धर दूँ । यह बनैनी-बामनी मत समझ ली जो तू मुझे । दिल का सौदा है, देख ली जो । नटनी हूँ । असल नटनी ! नटनी की नटनी ! करनटनी !"

प्रथम दर्शन में प्यारी और कजरी में सपत्नियों के लिए सहज ईर्ष्या भाव दिखाई देता है, पर बाद में यह ईर्ष्या पारस्परिक स्नेह में बदल जाती है । दोनों के लिए प्यारा है सुखराम । अतः प्यारी अपने को जेठी मानती है और कजरी को छोटी । यह जेठी-छोटी संबंध असाधारण लगता है, विशेषकर असभ्य समझी जानेवाली इस निम्न जाति में ।

स्त्री की ईर्ष्या के संबंध में प्यारी सोचती है, "क्यों स्त्री एक और स्त्री को नहीं सह सकती ?"[2] और वह इस निर्णय पर पहुँचती है कि "औरत ही औरत को दोस लगाती है।"[3] जवानी और तन को प्यार की जड समझने वाली प्यारी दुनिया की रीति से अच्छी तरह परिचित है । प्यारी और रुस्तमखाँ बीमार हो जाते हैं तो सुखराम इलाज करता है । रुस्तमखाँ की लात से प्यारी के पेट में दर्द था । सुखराम प्यारी से कहता है कि "औरत का पेट धरती माता की तरह होता है । उस पर वही लात दे सकता है, जो बिल्कुल जिनावर हो । आज से नहीं, सदा से ही मानुस इस कोख की इज्जत करता आया है, क्योंकि यह भगवान की अपनी दुनिया की दया दिखाती है"[4] अंत में प्यारी रुस्तमखाँ का वध करके बदला ले लेती है । लेकिन रुस्तमखाँ की

---

1. रांगेय राघव - कब तक पुकारूँ, पृ.99
2. वही, पृ.145
3. वही, पृ.146
4. वही, पृ.352

लात से उसके पेट में जो दर्द था, उसी के कारण उसकी मृत्यु होती है ।

बांके को मारकर कजरी ने भी अपनी वीरता प्रदर्शित की । एक अंग्रेज़ लड़की सूसन को डाकुओं से बचाने के कारण सुखराम और कजरी को डाक बँगले में काम मिलता है। कजरी भी कम समझदार नहीं । उसका निम्नलिखित कथन इसका प्रमाण है, "..... औरत ? तू क्या जाने औरत को ? जित्ती नरम दिखती है, उत्ती पत्थर होती है । तू उसकी क्या जाने ? सब कुछ छीनकर अपना कर लेना चाहती है ।" कजरी ने सोचते हुए कहा, "वह नहीं जानती कि वह क्या करना चाहती है, उसे लगता है कि उस का दुश्मन और कोई नहीं, औरत ही है । सच, अगर औरत औरत के खिलाफ न जाए तो वह मर्द को उल्लू बना सकती है । कुत्ता भी एक दूसरे से उतनी नफरत नहीं करता जितनी औरत औरत से करती है बलमा ! मरद कैसा भी हो, औरत के सामने सिर झुकाता है, क्योंकि वह औरत का जाया होता है । और लुगाई लुगाई लुगाई के पेट से आती है । वह क्या है, इसे औरत ही जानती है[1] ।" अपनी मिसीबाबा {सूसन} को वह बहुत प्यार करती थी । कजरी और सूसन के वार्तालाप से मालूम होता है कि निम्न जाति की औरतें ही बडी जाति की औरतों की अपेक्षा अधिक आज़ाद हैं । सूसन से उसका कथन है कि आपकी जाति के लोगों के समान हमारी जाति में भी मर्द और औरत दोनों मिलकर नाचते हैं, शराब पीते हैं, लेकिन बडी जातियों के लोग ऐसा न करते । स्त्री-पुरुष संबंध में भी दोनों में फरक है । आखिर वह इस निर्णय पर पहुँचती है, "पर हुज़ूर, बडी जातों में ऐसा नहीं होता । वहाँ तो एक एक की कई कई औरतें होती हैं । बेचारी बहुत सी मर्दों के मुँह भी नहीं देख पाती, वैसे ही उमर निकल जाती है, और किसी से नाता जोड़ें तो अधर्म हो जाए ।

---

1. रांगेय राघव - कब तक पुकारूँ, पृ.463

बडी साँसत है सरकार, बडी जात का होना भी पूरी आफत ही समझो[1]।"
लॉरेन्स के बलात्कार से सूसन गर्भवती होती है । इस के बारे में सुखराम से कजरी का कथन है, "..... दुनिया में उस लुगाई की इज्जत ही क्या है जो बाँझ हो । बंजर धरती कौन लेता है ? मैं तो समझती हूँ कि मिसी बाबा के बच्चा हो रहा है। सो इस में कोई बुरी बात नहीं है[2]।" कजरी भी गर्भिणी थी । मिसी बाबा के प्रति उसे सहानुभूति है । वह कहती है, "...... इतना सब कुछ है, पर फिर भी आपको आज़ादी नहीं । आप के लिए तो सब कुछ होकर भी नहीं के बराबर है[3]।" लॉरेन्स के आक्रमण से सूसन को बचाते समय गर्भिणी कजरी के पेट के दर्द हो गया था । उसी पीडा से उसकी मृत्यु होती है ।

"सूसन कहती थी कि एक बार उससे अनपढ कजरी ने एक बात कही थी जो उसे याद रह गयी थी कि धरती मुल्कों में क्यों बँटी हुई है मिसी बाबा । जहाँ मनुष्य खडा होता है, वही तो उसकी धरती है । " सॉयर के पत्र से उद्धृत ये पंक्तियाँ एक असभ्य, अनपढ गँवार नारी के हृदय की विशालता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करनेवाली हैं ।

यों हम देखते हैं कि रुस्तमखाँ और बाँके इन दोनों दुष्टों का वध करके ही प्यारी और कजरी की अकाल मृत्यु हुई ।

इसलिए इन दोनों की गणना वीरांगनाओं में हो सकती है । निम्न जाति में जन्म लेने पर भी उन का मन प्रेम, सेवापरायणता आदि मानवीय गुणों से उज्वल है ।

1· रांगेय राघव - कब तक पुकारूँ, पृ· 531

2· वही, पृ· 593

3· वही, पृ· 595

कनक

यशपाल जी के उपन्यास "झूठा सच" के नारीपात्रों में तारा के बाद कनक का प्रमुख स्थान है । वह "नया हिन्द पब्लिकेशन" के मालिक पंडित गिरिधारीलाल की मझली लड़की है । "कनक में अपने ढंग का सौन्दर्य और आकर्षण था । गहरा स्वस्थ गेहुआँ रंग, शरीर भरा हुआ, एकहरा होने से कुछ लम्बा लगता था । उसका आधुनिक व्यवहार और व्यक्तित्व छाप छोड जाता था।[1] गिरिधारीलाल जी स्वयं पुराने देशभक्त और उदार विचारों के थे, कालेज में पढते समय कनक की भी सहानुभूति स्टुडेंट कांग्रेस के प्रति थी । सन् 1942 के आन्दोलन में वह प्राय: सभाओं और जुलूसों में सम्मिलित होती थी ।

एम.ए. के प्रथम वर्ष में पढते समय उसे हिन्दी की परीक्षा देने का चाव हो आया था । आर्थिक कठिनाई के कारण जयदेवपुरी उसे पढाने ग्वालमंडी जाने लगा । वे परस्पर आकृष्ट हुए । कनक के घरवालों को यह पसन्द नहीं था, विशेषकर कनक के बहनोई नैयर को । कनक पुरी के प्रति नैयर की उपेक्षा का विरोध करती है । उसे एक दिन भी पुरी को देखे बिना कल नहीं पड़ता था । शहर में करफ्यू आदि के कारण तथा बिगड़ती परिस्थिति के कारण पुरी सवा महीने तक कनक से मिल न सका । इस पर कनक की दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है । "अपने मन के दु:ख की तुलना में कनक को छुरे और आग से आतंकित लोगों का दु:ख भी तुच्छ जान पड़ता था । सोचती थी, मरने से क्या डरना ! कुछ दिन उसने मान से प्रतीक्षा की कि पुरी के आने पर बोलेगी नहीं, केवल आँसू बहा-बहाकर पुरी की ओर देखकर उस की निर्दयता का दण्ड उसे देगी । पर पुरी न आया तो कनक का मान परास्त हो गया ।

---

1. यशपाल - झूठा सच - वतन और देश, पृ.45

वह पुरी को खोजने के लिए बावली हो उठी । उसकी अवस्था किसी मेले में बिछुड गये कुत्ते जैसी हो रही थी जो मालिक को ढूँढने के लिए सब ओर सूँघता और भटकता फिरता है[1] ।" कनक अपनी बेबसी पर गहरे निश्वास भरकर रह जाती । आँसू बहाना उसकी प्रकृति में न था, इसलिए उसका दु:ख हल्का भी न हो पाता[2] ।" इसी हार्दिक प्रेम के कारण वह भोलापाँधे की गली में आग और बमबारी का समाचार पढकर उस बिगडी स्थिति में भी पुरी के घर जाती है । तारा से पुरी की नौकरी छूट जाने की बात जानकर उसका हृदय पुरी के प्रति श्रद्धा से भर जाता है । पुरी न्याय और आदर्श केलिए कुछ भी कर सकता है, इस बात का वह हृदय से स्वागत करती है । पुरी की आर्थिक सहायता के लिए कनक अपनी जेब- खर्च के रुपये तथा पिता से झूठ बोलकर कुछ और रुपये लेकर पुरी के सम्मुख जाती है ।

पुरी के प्रति प्रेम के वश में होकर उसकी सहायता करने केलिए कनक ने जो उपाय किया था, यह जानकर बिना किसी क्षोभ और क्रोध के पण्डितजी ने कहा - "बेटा, तुम्हें रुपयों की ज़रूरत थी तो वैसे कह देती । यू हैव नेवर डन सच ए थिंग बिफोर[3] ।" "पण्डितजी अपनी इस "तेज़" बेटी की ओर कुछ अधिक ध्यान रखना ही उचित समझते थे । उसके कुछ बन सकने की संभावना थी तो उस के धक्का और चोट खा जाने की आशंका भी थी । तीन वर्ष पहले ही वह क्रिश्चियन कॉलेज के एक लेक्चरर को अपना सब कुछ समझ लेना चाहती थी । गनीमत यह हुई कि लेक्चरर विवाहित था । कनक जान गई कि वह उसे धोखा दे रहा था [4] ।" पुरी के प्रति उसके प्रेम को लेकर पण्डितजी उसे उपदेश देते हैं कि लड़के-लडकियों के मिलने-जुलने में अस्वाभाविक रुकावटें डालने से

---

1. यशपाल - झूठा सच - वतन और देश, पृ. 172
2. वही,
3. वही, पृ. 188
4. वही, पृ. 190

मन और मस्तिष्क के विकास पर अच्छा प्रभाव नहीं पडता, लेकिन एक आयु में, जब भावुकता प्रधान रहती है तो ज़रा गंभीरता से और संयम से चलना चाहिए। उनके अनुसार विवाह केलिए सामाजिक स्थिति, व्यक्तित्व, संबंध सभी बातों का ख्याल करना चाहिए। इसी बात को लेकर नैयर से भी उसे प्रतिवाद करना पडा। कनक से नैयर का कथन है, "..... मुझे अच्छा नहीं लगा कि हमारी कबूतरी को कौआ उडा ले जाये [1]।" नैयर ऐसे प्रेम को उफान मात्र समझते हैं। पर कनक किसी भी परिस्थिति में पुरी से ही विवाह करना चाहती है। कांता से उसका यह कथन इस बात का द्योतक है - "मन चाहता है, कहीं डूब मरूँ। तुम जानती हो, मैं पिताजी से कितना स्नेह करती हूँ परन्तु इस बात में मेरा बस नहीं है या फिर ब्याह की बात कभी सोचूँगी ही नहीं [2]।" वह साहस के साथ जेल में पुरी से मिलने जाती है। नैयर से उसका प्रश्न है, "पुरुष ही चुन सकता है, स्त्री नहीं चुन सकती [3]?" इस प्रकार सभी के विरोध के बावजूद पुरी के प्रति उसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ गया। "कनक ने उसकी बाँहों में उत्साह से आत्मसमर्पण करके उसे अभिभूत कर दिया था। कनक का प्रेम जल का ऐसा पात्र नहीं था जिसे पुरी को उठाना पडता, न वह ऐसा कूप था जिस में से यथेष्ट जल ले लिया जा सकता। कनक का प्रेम तो नैनीताल की विस्तृत झील की तरह था। पुरी उसे तैरकर भी पार न कर सकता था [4]।"

विभाजन और हिन्दू मुसलीम दंगों के फलस्वरूप दोनों का विवाह न हो पाया। पुरी को कनक का पता भी न लगा। पुरी कमाल प्रेस को संभालने का काम करने लगा। इसी बीच विधवा उर्मिला से उसका संबंध होता है।

---

1. यशपाल - झूठा सच - वतन और देश, पृ.299
2. वही, पृ.297
3. वही, पृ.328
4. वही, पृ.391

कनक हमेशा आत्मनिर्भर रहना चाहती थी । सन् 1947 नवंबर में वह काम की खोज में लखनऊ गयी थी । धारा-सभा की सदस्या मिसेज़ पन्त के साथ वह रहने लगी । एक दिन जब वह एक इंटर्व्यू के लिए गयी, तब गिल से परिचय हुआ । दो सौ पैंतीस रुपये की नौकरी पा जाने से कनक खुश थी । पर अवस्थी जी का दुर्व्यवहार, मिसेज़ पंत का क्रोध इत्यादि बातें उसे दुःख पहुँचाने वाली थीं । उस समय गिरिजा भाभी से उसे सान्त्वना मिली और वह मुंशी जी के घर के एक कमरे में रहने लगी । गिल से परिचय बढा । वह एक दूसरा रूप धारण करनेवाला ही था कि वह संभल गयी थी । पुरी का पता मिलने पर वह जालंधर आयी । पुरी और उर्मिला को एक कमरे में सन्देहात्मक स्थिति में देखकर भी वह पुरी से विवाह करना चाहती है । दोनों का विवाह हुआ और दोनों "नाज़िर" नामक पत्र में काम करने लगे ।

कनक का विवाहानंतर जीवन संतोषपूर्ण नहीं था । सास को कनक की रीतियाँ पसन्द नहीं थी । अपनी बेटी उषा को वह कनक के प्रभाव से बचाए रखना चाहती थी । पुरी का व्यवहार भी कनक के लिए संतोषप्रद नहीं था । उसे एक बात खल जाती थी । वह थी कभी कभी पुरी का अकारण चिडचिडा उठना, विशेषकर तृप्ति से श्रांति की मुग्धावस्था में । कनक को ऐसा अनुभव पहली बार, विवाह के तीन सप्ताह बाद ही हो गया था । माधुर्य की मुग्ध मूढता में ऐसा अपमान और कटुता कनक के हृदय को आर-पार बेंध देती थी ।[1] विचारों का भेद, यौन-भेद आदि के कारण दोनों के दाम्पत्यजीवन में दरार पड़ जाती है ।

---

1. यशपाल - झूठा सच "देश का भविष्य, पृ. 358

तारा के प्रति कनक के मन में सद्भाव था । इसलिए तारा का पता लगने पर वह उस से मिलना चाहती है । पर पुरी इस बात पर अप्रसन्न होता है । बच्ची के लालन पालन का भार, धर और प्रेम के काम का भार इत्यादि से वह दबी जा रही थी । उसे अपने प्रेम विवाह पर पश्चात्ताप होता है और वह संबंध-विच्छेद चाहने लगती है ।

पहले तो नैयर से अपने मन की बात कहने में उसे संकोच नहीं था । पर अब अपनी लज्जाजनक परिस्थिति को व्यक्त करने में उसे लज्जा आती थी । उसके अनुसार "यह तो प्यार का रूठना नहीं है कि मना लिये जाने की चाह हो । यह तो विरक्ति की फाँस है । ....[1] ।" कनक के अटूट विश्वास और स्नेह से पुरी अनभिज्ञ नहीं था । उसका यह विचार इस बात का प्रमाण है, "लखनऊ से अच्छी नौकरी छोड़कर जालंधर दौड़ी आयी । ओफ, मैं कैसी स्थिति में था । आँखों से साँप देखकर भी उसने मेरे कहने से विश्वास कर लिया कि रस्सी थी । सब कुछ सह गयी । मेरा कितना अधिकार और विश्वास मानती थी[2] ।" इस पर भी उनका दाम्पत्य जीवन सुखी न हो पाया । "आपसी मनमुटाव के कारण पति-पत्नी के मुँह सिल जाते तो चेला और हीरा सहम जाते थे और जया भी उदास हो जाती थी । पुरी क्रोध में परवाह न करता । कनक को यह स्थिति अपमानजनक लगती । बच्ची के लिए यह प्र भाव बुरा लगता । परेशान हो जाती, क्या करे ? वह अपने मन को कुचलकर ऐसी स्थिति को छिपाये रखना चाहती थी[3] ।" तारा से वह कहती है, "हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक दूसरे के अनुकूल नहीं है । लोक लाज के लिए जितना निबाह सकती थी, निबाह दिया । अब नहीं निबाह सकती[4] ।" अपने लिए और सच्चाई के लिए लड़नेवाली कनक के प्रति ही

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ.430
2. वही, पृ.552
3. वही, पृ.557
4. वही, पृ.571

तारा की सहानुभूति थी । "सोचती रही, बेचारी गूँगी आज्ञाकारिणी बनकर कैसे रह जाती । ऐसे विवाह से अविवाहित भली । प्रथम आकर्षण कितना भ्रामक हो सकता है[1] । कांता से कनक कहती है, "कह तो रही हूँ पाँच बरस कोशिश की है । दुनिया क्या कहेगी, इसी ख्याल में अपनी मिट्टी खराब करती रही हूँ । मैं नहीं सह सकती[2] ।" यह जानकर कि कनक तलाक चाहती है, पंडितजी चिंतित हुए । "अपनी इस बेटी को वह असाधारण समझते रहे थे । वह सदा ही उनकेलिए असाधारण परिस्थितियाँ और चिन्तायें भी उत्पन्न करती आयी थी । पिता को अधिक चिन्ता देकर वह उनका अधिक ध्यान भी पाती रही थी जैसे माता-पिता रोगी अथवा कठिनाई में फँसी संतान के लिए अधिक आतुर रहते हैं[3] ।" लेकिन उन्हें अपनी बेटी पर गर्व था । बच्ची से उनका निम्नलिखित कथन इसका प्रमाण है, "तुम्हारी मम्मी बहुत बहादुर है । मम्मी धर्म करती है । अच्छा काम करने से कभी नहीं डरती । हमारी बेटी भी ऐसी ही बनेगी[4] ।" पिताजी उससे रुष्ट नहीं थे और उसके कारण लज्जित नहीं थे तो कनक भी चिन्ता से मुक्त हो गयी । गिल से वह कहती है, ",...... पिताजी ने कह दिया है कि जिस संबंध में कोई तत्व या सार नहीं है, उसे बनाए रखने में कोई लाभ नहीं है । वह तो केवल कानूनी बन्धन है । ऐसा संबंध दोनों ओर के लिए व्यर्थ मानसिक बाधा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । इसे समाप्त कर देना उचित है ।.....[5] ।" पंडितजी ने इसके बारे में नैयर को जो पत्र लिखा, वह भी उनके इस अभिप्राय का परिचायक है, वे लिखते हैं, "संबंध का जो शरीर निस्सत्व हो चुका है, यदि बना रहेगा तो सड़कर दुर्गंध फैलाएगा । उस दुर्गन्ध को ढँककर, दबाकर रखने की कोशिश की जाएगी तो वह अस्वास्थ्य कर अवश्य होगी[6] ।"

---

1. यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ.571
2. वही, पृ.576
3. वही, पृ.627
4. वही, पृ.633
5. वही, पृ.641
6. वही, पृ.677

इसी बीच पुरी विधान सभा के लिए पूर्वोत्तर मुकेरियाँ क्षेत्र से चुना गया था और कनक बच्ची के साथ अपने पिताजी के पास रहने लगी थी। डाइवोर्स का प्रस्ताव पुरी को स्वीकार्य नहीं था तो कनक उससे कहती है, "नाटक तभी झूठा बंधन है। मैं मरे साँप की केंचुल से अपने को क्यों बाँधे रहूँ।"[1] फिर वह पूछती है, "वैर पूरा करने केलिए, मेरी ज़िन्दगी बरबाद करने केलिए ही संबंध रखो ?"[2] नैयर भी तलाक के संबंध में कठिनाई उपस्थित करता है, "....... पुरी की जिस अजीब प्रकृति की बात कांता ने मुझे बताई है, वह ज़रूर असह्य होगी परन्तु उस केलिए अदालत में गवाही के रूप में कोई प्रमाण पेश नहीं किया जा सकता[3]।" पर कनक सारे प्रतिबंधों का सामना करके अपने लक्ष्य पर पहुँचती है। वह ग्रामसुधार विभाग में नौकरी कर लेती है और पति से संबंध विच्छेद करके गिल से पुनर्विवाह करती है तथा अपनी बच्ची के साथ सुखी जीवन बिताती है।

"सचमुच नारी रक्षक पुरुष के बिना अपूर्ण और असहाय है[4]।" ऐसा माननेवाली कनक तलाक के बाद भी गिल के रूप में रक्षक पुरुष को पाकर स्वयं सन्तुष्ट होती है और झूठे अभिमान के लिए आत्महनन करनेवाली नारियों के सामने एक प्रश्न चिह्न लगा देती है।

ताजमनी

"परती परिकथा" श्री· फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास है। इसके नारीपात्रों में ताजमनी का स्थान अद्वितीय है। यह रूपवती नट्टिन

1· यशपाल - झूठा सच - देश का भविष्य, पृ·684
2· वही, पृ·685
3· वही, पृ·687
4· वही, पृ·260

पराननपुर गाँव के पत्तनदार शिवेन्द्र मिश्र के गुरु भाई की रक्षिता राजमनी की पुत्री थी। परानपुर में हिन्दू नट्टिनें तीन पुश्त से बसी हुई हैं। जितेन्द्र नाथ मिश्र की विधवा माता ने ताजमनी को नट्टिनटोली से बुलवाकर पालना शुरू किया था, क्योंकि राजमनी को भागलपुर में गंगा लाभ हुआ था। ताजमनी परानपुर इस्टेट की हवेली में पली।

अपनी मालकिन माँ की याद हमेशा ताजमनी के मन में थी। उनकी मृत्यु के समय जितेन्द्रनाथ मिश्र जेल में थे। शर्त लिखकर माँका मुँह देखने आना उन्हें मंजूर न था। ताजमनी अंतिम समय तक अपनी मालकिन माँ के मुँह के सामने रही। काशी में मरते समय ताजमनीके हाथ की गंगोत्तरी प्राप्त हुई। उनका कहना था कि ताजमनी के दिल में जित्तन बैठा है, वही उन्हें पानी पिला रहाहै। इस से स्पष्ट है कि ताजमनी के दिल को जित्तन ने जीत लिया था। मणिकर्णिका पर जलती हुई चिता के पास खड़े होकर उसने प्रण किया था कि जित्तन का अमंगल न होगा, माँ की बात वह अक्षर अक्षर पालेगी।

ताजमनी का मन जित्तन की मंगल-कामना से भरा हुआ है। पर्वतीय लड़का दिल बहादुर को बैठाकर वह समझाती है, "जित्तन बाबू पर हमेशा नज़र रखना। गाँव के लोगों के सिर पर शैतान सवार है। क्या जाने, कब क्या कर गुज़रें।"[1] "दिलबहादुर ने अच्छी तरह समझ लिया है, ताजमनी के सिवा इस गाँव में जित्तनबाबू को प्यार करनेवाला कोई नहीं।"[2] ताजमनी श्यामा माँ से प्रार्थना करती है कि जित्तन का एक रोम भी न कलपे; उसके बदले सारा दुःख मुझे दे। गंगे काकी से जित्तनबाबू के संबंध में यह सूचना पाकर कि सिर्फ ज़मीन की बात नहीं, और भी भय है, ताजमनी के मुँह से निकला "क्या या

---

1. फणीश्वर नाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.53
2. वही,

याया ?"[1] भय और आशंका मिश्रित उपर्युक्त शब्द में जित्तन के प्रति उसका अपार स्नेह ही निहित था । यही नहीं, तीन पहर रात तक वह काली की मूर्ति के सामने बैठकर रो रही थी,

"पदतले-ए, चिरकाल
लोटय जेकर महाकाल-अ-अ-आ".[2]

ताजमनी के मन में मालकिन माँ और तारा माँ के प्रति असीम भक्ति थी । वह छाया की तरह माँ के साथ रहती थी । जित्तन की जिद के कारण माँ रोने लगती तो ताजमनी के होठ भी फड़कने लगते । उसने अपनी मालकिन माँ के पैर छूकर सत्त किया था । तीन सत्त ।........ जिद्दा से कभी एकांत में नहीं मिलेगी, जिद्दा से कभी आँखें चार नहीं करेगी । नज़र उठाकर उन्हें देखेगी भी नहीं । माँ का सौगंध काटकर वह जित्तन के पास जाकर बोली थी, "आप को देश का काम करने से रोकती नहीं हैं मालकिन-मैया । घर में रहकर, गाँव में रहकर क्या देश का काम नहीं हो सकता है ? दर भंगा, मुजफ्फरपुर या पटना में ही देश का काम ?"[3] इस प्रकार उसने एक सत्त का उल्लंघन किया । लेकिन कमरे के अंधकार में भी जित्तन से आँखें न मिलाकर दूसरे सत्त का उल्लंघन न होने दिया । जित्तन को पिटारी देने जाते समय वह तारा मन्दिर में जाकर प्रार्थना करती है, "..... बारह साल से इस पिटारी को कलेजे से सटाकर मैं अपने जिद्दा की मंगल कामना कर रही हूँ । मेरे माथे पर भेज दो सब दुःख । साक्षी हो तुम । मालकिन माँ के आगे सत्त करने के बाद जिद्दा के चरण भी नहीं छू सकी हूँ, आज तक । मैं आज जिद्दा की चरण धूलि लेने जा रही हूँ । बारह साल के

---

1. फणीश्वर नाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.69
2. वही, पृ.70
3. वही, पृ.75

बाद सत्त तो वज्रसत्त हो जाता है । मालकिन - माँ की पिटारी आज उस के बेटे को सौंपने जा रही हूँ । तू भी अपना आशीष भर दे इस पिटारी में[1] ।"

ताजमनी और जित्तन को लेकर गाँव की औरतें भली-बुरी कहती थीं। मलारी-सुवंश के बारे में कहते समय "लौडस्पीकर" नाम से पुकारी जानेवाली सामबत्ती पीसी ताजमनी-जित्तन के बारे में भी कहती है कि एक जित्तनबाबू और ताजमनियाँ की बात से ही गाँव में छुट्टी नहीं अब तक । गाँव की स्त्रियाँ ताजमनी के संबंध में कहती हैं, "रण्डी-पतुरिया के वंस का पता थोड़ी लगता है, ऊपर से[2] ।" ताजमनी से गंगाकाकी का कथन है, "कोहड़े को घोड़े का अंडा समझकर ले रही है तू ! किस गुमान में है तू ? जित्तन तुमको हवेली में बहूरानी बनाकर रखेगा? गंगाजल से मुँह धोकर रखो । मैं धरती पर तीन रेख खींचकर कहती हूँ - कभी नहीं, कभी नहीं ....[3]।" एक अन्य स्थल पर सामवत्तीपीसी दूसरी स्त्रियों से ताजमनी की प्रशंसा भी करती है, "तजमनियाँ का भाग खराब नहीं । कम्फू की बीबी भी उसे दी दी कहती है । गोविन्दो कहता था, ताजनदी के माथा की बराबरी नहीं कर सकती[4] ।"

"सुधना, फुफेरा भाई है ताजमनी का । अनाथ भाई को ले आई है लहेरिया सराय से । सुधना को स्वर्ग मिला है । जन्म लेने के बाद इतना प्यार उसे कभी न मिला[5] । यहाँ ताजमनी की उदारता दृष्टव्य है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.84-85
2. वही, पृ.103
3. वही, पृ.105
4. वही, पृ.271
5. वही, पृ.60

इस प्रकार हम देखते हैं कि ताजमनी निस्वार्थ प्रेम, संयम, सौन्दर्य, दया आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न है । एक नट्टिन के चरित्र में ऐसे निस्वार्थ प्रेम और संयम का समावेश कराकर उपन्यासकार ने सिद्ध किया है कि दया, ममता, भक्ति, संयम आदि नारी जाति के विशिष्ट गुण हैं जो जातिभेद या वर्गभेद से परे हैं ।

सुषमा

सुषमा हिन्दी की प्रख्यात उपन्यास लेखिका उषा प्रियंवदा के उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" की नायिका है । उपन्यास का प्रारंभ पूर्व-दीप्ति शैली में होता है । सुषमा को लगता है कि नील उसके सिरहाने खड़ा है । वह चौंककर उठ बैठती है और अतीत की स्मृतियों का सिलसिला शुरू होता है ।

एक मध्यवर्गीय नौकरी पेशा व्यक्ति की पुत्री सुषमा पढ़ने में तेज़ थी । समय पर उसका विवाह न हो पाया । उसके पिता पक्षाघात के शिकार हो जाते हैं और माँ, दो बहनें तथा भाई इन सब की जिम्मेदारी उसी पर आ जाती है । वह लड़कियों के कालेज में इतिहास की व्याख्याता और साथ ही कालेज होस्टल की वार्डन बनती है ।

आर्थिक समस्या और पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण सुषमा अपना विवाह असंभव समझती है । तो भी उसके मन में घोर निराशा है और अपने माता-पिता के प्रति क्रोध है । अपने इन भावों को प्रकट न करके वह

दिन बिताती है । लेकिन बहन नीरू की शादी की चर्चा चली तो उसके संयम की की बाँध टूट जाती है । वह कहती है, "ज़रा अपने दिल के अन्दर झाँककर देखो कि तुमने मेरे लिए क्या किया है । मेरा आराम से रहना ही तुम्हें खटकता है । तुम शादी तय करो नीरू की, मैं अपने सारे कपडे-गहने उठाकर दे डालूँगी । यही तो तुम चाहते हो[1] ।" अपनी माँ से उसके निम्नलिखित कथन में भी तीखा व्यंग्य ही छिपा हुआ है, "मैं कुँआरी रह गई तो कौन सा आसमान फट पडा । इन दोनों की अगर शादी न हो सकी तो क्या हो जाएगा[2] ।"

एक बार नील उसके होस्टल में उसकी मौसी द्वारा भेजी हुई साडियाँ पहुँचाने आता है । यह परिचय धीरे धीरे प्रेम में परिणत होता है । इसको लेकर बडी बदनामी भी होती है । मिसेज़ पुरी और मिस शास्त्री सुषमा के संबंध में अपवाद फैलाने में सब से आगे आती हैं । सुषमा भी कुछ समय केलिए इस प्रेम के प्रवाह में बह जाती है, पर परिस्थिति का बोध होने पर वह अपने स्वप्नलोक से उतर आती है । अपने माता-पिता और भाई-बहनों के सुख के लिए वह अपने सुख को तिलांजली देने को तैयार होती है । अत: वह नील से अपनी बेबसी प्रकट करती है । पक्षाघात पीडित पिताजी मां बहनें सब की जिम्मेदारी मुझ पर है । नील तो पहले ही सुषमा के परिवार के आर्थिक बोझ को उठाने को तैयार था । पर सुषमा का स्वाभिमान नील के प्रस्ताव को स्वीकार करने न देता था । नील ने झल्लाकर ऐसा भी कहा था, "ठीक है, तुम यहीं रहो, इन पचपन खंभों में बन्दी होकर । मैं तुम्हारे बहकावे में आ गया था । मैं सोचने लगा था कि तुम्हारे लिए मैं ही सब कुछ बन गया हूँ । मैं ने अब जाना तुम्हारे पास खूबसूरत चेहरे के अलावा

---

1. उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ.95

2. वही,

एक बहुत व्यावहारिक बुद्धि और अपना भला समझनेवाला दिमाग भी है[1]।" नील के विदेश चले जाने के बाद वह टूट जाती है। उसे अनुभव होता है कि "नीलके बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि और अब ऐसी ही रहूँगी, मन की वीरानियों में भटकती हुई[2]।"

इस प्रकार कर्तव्य और प्रेम के बीच में पड़कर घुट घुट कर जीनेवाली सुषमा में मानवीय सम्वेदना की भी कमी नहीं। इसी के कारण वह स्वाति से सहानुभूति प्रदर्शित करती है। वेतन पानेवाली बडी पुत्री होने के कारण आर्थिक कठिनाई में पिसते हुए परिवार का एकमात्र अवलंब वही थी। वह अपने जीवन के सुख के लिए अपने परिवार को निराधार छोडना नहीं चाहती थी। यहाँ पर भी उसकी मानवीय सम्वेदना ही प्रकट होती है। अपने भविष्य के बारे में खूब सोच-विचारकर ही उसने अपनी सहेली मीनाक्षी से एक बार कहा था, "पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी - उसे सीने से लगा रखूँगी आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कालेज में आओ, तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी। कालेज के पचपन खंभों की तरह स्थिर, अचल ......[3]।"

उपर्युक्त विवेचन से मालूम होता है कि सुषमा ने कर्तव्य की बलिवेदी पर अपने को अर्पित किया और आजीवन अविवाहित रहकर संसार के सामने एक आदर्श उपस्थित करने की चेष्टा की। पर उसका यह त्याग पूरे मनोयोग के साथ नहीं था। मन की इच्छाओं को उसने बरबस दबा लिया था।

---

1. उषा प्रियवंदा - पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ.115
2. वही, पृ.123
3. वही, पृ.109-110

परिणामस्वरूप उसका मन विरक्ति, क्रोध और घृणा से भर गया था । उसकी सारी व्यंग्योक्तियाँ उसके मन की इस स्थिति को प्रकट करने वाली थीं । इस प्रकार आत्मनिर्भर होने के कारण परिवार का बोझ ढोनेवाली सैकडों अविवाहित नारियाँ आधुनिक युग में हैं । बाहर से देखने पर संतुष्ट दीखनेवाली इन नारियों का अन्तर्मन असंतोष की ज्वाला से धधकने वाला है । ऐसी नारियाँ समाज के लिए कदापि आदर्श नहीं । इन्हीं में एक है सुषमा । अत: उसे भी हम आदर्श नारी कह नहीं सकते ।

उग्रतारा

श्री० नागार्जुन ने अपने उपन्यास "उग्रतारा" में नायिका उग्रतारा के माध्यम से सामाजिक रूढियों की हँसी उडायी है । सारा उपन्यास उगनी अथवा उग्रतारा के जीवन - संघर्षों की गाथा है । उगनी मढिया सुन्दरपुर की युवा विधवा है । उसकी माँ और दादी भी युवावस्था में विधवा हुई थीं । वैधव्य के इस अभिशाप का कारण कोई नहीं जानता ।

नर्मदेश्वर की भाभी उस गाँव के युवावर्ग में चेतनता लाने का प्रयत्न करती है । इस परिस्थिति में विधवा उगनी का परिचय कामेश्वर नामक युवक से होता है। कामेश्वर से उसका प्रणय विवाह होनेवाला था । पर पुरानी पीढी के समाज के ठेकेदार विधवा विवाह सहन न कर सकते थे । अत: उन दोनों को गाँव छोडना पडता है । पर गाँववालों की झूठी रिपोर्ट के आधार पर वे पुलिस की पकड में आते हैं । उगनी को तीन महीने की और कामेश्वर को नौ महीने की सज़ा होती है । पुलिस और

गाँववाले नर-राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित हो उगनी आत्महत्या करना चाहती है, पर उसकी इच्छा के विपरीत उसे भभीखनसिंह नामक बूढे सिपाही से विवाह करना पड़ता है । वह गर्भिणी होती है । तो भी जेल से विमुक्त होने पर नये युग का प्रगतिशील युवक कामेश्वर उसे उडा ले जाता है । उसके बाद उगनी भभीखनसिंह को पत्र लिखती है "मैं ने अपना सब कुछ जिसे सौंप दिया था, उसी के साथ गाँव से निकली थी । जिस के साथ गाँव से निकली थी, वही मुझे आपके क्वार्टर से निकाल लाया है । उस आदमी का दिल बहुत बडा है । पराये गर्भ को ढोनेवाली अपनी प्रेमिका को फिर से बिना झिझक के उस ने स्वीकार कर लिया है । उसने मुझ से शादी कर ली है । आपकी छाया में आठ महीने रही हूँ । मन ही मन आपको पिता और चाचा मानती रही हूँ और आगे भी वैसा ही मानती रहूँगी । मैं मजबूर थी, इसी से आपको धोखा दिया । सिपाही जी, आप मुझे सारा जीवन याद रहेंगे[1] ।" उगनी के बेमेल विवाह का मार्मिक और व्यंग्यपूर्ण चित्र उपन्यासकार ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, "भभीखनसिंह ने वैदिक विधियों से शादी की थी । ठीक है, आधे घंटे तक अग्नि में आहुतियाँ डाली गई थीं । ठीक है, हवन के धुएँ ने बहुतों की आँखों को आनन्द के आँसुओं से गीला कर दिया था । ठीक है, तोला भर सिन्दूर माँग के बीचोंबीच कई दिनों तक जमा रहा । सब कुछ ठीक है । लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच इतना बडा फासला किस तरह मखौल उडा रहा था विवाह के संस्कारों का । बाबू भभीखन सिंह को कानूनी तौर पर बलात्कार का हक हासिल हुआ[2] ।" समाज के ठेकेदारों के और पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित उगनी की दीनदशा का चित्रण करके उपन्यासकार ने साबित किया है कि नारी आधुनिक प्रगतिशील युग में भी शोषण से मुक्त नहीं । किसी दैवयोग से उगनी को जीवन में आखिर सफलता प्राप्त हुई ।

1· नागार्जुन - उग्रतारा, पृ·123

2· वही, पृ·37

वह प्रेम में सफल हुई, साथ ही साथ उसने पुनर्विवाह करके समाज की रूढियों को तोड दिया । इस प्रकार वह विद्रोहिणी हुई ।

रेखा

श्री· भगवती चरण वर्मा का उपन्यास है "रेखा" । "रेखा" में रेखा ही प्रमुख नारीपात्र है जिस का चित्रण एक स्वेच्छाचारिणी के रूप में किया गया है ।

रेखा जब बीस वर्ष की थी, तब वह एम·ए· फाइनल {दर्शनशास्त्र} की छात्रा थी । वह अतिरूपवती और प्रतिभा सम्पन्न थी । प्रोफेसर प्रभाशंकर बडे विद्वान है। वे केवल डी·लिट· में ही मार्गदर्शन का दायित्व उठाते हैं और वह भी केवल एक समय में केवल एक को ही लेते हैं । लेकिन रेखा के लिए वे एम·ए· डिजर्टेशन के निबन्ध में भी मार्गदर्शक होना स्वीकार करते हैं । इस निकट सम्पर्क से रेखा के मन में पहले उनके प्रति अगाध श्रद्धा उपजती है और बाद में वह श्रद्धा प्रेम का रूप धारण करती है । इस प्रेम के फलस्वरूप वह प्रोफेसर की पत्नी बन जाती है ।

प्रोफेसर विधुर थे । लेकिन देवकी नामक एक विवाहित स्त्री से उनका संबंध था, बच्चे भी थे । देवकी का लक्ष्य केवल आर्थिक लाभ था । प्रेमान्ध होकर "रेखा भरद्वाज" "रेखाशंकर" तो बनी, पर उसकी शारीरिक प्यास बुझाने में प्रभाशंकर असमर्थ निकले । रेखा के लिए यह बडा आघात था ।

एक दिन देवकी का बेटा रामशंकर वहाँ आया जिसका रूप प्रभाशंकर से मिलता-जुलता था । जर्मनी जाने के पहले वह अपनी माँ के साथ आया था । रेखा ने उसके साथ जाकर अच्छी अच्छी चीज़ें खरीद दीं । उसकी जवानी पर रेखा मुग्ध हो गयी । जीवन में पहले पहल उसे एक नव्य अनुभूति हुई । पर उसने संयम नहीं छोडा । लेकिन उसके बाद उस की प्रकृति में परिवर्तन आया ।

अपने भाई अरुण के मित्र सोमेश्वर दयाल से शारीरिक संबंध स्थापित करने से उसके मन में संघर्ष तो हुआ, पर यहीं उसकी स्वेच्छाचारिता का श्रीगणेश भी हुआ । फिर उसके जीवन में शशिकान्त, निरंजन कपूर, शिवेन्द्रधीर, मेजर यशवन्तसिंह और डॉ॰ योगेन्द्र मिश्र एक के बाद एक होकर आये । एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में सम्मिलित होते समय शशिकान्त से उसका प्रथम मिलन हुआ और तत्पश्चात् प्रभाशंकर के भूतपूर्व छात्र के नाते उसने रेखा से निकट सम्पर्क रखा । फिर वह मिसेज़ रत्नाचावला की पुत्री शीरीं के भावि पति निरंजन कपूर को अपनी ओर खींचती है । पर एक दिन निरंजन का सिगारेटकेस प्रभाशंकर के तकिए के नीचे रह जाता है । क्रुद्ध होकर प्रभाशंकर रेखा को मारते हैं और घर से निकाल देने की धमकी देते हैं । रेखा की क्षमा-प्रार्थना से वे तत्काल शान्त होते हैं, पर उनके मन में जो सन्देह पैदा हुआ था, वह दूर नहीं हुआ । रेखा की यौन क्षुधा पुनः तेज़ होती है और शिवेन्द्र धीर उसके आकर्षण का केन्द्र बन जाता है । पर वह नपुंसक निकला तो मेजर यशवन्तसिंह की ओर वह झुकती है । आखिर डॉ॰ योगेन्द्र मिश्र के प्रति उसके मन में प्रेम उत्पन्न होता है। तभी उसे मालूम होता है कि प्रभाशंकर के प्रति उसे प्रेम नहीं था, भक्ति थी । डॉ॰ योगेन्द्र मिश्र और रेखा को लेकर काफी अपवाद भी फैल जाता है ।

ये सब बातें प्रभाशंकर के लिए अतीव वेदनाजनक थीं। डा॰ योगेन्द्र मिश्र को अपने उत्तराधिकारी बनाने के उद्देश्य से प्रभाशंकर ही बुला लाये थे। इसी बीच प्रभाशंकर का स्वास्थ्य निरंतर बिगड़ता जाता है। लो ब्लड प्रेशर और हृदय के दौरे के हल्के प्रहार से वे पीड़ित होते हैं। वे योगेन्द्र को ओसला यूनिवर्सिटी में भेजने का प्रबन्ध करते हैं। रेखा से इस बात को लेकर बाद विवाद होता है, तभी प्रोफेसर के दायें पैर को लकवा मार जाता है। रेखा पहले योगेन्द्र के साथ भाग जाने को उद्यत होती है, पर मृत्यु शय्या पर पड़े हुए प्रोफेसर को छोड़ जाने में संकोच होता है। फिर जब वह हवाई अड्डे पर पहुंचती है तो प्लेन जा चुका होता है। वह निराश हो लौटती है, पर उसके पहुंचने के पहले ही प्रोफेसर इस लोक से चल बसे थे।

प्रभाशंकर और रेखा के विवाह को हम प्रेमविवाह कह सकते हैं, पर वास्तव में वह बेमेल विवाह था। रेखा स्वेच्छा से इस बंधन में बंधी थी। परन्तु विवाह के बाद पति से यौन परितृप्ति न मिली तो उसका मन अन्यत्र भटकता है। इसका आरंभ सोमेश्वर से होता है और योगेन्द्र तक पहुंचकर उसका अंत होता है क्योंकि यहीं पर उपन्यास का भी अंत होता है। रेखा को सोमेश्वर का गर्भ भी रहा था, लेकिन जब उसे मालूम होता है कि सोमेश्वर अमेरिका में पागल हो गया है तो वह पागल के बच्चे को पैदा करना नहीं चाहती और "अबार्शन" करवा देती है।

इस प्रकार वासना-तृप्ति के लिए अनेक पुरुषों से सम्पर्क रखनेवाली रेखा वास्तव में एक उच्छृंखल नारी है। क्षणिक मोह के वश में होकर विवेक खो देने के परिणामस्वरूप रेखा को इस प्रकार भटकना पड़ा है। आधुनिक युग की नारी अपेक्षया स्वतंत्र है। इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके रेखा चरित्रहीन हुई है।

रेखा के अतीव वासनात्मक रूप को हमारे सामने रखकर उपन्यासकार ने नारी समाज को चेतावनी दी है कि सीमा का उल्लंघन करने पर नारी पथभ्रष्ट हो जाएगी ।

योके

अज्ञेय जी का तीसरा उपन्यास "अपने अपने अजनबी" एक लघु उपन्यास है। यह तीन भागों में है - "योके और सेल्मा", "सेल्मा" और "योके" । प्रथम भाग योके की डायरी द्वारा, द्वितीय सेल्मा की स्मृति द्वारा तथा तृतीय पुन: योके द्वारा प्रस्तुत हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में दो ही पात्र प्रमुख हैं । दोनों नारीपात्र है और विदेशी हैं । वे हैं सेल्मा और योके । दोनों के विचार परस्पर विरुद्ध हैं । केन्सर ग्रस्त सेल्मा मरणासन्न है, पर जीने की तीव्र लालसा रखती है; योके जीती है, पर मृत्यु-भय से ग्रस्त है । निम्नलिखित कथन इसका प्रमाण है । "...... और ठीक यहीं पर फर्क है । वह जानती है और जानकर मरती हुई भी जिए जा रही है । और मैं हूं कि जीती हुई भी मर रही हूं और मरना चाह रही हूं ।"[1] योके की ही समस्या आज के पश्चिम की समस्या हो गई है ।

अचानक अधिक बर्फ पडने के कारण योके और सेल्मा एक बर्फ से आच्छादित काठघर में बन्द हो जाती हैं । दोनों परस्पर अजनबी हैं । किन्तु एक स्थान पर रहने से दोनों का परस्पर परिचय होता है । योके मृत्यु के उस

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी, पृ.38

वातावरण से अपरिचित होने के कारण डर रही है । सेल्मा उसे सान्त्वना देती है । लेकिन योके को उस कमरे के वातावरण को देखते हुए मृत्यु का आभास होता है और वह कब्र का अनुभव करती है "हमेशा सुनती आई हूँ कि कब्र में बड़ा अँधेरा होता है । लेकिन यहाँ उसकी भी असम्पूर्णता और विविधता है । शायद यही वास्तव में मृत्यु होती है ।[1]" मृत्यु से घिरे हुए उस वातावरण में योके सेल्मा को मरती हुई देख रही है।

सेल्मा अपने अतीत की कहानी योके को कह सुनाती है । कथानक का तीसरा भाग योके के जीवन से संबन्धित है । कब्र सी कोठरी में सेल्मा की मृत्यु होती है। उस के बाद जब योके बाहर निकलती है तब निर्जन स्थान पर जर्मन सैनिक उसको अपनी वासना का शिकार बना लेते हैं । ऐसी दशा में उसका प्रेमी पाल उसे स्वीकार नहीं करता । अब योके के सम्मुख मृत्यु के सिवा और कोई उपाय नहीं रहता । वह दुर्गंध पूरित जीवन से सदा केलिए मुक्ति चाहती है । लेकिन एक अच्छे आदमी की उपस्थिति में मृत्यु का वरण करने का आग्रह उसे होता है । उसे अच्छा आदमी जगन्नाथन मिल जाता है तो वह विष खाकर मृत्यु का स्वागत करती है । जगन्नाथन की गोद में उसकी मृत्यु होती है ।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक प्रतीकात्मक है । योके का जीवन पश्चिम के मानवजीवन का प्रतीक है । "अस्तित्ववादी दर्शन के चार मुख्य आयामों को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है - §1§ मनुष्य की अवशता और तज्जन्य मृत्युबोध, §2§ अस्तित्वबोध §3§ अहं की केन्द्रीयता और §4§ निरीश्वरवादिता ।[2]" योके के चरित्र में ये चारों प्रतिबिम्बित हैं ।

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी, पृ.17

2. डॉ. पारुकांत देसाई - युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध, पृ.65-67

वह मृत्यु को ही एक मात्र सच्चाई मानती है क्योंकि हम सब को मरना है[1]।

योके को जर्मन सैनिकों ने अपनी वासना का शिकार बनाया । इस के लिए योके दोषी नहीं, पर इसी कारण से प्रेमी पाल से वह तिरस्कृत होती है । सतीत्व भी उस के विनाश का कारण बनता है । माना जाता है कि विदेशी नारियाँ पर्याप्त स्वतंत्र हैं । लेकिन वे भी बलात्कार और अन्याय का शिकार होती हैं । इस का प्रमाण है योके का जीवन ।

शीरीं

श्री राजकमल चौधरी के उपन्यास "मछली मरी हुई" के प्रमुख नारीपात्रों में एक है शीरीं । वह समलैंगिक यौनाचार में डूबी हुई लिस्बियन औरत है । जब वह छः साल की थी, तभी उसकी माता की मृत्यु हुई । उस मृत्यु से उत्पन्न ग्रंथि के कारण उसके मन में माता बनने की अभिलाषा न होती है । उसकी बडी बहन असामान्य स्वभाववाली थी । वह शीरीं का सम्पर्क चाहती थी । इसलिए उसने शीरीं के हृदय में पुरुष समाज के प्रति घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा की ।

बडी बहन ने उसे पक्की लिस्बियन बनायी । उसे समझाया कि शारीरिक जीवन बिताने के लिए पुरुष अनिवार्य नहीं । शीरीं और बडी बहन के बीच जो शारीरिक संबंध होता था, उसका स्पष्ट चित्र उपन्यास में अंकित है[2], "दोनों बहनें रात में बिस्तरे पर इकट्ठी सोती थीं । .... ।"

---

1. अज्ञेय - अपने अपने अजनबी, पृ.26
2. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, पृ.109,110

इस प्रकार अपनी खुशी केलिए बडी बहन ने शीरीं की प्रकृति को असाधारण बनाया । बाद में वह किसी और के साथ चली गई । लेकिन उसने शीरीं पर जो बुरी आदत डाली थी, वह छूटी नहीं । उसके बाद शीरीं का विवाह हुआ । वह भी एक युवक के साथ नहीं, बूढे विश्वजीत मेहता के साथ हुआ था । उनसे उसे आनन्द प्राप्त नहीं हुआ तो वह रस की खोज में लग गई । वह माडर्न सोसाइटी के बनाव - श्रृंगार क्लबों और पार्टियों में खो जाती है और नये शिकारों को खोजती रहती है । वह प्रिया की दोस्त बनती है और धीरे धीरे उसे अपने वश में कर लेती है । शीरीं और प्रिया के समलैंगिक व्यवहार को लेखक ने मछली का प्र तीक देते हुए उसका विस्तृत वर्णन किया है "मछलियाँ अँधेरे में तैर रही हैं । मैं मरना चाहती हूं ।"[1]

निर्मल पद्मावत को नपुंसक कहकर कल्याणी ने उसकी उपेक्षा की थी । तो भी विश्वजीत मेहता के द्वारा किये गए कल्याणी के अपमान का बदला लेने के लिए निर्मल ने मेहता की पत्नी शीरीं को अपनाया । शीरीं मेहता शीरीं पद्मावत हो गयी । लेकिन निर्मल पद्मावत की असाधारण प्रकृति के कारण उसकी वासना पुन: अतृप्त रही ।

पति की यौन दुर्बलता की आशंका से पति-पत्नी संबंध में तनाव होता है। पति-पत्नी दोनों अलग अलग फ्लैट में रहते हैं । पति प्रसन्न होता है तो पत्नी से दूर रहता है, क्रुद्ध होता है तो पत्नी के पास आता है । यह आने का क्रम महीने महीने का अन्तराल ले लेता है । पति उसे अतृप्त उत्तेजित स्थिति में छोड जाता है तो वह जो करती है, इसका भी विस्तृत वर्णन उपन्यास में है[2] ।

1· राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, पृ·109-110

2· वही, पृ·117

इस प्रकार अतृप्ति से तडपती हुई शीरीं के माध्यम से उपन्यासकार ने यौन विकृति का यथातथ चित्र पाठक के सामने उपस्थित किया है। शीरीं की गणना असामान्य नारियों की श्रेणी में की जा सकती है ।

इस अध्याय में प्रमुख और अप्रमुख दोनों प्रकार के नारीपात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है । इनमें राज और उग्रतारा ने वैधव्य के अभिशाप से मुक्त होकर प्रगतिशीलता प्रकट की तो छाया ने अपने जीवन और मरण से सिद्ध किया कि दासी के समान दलित, पीडित, जडतुल्य प्राणी और कोई नहीं है । अपने समस्त बाह्याडम्बरों के अन्दर नर्तकी वेश्या रत्नप्रभा का दिल गृहस्थ नारी बनने की लालसा से तडप रहा है । कन्नगी और माधवी के तुलनात्मक अध्ययन से भी स्पष्ट है कि पत्नी का स्थान कितना ऊँचा है । नीलिमा का अनिश्चयात्मक मनोभाव उस के भविष्य को भी अनिश्चयात्मक बना देता है । सत्या का अचंचल गंभीर हृदय कुछ पिघला तो दुःख-दर्द की धारा बहने लगी और उस धारा में उसकी जीवन नौका भी अनिच्छापूर्वक बहती गयी । कजरी और प्यारी निम्नजाति की है तो क्या ? उनका सपत्नीत्व सभ्य समझी जानेवाली नारियों केलिए भी आदर्श है। ताजमनी की तुलना तो कीचड में खिले कमल से की जा सकती है । धममोह के कारण पिशाचिनी बनी अंजना तो पाठक की सहानुभूति नहीं पा सकती । कनक की बहादुरी के सामने सुषमा का निश्चल त्याग अधिक महत्व नहीं रखता । जो लोग "नदी के द्वीप में" अन्यपुरुष भुवन से शारीरिक संबंध स्थापित करने के कारण रेखा को चरित्रहीन, मानते हैं, वे लगातार कई पुरुषों से शारीरिक संबंध स्थापित करनेवाली - रेखा को देखकर क्या कहेंगे ? इसी प्रकार शैलबाला और शीरीं के चरित्र का अन्तर हम आसानी से समझ सकते हैं । इन सब के बीच योके अपना अलग व्यक्तित्व प्रकट करती है ।

****

छठा अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों के नारीपात्रों में विविधता के साथ साथ नवीनता और प्रगतिशीलता दर्शनीय हैं। उनके रूप, प्रकृति सभी में अद्भुत परिवर्तन हुए हैं। धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों का परिवर्तन ही इसका कारण है।

पूर्व-प्रेमचन्दयुग और प्रेमचन्दयुग में नारी-जीवन से संबंधित जो प्रथायें प्रचलित थीं, वे प्रथायें प्रेमचन्दोत्तरकाल में भी यत्र-तत्र दिखाई देती हैं, पर उनके प्रचार का लोप हो गया है। पर्दा-प्रथा, सती प्रथा, आदि ऐसी प्रथायें हैं। "मनुष्य के रूप" में मनोरमा की माँ, "गिरती दीवारें" में चेतन की भाभी, "सारा आकाश" में प्रभा के ससुरालवाले आदि के व्यवहार में इस प्रथा का समर्थन पाते हैं। लेकिन इस युग की अधिकांश नारियाँ इस प्रथा को स्वीकार नहीं करतीं। सती प्रथा, दहेजप्रथा आदि नियम-विरुद्ध हैं,

तो भी इनके कतिपय उदाहरण इस काल में भी पाये जाते हैं । "कब तक पुकारूँ" में धूपो चमारिन सती होती है । "झूठा सच" में बन्ती परिवारवालों से तिरस्कृत होने पर दहलीज़ पर सिर पटक पटक कर मर जाती है तो उपस्थित लोगों में कुछ लोग मानते हैं कि वह सती हो गई है । दहेज प्रथा का भी सर्वथा अभाव नहीं । माता-पिता दहेज देने में असमर्थ हैं तो लड़की बड़ी आयु तक अविवाहित रहती है । "गिरती दीवारें" में लक्ष्मी इसी कारण से अविवाहित रहती है । धाता, छाया, वापी, हिता आदि नारी पात्रों के चित्रण से स्पष्ट होता है कि दासी प्रथा की ओर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का भी ध्यान गया है ।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक नारी सौन्दर्य साहित्यकारों का वर्ण्य विषय रहा है । नारी सौन्दर्य के वर्णन में कालानुकूल परिवर्तन भी दिखाई देता है । पिछले अध्यायों में इसके उदाहरण दृष्टव्य हैं । नारी सौंदर्य का मानदंड भी क्रमशः परिवर्तित हो रहा है । उदाहरण केलिए नारी का रंग ही ले लें । गेहुआँ से लेकर वह काला रंग तक पहुँच गया है । "अनदेखे अनजान पुल" की निन्नी काली-कलूटी कुरूपा नायिका है । "कृष्णकली" की नायिका कृष्णकली का रंग भी अपने नाम के अनुरूप काला है, तो भी उसका रूप मोहक है । नारी की वेश-भूषा में भी अंतर पाया जाता है । उदाहरण के लिए "मनुष्य के रूप" में मनोरमा की माँ, भाभी और मनोरमा एक साथ बाज़ार में निकलती तो सामाजिक परिवर्तन की तीन पीढ़ियाँ एक साथ दिखाई देती थीं । माँजी काले रेशम का भारी लहँगा पहने, सिर पर मलमल के दो दुपट्टे जोड़कर ओढ़े और आधे बालिस्त का घूँघट खींचे, पाँव में स्लीपर पहने चलतीं, बहू रेशमी साड़ी का आँचल सिर पर रखती, परन्तु बिना घूँघट के और नीची एड़ी का जूता पहनती, मनोरमा नंगे सिर, गर्दन पर भारी जूड़ा संभाले, ढीली पतलून पहने और कंधे से बटुआ लटकाये दिखाई देती ।

प्रेम के मामले में प्रेमचन्दोत्तर काल के नारीपात्रों की रुचि में भिन्नता दृष्टव्य है । "गुनाहों का देवता" की सुधा, गेसू, "बड़ी बड़ी आँखें" की वाणी आदि प्रेम की पवित्रता पर विश्वास रखनेवाली हैं तो "दादा कामरेड" की शैलबाला, रेखा की रेखा, "स्कोगी नहीं.... राधिका ?" की राधिका आदि एकनिष्ठ प्रेम के पक्ष में नहीं । ऐसे नारीपात्रों में अधिकांश नारियाँ या तो एक से अधिक व्यक्तियों से प्रेम करती है या एक से प्रेम और दूसरे से विवाह करती हैं । मृणाल, ममता, राज, गौरी, प्रतिभा, अंजली, शीलो, साधना, हीरादेई, सत्या, राधा, जमुना, मोती, कल्याणी, इरा आदि अनेक नारीपात्र इसी श्रेणी में हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण विवश होकर मृणाल को कोयलेवाले के साथ रहना पड़ा तो राज ने अपने पति खन्ना को मृत समझकर बद्रीबाबू से विवाह किया । गौरी, प्रतिभा और अंजलि श्री· लक्ष्मीकांत वर्मा के उपन्यास "खाली कुर्सी की आत्मा" के नारीपात्र है । अगम पण्डित की पत्नी होने पर भी गौरी गनपत शास्त्री के साथ रहती है । प्रतिभा का विवाह सन्तोषी से हुआ, पर वह जसवंत से प्रेम करती है । मातृ-पितृ विहीन अंजलि का सन्तोषी के साथ रहते समय महिम से परिचय होता है, फिर बच्चे को महिम के पास छोड़कर प्रकाश के साथ चली जाती है, फलत: महिम को कारागृहवासी होना पड़ता है । "झूठा सच" में शीलो रतन की प्रेमिका है, उसके पेट में रतन का बच्चा है, फिर भी उसका विवाह मोहनलाल से होता है । अंत में मोहनलाल को छोड़कर वह बच्चे के साथ अपने प्रेमी के साथ ही रहती है । "डॉ· शेफाली" उपन्यास में राममोहन की पत्नी साधना प्राणनाथ की ओर भी आकृष्ट होती है । इसी उपन्यास की हीरादेई गरीब है और पति के अत्याचार से दु:खी है । वह फिर गिरिधर के साथ भाग जाती है, पर गर्भिणी होने पर परित्यक्ता होती है । इसी उपन्यास में मज़दूर कान्हू भाई की बहन कुरूपा राधा पति को छोड़कर एक और से संबंध रखती है, फिर जगन्नाथ को पति बनाना चाहती है । जगन्नाथ को उबकाई आती है, तो भी उससे डरकर एकांत में मिलता है । "गर्म राख" की सत्या जगमोहन से

प्रेम करती है, पर अनिच्छा होने पर भी दूसरे से विवाह करती है। यशपाल के उपन्यास "बारह घंटे" की जेनी पामर की पत्नी है, लेकिन परपुरुष लारेन्स के प्रति उसका आकर्षण है। यशपाल के एक अन्य उपन्यास "क्यों फंसे" की मोती विवाहिता है, लेकिन पर पुरुष की ओर आकृष्ट होती है। जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास "मुक्तिबोध" की नीलिमा पत्नी है और प्रेयसी भी है। रेखा उपन्यास की रेखा, रूकोगी नहीं राधिका की राधिका आदि एक के बाद एक होकर कई पुरुषों से संबंध रखती है। "डाकबंगला" की इरा तो इसी कारण अपने जीवन को ही एक डाकबंगला समझती है।

आलोच्यकाल के नारीपात्रों ने वीरता के क्षेत्र में भी कमाल हासिल किया है। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी आदि ने युद्ध वीरता प्रदर्शित की तो प्यारी, कजरी आदि ने अत्याचारियों की हत्या करके वीरता प्रदर्शित की। "झूठा सच" में कनक ने न्याय के लिए लड़कर वीरता और साहस का ही परिचय दिया है। इसीलिए पिता की दृष्टि में वह बहादुर है। इसी प्रकार जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में वीरता दिखानेवाले अनेक नारीपात्र प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में हैं।

नारीजीवन को पीडा देनेवाली विधवा समस्या, वेश्या समस्या आदि विवेच्यकाल के उपन्यासों में भी दृष्टिगत होती हैं। विधवा-विवाह ही विधवा समस्या का समाधान है। राज, उर्मिला, हरको, गोपीचंद की भाभी, कुंती, मानकुमारी, विनी, उग्रतारा, सरोजिनी आदि इस युग की विधवायें हैं। बालविवाह निषिद्ध है, इसलिए बालविधवायें भी विरल हैं तो भी शमीम , लछमा आदि एकाध बालविधवाओं को हम इस काल के उपन्यासों में देखते हैं। राज बद्रीबाबू से, हरको टहल से और उग्रतारा कामेश्वर से पुनर्विवाह करके वैधव्य से मुक्ति पाती है। विनी फैंटम के साथ रहती है।

ऊर्मिला, सरोजिनी देवी आदि का भी पुनर्विवाह होता है । गोपीचन्द ने अपनी विधवा भाभी से विवाह करके इस क्षेत्र में एक क्रांति ही उपस्थित की । कुन्ती, मानकुमारी आदि विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता । यह बात निर्विवाद है कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की अधिकांश विधवा नारियों ने पुनर्विवाह करके इस समस्या को सुलझाया है । दिव्या, माधवी, चिराग, पन्ना आदि वेश्याओं के चरित्र का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि वेश्यायें अपने वेश्या जीवन से असन्तुष्ट हैं । वेश्या-पुत्री होने से अथवा अन्य परिस्थितियों से बेबस होकर उन्होंने वेश्याजीवन को अपनाया है । प्रत्येकके मन में कुलवधु बनने की तीव्र लालसा है । "सुहाग के नूपुर" की माधवी ने सुहाग के नूपुर पहनने के लिए क्या नहीं किया ? पर असफलता ही हाथ लगी । "कृष्णकली" की पन्ना तो वेश्या-पुत्री होने पर भी विद्युतरंजन मजूमदार को छोड़कर अन्य किसी को अपनी तर्जनी तक का स्पर्श न करने देती । अश्कजीके उपन्यास "गर्मराख" में हीरामंडी की वेश्याओं का चित्रण है । यहाँ तीन तरह की वेश्यायें हैं जिनमें चिराग बेगम एक दम निराली है । जवानी में वह अपने गाँव के जमीन्दार के हाथों बरबाद होकर वहीं के एक युवक जुलाहे के साथ भागने को विवश हुई थी । उसी ने उसे अन्त में इस गली में ला बैठाया था । इसी अतीत ने चिराग के दिल में पुरुषों के लिए एक विचित्र से प्रतिशोध और उपेक्षा की भावना भर दी थी । अपने इस पेशे के बावजूद उसने अपने शरीर को सम्हालकर रखा था । ऐसे अनेक उदाहरणों से हमें मालूम होता है कि वेश्या समस्या प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में भी ज्यों की त्यों है ।

विवाह के क्षेत्र में भी कई परिवर्तन दर्शनीय हैं । बालविवाह तो अब नियमविरुद्ध हो गया है । प्रेमविवाह के संबंध में मतभेद हैं । कचनार, शेफाली, प्रतिमा, उग्र तारा आदि का प्रेम विवाह में परिणत होता है तो

निरंजना, नीलिमा, मंजरी, पूर्णिमा, सुधा, सत्या, सुषमा, चित्रा, कृष्णकली आदि अनेकों नारीपात्रों का प्रेमविवाह में परिणत न होता। "नीलमणि" के विनय का मत है कि कन्या अपनी अनुभव हीनता के कारण स्वयं के निर्वाचन में बहक सकती है, अतः माता-पिता का निर्वाचन ही अधिक श्रेष्ठ और स्थायी है। विवाहपूर्व प्रेम में वह स्त्री के सर्वनाश की संभावना देखता है। प्रेम की असफलता के कारण जीवन-भर कुंठा ग्रस्त रहनेवाले कई नारीपात्र प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में हैं। "गुनाहों का देवता" की सुधा एक उदाहरण है। "झूठा सच" में कनक का पुरी से प्रेमविवाह तो हुआ, पर बाद में संबंध-विच्छेद करना पड़ा। यह प्रेमविवाह की असफलता का उदाहरण है। विधवा-विवाह तो सार्वत्रिक हो गया है। अन्तर्जातीय विवाह के भी कई उदाहरण हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास "परती परिकथा" में चमारिन मलारी और भूमिहरवा सुवंशलाल की शादी होती है। इसी उपन्यास में अंग्रेज नारी मिसेज रोजवुड शिवेन्द्र मिश्र की प्रेमिका बनती है और धर्मपरिवर्तन करके गीता मिश्रा बनती है। हेमा, मनिया, लाखी, बदमी, राधिका आदि का भी मिश्र विवाह होता है। नारी-शिक्षा के प्रचार से आत्मनिर्भर नारियों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जाती है, परिणाम स्वरूप विवाह में विलंब होता है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में ऐसे विलंबित विवाह के उदाहरण भी पाये जाते हैं। "झूठा सच" में सोमराज से तारा का विवाह हुआ था, जो झूठा सच था। फिर तैंतीस की होने के बाद ही डॉ॰ प्राणनाथ से उसका सच्चा विवाह होता है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "ऋतुचक्र" में तिरपन वर्षीय मिलनकुमार और छियालीस वर्षीय प्रतिमा के विवाह का निश्चय होता है जो विलम्बित विवाह का सर्वोत्तम उदाहरण है। आत्मनिर्भर नारियों में ऐसा भी एक वर्ग इस ज़माने में दृष्टव्य है जो आजन्म अविवाहित रहता है। यशपाल के उपन्यास "देशद्रोही" की यमुना आजन्म अविवाहिता है। सुजान के प्रति उसका आकर्षण तो है, पर विवाह नहीं होता। धर्मवीर भारती के उपन्यास "गुनाहों का देवता" में गेसू के प्रेमी का विवाह गेसू की बहन फूल से होता है तो वह हताश

होती है और जीवन भर विवाह न करने का निर्णय करती है । फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास "परती परिकथा" में ताजमनी का मन जित्तन के प्रति प्रेम से भरा हुआ है, पर दोनों का विवाह असंभव है, इसलिए वह जीवन-भर अविवाहित रहती है। "झूठा सच" में डॉ॰ श्यामा और प्रभा सक्सेना अविवाहित जीवन बिताती हैं । पारिवारिक जिम्मेदारी से विवश होकर नील के प्रति प्रणय होने पर भी उषा प्रियवंदा के उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा अविवाहित रहती है । श्री॰ रमेशबक्षी के उपन्यास "वैसाखियों वाली ईमारतें" में एक अविवाहिता नारी की विक्षिप्त प्रकृति का चित्रण हुआ है। वह है प्रोफेसर मिस॰ जायसवाल । वह विवाहित पुरुषों को फँसाती फिरती है ।

इस युग के पारिवारिक जीवन में भी परिवर्तन होते रहते हैं । संयुक्त परिवार का विघटन इन में एक हैं । पूर्व वर्ती युगों में भी संयुक्त परिवार के प्रति अनास्था प्रकट की गई थी । देशद्रोही में संयुक्त परिवार के विघटन के लक्षण प्रकट हैं । घर में पढ़ी-लिखी नयी बहू के आने पर बुआ और जेठानी की परेशानी, विधवा बहुओं भारस्वरूप समझना आदि इस ओर संकेत करते हैं । "मनुष्य के रूप" में भी एक मामूली-सी घटना पर सरोला परिवार की स्त्रियाँ बिगड पड़ती हैं और स्त्रियों के मनमुटाव का प्रभाव पुरुषों पर भी पड़ता है और फलस्वरूप संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया शुरू होती है । "गिरती दीवारें" में संयुक्त परिवार के प्रति असन्तोष दर्शाया गया है । "सारा आकाश" में प्रभा का जीवन संयुक्त परिवार में नरक-तुल्य बन जाता है । ऐसी अनेक असुविधाओं से लोगों का ध्यान संयुक्त परिवार से सरल परिवार की ओर गया और बाद में सरल परिवार से आणव परिवार की ओर लोग आकृष्ट हुए । "अँधेरे बन्द कमरे" में आणव परिवार के प्रति भी अनास्था दर्शनीय है ।

कला के क्षेत्र में चमकनेवाले अनेक नारीपात्र प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में हैं । मल्लिका, रत्नप्रभा, दिव्या, माधवी, नीलिमा, पन्ना आदि नर्तकियाँ

और गुलबिया, सोमा, सुजाता आदि अभिनेत्रियाँ अपने अपने क्षेत्र में निपुणता दर्शानेवाले नारीपात्र हैं। "खालीकुर्सी की आत्मा" की दिव्यादेवी का चित्रण गायिका, कवयित्री और मूर्तिकार के रूप में किया गया है। मोती चित्रकला प्रवीण है तो वसुधा पेंटिंग में निपुणता दर्शाती है। इन कलानिपुण नारियों के बीच में "अमरबेल" की अंजना तारों से भरे आकाश में धूमकेतु के समान दिखाई पडती है, क्योंकि उसने अपनी कलाकुशलता का दुरुपयोग किया है। अपना स्वार्थ साधने के लिए और दूसरों को पीडा देने केलिए वह अपनी अभिनयकुशलता का सहारा लेती है।

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व ही राजनैतिकक्षेत्र में नारियों का प्रवेश हुआ था, स्वतंत्र भारत में तो राजनीति में भाग लेनेवाली नारियों की संख्या बढती गई और अब भी ऐसी नारियों की संख्या निरंतर बढती ही जा रही हैं। इसका प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों पर भी पडा है। फलत: इस युग के अनेक नारीपात्र राजनीति में सक्रिय सहयोग देनेवाले हैं। नीलिमा*, पूर्णिमा, गीता, शैलबाला, राज, सत्या, तारा, कनक, मनोरमा, दुरो, प्रतिमा आदि इस के उदाहरण हैं। गीता, शैलबाला, प्रतिमा आदि क्रांतिकारिणियों की श्रेणी में आती हैं। क्रांतिकारी प्रवृत्तियों में भाग लेकर और फिर उनसे विरक्त होकर प्रतिमा को बडा अन्त: संघर्ष हुआ था जिससे समय पर उसका विवाह भी न हो पाया था।

नारी-शिक्षा और नारी जागृति ने नारियों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी। अत: प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में भी आत्मनिर्भर नारीपात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। मंजरी, शेफाली आदि डाक्टर हैं और मंजु, सत्या, मलारी, सुषमा आदि अध्यापिकायें हैं, मिस जायसवाल प्रोफेसर हैं और प्रतिमा प्रिन्सिपल हैं। तारा अफसर हैं और मर्सी नर्स है। पत्रकारिता में भी

* नीलिमा - "निर्वासित"

स्त्रियों का भाग है । कनक पहले पत्र में काम करती थी, फिर ग्रामसुधार -विभाग में काम करने लगी । सुषमा श्रीवास्तव भी पत्रकार है । "झूठा सच" में कहा गया है कि जब तारा अफसर थी, तब सिपाही के रूप में स्त्रियों की नियुक्ति न हुई थी । लेकिन अब यह काम भी अनेक नारियां करती हैं ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नाबालिग नायिकायें हैं और सधुआइनें हैं । नाबालिग नायिकाओं में अमिता के चरित्र में निहित महत्ता हमारे मन को आश्वासन देती है तो वाणी की निष्कपटता और प्रेम की पीडा हमारे मन में समवेदना पैदा करती हैं । "इमरतिया" में ईमरतिया, लक्ष्मी और गौरी सधुआइनें हैं । उनके माध्यम से हमारे मठों और मन्दिरों में होनेवाले भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश हुआ है ।

निम्नजाति की उन्नति आलोच्यकाल की एक उल्लेखनीय विशेषता है । निम्न जाति के अनेक नारीपात्रों को प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्रमुख स्थान दिया गया है। प्यारी, कजरी सोनो, ताजमनी, धूमो, मलारी, जमुना, रत्ना, परबतिया, लवंगी आदि निम्न जाति के नारीपात्र हैं । ताजमनी नट्टिन है तो प्यारी, कजरी और सोनो करनट्टिनें हैं, धूमो और मलारी चमार जाति की है, रत्ना कोल जाति की है, परबतिया कहारिन है और लवंगी हरिजन कन्या है । मलारी तो पढ-लिखकर मास्टरनी बन गयी है । कजरी आदि के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि इन नारियों को अपनी अपनी जाति पर गर्व है । इन नारीपात्रों के अध्ययन से निम्नजाति की निरंतर उन्नति का पता चलता है । हरिजन कन्या लवंगी अपने भाई और एक ऊँची जाति की लडकी के संबंध पर जो आक्रोश प्रकट करती है, वह निम्न जाति के साहस की वृद्धि का परिचायक है । प्राचीन काल से निम्न जाति की नारियां ऊँची जाति की नारियों की अपेक्षा स्वतंत्र थीं, अब उनका जीवन और अधिक

स्वतंत्र और सुखपूर्ण दिखाई देता है । कजरी और सुमन का वार्तालाप इस बात का प्रमाण है कि ऊँची जाति की स्त्रियाँ अधिक परतंत्र हैं । कजरी के मतानुसार ऊँची जाति का होना बडी साँसत है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का विदेशी परिवेश भी ध्यान देने योग्य है । खातून, नूरन, सुमन, मिसेज़ रोज़वुड, तमारा, सेल्मा, योके, रायना आदि विदेशी नारी पात्र हैं । "अपने अपने अजनबी" के दोनों नारीपात्र सेल्मा और योके विदेशी हैं, दोनों बर्फ के कैद में पडती हैं । यह हिमकैद स्विटज़रलैंड में बसा हुआ चित्रित किया है । निर्मल वर्मा के उपन्यास "वे दिन" का घटनास्थल चेकोस्लोवाकिया का प्राग शहर है । उसमें जिस रायना का चित्रण किया गया है, वह आस्ट्रियन है। "सकोगी नहीं राधिका" की राधिका शिकागो विश्वविद्यालय में पढती है । प्रेमचन्दयुग में प्रेमाश्रम के प्रेमशंकर की विदेशयात्रा और लौटने पर बहिष्कार आदि की तुलना में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का यह विदेशी परिवेश आधुनिकता का लक्षण है ।

प्रेम, गृहस्थ जीवन इत्यादि में असफलता का आधिक्य प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के नारीपात्रों की विशेषता है। आज के ज़माने में अधिकाधिक नारियाँ ऊँची शिक्षा पाती हैं और बाहर जाकर काम करती हैं । इसलिए पुरुषों के निकट सम्पर्क में आती हैं । अत: प्रेम प्रेमविवाह आदि स्वाभाविक हैं । आपस में अच्छी तरह न समझकर क्षणिक मोह के वश में होकर प्रेम जाल में फँसना असफलता का एक कारण है । गृहस्थ जीवन की असफलता के कई कारण हैं । बेमेल विवाह, पति का सन्देह, पति का नपुंसकत्व, पति-पत्नी के अहं की टकराहट आदि विविध कारणों से दाम्पत्य जीवन असफल होता है । चन्दा, यशोदा, मनोरमा, चित्रा आदि के जीवन इसलिए दु:खमय बना था । यशोदा, चन्दा, जयन्ती, लछमा आदि का जीवन पति के सन्देह से पीड़ित हुआ तो

{चन्दा -"मनुष्य के रूप"}

मनोरमा, कनक, चित्रा आदि का जीवन पति के नपुंसकत्व से असह्य हुआ ।

अविवाहित गर्भ, गर्भपात संततिनियंत्रण, तलाक आदि बदलती परिस्थितियों की विशेषताएँ हैं । नारी जीवन पर इनका बड़ा प्रभाव पड़ा है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में दिव्या, शैलबाला, कमला, शान्ता, लिली आदि नारीपात्रों के जीवन की दिशा ही विवाह पूर्व गर्भ के कारण बदल गई । गर्भपात, सन्ततिनियंत्रण के उपाय आदि के कारण नारी की इस समस्या का बहुत कुछ समाधान हो सकता है । इस युग में रेखा, ईरा आदि नारी पात्र गर्भपात कराकर कठिनाइयों से विमुक्त हुए थे । नारीजीवन को घुटन से मुक्त करने के लिए तलाक कितना उपयोगी है, इसका प्रमाण है तारा, कनक, मनोरमा, अपरा, चित्रा आदि का चरित्र ।

आधुनिक प्रगतिशील युग में भी नारी का जीवन अस्वस्थ है । इसी कारण से प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कई नारी पात्र आत्महत्या करके अपने जीवन की व्यथाओं से हमेशा के लिए मुक्त हुई हैं । जयन्ती, रामेश्वरी, चित्रा, विद्या आदि की आत्महत्या नारीजीवन की असह्य पीड़ा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है ।

नारी का अतीव वासनात्मक रूप प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में दृष्टव्य है । नीलू, शैलबाला, सीरो, नूरन, हीरादेई, राधा, मित्रो, निन्नी आदि में यह रूप देखने को मिलता है । कालगति के अनुसार नारीपात्रों की उच्छृंखलता की भी वृद्धि होती दिखाई देती है । रत्नाबावला, राधिका, शीरीं आदि नारी पात्रों के चित्रण में अश्लीलता का इतना अधिक समावेश हो गया है कि हम उन्हें असामान्य नारियों की श्रेणी में रख सकते हैं ।

"वे दिन" में रायना और "क्यों फँसे" में भास्कर की मामी ने पुरुष को भगाकर असामान्यता प्रदर्शित की है। "मछली मरी हुई" की शीरीं, प्रिया आदि में समलैंगिक यौनाचार दिखाई देता है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी का असह्य रूप भी दृष्टिगत होता है। निरंजना, माधवी, अंजना आदि को हम इस काल की खलनारियों की श्रेणी में रख सकते हैं। इन नारियों ने अपने घृणित व्यवहार से नारीसहज कोमलता को तिलांजली दी है। नारी की ईर्ष्या का तो कोई हल ही नहीं। नैनसी, शान्ता, डाकू की स्त्री, मिसेज़ अगरवाला, गोमती, मणिमाला, हीरादेई, जेनी आदि ईर्ष्या-द्वेष की पुतलियाँ हैं। झगड़ालू नारियों को भी हम कई उपन्यासों में पाते हैं। वे गालियाँ देती हैं, मारती हैं, पीटती हैं, संक्षेप में, एक स्त्री दूसरी स्त्री का सन्तोष देख नहीं सकती। वह कुलांगना को कुलटा सिद्ध करने में कोई कसर उठा न रखती। नीरू जैसी हत्यारी स्त्रियाँ भी स्त्री की कठोरता के प्रतीक के रूप में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में हैं।

पहले से ही नारी को शोषित वर्ग के अंतर्गत रखा गया था। अब भी वह शोषण से पूर्णतया मुक्त न हुई है। वह बलात्कार का शिकार बनती है। "कबतक पुकारूँ" में विदेशी नारी सूसन तक बलात्कार का शिकार होकर गर्भिणी होती है। नारी पर आक्रमण करने के लिए एक अचूक अस्त्र का प्रयोग भी होता है। अपवाद रूपी उस अस्त्र के प्रयोग से सिर्फ नारी ही नहीं, उसके परिवारवाले भी घायल होते हैं। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "रागदरबारी" में बेला नामक लड़की के माध्यम से सिद्ध किया गया है कि नारी को बदचलन सिद्ध करने केलिए कुतंत्र रचने में सभ्य समझा जानेवाला मानव पीछे नहीं। "झूठा सच" में निरपराधिनी बन्ती का अनुभव मनुष्यत्वहीनता का प्रबल प्रमाण है। जहाँ भी युद्ध हो, क्रांति हो, झगड़ा हो अपमानित होनेवाली स्त्रियाँ हैं।

नारी के विभिन्न रूपों में मातृत्व ही सब से उत्कृष्ट है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक इस रूप की उज्वलता में कमी नहीं दिखाई पड़ती। उसके बाद पत्नी रूप को स्थान है। इन रूपों में वह अपने परिवार के लिए ही नहीं, समस्त मानव-जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुई है।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों के नारी संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन लक्षित होता है। इस काल के अधिकांश उपन्यासकार आदर्शवाद से यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुए हे। यशपाल, अश्क आदि के नारीपात्र इस दृष्टिकोण के परिचायक हैं। जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी आदि के उपन्यासों में मनोविश्लेषणवादी दृष्टिकोण को प्रमुखता है। यशपाल ने दिव्या आदि नारी पात्रों के ज़रिए अपने समाजवादी दृष्टिकोण का भी परिचय दिया है जो मार्क्सवाद से प्रभावित है। स्वातंत्र्योत्तर और साठोत्तर उपन्यासों के अनेक नारी पात्र उपन्यासकारों के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं जो युगानुकूल है। प्राकृतवादी और अतियथार्थवादी दृष्टिकोण भी शैल, रेखा, शीरीं आदि नारीपात्रों के चित्रण से उपन्यासकारों ने व्यक्त किया है। सेल्मा, योके आदि के चित्रण में अस्तित्ववाद, क्षणवाद आदि दृष्टव्य हैं। जयन्ती, चित्रा, आदि नारीपात्र उपन्यासकारों के पलायनवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं। ऐसा होने पर भी इस युग के उपन्यासकारों में आदर्शवादी दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव नहीं। जमना, प्रभा, लक्ष्मीबाई, झमिया, शेफाली, मृगनयनी, कन्नगी, सुभागी, राजदुलारी, मानकुमारी, नसीबन, परबतिया सरस्वती आदि नारी पात्रों की परिकल्पना का स्रोत यही आदर्शवादी दृष्टिकोण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में देवियाँ हैं, मानवियाँ हैं और दानवियाँ भी हैं। प्रगति के साथ साथ अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि के प्रवेश से नारीजीवन में अमंगल की संभावना दिखाई देती है। समाज का यथार्थ चित्र उपन्यासों में अंकित होना स्वाभाविक है। पर समाज के प्रति, मानवीयता के

प्रति जिन उपन्यासकारों में प्रतिबद्धता है, वे नारी चित्रण में कुछ संयम दिखायेंगे क्योंकि समाज को और राष्ट्र को भी बनाने बिगाडने की शक्ति साहित्यकारों में है। इसलिए मानव कल्याण को ध्यान में रखकर वे कुछ सतर्क रहें। हज़ारों वर्षों के अश्रान्त परिश्रम से हम अपने पुराने जंगलीपन से मुक्त हुए हैं। विज्ञान की प्रगति के कारण आज मानव देव के अधिक निकट आ पहुँचा है। हमारा दावा है कि सभ्यता में हम बहुत आगे हैं। लेकिन भौतिक सुखों की वृद्धि के पीछे पड़कर हम अपनी मानवता भूल जाते हैं। घोर अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि हमारे समाज में व्याप्त हैं। इनके कारण मानवमूल्यों का ह्रास बराबर होता जाता है। इस प्रकार मानव मूल्यों को भूलकर स्वार्थ लाभ को लक्ष्य बनाकर आगे बढे तो अनेक काल के प्रयत्न से हमने संस्कृति के जिस सौध को खडा किया है, वह चकनाचूर हो जायगा। समाज में मानव मूल्यों की पुन: प्रतिष्ठा केलिए नारी का भी सहयोग चाहिए। समाज नारी का रक्षक भी है और भक्षक भी। नारी की सुरक्षा समाज पर आश्रित है। इसलिए समाज कल्याण के प्रयत्नों में नारी-समाज भी योग दे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकालीन मान्य महिला मध्यकाल में बलिपशु के स्तर पर आयी और आधुनिककाल में अपने अंधकारपूर्ण वातावरण से मुक्त होकर प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से स्पर्धा करने योग्य बन गयी। पूर्वप्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में नारी-सुधार का भाव प्रमुख रहा तो प्रेमचन्द युग में नारी के आदर्शरूप की प्रतिष्ठा हुई और उसके यथार्थ रूप की ओर भी उपन्यासकारों का ध्यान गया। प्रेमचन्दोत्तर काल में तो वह पूर्ण रूप से यथार्थ के धरातल पर आ गयी। भारत स्वातंत्र्य के पहले से ही नारी का यह यथार्थ रूप उभरने लगा था, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में नारी-चरित्र का यह यथार्थ रूप पूर्ण रूप से प्रकट हुआ और साठोत्तर उपन्यासों में इस परिवर्तन ने

अपनी सीमा का उल्लंघन किया । तो भी नारी की गौरवमयी परम्परा की अन्तर्धारा इन सभी परिवर्तनों के बावजूद अब भी वह रही है जो नारी के लोक कल्याणकारी रूप का लक्षण है । प्राचीनता और नवीनता के सामंजस्य से ही नारी का यह महिमामय रूप प्रकट होता है । आलोच्य युग के उपन्यासों में दिव्या, तारा आदि ऐसे अविस्मरणीय नारीपात्र हैं । सभी पुरुष नारी के शत्रु नहीं हैं । पुरुष-विशेष नारी का शत्रु हो सकता है । ईर्ष्या-द्वेष से आक्रान्त नारी विशेष को भी उसी प्रकार हम नारी के शत्रु मान सकते हैं । प्रत्येक नारी पिता, पति, भाई या पुत्र के रूप में किसी पुरुष का आश्रय चाहनेवाली है । उस आश्रय के अभाव में वह कहीं भी न रहती । ऐसी आश्रयहीना नारी की सुरक्षा की समस्या का हल अभी तक न हो पाया है । पुरुष से मुक्ति चाहनेवाली नारी अपने तिक्त अनुभवों से विवश होकर पुन: किसी खूँटे पर बँध कर रहना चाहती है । यही नहीं, प्रत्येक नारी का अन्तर्मन हमेशा आश्रय के आदान प्रदान को आतुर है । अंधविश्वास, भाग्यवाद आदि से अभी तक नारी पूर्णतया मुक्त नहीं हुई है । प्राय: वह स्त्री जन्म को ही कोसती है । आत्मनिर्भरता ने उसे आर्थिक स्वतंत्रता दी; उसी के कारण सगे-संबंधी उसका शोषण करते हैं । इस प्रकार नारी-शोषण का एक नव्य उपाय भी आजकल उपजा है । जब नारी घर की चहारदीवारी में बन्द थी, तब उसे सिर्फ घर का काम-काज करना था । अब वह बाहर भी काम करने लगी तो उसके काम का बोझ दुगुने से अधिक हो गया । उत्पादकश्रम, प्रत्युत्पादकश्रम, समाज की सुरक्षा का श्रम ये तीनों अब उसके कर्तव्य हो गये हैं ।

बीसवीं सदी के इस उत्तरार्द्ध में भी नारी-शोषण की प्रक्रिया जारी है । सती-प्रथा के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में "रूपकन्वर" को हम भूल न पाते । कहीं कहीं बच्चियों की हत्या अब भी हो रही है; वैज्ञानिक प्रगति के प्रमाण के रूप में अब "आम्नियों सेन्टिसिस" जैसे परीक्षणों के द्वारा गर्भस्थ

शिशु का लिंगनिर्णय करने की सुविधा है । इसके द्वारा भ्रूणहत्या की जा रही है जिससे बच्चियों का जन्म रोका जाता है । दहेज की प्रथा अब भी कायम है, इसलिए लड़की का जन्म माता-पिताओं के लिए दु:ख का कारण है । वधुओं को जलाकर मारने के अनेक प्रमाण अब मिलते हैं । नारी पर बलात्कार भी किया जा रहा है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद चार दशवर्ष बीत जाने पर भी हमारे समाज में यह नारी-शोषण हो रहा है जो इस सभ्य समाज केलिए लज्जा जनक है ।

नारी-सुधार के प्रयत्न अब भी जारी हैं । "यंग विमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन" जैसे अनेक संघ अब भी हैं । असंख्य नवीन संस्थायें भी इसी लक्ष्य के लिए काम कर रही हैं । नारी-सुधार की ओर समाज सुधारक और राजनीतिज्ञ अधिकाधिक ध्यान लगा रहे हैं । इसीलिए नारी-वर्ष, शिशु-वर्ष आदि मनाये जा रहे हैं । आठ मार्च सार्वदेशीय नारी दिन के रूप में मनाया गया ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ - ग्रन्थ - सूची

उपन्यास

1· अँधेरे बन्द कमरे — मोहन राकेश
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1961

2· अधिकार का प्रश्न — भगवतीप्रसाद वाजपेयी
एस·चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड,
नई दिल्ली,

3· अनन्तर — जैनेन्द्रकुमार,
पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली 1961

4· अमरबेल — वृन्दावनलाल वर्मा
मयूर प्रकाशन, झाँसी, 1953

5· अमिता — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, दूसरा संस्करण
1960

6· ऋतुचक्र — इलाचन्द्र जोशी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण 1973

7· एक नन्हीं किन्दील — उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1947

8. कंकाल — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं॰2022

9. कब तक पुकारूँ — रांगेय राघव
तृतीय संस्करण, 1963

10. काले फूल का पौधा — डॉ॰लक्ष्मीनारायणलाल
भारती भण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग
सं॰2012

11. क्यों फँसें ? — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1968

12. खाली कुर्सी की आत्मा — लक्ष्मीकांत वर्मा, किताब महल,
इलाहाबाद, दिल्ली 1958

13. गर्म राख — उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद-2, 1952

14. गिरती दीवारें — उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, 1947, इलाहाबाद ।

15. गुनाहों का देवता — डॉ॰ धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सातवाँ
संस्करण 1962

16. गोदान — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, चौदहवाँ सं॰
1961

17· चारुचन्द्रलेख	हज़ारीप्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
18· जयवर्द्धन	जैनेन्द्रकुमार पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1956
19· जहाज़ का पंछी	इलाचन्द्र जोशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद- संशोधित संस्करण 1967
20· जीजीजी	पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6
21· झाँसी की रानी	वृन्दावनलाल वर्मा मयूर प्रकाशन, प्रा·लि·, झाँसी चौदहवाँ संस्करण, 1975
22· झूठा सच (वेतन और देश)	यशपाल लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सातवाँ संस्करण 1985
23· झूठा सच (देश का भविष्य)	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद· षष्टम 1987
24· तितली	जयशंकर प्रसाद आठवाँ संस्करण, सं·2013

25· त्यागपत्र — जैनेन्द्रकुमार
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1956

26· दादा कॉमरेड — यशपाल
छठा संस्करण 1984, लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद ।

27· दिव्या — यशपाल,
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
नवाँ संस्करण 1968, विद्यार्थी संस्करण

28· देशद्रोही — यशपाल
लखनऊ, छठा संस्करण 1961

29· न आनेवाला कल — मोहन राकेश
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वि·सं· 1970

30· निर्वासित — इलाचन्द्र जोशी, इलाहाबाद, 1946

31· परख — जैनेन्द्र कुमार
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई 1964

32· परती परिकथा — फणीश्वरनाथ रेणु
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1957

33· पार्टी कॉमरेड — पाँचवाँ सं· 1963

34· प्रेत और छाया — इलाचन्द्र जोशी,
भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
सं·2013, वि·

35· बड़ी बड़ी आँखें — उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद-1, 1955

36· बाणभट्ट की आत्मकथा — डा·हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,चौदहवाँ संस्करण 1984

37· भिखारिणी — विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक"
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
सप्तम सं·1973

38· मुक्तिबोध — जैनेन्द्रकुमार
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

39· मृगनयनी — वृन्दावनलाल वर्मा
मयूर प्रकाशन, झाँसी, पन्द्रहवाँ सं·
1967

40· रागदरबारी — श्रीलाल शुक्ल,
राजकमल प्रकाशन, प्रा·लि·नई दिल्ली-6
1968

41· लौटे हुए मुसाफिर — कमलेश्वर
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
तृतीय संस्करण 1987

42· शहर में घूमता आईना — उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

43· शेखर एक जीवनी-भाग I — अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, बनारस, सप्तम सं· 1961

44· शेखर एक जीवनी - भाग - II — अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, बनारस, सप्तम सं· 1961

45· डॉ·शेफाली — उदयशंकर भट्ट
भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1960

46· सितारों का खेल — उपेन्द्रनाथ अश्क,
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

47· सुनीता — जैनेन्द्रकुमार
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली ।

48· सेवासदन — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, बनारस, सं· 1962

आलोचनात्मक ग्रंथ

1· अनुसंधान — डॉ·सत्येन्द्र
नन्द्रकिशोर एण्ड ब्रदेर्स

2· आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास — डॉ· बेचन
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली 1965

3· आधुनिक हिन्दी साहित्य — सरला दुआ
हिन्दी साहित्य निकेतन, कानपुर, 1965

4· उपन्यासकार प्रेमचन्द — डॉ·सुरेशचन्द्र गुप्त
डॉ·रमेशचन्द्र गुप्त
अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6, 1966

5· जैनेन्द्र और उनके उपन्यास — रघुनाथ सरन,
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

6· धर्मवीर भारती:व्यक्ति और साहित्यकार
डॉ·पुष्पा वास्कर
अलका प्रकाशन, कानपुर-11, 1987

7· नारी का मूल्य — शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय
अनु·रामचन्द्र वर्मा
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, 1954

8· प्रेमचन्द और समसामयिक हिन्दी कथा साहित्य
डॉ·कुंवरपालसिंह
धरती प्रकाशन, बीकानेर,1984

9· प्रेमचन्द के नारी-पात्र — भारतसिंह
पुस्तक प्रचार, दिल्ली, 1973

10· बृहद् साहित्यिक निबंध — यशगुलाटी
सूर्यप्रकाशन, दिल्ली, 110006
द्वितीय संस्करण 1981

11· भक्तिकालीन काव्य में नारी — गजाननशर्मा
रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

12· मध्यकालीन प्रेमसाधना — परशुराम चतुर्वेदी
साहित्य भवन {प्राइवेट} लिमिटेड,
इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1957

13· मध्य युगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना
डॉ· उषा पाण्डेय
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6,
1959

14· यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य — सुरेशचन्द्र तिवारी
सरस्वती प्रेस, बनारस ।

15· यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन — डॉ· सुदर्शन मल्होत्रा
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-32, 197

16· रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना — बच्चनसिंह
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं·2015

17· श्रृंखला की कड़ियाँ — सुश्री महादेवी वर्मा
भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
सप्तम संस्करण सं·2015

18· हिन्दी उपन्यास: प्रेम और जीवन — शान्ति भारद्वाज "राकेश"
सुशील प्रकाशन

19· हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा
मक्खनलाल शर्मा
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1966

20· हिन्दी उपन्यास में नारीचित्रण बिन्दु अग्रवाल
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1968

21· हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र
सुजाता
मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1983

22· संस्कृत कवि दर्शन डॉ· भोलाशंकर व्यास
चौखम्बा, वाराणसी, द्वितीय 1961

23· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण
डॉ· हेमेन्द्र कुमार पानेरी
संघी प्रकाशन, जयपुर, 1974

24· स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास
डॉ· तहसीलदार दुबे,
नटराज पब्लिशिंग हाउस, हरियाणा,
1983

25· हिन्दी उपन्यास:एक सर्वेक्षण महेन्द्र चतुर्वेदी

26· हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना
सुरेश सिन्हा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1964

27· हिन्दी काव्य में नारी — वल्लभदास तिवारी
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1974

28· हिन्दी के आंचलिक उपन्यास — प्रकाश वाजपेयी
प्रकाशक पं·कैलाशनाथ भार्गव
नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, 1964

29· हिन्दी नाटक में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण
डा॰ सूरजकान्त शर्मा
एस·ई·एस· बुक कम्पनी, दिल्ली 1973

30· हिन्दी साहित्य — हजारीप्रसाद द्विवेदी
उत्तरचन्द कपूर एण्ड संस, दिल्ली, 1952

31· हिन्दी साहित्य प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियां
डा॰ गणपति चन्द्रगुप्त
लोकभारती, इलाहाबाद, 1971

32· हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
संवत 2009

33· हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
डा॰ रामरतन भटनागर
साथी प्रकाशन, सागर (मध्य प्रदेश)
द्वितीय संस्करण 1964

नाटक

1. अजातशत्रु — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद
संवत 1999

2. आहुति — लालचन्द्र बिस्मल
पृथ्वी थियेटर्स प्रकाशन, बम्बई 1950

3. चन्द्रगुप्त — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग
नवाँ संस्करण, संवद् 2011

4. जनमेजय का नागयज्ञ — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
नवाँ संस्करण ।

5. ध्रुवस्वामिनी — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद,
पन्द्रहवाँ संस्करण, संवत् 2016

6. मुक्ति का रहस्य — लक्ष्मीनारायण मिश्र
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी, 1962

7· राज्यश्री — जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद,
छठा संस्करण, वि·2002

8· वरमाला — गोविन्दवल्लभ पंत
गंगापुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
संवत् 1982 वि·

9· विशाख — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग
षष्ठम संस्करण, संवत् 2012

10· स्कन्दगुप्त — जयशंकर प्रसाद
प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी, संवत् 1993

कहानी संग्रह

1· प्रेम पच्चीसी — प्रेमचन्द
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा
संस्करण, 1961

2· मानसरोवर — प्रेमचन्द
हंसप्रकाशन, इलाहाबाद, 11वाँ संस्करण
जनवरी 1965

आलोचनात्मक ग्रंथ (अंग्रेज़ी)

1. The Theory of the Novel - Philop Stevick, The free press, New York, Mac millian Ltd., London, First Edition, 1967

2. Women in ancient India — Translated by Mary E.R. Martin, Chowkambha, Varanasi, Second editin 1964

3. Women in Mughal India — Rekha Misra, Munshiram, Manoharlal Oriental publishers, Delhi, 1967

4. Women in the Vedic Age — Shakuntala Rao Sasthri, Bharathiya Vidyabhavan, Bombay, Fourth Edition, 1969.

--0--

पत्र-पत्रिकायें

1. अवन्तिका (काव्यालोचनांक) सन् 1954 जनवरी
2. आलोचना - काव्यालोचन विशेषांक - जनवरी 1959
3. कल्याण - श्रीरामनाथ सुमन, वर्ष 38 अंक 10
4. चाँद - नवंबर 1934, नारीगीत, उत्तमचन्द श्रीवास्तव
5. दि टाइम्स आफ इंड्या दिनांक रविवार, जून (इंटर्व्यू आफ प्रोफसर युंग
6. धर्मयुग (6 फरवरी 1966) कविवर व्यास और हास्य - विजयेन्द्र स्नातक
7. विशाल भारत -(जुलाई 1950) प्रसाद की सौन्दर्यानुभूति - श्री·रामसुरेश त्रिपाठी
8. सम्मेलन पत्रिका - चौरासी सिद्ध - भाग - 41 - श्री·परशुराम चतुर्वेदी (संवत् 2012)
9. सरस्वती - संवाद (अगस्त 1961) - सूफी कवि जायसी एक दृष्टि
10. साहित्य सन्देश (सितंबर 1966) द्वापर एक मूल्यांकन
11. हंस (जुलाई 1947) मुक्तिबोध
12. हिन्दुस्तानी - जनवरी 1938